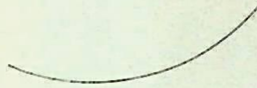
ओ३म्

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृतभाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

द्वितीयो भागः
(तृतीयाध्यायात्मकः)

सुदर्शनदेव आचार्यः





ओ३म्

तस्मै पाणिनये नमः

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृतभाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

द्वितीयो भागः
(तृतीयाध्यायात्मकः)

प्रवचनकारः

डॉ० सुदर्शनदेव आचार्यः

एम.ए., पी-एच.डी. (एच.ई.एस.)

संस्कृत सेवा संस्थान

७७६/३४, हरिसिंह कालोनी,

रोहतक-१२४००१ (हरयाणा)

प्रकाशक :-
ब्रह्मर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास
गुरुकुल झज्जर,
जिला झज्जर (हरयाणा)
दूरभाष : ०१२५१-५२०४४
५३३३२

मूल्य : १०० रुपये

प्रथम वार : २०००

श्रद्धानन्द बलिदान दिवस
(२३ दिसम्बर १९९७)

मुद्रक :
वेदव्रत शास्त्री
आचार्य प्रिंटिंग प्रेस,
गोहानामार्ग, रोहतक-१२४००१
दूरभाष : ०१२६२-४६८७४, ५६८७४

सम्मति और धन्यवाद

गुरुकुल झज्जर के सुयोग्य स्नातक पं० सुदर्शनदेव आचार्य ने **"पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्"** नाम से पाणिनीय व्याकरण **"अष्टाध्यायी"** की संस्कृत और राष्ट्रभाषा हिन्दी में व्याख्या की है। संस्कृत भाषा में प्रत्येक सूत्र का पदच्छेद, विभक्ति, समास, अनुवृत्ति, अन्वय, अर्थ और उदाहरण लिखकर सूत्रों की सुबोध व्याख्या की है। **"आर्यभाषा"** नामक हिन्दी टीका में पदोल्लेखपूर्वक अर्थ, उदाहरण तथा उदाहरणों का हिन्दी भाषा में अर्थ और सूत्रनिर्देशपूर्वक कच्ची एवं पक्की सिद्धि भी साथ-साथ दी गई है। अनेक स्थलों को स्पष्ट करने के लिए **"विशेष"** नामक टिप्पणी भी दी गई है।

अष्टाध्यायी (प्रथमावृत्ति) पर संस्कृत और हिन्दी भाषा में अभी तक इससे उत्तम और सुबोध वृत्ति प्रकाशित नहीं हुई है। यह ग्रन्थ व्याकरणशास्त्र अध्येता छात्र-छात्राओं तथा व्याकरण जिज्ञासु स्वयंपाठी स्वाध्यायशील सज्जनों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है।

इस ग्रन्थ को पांच भागों में प्रकाशित किया जारहा है। **प्रथम भाग** (१-२ अध्याय) और **द्वितीय भाग** (तीसरा अध्याय) छपकर तैयार होगये हैं। **तृतीय भाग** (४-५ अध्याय) प्रेस में छप रहा है। **चतुर्थ भाग** (६ अध्याय) और **पञ्चम भाग** (७-८ अध्याय) भी शीघ्र ही प्रकाशित करने की योजना है।

अष्टाध्यायी के ३९८९ सूत्रों की व्याख्या ५ भागों में पूरी होगी। प्रत्येक भाग में २३×३६/१६ आकार के लगभग ६०० पृष्ठ हैं। ६००×५=३००० पृष्ठों के सजिल्द ५ भागों का मूल्य ५०० रुपये है। अग्रिम ग्राहकों को ४०० रुपये में सुलभ होंगे।

इसका प्रकाशन **श्रद्धेय स्वामी ओमानन्द सरस्वती** आचार्य गुरुकुल झज्जर के आदेशानुसार **"ब्रह्मर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास गुरुकुल झज्जर"** की ओर से लगभग ५ लाख रुपये की लागत से किया जारहा है।

इस विशाल और श्रेष्ठ प्रकाशन के लिए लेखक और प्रकाशक सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

आचार्य प्रिंटिंग प्रेस,
दयानन्दमठ, रोहतक
दूरभाष : ०१२६२-४६८७४

वेदव्रत शास्त्री
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा

द्वितीयभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्

भूतकालप्रत्ययप्रकरणम्

इति द्वितीयभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्।

तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः

प्रत्ययसंज्ञाप्रकरणम्

प्रत्ययाधिकारः–

प्रत्ययः ।१।

वि०–प्रत्ययः १।१।

अर्थः–प्रत्यय इत्यधिकारोऽयम्, आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः। प्रत्ययशब्दः संज्ञात्वेनाधिक्रियते। यद् इत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः प्रत्ययसंज्ञास्ते वेदितव्याः, प्रकृति-उपपद-उपाधि-विकारागमान् वर्जयित्वा।

उदा०–कर्तव्यम्। करणीयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रत्ययः) पञ्चम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त 'प्रत्यय' का अधिकार है। प्रत्यय शब्द का संज्ञारूप में अधिकार किया गया है। जो इससे आगे कहेंगे उनकी प्रत्यय संज्ञा जाननी चाहिये; प्रकृति, उपपद, उपाधि, विकार और आगम को छोड़कर।

उदा०-कर्तव्यम्। करणीयम्। करना चाहिये।

सिद्धि-(१) कर्तव्यम्। कृ+तव्य। कर्+तव्य। कर्तव्य+सु। कर्तव्यम्।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से विहित 'तव्यत्' की इस सूत्र से प्रत्यय संज्ञा होती है।

(२) करणीयम्। 'कृ' धातु से पूर्ववत् 'अनीयर्' प्रत्यय है।

पराधिकारः–

परश्च ।२।

प०वि०–परः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–प्रत्यय इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–प्रत्ययश्च परः।

अर्थः–यश्च प्रत्ययसंज्ञकः स धातोः प्रातिपदिकाद् वा परो भवति, इत्यधिकारोऽयम्, आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः।

उदा०–कर्तव्यम्। करणीयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(च) और (प्रत्ययः) जिसकी प्रत्यय संज्ञा है, वह (परः) धातु अथवा प्रातिपदिक से परे होता है, इसका भी पञ्चम अध्याय की समाप्ति तक अधिकार है।

उदा०-कर्तव्यम्। करणीयम्। करना चाहिये।

सिद्धि-कर्तव्यम्। करणीयम्। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'तव्य' और 'अनीयर्' प्रत्यय इस सूत्र से परे किये गये हैं; पूर्व नहीं।

प्रत्ययस्वरपरिभाषा

आद्युदात्तः–

(१) आद्युदात्तश्च।३।

प०वि०-आद्युदात्तः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-आदिरुदात्तो यस्य स आद्युदात्तः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-प्रत्यय इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रत्ययश्चाद्युदात्तः।

अर्थः-यश्च प्रत्ययसंज्ञकः स आद्युदात्तो भवति, इत्यधिकारोऽयम्, आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः। यस्य प्रत्ययस्यान्यस्वरो न विहितः स आद्युदात्तो वेदितव्यः।

उदा०-क॒र्तव्य॑म्। तै॒त्ति॒रीय॑म्।

आर्यभाषा-अर्थ-(च) और (प्रत्ययः) जिसकी प्रत्यय संज्ञा है, वह (आद्युदात्तः) आद्युदात्त होता है। इसका पंचम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त अधिकार है। जिस प्रत्यय का कोई अन्य स्वर विधान नहीं किया गया है, उसका आद्युदात्त स्वर होता है।

उदा०-कर्तव्यम्। करना चाहिये। तैत्तिरीयम्। तित्तिरि ऋषि के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ।

सिद्धि-(१) क॒र्तव्य॑म्। कृ+तव्य। कर्+तव्य। कर्तव्य+सु। कर्तव्यम्।

यहां इस सूत्र से 'तव्य' प्रत्यय आद्युदात्त है। जब एक स्वर निश्चित हो जाता है तब 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५२) से अन्य अच् अनुदात्त हो जाते हैं। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (४।८।६५) से उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित हो जाता है।

(२) तै॒त्ति॒रीय॑म्। तित्तिरि+छण्। तित्तिरि+ईय। तैत्तिर्+ईय। तैत्तिरीय+सु। तैत्तिरीयम्।

यहां 'तित्तिरि' प्रातिपदिक से 'तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्' (४।३।१०२) से 'छण्' प्रत्यय है। यह 'छण्' प्रत्यय इस सूत्र से आद्युदात्त है। शेष स्वरविधि पूर्ववत् है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ' को ईय-आदेश और 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से आदिवृद्धि होती है।

अनुदात्तः–

(२) अनुदात्तौ सुप्पितौ ।४।

प०वि०–अनुदात्तौ १।२ सुप्-पितौ १।२।

स०–प इत् यस्य स पित्। सुप् च पिच्च तौ–सुप्पितौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–प्रत्यय इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–सुप्पितौ प्रत्ययावनुदात्तौ।

अर्थः–सुपः पितश्च प्रत्यया अनुदात्ता भवन्ति। पूर्वसूत्रस्यायमपवादः।

उदा०–**सुप्**–दृषदौ। दृषदः। **पित्**–पचति। पठति।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुप्-पितौ) सुप् और पित् प्रत्यय (अनुदात्तौ) अनुदात्त होते हैं। यह पूर्व सूत्र का अपवाद है।

उदा०-सुप्-दृषदौ। दो पत्थर। दृषदः। बहुत पत्थर। पित्-पचति। वह पकाता है। पठति। वह पढ़ता है।

सिद्धि-(१) दृषदौ। दृषद्+औ। दृषदौ।

यहां इस सूत्र से औ (सुप्) प्रत्यय अनुदात्त है। इसे 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६६) से स्वरित हो जाता है। ऐसे ही दृषदः।

(२) पचति। पच्+लट्। पच्+शप्+तिप्। पच्+अ+ति। पचति।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय है। यह पित् होने से इस सूत्र से अनुदात्त है। इससे पूर्ववत् स्वरित हो जाता है। ऐसे ही-पठति।

सनादिप्रत्ययप्रकरणम्

सन् (अर्थविशेषे) :–

(१) गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ।५।

प०वि०–गुप्-तिज्-किदभ्यः ५।३ सन् १।१।

स०–गुप् च तिज् च किच्च ते गुप्तिज्कितः, तेभ्यो गुप्तिज्किद्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–प्रत्ययः पर इति चानुवर्तते।

अर्थः–गुप्तिज्किद्भ्यो धातुभ्यः परः सन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**गुप्**–जुगुप्सति। **तिज्**–तितिक्षते। **कित्**–चिकित्सति।

आर्यभाषा-अर्थ-(गुपृतिजृकिद्भ्यः) गुप्, तिज्, कित् इन धातुओं से (परः) परे (सन्) सन् (प्रत्ययः) प्रत्यय होता है।

उदा०-गुप्-जुगुप्सते। निन्दा करता है। तिज्-तितिक्षते। क्षमा करता है। कित्-चिकित्सति। चिकित्सा (इलाज) करता है।

सिद्धि-(१) जुगुप्सते। गुप्+सन्। गुप्+गुप्+स। जु+गुप्+स। जुगुप्स+लट्। जुगुप्स+शप्+त। जुगुप्स+अ+ते। जुगुप्सते।

यहां 'गुप गोपने' (भ्वा०आ०) धातु से 'सन्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के ग् को ज् होता है। 'जुगुप्स' की 'सनाद्यन्ता धातवः' (३।१।३२) से धातु सञ्ज्ञा है। इससे वर्तमानकाल में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय होता है।

(२) तितिक्षते। 'तिज् निशाने' (भ्वा० आ०)।

(३) चिकित्सति। 'कित निवासे रोगापनयने च (भ्वा०प०)।

अर्थविशेषः-गुप्तिज्किद्भ्यो निन्दाक्षमाव्याधिप्रतीकारेषु सन्निष्यते। गुप्, तिज्, कित् इन धातुओं से यथासंख्य निन्दा, क्षमा और व्याधिप्रतीकार अर्थ में 'सन्' प्रत्यय होता है।

सन् (अर्थविशेषे)-

(२) मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य।६।

वि०-मान्-बध-दान्-शान्भ्यः ५।३ दीर्घः १।१ च अव्ययपदम्, आभ्यासस्य ६।१।

स०-मान् च बधश्च दान् च शान् च ते-मान्बधदान्शानः, तेभ्यः-मान्बधदान्शान्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अभ्यासस्य विकारः आभ्यासः, तस्य-आभ्यासस्य (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-प्रत्ययः, परः, सन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मान्बधदान्शान्भ्यः सन् प्रत्यय आभ्यासस्य च दीर्घः।

अर्थः-मान्बधदान्शान्भ्यो धातुभ्यः परः सन् प्रत्ययो भवति, आभ्यासस्य=अभ्यासविकारस्य च दीर्घो भवति।

उदा०-मान्-मीमांसते। **बध्**-बीभत्सते। **दान्**-दीदांसते। **शान्**-शीशांसते।

आर्यभाषा-अर्थ-(मान्बधदान्शान्भ्यः) मान्, बध, दान् और शान् धातुओं से (परः) परे (सन्) सन् (प्रत्ययः) प्रत्यय होता है (च) और (आभ्यासस्य) अभ्यास के विकार को (दीर्घः) दीर्घ होता है।

उदा०-मान्-मीमांसते। वह जानना चाहता है। बध्-बीभत्सते। वह विरूप होता है। दान्-दीदांसते। वह सरल होता है। शान्-शीशांसते। तेज (तीक्ष्ण) करता है।

सिद्धि-(१) मीमांसते। मान्+सन्। मान्+मान्+स। म+मान्+स। मि+मान्+स। मी+मां+स। मीमांस। मीमांस+लट्। मीमांस+शप्+त। मीमांस+अ+ते। मीमांसते।

यहां 'मान पूजायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से सन् प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व, 'सन्यतः' (७।४।७९) से अभ्यास के अकार को इत्व और इस सूत्र से इ को दीर्घ (ई) होता है। 'मीमांस' की 'सनाद्यन्ता धातवः' (३।१।३२) से धातु संज्ञा है। इससे वर्तमानकाल में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय होता है।

(२) बीभत्सते। बध्+सन्। बध्+वध्+स। ब+बध्+स। बि+बध्+स। बी+भत्+स। बीभत्स। बीभत्स+लट्। बीभत्स+शप्+त। बीभत्स+अ+ते। बीभत्सते।

यहां 'बध बन्धने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से सन् प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। पूर्ववत् अभ्यास को इत्व और इस सूत्र से इ को दीर्घ (ई) होता है। 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः' (८।२।३७) से बध् के ब् को भ और 'खरि च' (८।४।५४) से ध को त् होता है। 'बीभत्स' धातु से पूर्ववत् लट् प्रत्यय है।

(३) दीदांसते। 'दान अवखण्डने' (भ्वा०उ०)।

(४) शीशांसते। 'शान अवतेजने' (भ्वा०उ०)।

अर्थविशेष-मान्बधदान्शान्भ्यो जिज्ञासावैरूप्यार्जवनिशानेषु सन्निष्यते। मान्, बध्, दान् और शान् धातुओं से यथासंख्य जिज्ञासा, वैरूप्य, आर्जव और निशान अर्थों में सन् प्रत्यय होता है।

सन् (इच्छार्थे)-

(३) धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा।७।

प०वि०-धातोः ५।१ कर्मणः ५।१ समानकर्तृकात् ५।१ इच्छायाम् ७।१ वा अव्ययपदम्।

स०-समानः कर्ता यस्य स समानकर्तृकः, तस्मात्-समानकर्तृकात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-प्रत्ययः, परः, सन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इच्छतिकर्मणः समानकर्तृकाद् धातोरिच्छायां वा सन् प्रत्ययः।

अर्थः-इच्छति-कर्मभूतात् समानकर्तृकाद् धातोरिच्छायामर्थे विकल्पेन सन् प्रत्ययो भवति। वा-वचनात् पक्षे वाक्यमपि भवति।

उदा०-कर्तुमिच्छति-चिकीर्षति। हर्तुमिच्छति-जिहीर्षति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) इच्छति धातु का कर्म बनी हुई (समानकर्तृकात्) एक कर्तावाली (धातोः) धातु से (इच्छायाम्) इच्छा अर्थ में (वा) विकल्प से (सन्) सन् प्रत्यय होता है। विकल्प-विधान से पक्ष में वाक्य भी होता है।

उदा०-कर्तुमिच्छति-चिकीर्षति। वह करना चाहता है। हर्तुमिच्छति-जिहीर्षति। वह हरना चाहता है।

सिद्धि-(१) चिकीर्षति। कृ+सन्। कृ+कृ+स। कृ+कॄ+स। कृ+किर्+स। कृ+कीर्+स। क+कीर्+स। चि+कीर्+ष। चिकीर्ष। चिकीर्ष+लट्। चिकीर्ष+शप्+तिप्। चिकीर्ष+अ+ति। चिकीर्षति।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से सन् प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से 'कृ' धातु को द्वित्व होता है। 'इको झल्' (१।२।९) से 'सन्' प्रत्यय के कित् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्राप्त गुण का निषेध होता है। 'अज्झनगमां सनि' (६।४।१६) से कृ को दीर्घ (कॄ), 'ॠत इद् धातोः' (७।१।१००) से ॠ को इत्व 'उरण् रपरः' (१।१।५०) से रपरत्व (किर्) और 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घ (कीर्) होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से 'सन्' के स को षत्व होता है। 'उरत्' (७।४।६६) अभ्यास के ऋ को अकार, 'सन्यतः' (७।४।७९) से अभ्यास के अ को इ और 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के क् को च् होता है।

(२) जिहीर्षति। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

क्यच् (इच्छार्थे)-

(४) सुप आत्मनः क्यच्।८।

प०वि०-सुपः ५।१ आत्मनः ६।१ क्यच् १।१।

अनु०-प्रत्ययः, परः, कर्मणः, इच्छायां वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इच्छति-कर्मण आत्मनः सुप इच्छायां वा क्यच्।

अर्थः-इच्छतिकर्मभूताद् आत्मसम्बन्धिनः सुबन्तात् पर इच्छायामर्थे विकल्पेन क्यच् प्रत्ययो भवति। वा-ग्रहणात् पक्षे वाक्यमपि भवति।

उदा०-आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) इच्छति धातु का कर्म बने हुये (आत्मनः) आत्मसम्बन्धी (सुपः) सुबन्त से (परः) परे (इच्छायाम्) इच्छा अर्थ में (क्यच्) क्यच् प्रत्यय होता है। विकल्प विधान से पक्ष में वाक्य भी होता है।

उदा०-आत्मनः पुत्रमिच्छति-पुत्रीयति। अपने पुत्र की इच्छा करता है।

सिद्धि-पुत्रीयति। पुत्र+अम्+क्यच्। पुत्र+य। पुत्री+य। पुत्रीय। पुत्रीय+लट्। पुत्रीय+शप्+तिप्। पुत्रीय+अ+ति। पुत्रीयति।

यहां इच्छति धातु के कर्मभूत 'पुत्र' सुबन्त से इस सूत्र से क्यच् प्रत्यय है। 'क्यचि च' (७।४।३३) से ईत्व होता है।

काम्यच् (इच्छार्थे)–

(५) काम्यच् च।६।

प०वि०-काम्यच् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-प्रत्ययः परः, कर्मणः, आत्मनः सुप इच्छायां वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इच्छति-कर्मण आत्मनः सुप् इच्छायां वा काम्यच् च।

अर्थः-इच्छति-कर्मभूताद् आत्मसम्बन्धिनः सुबन्तात् पर इच्छायामर्थे विकल्पेन काम्यच् प्रत्ययोऽपि भवति। वा-ग्रहणात् पक्षे वाक्यमपि भवति।

उदा०-आत्मनः पुत्रमिच्छति-पुत्रकाम्यति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) इच्छति धातु के कर्म बने हुये (आत्मनः) आत्मसम्बन्धी (सुपः) सुबन्त से (परः) परे (इच्छायाम्) इच्छा अर्थ में (वा) विकल्प से (काम्यच्) काम्यच् (प्रत्ययः) प्रत्यय (च) भी होता है। विकल्प विधान से पक्ष में वाक्य भी होता है।

उदा०-आत्मनः पुत्रमिच्छति-पुत्रकाम्यति।

सिद्धि-पुत्रकाम्यति। पुत्र+अम्+काम्यच्। पुत्र+काम्य। पुत्रकाम्य। पुत्रकाम्य+लट्। पुत्रकाम्य+शप्+तिप्। पुत्रकाम्य+अ+ति। पुत्रकाम्यति।

यहां इच्छति धातु के कर्मभूत 'पुत्र' सुबन्त से इस सूत्र से काम्यच् प्रत्यय है।

क्यच् (आचारे)–

(६) उपमानादाचारे।१०।

प०वि०-उपमानात् ५।१ आचारे ७।१।

अनु०-प्रत्ययः, परः, कर्मणः, सुपः वा क्यच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपमानात् कर्मणः सुप आचारे वा क्यच्।

अर्थः-उपमानवाचिनः कर्मणः सुबन्तात् पर आचारेऽर्थे विकल्पेन क्यच् प्रत्ययो भवति। वा-ग्रहणात् पक्षे वाक्यमपि भवति।

उदा०-पुत्रमिवाचरति-पुत्रीयति छात्रम्। प्रावारमिवाचरति-प्रावारीयति कम्बलम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपमानात्) उपमानवाची (कर्मणः) कर्मभूत (सुपः) सुबन्त से (परः) परे (आचारे) आचरण करने अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यच्) क्यच् (प्रत्ययः) प्रत्यय होता है। विकल्प-विधान से पक्ष में वाक्य भी होता है।

उदा०-पुत्रमिवाचरति-पुत्रीयति छात्रम्। छात्र से पुत्र के समान आचरण करता है। प्रावारमिवाचरति-प्रावारीयति कम्बलम्। कम्बल को चद्दर के समान बरतता है।

सिद्धि-पुत्रीयति। इसकी सिद्धि (३।१।८) में देख लेवें।

विशेष-इससे आगे 'प्रत्ययः' और 'परः' की अनुवृत्ति नहीं दिखाई जायेगी, इन दोनों का पञ्चम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त अधिकार है।

क्यङ् (आचारे)-

(७) कर्तुः क्यङ् सलोपश्च।११।

प०वि०-कर्तुः ६।१ क्यङ् १।१ सलोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-सस्य लोप इति सलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-वा, सुपः, उपमानाद्, आचारे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपमानात् कर्तुः सुप आचारे वा क्यङ् सलोपश्च।

अर्थः-उपमानवाचिनः कर्तुः सुबन्तात् पर आचारेऽर्थे विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति, सकारस्य च वा लोपो भवति। अन्वाचयशिष्टः सलोपः, तदभावेऽपि क्यङ् प्रत्ययो भवत्येव। यदि क्वचित् सकारो भवति स लुप्यते।

उदा०-श्येन इवाचरति काकः-श्येनायते। पुष्करमिवाचरति कुमुदम्-पुष्करायते। पय इवाचरति तक्रम्-पयायते, पयस्यते वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपमानात्) उपमानवाची (कर्तुः) कर्तृभूत (सुपः) सुबन्त से परे (आचारें) आचरण अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है (च) और विकल्प से (सलोपः) सकार का लोप होता है। यहां सकार का लोप अन्वाचयशिष्ट है, यदि

शब्द में सकार हो तो लोप हो जाता है, यदि न हो तब भी शब्द से क्यङ् प्रत्यय होता ही है। सकार का लोप भी विकल्प से होता है।

उदा०-श्येन इवाचरति काकः-श्येनायते। कौवा बाज के समान आचरण करता है। पुष्करमिवाचरति कुमुदम्-पुष्करायते। नीला कमल सफेद कमल के समान आचरण कर रहा है। पय इवाचरति तक्रम्-पयायते, पयस्यते वा। मट्ठा दूध के समान लग रहा है।

सिद्धि-पयायते। पयस्+सु+क्यङ्। पयस्+य। पय+य। पयाय। पयाय+लट्। पयाय+शप्+त। पयाय+अ+ते। पयायते। स लोप के विकल्प में-पयस्यते।

यहां उपमानवाची 'पयस्' शब्द से इस सूत्र से 'क्यङ्' प्रत्यय और अन्त्य सकार का लोप होता है। 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' (७।४।२५) से दीर्घ हो जाता है। 'क्यङ्' प्रत्यय के ङित् होने से 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (१।३।१२) से आत्मनेपद होता है। ऐसे ही-श्येनायते, पुष्करायते।

क्यङ् (भवत्यर्थे)-

(८) भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः।१२।

प०वि०-भृश-आदिभ्यः ५।३ भुवि ७।१ अच्वेः ५।१ लोपः १।१ च अव्ययपदम्, हलः ६।१।

स०-भृश आदिर्येषां ते भृशादयः, तेभ्यः-भृशादिभ्यः (बहुव्रीहिः)। न च्विरिति अच्विः, तस्मात्-अच्वेः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-वा, क्यङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अच्विभ्यो भृशादिभ्यो भुवि वा क्यङ् हलश्च लोपः।

अर्थः-अच्वि-अन्तेभ्यो भृशादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः परो भुवि=भवत्यर्थे विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति, अन्त्यस्य हलश्च लोपो भवति। अच्वेरिति वचनाद् अभूततद्भावे विषये क्यङ् प्रत्ययो विधीयते। नञिवयुक्तमन्य-तत्सदृशाधिकरणे।

उदा०-अभृशो भृशो भवति-भृशायते। अशीघ्रः शीघ्रो भवति-शीघ्रायते। असुमनाः सुमना भवति-सुमनायते।

भृश। शीघ्र। मन्द। चपल। पण्डित। उत्सुक। उन्मनस्। अभिमनस्। सुमनस्। दुर्मनस्। रहस्। रेहस्। शश्वत्। बृहत्। वेहत्।

नृषत्। शुधि। अधर। ओजस्। वर्चस्। विमनस्। रभन्। हन्। रोहत्। शुचिस्। अजरस्। इति भृशादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अच्वेः) च्वि प्रत्यय से रहित (भृशादिभ्यः) भृश आदि प्रातिपदिकों से परे (भुवि) भवति=होने अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है (च) और (हलः) अन्त्य हल् का (लोपः) लोप हो जाता है। हल् का लोप अन्वाचयशिष्ट है। यदि प्रातिपदिक के अन्त में हल् हो तो लोप हो जाता है। 'अच्वि' के वचन से अभूततद्भाव विषय में क्यङ् प्रत्यय होता है क्योंकि **'अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः'** *(५।४।५०) से 'च्वि' प्रत्यय अभूततद्भाव विषय में होता है। नञ्युक्त का तत्सदृश द्रव्य अर्थ में कथन होता है।*

उदा०-अभृशो भृशो भवति-भृशायते। जो सबल नहीं है वह सबल होता है। अशीघ्रः शीघ्रो भवति-शीघ्रायते। जो शीघ्रकारी नहीं है वह शीघ्रकारी होता है। असुमनाः सुमना भवति-सुमनायते। जो उत्तम मनवाला नहीं है, वह उत्तम मनवाला होता है।

सिद्धि-सुमनायते। सुमनस्+सु+क्यङ्। सुमनस्+य। सुमन+य। सुमनाय। सुमनाय+लट्। सुमनाय+शप्+त। सुमनाय+अ+ते। सुमनायते। यहां सब कार्य पयायते के समान हैं। ऐसे ही-भृशायते, शीघ्रायते।

क्यष् (भवत्यर्थे)-

(६) लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्।१३।

प०वि०-लोहितादि-डाज्भ्यः ५।३ क्यष् १।१।

स०-लोहित आदिर्येषां ते लोहितादयः, लोहितादयश्च डाच् च ते-लोहितादिडाचः, तेभ्यः-लोहितादिडाज्भ्यः (बहुव्रीहिगर्भितेतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-वा, भुवि, अच्वेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अच्विभ्यो लोहितादिडाज्भ्यो भुवि वा क्यष्।

अर्थः-अच्वि-अन्तेभ्यो लोहितादिभ्यो डाजन्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः परो भुवि=भवत्यर्थे विकल्पेन क्यष् प्रत्ययो भवति।

पूर्वस्मिन् सूत्रेऽभूततद्भावेऽर्थे क्यङ् प्रत्ययो विहितः, लोहितादिभ्यो डाजन्तेभ्यश्च क्यषेव स्यादिति नियमार्थं वचनम्। **'वा क्यषः'** (१।३।९०) इति परस्मैपदमात्मनेपदं च भवति।

उदा०-लोहितादिः-अलोहितो लोहितो भवति-लोहितायति, लोहितायते वा। **डाजन्तः**-अपटपटा पटपटा भवति-पटपटायति, पटपटायते वा।

लोहित। नील। हरित। पीत। मद्र। फेन। मन्द। इति लोहितादिः। आकृतिगणत्वात्-वर्मन्, निद्रा, करुणा, कृपा इत्यादयो लोहितादिषु गण्यन्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अच्वेः) च्वि-प्रत्यय से रहित (लोहितादिडाज्भ्यः) लोहित आदि और डाच् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से (भुवि) होने अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यष्) क्यष् प्रत्यय होता है।

पूर्व सूत्र में अभूततद्भाव अर्थ में क्यङ् प्रत्यय का विधान किया गया है, लोहित आदि तथा डाच्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से उक्त अर्थ में क्यष् प्रत्यय ही हो, इस नियम के लिए यह कथन किया गया है। इससे 'वा क्यषः' (१।३।९०) से परस्मैपद और आत्मनेपद होता है।

*उदा०-**लोहितादि-अलोहितो लोहितो भवति-लोहितायते।** जो लाल नहीं है वह लाल हो रहा है। **डाजन्त-अपटपटा पटपटा भवति-पटपटायते।** जो पटपट शब्द वाला नहीं है वह पटपट शब्दवाला हो रहा है।*

लोहित आदि शब्द धर्मवाची हैं, इनसे शब्दशक्ति के स्वभाव से तद्धर्मी द्रव्यों का ग्रहण किया जाता है।

*सिद्धि-(१) **लोहितायति।** लोहित+सु+क्यष्। लोहित+य। लोहिताय। लोहिताय+लट्। लोहिताय+शप्+तिप्। लोहिताय+अ+ति। लोहितायति।*

*यहां 'वा क्यषः' (१।३।९०) से विकल्प से परस्मैपद होता है, पक्ष में आत्मनेपद भी होता है-**लोहितायते।***

*(२) **पटपटायते।** पटत्+डाच्। पटत्+पटत्+आ। पटत्+पट्०+आ। पट+पट्+आ। पटपटा। पटपटा+क्यष्। पटपटा+य। पटपटाय। पटपटाय+लट्। पटपटाय+शप्+तिप्। पटपटाय+अ+ति। पटपटायति।*

यहां 'पटत्' शब्द से 'अव्यक्तानुकरणात्०' (५।४।५७) से 'डाच्' प्रत्यय है। 'डाचि बहुलं द्वे भवतः' से 'पटत्' शब्द को द्विर्वचन होता है। 'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (वा० ६।४।१४३) से पटत् के टिभाग (अत्) का लोप होता है। 'नित्यमाम्रेडिते डाचि' (वा० ६।१।९६) से पूर्व पटत् के तकार को पररूप पकार होता है। शेष कार्य 'लोहितायति' के समान है।

क्यङ् (क्रमणे)–

(१०) कष्टाय क्रमणे।१४।

प०वि०–कष्टाय ४।१ क्रमणे ७।१।

अनु०–वा, क्यङ् इत्यनुवर्तते, न क्यष्।

अन्वयः–चतुर्थी समर्थात् कष्टात् क्रमणे वा क्यङ्।

अर्थः–चतुर्थी समर्थात् कष्टशब्दात् परः क्रमणे=अनाजवेऽर्थे विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कष्टाय कर्मणे क्रामति–कष्टायते।

आर्यभाषा–अर्थ–(कष्टाय) चतुर्थी-समर्थ कष्ट शब्द से परे (क्रमणे) कुटिलता अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है।

उदा०–कष्टाय कर्मणे क्रामति–कष्टायते। कष्ट के हेतु पाप कर्म करने लिये उत्साह करता है।

सिद्धि–कष्टायते। कष्ट+ङे+क्यङ्। कष्ट+य। कष्टाय। कष्टाय+लट्। कष्टाय+शप्+त। कष्टाय+अ+ते। कष्टायते। यहां सब कार्य पूर्ववत् हैं।

विशेष–सूत्र में कष्ट शब्द चतुर्थ्यन्त पढ़ा है अतः चतुर्थी समर्थ 'कष्ट' शब्द का ग्रहण किया जाता है।

क्यङ् (आवर्तने चरणे च)–

(११) कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः।१५।

प०वि०–कर्मणः ५।१ रोमन्थ-तपोभ्याम् ५।२ वर्तिचरोः ७।२।

स०–रोमन्थश्च तपश्च ते–रोमन्थतपसी, ताभ्याम्–रोमन्थतपोभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। वर्तिश्च चर् च तौ वर्तिचरौ, तयोः–वर्तिचरोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वा, क्यङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मभ्यां रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोर्वा क्यङ्।

अर्थः–कर्मभूताभ्यां रोमन्थ-तपोभ्यां शब्दाभ्यां परो यथासंख्यं वर्तिचरोरर्थयोर्विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–रोमन्थः–रोमन्थं वर्तयति–रोमन्थायते। गौः। **तपः–**तपश्चरति–तपस्यति ब्रह्मचारी।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) कर्मभूत (रोमन्थ-तपोभ्याम्) रोमन्थ और तप शब्दों से परे यथासंख्य (वर्ति-चरोः) आवृत्ति और आचरण अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-रोमन्थ-रोमन्थं वर्तयति-रोमन्थायते गौः। गाय खाये हुये घास के चर्वण की आवृत्ति कर रही है। रोमन्थ=खाये हुये घास को फिर चबाना (जुगाली करना)। वर्तिः=आवृत्तिः। तपः-तपश्चरति-तपस्यति ब्रह्मचारी। ब्रह्मचारी तप कर रहा है।

सिद्धि-(१) तपस्यति। तपस्+अम्+क्यङ्। तपस्+य। तपस्य। तपस्य+लट्। तपस्य+शप्+तिप्। तपस्य+अ+ति। तपस्यति।

यहां क्यङ् प्रत्यय के ङित् होने से 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (१।३।१२) से आत्मनेपद प्राप्त था किन्तु 'तपसः परस्मैपदं च' (वा० ३।१।१५) से यहां परस्मैपद होता है।

(२) रोमन्थायते। कष्टायते के समान सिद्ध करें।

क्यङ् (उद्वमने)-

(१२) वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने।१६।

प०वि०-वाष्प-उष्मभ्याम् ५।२ उद्वमने ७।१।

स०-वाष्पश्च ऊष्मा च तौ वाष्पोष्माणौ, ताभ्याम्-वाष्पोष्मभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वा, क्यङ्, कर्मण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मभ्यां वोष्पोष्मभ्यामुद्वमने वा क्यङ्।

अर्थः-कर्मभूताभ्यां वाष्पोष्मभ्यां शब्दाभ्यां पर उद्वमनेऽर्थे विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**वाष्पः**-वाष्पमुद्वमति-वाष्पायते। **ऊष्मा**-ऊष्माणमुद्वमति-ऊष्मायते।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) कर्मभूत (वाष्पोष्मभ्याम्) वाष्प और ऊष्मा शब्द से परे (उद्वमने) उगलने अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-वाष्पः-वाष्पमुद्वमति-वाष्पायते स्थाली। पतीली भांप को उगलती है। ऊष्मा-उष्माणमुद्वमति-ऊष्मायते सूर्यः। ऊष्मा=सूर्य गर्मी को उगलता है।

सिद्धि-वाष्पायते। वाष्प+अम्+क्यङ्। वाष्प+य। वाष्पाय। वाष्पाय+लट्। वाष्पाय+शप्+त। वाष्पाय+अ+ते। वाष्पायते। सब कार्य पूर्ववत् है।

क्यङ् (करणे)–

(१३) शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे।१७।

प०वि०-शब्द-वैर-कलह-अभ्र-कण्व-मेघेभ्यः ५।१ करणे ७।१।

स०-शब्दश्च वैरञ्च कलहश्च अभ्रश्च कण्वं च मेघश्च ते शब्द०मेघाः, तेभ्यः-शब्द०मेघेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वा, क्यङ् कर्मण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मभ्यः शब्द०मेघेभ्यः करणे वा क्यङ्।

अर्थः-कर्मभूतेभ्यः शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः शब्देभ्यः परः करणे=करोत्यर्थे विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**शब्दः**-शब्दं करोति-शब्दायते। **वैरम्**-वैरं करोति-वैरायते। **कलहः**-कलहं करोति-कलहायते। **अभ्रः**-अभ्रं करोति-अभ्रायते। **कण्वम्**-कण्वं करोति-कण्वायते। **मेघः**-मेघं करोति-मेघायते।

आर्यभाषा-अर्थः-(शब्द०मेघेभ्यः) शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व, मेघ शब्दों से परे (करणे) करने अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**शब्द-शब्दं करोति-शब्दायते।** शब्द करता है। **वैर-वैरं करोति-वैरायते।** वैर करता है। **कलह-कलहं करोति-कलहायते।** झगड़ा करता है। **अभ्र-अभ्रं करोति-अभ्रायते।** बादल बनाता है। **कण्व-कण्वं करोति-कण्वायते।** पाप करता है। **मेघ-मेघं करोति-मेघायते।** बरसाती बादल बनाता है।*

सिद्धि-शब्दायते। पूर्ववत्।

क्यङ् (वेदनायाम्)–

(१४) सुखादिभ्यः कर्तृ वेदनायाम्।१८।

प०वि०-सुख-आदिभ्यः ५।३ कर्तृ ६।१ (लुप्तषष्ठी) वेदनायाम् ७।१।

स०-सुखम् आदिर्येषां ते सुखादयः, तेभ्यः-सुखादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-वा, क्यङ्, कर्मण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्तुः कर्मभ्यः सुखादिभ्यो वा क्यङ् वेदनायाम्।

अर्थः-कर्तुः सम्बन्धिभ्यः कर्मभूतेभ्यः सुखादिभ्यः शब्देभ्यः परो वेदनायाम्=अनुभवत्यर्थे विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति।

"न कर्तृग्रहणेन वेदनाऽभिसम्बध्यते। किं तर्हि? सुखादीन्यभिसम्बध्यन्ते। कर्तुयानि सुखादीनि" (महाभाष्यम्)।

उदा०-सुखं वेदयते-सुखायते देवदत्तः। दुःखं वेदयते-दुःखायते यज्ञदत्तः।

सुख। दुःख। तृप्त। गहन। कृच्छ्र। अस्र। अलीक। प्रतीप। करुण। कृपण। सोढ। इति सुखादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्तुः) कर्ता के सम्बन्धी (कर्मणः) कर्मभूत (सुखादिभ्यः) सुख आदि शब्दों से परे (विदनायाम्) अनुभव करना अर्थ में (वा) विकल्पेन (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-सुखं वेदयते-सुखायते देवदत्तः। देवदत्त सुख अनुभव करता है। दुःखं वेदयते-दुःखायते यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त दुःख अनुभव करता है।

सिद्धि-सुखायते। पूर्ववत्।

क्यच् (करणविशेषे)–

(१५) नमोवरिवश्चित्रङः क्यच्।१६।

प०वि०-नमस्-वरिवस्-चित्रङः ५।१ क्यच् १।१।

स०-नमश्च वरिवश्च चित्रङ् च एतेषां समाहारो नमोवरिवश्चित्रङ्, तस्मात्-नमोवरिवश्चित्रङः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-वा, कर्मणः करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मणो नमोवरिवश्चित्रङः करणे वा क्यच्।

अर्थः-कर्मभूतेभ्यो नमोवरिश्चित्रङ्भ्यः शब्देभ्यः परः करणे=करोति विशेषेऽर्थे विकल्पेन क्यच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-नमसः पूजायाम्। नमः करोति-नमस्यति। नमस्यति देवान्। **वरिवसः परिचर्यायाम्।** वरिवः करोति-वरिवस्यति। वरिवस्यति गुरून्। **चित्रङ आश्चर्ये।** चित्रं करोति-चित्रीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) कर्मभूत (नमोवरिवश्चित्रङः) नमस्, वरिवस् और चित्रङ् शब्दों से परे (करणे) करोति विशेष अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यच्) क्यच् प्रत्यय होता है।

उदा०-नमस् (पूजा करना)। नमः करोति-नमस्यति। नमस्यति देवान्। देवताओं की पूजा करता है। वरिवस् (सेवा करना)। वरिवः करोति-वरिवस्यति। वरिवस्यति गुरून्। गुरुजनों की सेवा करता है। चित्रङ् (आश्चर्य करना) चित्रं करोति-चित्रीयते देवदत्तः। देवदत्त आश्चर्य करता है।

सिद्धि-चित्रीयते। चित्र+अम्+क्यच्। चित्र+य। चित्री+य। चित्रीय। चित्रीय+लट्। चित्रीय+शप्+त। चित्रीय+अ+ते। चित्रीयते।

यहां चित्र शब्द से आश्चर्य अर्थ में इस सूत्र से क्यच् प्रत्यय है। 'क्यचि च' (७।४।३३) से अङ्ग को ई-आदेश होता है। 'चित्रङ्' शब्द से ङित् होने से 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (१।३।१२) से आत्मनेपद होता है। अन्यत्र परस्मैपद ही होता है। ऐसे ही-नमस्यति, वरिवस्यति।

विशेष-क्यच्, क्यङ् और क्यष् ये तीन प्रत्यय हैं। इनमें ककार अनुबन्ध 'नः क्ये' (१।४।१५) में समानरूप से तीनों के ग्रहण करने के लिए है। क्यच् में चकार अनुबन्ध 'क्यचि च' (७।४।३३) से ईत्व विधान के लिए है, 'चितः' (६।१।१६३) के लिये नहीं, क्योंकि 'धातोः' (६।१।१५६) से धातु अन्तोदात्त होता ही है। क्यङ् में ङकार अनुबन्ध 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (१।३।१२) से आत्मनेपदविधि के लिये है। क्यष् में षकार अनुबन्ध 'वा क्यषः' (१।३।९०) से विकल्प से परस्मैपदविधि के लिये है।

णिङ् (करणविशेषे)-

(१६) पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ्।२०।

प०वि०-पुच्छ-भाण्ड-चीवरात् ५।१ णिङ् १।१।

स०-पुच्छं च भाण्डं च चीवरं च एतेषां समाहारः पुच्छ-भाण्डचीवरम्, तस्मात्-पुच्छभाण्डचीवरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-वा, कर्मणः, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मणः पुच्छभाण्डचीवरात् करणे वा णिङ्।

अर्थः-कर्मभूतेभ्यः पुच्छभाण्डचीवरेभ्यः शब्देभ्यः करणे=करोति विशेषेऽर्थे विकल्पेन णिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पुच्छादुदसने पर्यसने वा। पुच्छमुदस्यति पर्यस्यति

वा-उत्पुच्छयते, परिपुच्छयते वा। **भाण्डात् समाचयने।** भाण्डानि समाचिनोति-संभाण्डयते। **चीवरार्दजने परिधाने वा।** चीवराणि समर्जयति, परिदधाति वा-संचीवरयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) कर्मभूत (पुच्छभाण्डचीवरात्) पुच्छ, भाण्ड और चीवर शब्दों से (करणे) करोति विशेष अर्थ में (वा) विकल्प से (णिङ्) णिङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-पुच्छ (उत्क्षेपण वा परिक्षेपण करना)। **पुच्छमुदस्यति पर्यस्यति वा-उत्पुच्छयते परिपुच्छयते वा गौः।** गाय पूछ को ऊपर अथवा सब ओर फैंकती है। भाण्ड (ठीक रखना)। **भाण्डानि समाचिनोति-संभाण्डयते कुम्भकारः।** कुम्हार घट आदि भाण्डों को ठीक-ठीक रखता है। चीवर (संग्रह करना वा धारण करना)। **चीवराणि समर्जयति परिदधाति वा-संचीवरयते भिक्षुः।** भिक्षु कपड़ों को इकट्ठा करता है अथवा धारण करता है।*

*सिद्धि-**उत्पुच्छयते।** उत्+पुच्छ+अम्+णिङ्। उत्+पुच्छ्+इ। उत्पुच्छि। उत्पुच्छि+लट्। उत्पुच्छि+शप्+त। उत्पुच्छे+अ+ते। उत्पुच्छयते।*

यहां कर्मभूत पुच्छ शब्द से करोति विशेष अर्थ में णिङ् प्रत्यय है। णिङ् के ङित् होने से 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (१।३।१२) से आत्मनेपद होता है। णिङ् में णकार अनुबन्ध 'णेरनिटि' (६।४।५१) में 'णिङ्' और 'णिच्' प्रत्यय का समानरूप से ग्रहण करने के लिये है।

णिच् (करणविशेषे)-

(१७) मुण्डमिश्रश्लक्षणलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच्।२१।

प०वि०-मुण्ड-मिश्र-श्लक्षण-लवण-व्रत-वस्त्र-हल-कल-कृत-तूस्तेभ्यः ५।३ णिच् १।१।

स०-मुण्डश्च मिश्रश्च श्लक्षणश्च लवणं च व्रतं च वस्त्रं च हलश्च कलश्च कृतं च तूस्तं च तानि-मुण्ड०तूस्तानि, तेभ्यः-मुण्ड०तूस्तेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वा, कर्मणः, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मभ्यो मुण्ड०तूस्तेभ्यः करणे वा णिच्।

अर्थः-कर्मभूतेभ्यो मुण्डमिश्रश्लक्षणलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यः शब्देभ्यः परः करणे=करोति विशेषेऽर्थे विकल्पेन णिच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-मुण्डः-मुण्डं करोति-मुण्डयति। मिश्रः-मिश्रं करोति-मिश्रयति। श्लक्ष्णः-श्लक्ष्णं करोति-श्लक्ष्णयति। लवणम्-लवणं करोति-लवणयति। व्रतम् (व्रताद्भोजने तन्निवृत्तौ च) व्रतं करोति-व्रतयति। पयो व्रतयति ब्राह्मणः। वृषलान्नं व्रतयति ब्राह्मणः। वस्त्रम् (वस्त्रात् समाच्छादने)। वस्त्रं करोति-संवस्त्रयति। हलिः-हलिं गृह्णाति-हलयति। कलिः- कलिं गृह्णाति-कलयति। कृतम्-कृतं गृह्णाति-कृतयति। तूस्तम्-तूस्तानि विहन्ति-वितूस्तयति केशान् भिक्षुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) कर्मभूत (मुण्ड०तूस्तेभ्यः) मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत, तूस्त शब्दों से परे (करणे) करोतिविशेष {करना विशेष} अर्थ में (वा) विकल्प से (णिच्) णिच् प्रत्यय होता है।

उदा०-मुण्ड-मुण्डं करोति-मुण्डयति। मुण्डन करता है। मिश्र-मिश्रं करोति-मिश्रयति। मिश्रण करता है। श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णं करोति-श्लक्ष्णयति। निर्मल करता है। लवण-लवणं करोति-लवणयति। नमकीन बनाता है। व्रत (भोजन करना अथवा उससे निवृत्त होना) व्रतं करोति-व्रतयति। पयो व्रतयति ब्राह्मणः। ब्राह्मण दुग्धपान का व्रत करता है। वृषलान्नं व्रतयति ब्राह्मणः। ब्राह्मण नीच के अन्न का वर्जन (त्याग) करता है। वस्त्र (समाच्छादन) वस्त्रं करोति-संवस्त्रयति। वस्त्र धारण करता है अथवा वस्त्र से ढकता है। हलि-हलिं गृह्णाति-हलयति। बड़े हल को पकड़ता है। महद्हलम्=हलिः। कलि-कलिं गृह्णाति-कलयति। कलि नामक पासे को ग्रहण करता है। कृत-कृतं गृह्णाति-कृतयति। कृत नामक पासे को ग्रहण करता है। तूस्त-तूस्तानि विहन्ति-वितूस्तयति केशान् भिक्षुः। भिक्षु जटीभूत केशों को अलग-अलग करता है।

सिद्धि-(१) मुण्डयति। मुण्ड+अम्+णिच्। मुण्ड+इ। मुण्डि। मुण्डि+लट्। मुण्डि+शप्+तिप्। मुण्डे+अ+ति। मुण्डयति।

यहां कर्मभूत 'मुण्ड' शब्द से करोति-विशेष अर्थ में इस सूत्र से णिच् प्रत्यय है। णिजन्त मुण्डि धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से वर्तमानकाल में लट् प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से अङ्ग को गुण होता है। ऐसे ही मिश्रयति आदि पद सिद्ध करें।

विशेष-हलयति। कलयति। इसी सूत्र में निपातन से हलि और कलि शब्द अकारान्त हैं। गन्ना बोते समय हल के मुख के दोनों ओर गण्डीरी बांधने पर जो हल बड़ा हो जाता है उसे 'हलि' कहते हैं। हल दो प्रकार के हैं। बड़ा हल जुताई में और छोटा हल बुवाई के काम आता है। द्यूतक्रीडा में पांच पासों का प्रयोग किया जाता है उनके नाम ये हैं-अक्षराज, कृत, त्रेता, द्वापर, कलि। यहां कलि और कृत पासे का उल्लेख किया गया है। ये अक्ष और शलाका के आकार के होते हैं।

यङ् (पौनःपुन्ये भृशार्थे वा)–

(१८) धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्।२२।

प०वि०–धातोः ५।१ एकाचः ५।१ हलादेः ५।१ क्रियासमभिहारे ७।१ यङ् १।१।

स०–एकोऽच् यस्मिन् स एकाच्, तस्मात्-एकाचः (बहुव्रीहिः)। हल् आदिर्यस्य स हलादिः, तस्मात्-हलादेः (बहुव्रीहिः)। क्रियायाः समभिहार इति क्रियासमभिहारः, तस्मिन्-क्रियासमभिहारे (षष्ठीतत्पुरुषः)। पौनःपुन्यं भृशार्थो वा क्रियासमभिहारः।

अन्वयः–हलादेरेकाचो धातोः क्रियासमभिहारे यङ्।

अर्थः–हलादेरेकाचो धातोः परः क्रियासमभिहारेऽर्थे यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**पौनःपुन्ये**–पुनः पुनः पचति-पापच्यते देवदत्तः। पुनः पुनर्यजति-यायज्यते यज्ञदत्तः। **भृशार्थे**–भृशं ज्वलति-जाज्वल्यते वह्निः। भृशं दीप्यते-देदीप्यते सूर्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(हलादेः) जिसके आदि में हल् है और (एकाचः) जिसमें एक ही अच् है उस (धातोः) धातु से परे (क्रियासमभिहारे) बार-बार होना अथवा अधिक होना अर्थ में (यङ्) यङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(पुनः पुनः होना) **पुनः पुनः पचति-पापच्यते देवदत्तः।** देवदत्त बार-बार पकाता है। **पुनः पुनर्यजति-यायज्यते यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त बार-बार यज्ञ करता है (भृश=अधिक होना)। **भृशं ज्वलति-जाज्वल्यते वह्निः।** अग्नि खूब जलती है। **भृशं दीप्यते-देदीप्यते सूर्यः।** सूर्य खूब चमकता है।*

सिद्धि-(१) पापच्यते। पच्+यङ्। पच्+पच्+य। पा+पच्+य। पापच्य। पापच्य+लट्। पापच्य+शप्+त। पापच्य+अ+ते। पापच्यते।

यहां डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से क्रियासमभिहार अर्थ में यङ् प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। 'दीर्घोऽकितः' (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होता है। यङन्त 'पापच्य' धातु से वर्तमानकाल में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय है।

(२) यायज्यते। 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०)।

(३) जाज्वल्यते। 'ज्वल दीप्तौ' (भ्वा०उ०)।

(४) देदीप्यते। 'दीपी दीप्तौ' (दिवा०आ०)।

यङ् (कौटिल्यार्थे)–

(१६) नित्यं कौटिल्ये गतौ।२३।

प०वि०–नित्यम् १।१ कौटिल्ये ७।१ गतौ ७।१ कुटिलस्य भावः कौटिल्यम्, तस्मिन्–कौटिल्ये (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०–धातोः, यङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–गतौ=गत्यर्थेभ्यः कौटिल्ये नित्यं यङ्।

अर्थः–गत्यर्थे वर्तमानेभ्यो धातुभ्यः परः कौटिल्येऽर्थे नित्यं यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कुटिलं क्रामति–चङ्क्रम्यते। कुटिलं द्रमति–दन्द्रम्यते। "योऽल्पीयस्यध्वनि गतागतानि करोति स कुटिलां गतिं सम्पादयन्नेवमुच्यते" इति पदमञ्जर्यां हरदत्तमिश्रः।

आर्यभाषा-अर्थ–(गतौ) गति अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातुओं से परे (कौटिल्ये) कुटिलता अर्थ में (नित्यम्) सदा (यङ्) प्रत्यय होता है।

उदा०–कुटिलं क्रामति–चङ्क्रम्यते। कुटिलं द्रमति–दन्द्रम्यते। तंग रास्ते में टेढ़ा-मेढ़ा चलता है।

सिद्धि–(१) चङ्क्रम्यते। क्रम्+यङ्। क्रम्+क्रम्+य। क+नुक्+क्रम्+य। क+न्+क्रम्+य। क+ ं +क्रम्+य। च+ङ्+क्रम्+य। चङ्क्रम्य। चङ्क्रम्य+लट्। चङ्क्रम्य+शप्+त। चङ्क्रम्य+अ+ते। चङ्क्रम्यते।

यहां 'क्रमु पादविक्षेपे' (भ्वा०प०) धातु से कुटिलगति अर्थ में इस सूत्र से यङ् प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। 'नुगतोऽनुनासिकान्तस्य' (७।४।८५) से अभ्यास को नुक् आगम, 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार, 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण ङकार होता है। यङन्त 'चङ्क्रम्य' धातु से पूर्ववत् लट् प्रत्यय है।

(२) दन्द्रम्यते। 'द्रम गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

यङ् (धात्वर्थनिन्दायाम्)–

(२०) लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम्।२४।

प०वि०–लुप-सद-चर-जप-जभ-दह-दश-गृभ्यः ५।३ भाव-गर्हायाम् ७।१।

स०-लुपश्च सदश्च चरश्च जपश्च जभश्च दहश्च दशश्च गृश्च ते लुपसदचरजपजभदहदशग्रः, तेभ्यः-लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। धात्वर्थो भावः। भावस्य गर्हा इति भावगर्हा, तस्याम्-भावगर्हायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-धातोः, नित्यम्, यङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लुप०गृभ्यो भावगर्हायां नित्यं यङ्।

अर्थः-लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो धातुभ्यो भावगर्हायाम्=धात्वर्थनिन्दायामर्थे नित्यं यङ् प्रत्ययो भवति। नित्यम्=एव।

उदा०-(लुप) गर्हितं लुम्पति-लोलुप्यते। (सद) गर्हितं सीदति-सासद्यते। (चर) गर्हितं चरति चञ्चूर्यते। (जप) गर्हितं जपति-जञ्जप्यते। (जभ) गर्हितं जभते। जञ्जभ्यते। (दह) गर्हितं दहति-दन्दह्यते। (दश) गर्हित दंशयति-दन्दश्यते। (गृ) गर्हितं गिरति-निजेगिल्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(लुप०गृभ्यः) लुप, सद, चर, जप, जभ, दह, दश, गृ (धातोः) धातुओं से परे (भावगर्हायाम्) धात्वर्थ की निन्दा अर्थ में (नित्यम्) ही (यङ्) यङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(लुप) गर्हितं लुम्पति-लोलुप्यते। खराब ढंग से काटता है। (सद) गर्हितं सीदति-सासद्यते। खराब ढंग से बैठता है। (चर) गर्हितं चरति-चञ्चूर्यते। खराब ढंग से चलता है अथवा खाता है। (जप) गर्हितं जपति-जञ्जप्यते। अशुद्ध जप करता है। (जभ) गर्हितं जभते-जञ्जभ्यते। बुरी तरह जंभाई लेता है। (दह) गर्हितं दंशयते-दन्दश्यते। बुरी तरह डसता है। (गृ) गर्हितं गिरति-निजेगिल्यते। बुरी तरह निगलता है।

सिद्धि-(१) लोलुप्यते। लुप+यङ्। लुप्+लुप्+य। लो+लुप्+य। लोलुप्य। लोलुप्य+लट्। लोलुप्य+शप्+त। लोलुप्य+अ+ते। लोलुप्यते।

यहां 'लुप्लृ छेदने' (तु०उ०) धातु से इस सूत्र से भावगर्हा अर्थ में 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। 'गुणो यङ्लुकोः' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है। यङन्त 'लोलुप्य' धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

(२) सासद्यते। 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०)। 'दीर्घोऽकितः' (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होता है।

(३) चञ्चूर्यते। 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०)। 'चरफलोश्च' (७।४।८७) से अभ्यास को 'नुक्' आगम, 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से न् को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण (ञ्) होता है। 'उत्परस्यातः' (७।४।८८) से अभ्यास से परवर्ती चर् के अ को उकार आदेश होता है और 'हलि च' (८।२।७७) से उसे दीर्घ होता है।

(४) जञ्जप्यते। 'जप व्यक्तायां वाचि, मानसे च' (भ्वा०प०)। 'जपजभदहदशभञ्जपशां च' (७।४।८६) से अभ्यास को 'नुक्' आगम होता है। 'न्' को पूर्ववत् अनुस्वार और उसे परसवर्ण होता है।

(५) जञ्जभ्यते। 'जभी गात्रविनामे' (भ्वा०आ०)। यहां पूर्ववत् 'नुक्' आगम, अनुस्वार और उसे परसवर्ण होता है।

(६) दन्दह्यते। 'दह भस्मीकरणे' (भ्वा०प०)। यहां पूर्ववत् नुक् आगम, अनुस्वार और उसे परसवर्ण होता है।

(७) दन्दश्यते। 'दशि दंशनदर्शनयोः' (चु०आ०)। यहां पूर्ववत् 'नुक्' आगम, अनुस्वार और उसे परसवर्ण होता है।

(८) निजेगिल्यते। गॄ+यङ्। नि+गिर्+गिर्+य। नि+जि+गिर्+य। नि+जे+गिल्+य। निजेगिल्य। निजेगिल्य+लट्। निजेगिल्य+शप्+त। निजेगिल्य+अ+ते। निजेगिल्यते।

यहां 'गॄ निगरणे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'यङ्' प्रत्यय है। 'ॠत इद्धातोः' (७।१।१००) से धातु को इकार-आदेश, 'उरण् रपरः' (१।१।५०) रपरत्व होता है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से गिर् को द्वित्व होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के ग् को ज् होता है। 'गुणो यङ्लुकोः' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है। 'ग्रो यङि' (८।२।२०) से गिर् के रेफ को लत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

णिच् (अर्थविशेषे स्वार्थे च)–

(२१) सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्म-वर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्।२५।

प०वि०-सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-चूर्ण-चुरादिभ्यः ५।३ णिच् १।१।

स०-चुर आदिर्येषां ते चुरादयः। सत्यापश्च पाशश्च रूपं च वीणा च तूलश्च श्लोकश्च सेना च लोम च त्वचं च वर्म च वर्णं च चूर्णं च चुरादयश्च ते-सत्याप०चुरादयः, तेभ्य-सत्याप०चुरादिभ्यः (बहुव्रीहि-गर्भिततरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-सत्याप०चूर्णेभ्यः शब्देभ्यश्चुरादिभ्यश्च धातुभ्यो णिच्।

अर्थः-सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णेभ्यः शब्देभ्योऽर्थविशेषे चुरादिभ्यश्च धातुभ्यः परः स्वार्थे णिच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सत्याप) सत्यात् तदाचष्टे तत्करोति वा। सत्यमाचष्टे सत्यं करोति वा-सत्यापयति। (पाश) पाशाद् विमोचने। पाशं विमुञ्चति-विपाशयति। (रूप) रूपाद् दर्शने। रूपं पश्यति-निरूपयति। (वीणा) वीणया उपगायति-उपवीणयति। (तूल) तूलेन अनुकुष्णाति-अनुतूलयति। (श्लोक) श्लोकैरुपस्तौति-उपश्लोकयति। (सेना) सेनया अभियाति-अभिषेणयति। (लोम) लोमानि अनुमार्ष्टि-अनुलोमयति। (त्वच) त्वचं गृह्णाति-त्वचयति। (वर्म) वर्मणा संनह्यति-संवर्मयति। (वर्ण) वर्णं गृह्णाति-वर्णयति। (चूर्ण) चूर्णैरवध्वंसयति-अवचूर्णयति। चुरादिभ्यः स्वार्थे। चोरयति। चिन्तयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(सत्याप०चूर्णेभ्यः) सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण शब्दों से अर्थविशेष में और (चुरादिभ्यः) चुर आदि (धातोः) धातुओं से स्वार्थ में (णिच्) णिच् प्रत्यय होता है।

उदा०-(सत्याप) सत्यमाचष्टे सत्यं करोति वा-सत्यापयति। सत्य कहता है अथवा सत्य बनाता है (प्रमाणित करता है)। (पाश) पाशं विमुञ्चति-विपाशयति। बन्धन को छोड़ता है। (रूप) रूपं पश्यति-निरूपयति। रूप को देखता है। (वीणा) वीणया उपगायति-उपवीणयति। वीणा से पार्श्वगायन करता है। (तूल) तूलेन अनुकुष्णाति-अनुतूलयति। तृण के अग्रभाग को तूल (रूई) के सहाय से ठीक चलाता है। (श्लोक) श्लोकैरुपस्तौति-उपश्लोकयति। स्तोत्रों से उपस्थानपूर्वक देवता की स्तुति करता है। (सेना) सेनया अभियाति-अभिषेणयति। सेना से चढ़ाई करता है। (लोम) लोमानि अनुमार्ष्टि-अनुलोमति। रोमों का अनुशोधन करता है। (त्वच) त्वचं गृह्णाति-त्वचयति। त्वच=मृगचर्म को ग्रहण करता है। (वर्म) वर्मणा संनह्यति-सवर्मयति। कवच पहनकर तैयार होता है। (वर्ण) वर्णं गृह्णाति-वर्णयति। ब्राह्मण आदि वर्ण को ग्रहण करता है। (चूर्ण) चूर्णैरवध्वंसयति-अवचूर्णयति। चून-चून करके बखेरता है। चोरयति। चोरी करता है। चिन्तयति। सोचता है।

सिद्धि-(१) सत्यापयति। सत्य+णिच्। सत्य+आपुक्+इ। सत्य+आप्+इ। सत्यापि। सत्यापि+लट्। सत्यापि+शप्+तिप्। सत्यापे+अ+ति। सत्यापयति। इस सूत्र से सत्य शब्द

से कहना वा करना अर्थ में णिच् प्रत्यय है। वा०-अर्थवेदसत्यानामापुग्वक्तव्य: (३।१।२५) से आपुक् आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'विपाशयति' आदि पद सिद्ध करें।

(२) चुरादिगण की धातु पाणिनीय धातुपाठ में देख लेवें।

णिच् (प्रयोजकव्यापारे)–

(२२) हेतुमति च।२६।

प०वि०-हेतुमति ७।१ च अव्ययपदम्। अत्र पारिभाषिकस्य हेतुशब्दस्य ग्रहणं कर्त्तव्यम्, तत्प्रयोजको हेतुश्च (१।४।५५) इति। क्रियाया: स्वतन्त्रस्य कर्तुर्य: प्रयोजक:=प्रेरक: स हेतुरित्युच्यते। हेतुर्यस्यास्तीति हेतुमान्। नित्ययोगे मतुप् प्रत्यय:। हेतोर्य: प्रेषणादि व्यापार:=क्रियाविशेष: स हेतुमान्, तस्मिन्-हेतुमति (तद्धितवृत्ति:)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तति।

अन्वय:-हेतुमति च धातोर्णिच्।

अर्थ:-हेतुमति=प्रयोजकव्यापारे वाच्येऽपि धातोर्णिच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कटं कारयति देवदत्त:। ओदनं पाचयति यज्ञदत्त:।

आर्यभाषा-अर्थ-(हेतुमति) हेतुमान् अर्थ में (च) भी (धातो:) धातु से (णिच्) णिच् प्रत्यय होता है। यहां पारिभाषिक हेतु शब्द का ग्रहण है, लौकिक हेतु शब्द का नहीं। क्रिया के स्वतन्त्र कर्ता के प्रयोजक=प्रेरक की हेतु संज्ञा है। उस देवदत्त आदि प्रयोजक का जो प्रेषण आदि व्यापार=क्रियाविशेष है, उसे हेतुमान् कहते हैं।

उदा०-कटं कारयति देवदत्त:। देवदत्त चटाई बनवाता है। ओदनं पाचयति यज्ञदत्त:। यज्ञदत्त भात पकवाता है।

सिद्धि-(१) कारयति। कृ+णिच्। कार्+इ। कारि। कारि+लट्। कारि+शप्+तिप्। कारे+अ+ति। कारयति।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से हेतुमान्=प्रेषण (आज्ञा देना) अर्थ में णिच् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से कृ को वृद्धि (कार्) होती है। णिजन्त 'कारि' धातु से वर्तमानकाल में लट् प्रत्यय है।

(२) पाचयति। 'डुपचष् पाके' (भ्वा०प०) 'अत उपधाया:' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

यक् (स्वार्थे)–

(२३) कण्ड्वादिभ्यो यक्।२७।

प०वि०–कण्डू–आदिभ्यः ५।३ यक् १।१।

स०–कण्डू आदिर्येषां ते कण्ड्वादयः, तेभ्यः–कण्ड्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–कण्ड्वादिभ्यो धातुभ्यो यक्।

अर्थः–कण्ड्वादिभ्यो धातुभ्यः स्वार्थे यक् प्रत्ययो भवति। कण्ड्वादयः शब्दा, धातवः प्रातिपदिकानि च सन्ति। तेभ्यो धातुविवक्षायामेव यक् प्रत्ययो विधीयते, न प्रातिपदिकविवक्षायाम्।

उदा०–कण्डूञ्–गात्रविघर्षणे। कण्डूयति, कण्डूयते वा। मन्तु अपराधे–मन्तूयति, इत्यादिकम्।

आर्यभाषा–अर्थ–(कण्ड्वादिभ्यः) कण्डू आदि (धातोः) धातुओं से स्वार्थ में (यक्) यक् प्रत्यय होता है। कण्ड्वादि विभाषित धातु हैं अर्थात् वे धातु और प्रातिपदिक दोनों हैं। यहां धातु का अधिकार होने से उनसे धातु–विवक्षा में ही 'यक्' प्रत्यय होता है; प्रातिपदिक विवक्षा में नहीं।

उदा०–कण्डूञ् गात्रविघर्षणे (खाज करना)। कण्डूयति, कण्डूयते वा। खाज करता है। मन्तु अपराधे (अपराध करना)। मन्तूयति। अपराध करता है।

सिद्धि–(१) कण्डूयति। कण्डूञ्+यक्। कण्डू+य। कण्डूय। कण्डूय+लट्। कण्डूय+शप्+तिप्। कण्डूय+अ+ति। कण्डूयति।

यहां 'कण्डूञ् गात्रविघर्षणे' (क०उ०) धातु से इस सूत्र से स्वार्थ में 'यक्' प्रत्यय है। 'यक्' प्रत्यय के कित् होने से 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है।

'यक्' प्रत्यय के कित् होने से प्रतीत होता है कि कण्डूञ् आदि शब्द धातु हैं। कण्डूञ् में दीर्घ ऊकार पढ़ा है। 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' (७।४।२५) से दीर्घ हो ही जाता, इससे विदित होता है कि 'कण्डूञ्' आदि शब्द प्रातिपदिक भी हैं।

धातुप्रकरणाद् धातुः कस्य चासज्जनादपि।
आह चेमं दीर्घं मन्ये धातुर्विभाषितः।।

(२) कण्डूयते। कण्डूञ् के ञित् होने से 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' (१।३।७१) से आत्मनेपद भी होता है।

(३) कण्डूञ् आदि शब्द पाणिनीय धातुपाठ के कण्ड्वादिगण में देख लेवें।

आयः (स्वार्थे)–

(२४) गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः।२८।

प०वि०–गुपू-धूप-विच्छि-पणि-पनिभ्यः ५।३ आयः १।१।

स०–गुपूश्च धूपश्च विच्छिश्च पणिश्च पनिश्च ते–गूपू०पनयः, तेभ्यः–गुपू०पनिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–गुपू०पनिभ्यो धातुभ्य आयः।

अर्थः–गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्यो धातुभ्यः स्वार्थे आयः प्रत्ययो भवति।

उदा०–गुपू रक्षणे–गोपायति। **धूप सन्तापे**–धूपायति। **विच्छ गतौ**–विच्छायति। **पण व्यवहारे स्तुतौ च**–पणायति। **पन स्तुतौ**–पनायति।

आर्यभाषा-अर्थ–(गुपू०पनिभ्यः) गुपू, धूप, विच्छ, पणि, पनि (धातोः) धातुओं से स्वार्थ में (आयः) आय प्रत्यय होता है।

उदा०–'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) गोपायति। रक्षा करता है। 'धूप सन्तापे' (भ्वा०प०) धूपायति। पीड़ा देता है। 'विच्छ गतौ' (तु०प०) विच्छायति। गति करता है। 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' (भ्वा०आ०) पणायति। स्तुति करता है। स्तुति-अर्थक पन-धातु के साहचर्य से पण-धातु से स्तुति अर्थ में आय प्रत्यय होता है, व्यवहार अर्थ में नहीं। शुद्ध 'पण और पन' धातु से आत्मनेपद होता है; आय-प्रत्ययान्त से नहीं। 'पन-स्तुतौ' (भ्वा०आ०) पनायति। स्तुति करता है।

सिद्धि–गोपायति। गुप्+आय। गोपाय। गोपाय+लट्। गोपाय+शप्+तिप्। गोपाय+अ+ति। गोपायति।

यहां 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से गुप् धातु की उपधा को गुण होता है। ऐसे ही–'धूपायति' आदि पद सिद्ध करें।

ईयङ् (स्वार्थे)–

(२५) ऋतेरीयङ्।२६।

प०वि०–ऋतेः ५।१ ईयङ् १।१।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–ऋतेर्धातोरीयङ्।

अर्थः–ऋतेर्धातोः स्वार्थे ईयङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(ऋति) ऋतीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(ऋतेः) ऋत (धातोः) धातु से परे स्वार्थ में (ईयङ्) ईयङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(ऋति) ऋतीयते। घृणा करता है।

सिद्धि-(१) ऋतीयते। ऋत्+ईयङ्। ऋत्+ईय। ऋतीय। ऋतीय+लट्। ऋतीय+शप्+त। ऋतीय+अ+ते। ऋतीयते।

(२) 'ऋत' यह घृणार्थक सौत्र धातु है। जो धातु पाणिनीय धातुपाठ में पठित न हो और अष्टाध्यायी-सूत्रपाठ में उपलब्ध हो, उसे सौत्र धातु कहते हैं।

(३) ईयङ् प्रत्यय में ङकार अनुबन्ध 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (१।३।१२) से आत्मनेपद के लिए है।

णिङ् (स्वार्थे)-

(२६) कमेर्णिङ्।३०।

प०वि०-कमेः ५।१ णिङ् १।१।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-कमेर्धातोर्णिङ्।

अर्थः-कमेर्धातोः स्वार्थे णिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कमु कान्तौ-कामयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(कमेः) कम् (धातोः) धातु से परे स्वार्थ में (णिङ्) णिङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-कमु कान्तौ (भ्वा०आ०) कामयते। कामना (इच्छा) करता है।

सिद्धि-(१) कामयते। कम्+णिङ्। काम्+इ। कामि। कामि+लट्। कामि+शप्+त। कामे+अ+ते। कामयते।

यहां 'कमु कान्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से स्वार्थ में णिङ् प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से कम् धातु की उपधा को वृद्धि होती है।

(२) णिङ् प्रत्यय में णकार अनुबन्ध 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से वृद्धि के लिये है और ङकार अनुबन्ध 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (१।३।१२) से आत्मनेपद के लिये है।

(२७) आयादय आर्धधातुके वा।३१।

प०वि०-आय-आदयः १।३ आर्धधातुके ७।१ वा अव्ययपदम्।

स०-आय आदिर्येषां ते आयादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वय:-आयादयो धातुभ्य आर्धधातुके वा।

अर्थ:-एते आयादय: प्रत्यया यथोक्तधातुभ्य: परे आर्धधातुके विषये विकल्पेन भवन्ति।

उदा०-गुपू रक्षणे-गोप्ता, गोपायिता। **ऋतिर्घृणायाम्**-अर्तिता, ऋतीयिता। **कमु कान्तौ**-कमिता, कामयिता।

आर्यभाषा-अर्थ-(आयादय:) ये 'आय' आदि प्रत्यय (धातो:) यथोक्त धातुओं से (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में (वा) विकल्प से होते हैं।

*उदा०-'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) **गोप्ता, गोपायिता**। रक्षा करनेवाला। **ऋतिर्घृणायाम्** (सौत्र धातु) **अर्तिता, ऋतीयिता**। घृणा करनेवाला। **कमु कान्तौ** (भ्वा०आ०) **कमिता, कामयिता**। कामना करनेवाला।*

सिद्धि-(१) गोप्ता। गुप्+तृच्। गोप्+तृ। गोप्तृ+सु। गोप्ता।

यहां 'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय है। यहां विकल्प पक्ष में 'गुपूधूप०' (३।१।२८) से 'आय' प्रत्यय नहीं होता है।

(२) गोपायिता। गुप्+तृच्। गुप्+आय+इट्+तृ। गोपायितृ+सु। गोपायिता।

यहां 'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् तृच् प्रत्यय है। यहां 'गुपूधूप०' (३।१।२८) से 'आय' प्रत्यय होता है।

(३) ऐसे ही शेष अर्तिता' आदि पद सिद्ध करें।

सनाद्यन्तानां धातुसंज्ञा-

(२८) सनाद्यन्ताद्यन्ता धातव:।३२।

प०वि०-सनादि-अन्ता: १।३ धातव: १।३।

स०-सन् आदिर्येषां ते सनादय:, सनादयोऽन्ते येषां ते-सनाद्यन्ता: (बहुव्रीहि:)।

अर्थ:-एते सनाद्यन्ता: समुदाया धातुसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-चिकीर्षति। पुत्रीयति। पुत्रकाम्यति।

आर्यभाषा-अर्थ-(सनाद्यन्ता:) ये पूर्वोक्त सन् आदि प्रत्यय जिनके अन्त में हैं, उन समुदायों की (धातव:) धातु संज्ञा होती है।

*उदा०-**चिकीर्षति**। करना चाहता है। **पुत्रीयति**। **पुत्रकाम्यति**। अपने पुत्र की कामना करता है।*

सिद्धि-(१) चिकीर्षति। इसकी सिद्धि (१।३।७) में दी गई है। इस सूत्र से 'चिकीर्ष' समुदाय की धातु संज्ञा होती है। धातु संज्ञा होने से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) आदि से लट् आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है।

(२) पुत्रीयति आदि पदों की सिद्धि पहले की जा चुकी है, उसे यथास्थान देख लेवें।

इति सनादिप्रत्ययप्रकरणम्।

विकरणप्रत्ययप्रकरणम्

लृट्लृङ्लुट्लकाराः

स्यतासी–

(१) स्यतासीलृलुटोः।३३।

प०वि०–स्य-तासी १।२ लृ-लुटोः ७।२।

स०–स्यश्च तासिश्च तौ स्यतासी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। लृश्च लुट् च तौ लृलुटौ, तयोः-लृलुटोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–धातोः परौ स्यतासी प्रत्ययौ लृलुटोः।

अर्थः–धातोः परौ यथासंख्यं स्यतासी प्रत्ययौ भवतः, लृ-लुटोः प्रत्यययोः परतः। लृ इत्यनेन लृट्-लृङोः सामान्येन ग्रहणं क्रियते। तेन लृटि लृङि च स्यः प्रत्ययो लुटि च तासिः प्रत्यय इति यथासंख्यं संगच्छते।

उदा०–लृट् (स्यः) करिष्यति। लृङ् (स्यः) अकरिष्यत्। लुट् (तासिः) श्वः कर्ता।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे यथासंख्य (स्यातासी) स्य और तासि प्रत्यय होते हैं (लृलुटोः) लृ और लुट् प्रत्यय परे होने पर। 'लृ' इससे सामान्य रूप से लृट् और लृङ् प्रत्यय का ग्रहण किया जाता है। अतः लृट् और लृङ् में स्य प्रत्यय और लुट् में तासि प्रत्यय की यथासंख्य संगति होती है।

उदा०-लृट् (स्य) करिष्यति। वह करेगा। लृङ् (स्य) अकरिष्यत्। यदि वह करता। लुट् (तासि) श्वः कर्ता। वह कल करेगा।

सिद्धि-(१) करिष्यति। कृ+लृट्। कृ+स्य+ल्। कृ+स्य+तिप्। कृ+इट्+स्य+ति। कर्+इ+ष्य+ति। करिष्यति।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से भविष्यत्काल में 'लृट् शेषे च' (१।३।१३) से लृट् प्रत्यय है। इस सूत्र से विकरण स्य प्रत्यय होता है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से 'षत्व' होता है।

(२) अकरिष्यत्। कृ+लृङ्। अट्+कृ+स्य+ल्। अ+कृ+स्य+तिप्। अ+कृ+इट्+स्य+त्। अ+कर्+इ+ष्य+त्। अकरिष्यत्।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से क्रियातिपत्ति में 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय है। 'लङ्लुङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' ६।४।७१) से 'अट्' आगम होता है। इस सूत्र से विकरण 'स्य' प्रत्यय होता है। 'इतश्च' (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् हैं।

(३) कर्ता। कृ+लुट्। कृ+तासि+ल्। कृ+तास्+तिप्। कृ+तास्+डा। कृ+त्०+आ। कर्+त्+आ। कर्ता।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से अनद्यतन भविष्यत्काल में 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से विकरण 'तासि' प्रत्यय होता है। 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' (२।४।८५) से 'तिप्' के स्थान में डा-आदेश है। वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (वा ६।४।१४३) से 'तास्' के टिभाग (आस्) का लोप हो जाता है।

लेट्लकारः

सिप्–

(१) सिब् बहुलं लेटि।३४।

प०वि०–सिप् १।१ बहुलम् १।१ लेटि ७।१।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्बहुलं सिप् लेटि।

अर्थः–धातोः परो बहुलं सिप् प्रत्ययो भवति लेटि प्रत्यये परतः।

उदा०–(सिप्) जोषिषत्। तारिषत्। मन्दिषत्। **न च सिब् भवति–पताति विद्युत्।** (ऋ० ७।२५।५१) **उदधिं च्यावयाति** (अथर्व० १०।१।१३) तुलना।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (बहुलम्) बहुलता से (सिप्) सिप् प्रत्यय होता है (लेटि) लेट् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०–(सिप्) जोषिषत्। *वह प्रीति/सेवन करे।* ***तारिषत्।*** *वह पार करे।* ***मन्दिषत्।*** *वह स्तुति आदि करे।* ***सिप् प्रत्यय नहीं–पताति विद्युत्।*** *बिजली पड़े।* ***उदधिं च्यावयाति।*** *समुद्र को विचलित करे।*

सिद्धि-(१) जोषिषत्। जुष्+लेट्। जुष्+सिप्+ल्। जुष्+इट्+स्+अट्+तिप्। जुष्+इ+स्+अ+त्। जोष्+इ+ष+अ+त्। जोषिषत्।

यहां 'जुषी प्रीतिसेवनयोः' (तु०आ०) धातु से 'लिङर्थे लेट्' (३।४।७) से 'लेट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सिप्' प्रत्यय होता है। 'लेटोऽडाटौ' (३।४।९४) से 'लेट्' को 'अट्' आगम होता है। 'इतश्च लोपः परस्मैपदेषु' (३।४।७९) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (८।३।५९) से 'इट्' आगम है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से जुष् की उपधा को गुण होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

(२) तारिषत्। 'तॄ प्लवनसन्तरणयोः' (भ्वा०प०) 'सिब् बहुलं णिद् वक्तव्यः' (वा० ३।१।३४) से 'सिप्' प्रत्यय को णित् मानकर 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से तॄ धातु को वृद्धि होती है।

(३) मन्दिषत्। 'मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु' (भ्वा०आ०) 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से नुम् आगम होता है।

(४) पताति। पत्+लेट्। पत्+आट्+ल्। पत्+आ+तिप्। पत्+आ+ति। पताति।

यहां 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय है। यहां बहुल-वचन से इस सूत्र से 'सिप्' प्रत्यय नहीं होता है। 'लेटोऽडाटौ' (३।४।९४) से 'लेट्' को 'आट्' आगम होता है।

विशेष-लेट्लकार का प्रयोग सब कालों में वैदिकभाषा में होता है, लौकिक संस्कृतभाषा में नहीं।

लिट्लकारः

आम्-

(१) कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि।३५।

प०वि०-कास्-प्रत्ययात् ५।१ आम् १।१ अमन्त्रे ७।१ लिटि ७।१।

स०-कास् च प्रत्ययश्च एतयोः समाहारः कास्प्रत्ययम्, तस्मात्-कास्प्रत्ययात् (समाहारद्वन्द्वः)। न मन्त्र इति अमन्त्रः, तस्मिन्-अमन्त्रे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अमन्त्रे कास्प्रत्ययाद् धातोराम् लिटि।

अर्थः-अमन्त्रे विषये कासः प्रत्ययान्ताच्च धातोः पर आम् प्रत्ययो भवति, लिटि प्रत्यये परतः।

उदा०-(कास्) कासाञ्चक्रे। (प्रत्ययान्तः) लोलूयाञ्चक्रे।

आर्यभाषा-अर्थ-(अमन्त्रे) मन्त्र विषय को छोड़कर (कासः) कास् धातु और (प्रत्ययात्) प्रत्ययान्त धातु से परे (आम्) आम् प्रत्यय होता है (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(कास्) कासाञ्चक्रे। उसने निन्दित शब्द किया=खांसा। (प्रत्ययान्त) लोलूयाञ्चक्रे। उसने बार-बार-लवन क्रिया=लावणी की।

सिद्धि-(१) कासाञ्चक्रे। कास्+लिट्। कास्+आम्+लि। कास्+आम्+०। कासाम्+सु। कासाम्+०। कासाम्। कासाम्+कृ+लिट्। कासाम्+कृ+कृ+त। कासाम्+क+कृ+एश्। कासाम्+च+कृ+ए। कासाञ्चक्रे।

यहां 'कासृ शब्दकुत्सायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिट्' परे होने पर इस सूत्र से 'आम्' प्रत्यय होता है। 'आम्' प्रत्यय के कृत् होने से 'कृत्तद्धितसमासाश्च' (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'सु' उत्पत्ति होती है। 'कृन्मेजन्तश्च' (१।१।३८) से अव्यय संज्ञा होने से 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का 'लुक्' और 'आमः' (२।४।८१) से लि (लिट्) का लुक् होता है। 'कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि' (३।१।४०) से 'कृञ्' का अनुप्रयोग होता है। लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'कृ' धातु को द्वित्व, 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास के ऋ को अकार और 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के क् को चकार आदेश होता है।

(२) लोलूयाञ्चक्रे। 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय और यङन्त 'लोलूय' धातु से इस सूत्र से लिट्लकार में 'आम्' प्रत्यय होता है।

विशेष-अमन्त्र कहने से यहां ब्राह्मणग्रन्थ और लौकिक संस्कृतभाषा में आम्-प्रत्यय का विधान है, वेद में 'आम्' प्रत्यय नहीं होता है।

आम्-

(२) इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः।३६।

प०वि०-इजादेः ५।१ च अव्ययपदम्, गुरुमतः ५।१ अनृच्छः ५।१।

स०-इच् आदिर्यस्य स इजादिः, तस्मात्-इजादेः (बहुव्रीहिः)। गुरु अस्मिन्नस्तीति गुरुमान्, तस्मात्-गुरुमतः (तद्धितो मतुप्प्रत्ययः)। न ऋच्छ् इति अनृच्छ तस्मात्-अनृच्छः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-धातोः, अमन्त्रे, आम्, लिटि इति चानुवर्तति।

अन्वयः-अमन्त्रे इजादेर्गुरुमतश्च धातोराम्, लिटि अनृच्छः।

अर्थः-अमन्त्रे विषये इजादेर्गुरुमतश्च धातोः पर आम् प्रत्ययो भवति, लिटि प्रत्यये परतः, ऋच्छतिं वर्जयित्वा।

उदा०-ईहाञ्चक्रे। ऊहाञ्चक्रे। अनृच्छ इति किम् ? आनर्छ।

आर्यभाषा-अर्थ-(अमन्त्रे) मन्त्र विषय को छोड़कर (इजादेः) इच् प्रत्याहार का अक्षर जिसके आदि में है और (गुरुमतः) गुरु अक्षरवाले (धातोः) धातु से परे (आम्) आम् प्रत्यय होता है, (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर परन्तु (अनृच्छः) ऋच्छ् धातु को छोड़कर।

*उदा०-**ईहाञ्चक्रे**। उसने चेष्टा (प्रयत्न) की। **ऊहाञ्चक्रे**। उसने वितर्क किया। ऋच्छ् धातु के इजादि और गुरुमान् होने पर भी आम् प्रत्यय नहीं होता है-**आनर्छ**। उसने गति की।*

*सिद्धि-(१) **ईहाञ्चक्रे**। 'ईह चेष्टायाम्' (भ्वा०आ०)। (२) **ऊहाञ्चक्रे**। 'ऊह वितर्के' (भ्वा०आ०)। ईह और ऊह धातु के इजादि और गुरुमान् होने से लिट्लकार में इस सूत्र से आम् प्रत्यय होता है। सिद्धि 'कासाञ्चक्रे' (३।१।३५) के समान है।*

आम्-

(३) दयायासश्च।३७।

प०वि०-दय-अय-आसः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-दयश्च अयश्च आस् च एतेषां समाहारो दयायास्, तस्मात्-दयायासः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोः, अमन्त्रे, आम्, लिटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अमन्त्रे दयायासश्च धातोराम् लिटि।

अर्थः-अमन्त्रे विषये दय-अय-आस्भ्यश्च धातुभ्यः पर आम् प्रत्ययो भवति लिटि प्रत्यये परतः।

उदा०-**(दय)** दयाञ्चक्रे। **(अय)** पलायाञ्चक्रे। **(आस्)** आसाञ्चक्रे।

आर्यभाषा-अर्थ-(अमन्त्रे) मन्त्र विषय को छोड़कर (दयायासः) दय, अय, आस, (धातोः) धातुओं से (च) भी परे (आम्) आम् प्रत्यय होता है (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(दय) **दयाञ्चक्रे**। उसने दान आदि किया। (अय) **पलायाञ्चक्रे**। उसने पलायन किया। (आस्) **आसाञ्चक्रे**। वह बैठ गया।*

*सिद्धि-(१) **दयाञ्चक्रे**। 'दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' लकार में आम् प्रत्यय है।*

(२) पलायाञ्चक्रे। परा+अय+आम्। पलायाम्। 'अय गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से लिट्लकार में आम् प्रत्यय है। 'उपसर्गस्यायतौ' (८।२।१९) से परा उपसर्ग के रेफ को लत्व होता है।

(३) आसाञ्चक्रे। 'आस् उपवेशने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से लिट्लकार में आम् प्रत्यय है।

(४) इन पदों की सिद्धि 'कासाञ्चक्रे' (१।३।३५) के समान है।

आम्–

(४) उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्।३८।

प०वि०–उष-विद-जागृभ्यः ५।३ अन्यतरस्याम्, अव्ययपदम्।

स०–उषश्च विदश्च जागृश्च ते उषविदजाग्रः, तेभ्यः–उषविदगृभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–धातोः, अमन्त्रे, आम्, लिटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अमन्त्रे उषविदजागृभ्यो धातुभ्योऽन्यतरस्याम् आम् लिटि।

अर्थः–अमन्त्रे विषये उषविदजागृभ्यो धातुभ्यः परो विकल्पेन आम् प्रत्ययो भवति, लिटि प्रत्यये परतः।

उदा०–**(उष)** ओषाञ्चकार, उवोष वा। **(विद)** विदाञ्चकार, विवेद वा। **(जागृ)** जागराञ्चकार, जजागार वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अमन्त्रे) मन्त्र विषय को छोड़कर (उषविदजागृभ्यः) उष, विद, जागृ (धातोः) धातुओं से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (आम्) आम् प्रत्यय होता है (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(उष) ओषाञ्चकार, उवोष वा। उसने जलाया। (विद) विदाञ्चकार, विवेद वा। उसने जाना।

सिद्धि-(१) ओषाञ्चकार। उष्+लिट्। उष्+आम्+लि। ओष्+आम्+०। ओषाम्+सु। ओषाम्+०। ओषाम्+कृ+लिट्। ओषाम्+कृ+तिप्। ओषाम्+कृ+कृ+णल्। ओषाम्+क+कार्+अ। ओषाम्+च+कार्+अ। ओषाञ्चकार।

यहां 'उष दाहे' (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' लकार में इस सूत्र से आम् प्रत्यय होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से उष् की उपधा को गुण होता है। उष् धातु के परस्मैपद होने से 'आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य' (१।३।६३) से अनुप्रयुक्त 'कृ' धातु से भी परस्मैपद होता है। णल् प्रत्यय के णित् होने से 'कृ' धातु को 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि होती है। शेष कार्य 'कासाञ्चक्रे' (१।३।३५) के समान है।

(२) विदाञ्चकार। 'विद ज्ञाने' (अदा०प०)। 'आम्' प्रत्यय के परे 'विद' धातु अदन्त प्रतिज्ञात है। अतः 'विद' धातु को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त उपधा को गुण नहीं होता है।

(३) जागराञ्चकार। 'जागृ निद्राक्षये' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(४) 'उवोष' आदि पदों की सिद्धि 'चकार' के समान करें।

आम्–

(५) भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च।३६।

प०वि०–भी-ह्री-भृ-हुवाम् ६।३ श्लुवत् अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

स०–भीश्च ह्रीश्च भृश्च हुश्च ते-भीह्रीभृहुवः, तेषाम्-भीह्रीभृहुवाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। श्लोरिव श्लुवत् (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०–धातोः, अमन्त्रे, आम्, लिटि अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अमन्त्रे भीह्रीभृहुभ्यो धातुभ्योऽन्यतरस्याम् आम्, तेषां च श्लुवल्लिटि।

अर्थः–अमन्त्रे विषये भीह्रीभृहुभ्यो धातुभ्यः परो विकल्पेन आम् प्रत्ययो भवति, तेषां च श्लुवत् कार्यं भवति, लिटि प्रत्यये परतः।

उदा०–(भी) बिभाञ्चकार, बिभाय वा। (ह्री) जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय वा। (भृ) बिभराञ्चकार, बभार वा। (हु) जुहवाञ्चकार, जुहाव वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अमन्त्रे) मन्त्र विषय को छोड़कर (भीह्रीभृहुवाम्) भी, ह्री, भृ, हु (धातोः) धातुओं से परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (आम्) 'आम्' प्रत्यय होता है (च) और उन्हें (श्लुवत्) 'श्लु' प्रत्यय के समान द्वित्व कार्य होता है (लिटि) 'लिट्' प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(भी) बिभयाञ्चकार, बिभाय वा। वह डर गया। (ह्री) जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय वा। वह लज्जित होगया। (भृ) बिभराञ्चकार, बभार वा। उसने धारण-पोषण किया। (हु) जुह्वाञ्चकार, जुहाव वा। उसने आहुति दी (यज्ञ किया)।

सिद्धि-(१) बिभयाञ्चकार। भी+आम्। भी+भी+आम्। भि+भी+आम्। बि+भे+आम्। बिभयाम्+चकार। बिभयाञ्चकार।

यहां 'ञिभी भये' (जु०प०) धातु से लिट्लकार में आम् प्रत्यय होता है। श्लुवत् कार्य-अतिदेश होने से 'श्लौ' (६।१।१०) से धातु को द्वित्व, 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से

अभ्यास को ह्रस्व, 'अभ्यासे चर्च' (८४।५६) से अभ्यास के भ् को जश् बकार होता है। 'चकार' की सिद्धि पूर्ववत् (३।१।३८) है।

(२) जिह्रयाञ्चकार। 'ह्री लज्जयाम्' (जु०प०)। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के हकार को झकार और उसे 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से जश् जकार होता है।

(३) बिभराञ्चकार। 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०)। 'भृञामित्' (७।४।७६) से अभ्यास को इकार आदेश होता है।

(४) जुहवाञ्चकार। 'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके' (जु०प०)। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के हकार को झकार और 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से जश् जकार होता है।

(५) विकल्प पक्ष में बिभाय आदि पदों में आम् प्रत्यय नहीं है। 'चकार' पद के समान इनकी सिद्धि करें।

कृञ्-अनुप्रयोगः–

(६) कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि।४०।

प०वि०-कृञ् १।१ च अव्ययपदम्, अनु १।१ (लुप्तप्रथमा) प्रयुज्यते क्रियापदम् लिटि ७।१।

अन्वयः-आम् प्रत्ययस्यानु कृञ् च प्रयुज्यते लिटि।

अर्थः-आम्-प्रत्ययस्य अनु=पश्चात् कृञ् च प्रयुज्यते, लिटि प्रत्यये परतः।

कृञ् इति प्रत्याहारग्रहणम्। **'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः'** (५।४।५०) इति कृ-प्रभृति **'कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ'** (५।४।५८) इत्यस्य ञकारपर्यन्तम्। एतेन कृ-भू-अस्तयो गृह्यन्ते, ते चानुप्रयुज्यन्ते।

उदा०-(कृ) पाचयाञ्चकार। (भू) पाचयाम्बभूव। (अस्) पाचयामास।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनु) पूर्वोक्त आम्-प्रत्यय के पश्चात् (कृञ्) कृञ् का (च) भी (प्रयुज्यते) प्रयोग किया जाता है (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर।

यहां 'कृञ्' एक प्रत्याहार है। यह **'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः'** (५।४।५०) के 'कृ' से लेकर **'कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ'** (५।४।५८) के ञकार तक ग्रहण किया जाता है। **इस प्रत्याहार से कृ, भू, अस्ति धातुओं का ग्रहण** होता है।

उदा०-(कृ) पाचयाञ्चकार। उसने पकवाया। (भू) पाचयाम्बभूव। (अस्) पाचयामास। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-पाचयाञ्चकार आदि पदों की सिद्धि 'बिभयाञ्चकार' (३।१।३८) के समान है।

आम् (निपातनम्)-

(७) विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्।४१।

वि०-विदाङ्कुर्वन्तु क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अर्थः-'विदाङ्कुर्वन्तु' इति पदं विकल्पेन निपात्यते।

उदा०-अत्र भवन्तो विदाङ्कुर्वन्तु, विदन्तु वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(विदाङ्कुर्वन्तु) विदाङ्कुर्वन्तु (इति) यह पद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से निपातित किया जाता है।

उदा०-अत्रभवन्तो विदाङ्कुर्वन्तु, विदन्तु वा। आप लोग जानें।

सिद्धि-विदाङ्कुर्वन्तु। विद्+लोट्। विद्+आम्+लोट्। विद्+आम्+० । विदाम्। विदाम्+कृ+लोट्। विदाम्+कृ++उ+झि। विदाम्+कर्+उ+अन्ति। विदाम्+कुर्+व्+अन्तु। विदाङ्कुर्वन्तु।

यहां 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) धातु से निपातन से लोट्लकार में आम् प्रत्यय है। आम् प्रत्यय से परे निपातन से लोट् का लुक् होता है। आम् प्रत्यय के पश्चात् लोट् में कृ का अनुप्रयोग निपातन से होता है। कुर्वन्तु में बहुवचन में ल् के स्थान में झि आदेश है, 'झोऽन्तः' (७।१।३) से झ् को अन्त आदेश और 'एरुः' (३।४।८६) से इ को उकार आदेश होता है। 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (८।३।८४) से कृ को गुण (कर्), 'अत उत् सार्वधातुके' से अ को उकार (कुर्) होता है। 'इको यणचि' (६।१।७७) से उ को यण् (व्) आदेश होता है।

(२) विदन्तु। 'विद् ज्ञाने' (अदा०प०)। कुर्वन्तु के सहाय से इस पद को सिद्ध करें।

विशेष-पण्डित जयादित्य ने काशिकावृत्ति में इस सूत्र से इति पद के आश्रय से लोट्लकार सम्बन्धी 'विदाङ्करोतु' आदि सभी रूप निपातित स्वीकार किये हैं। यह महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि के मत से प्रतिकूल है।

आम् (निपातनम्)–

(८) अभ्युत्सादयां प्रजनयां चिकयां रमयामकः पावयां क्रियाद् विदामक्रन्निति च्छन्दसि।४२।

वि०–अभ्युत्सायाम् १।१ प्रजनयाम् १।१ चिकयाम् १।१ रमयाम् १।१ अकः क्रियापदम्, पावयांक्रियात् क्रियापदम्, विदामक्रन् क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०–अन्यतरस्याम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अभ्युत्सादयां प्रजनयां रमयामिति निपात्यन्ते, अक इति चानुप्रयुज्यते, पावयांक्रियाद् विदामक्रन्निति चान्यतरस्याम् निपात्येते।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽभ्युत्सादयाम्, प्रजनयाम्, चिकयाम्, रमयाम् इति चत्वारि पदानि विकल्पेन निपात्यन्ते, एतेषाम् आम्-प्रत्ययस्य च पश्चात् 'अकः' इति प्रयुज्यते। पावयांक्रियाद् विदामक्रन्निति पदद्वयमपि विकल्पेन निपात्यते।

उदा०–अभ्युत्सादयामकः। अभ्युदसीषदत् इति भाषायाम्। प्रजनयामकः। प्राजीजनत् इति भाषायाम्। चिकयामकः। अचैषीत् इति भाषायाम्। रमयामकः। अरीरमत् इति भाषायाम्। पावयांक्रियात्। पाव्यात् इति भाषायाम्। विदामक्रन्। अविदन् इति भाषायाम्।

आर्यभाषा-अर्थ–*(छन्दसि) वेदविषय में (अभ्युत्सायाम्०) अभ्युत्सादयाम्, प्रजनयाम् चिकयाम्, रमयाम् ये चार पद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से निपातन किये जाते हैं। इनके 'आम्' प्रत्यय के पश्चात् (अकः) 'अकः' पद का प्रयोग किया जाता है। (पावयांक्रियात्०) पावयांक्रियात् और विदामक्रन् ये दो भी (अन्यतरस्याम्) विकल्प से निपातित हैं।*

उदा०–*अभ्युत्सादयामकः। अभ्युदसीषदत्। उसने उखड़वा दिया। प्रजनयामकः। प्राजीजनत्। उसने उत्पन्न कराया। चिकयामकः। अचैषीत्। उसने चयन कराया। रमयामकः। अरीरमत्। उसने रमण कराया। पावयांक्रियात्। पाव्यात्। वह पवित्र करावे। विदामक्रन्। अविदन्। उन्होंने जान लिया।*

सिद्धि–*(१) अभ्युत्सादायमकः। अभि+उत्+सद्+णिच्। अभ्युत्+साद्+इ। अभ्युत्सादि। अभ्युत्सादि+लुङ्। अभ्युत्सादि+आम्+लु। अभ्युत्सादयाम्+अ+कर्+०+त्। अभ्युत्सादयाम्+अ्+कर्+०। अभ्युत्सादयामकः।*

यहां अभि, उत् उपसर्गपूर्वक 'षदलृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) धातु से हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय, 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से धातु को उपधावृद्धि है। णिजन्त 'अभ्युत्सादि' धातु से निपातन से 'लुङ्' परे होने पर 'आम्' प्रत्यय, 'आम्' प्रत्यय के पश्चात् 'लुङ्' परे होने पर निपातन से 'कृ' धातु का अनुप्रयोग, 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' का लुक्, 'इतश्च' (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' को गुण (कर्) और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय होता है। यहां लिट् लकार विषयक कार्य लुङ् लकार में निपातन से होता है।

(२) प्रजनयामकः। यहां प्र उपसर्गपूर्वक जनी प्रादुर्भावे (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और उपधावृद्धि होती है किन्तु उसे 'मितां ह्रस्वः' (६।४।९२) से ह्रस्व हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) चिकयामकः। यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। यहां च को ककार आदेश निपातन से होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) रमयामकः। यहां 'रमु क्रीडायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और रम् धातु को उपधावृद्धि होती है। किन्तु उसे 'मितां ह्रस्वः' (६।४।९२) से ह्रस्व हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) पावयांक्रियात्। पू+णिच्। पौ+इ। पावि। पावि+लिङ्। पावि+आम्+लि। पावे+आम्+०। पावयाम्। पावयाम्+कृ+लिङ्। पावयाम्+कृ+यासुट्+तिप्। पावयाम्+कृ+यास्+त्। पावयाम्+क्रिङ् या०+त्। पावयांक्रियात्।

यहां 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से धातु को वृद्धि होती है। णिजन्त 'पावि' धातु से 'आशिषि लिङ्लोटौ' (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय। लिङ् परे होने पर निपातन से 'आम्' प्रत्यय, 'आमः' (२।४।८१) से 'लिङ्' का लुक्। 'इतश्च' (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप, 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम, 'रिङ् शयग्लिङ्क्षु' (७।४।२८) से धातु को 'रिङ्' आदेश, 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' (८।२।२९) से 'यास्' के सकार का लोप होता है।

(६) विदामक्रन्। विद्+लुङ्। विद्+आम्+लु। विद्+आम्+०। विदाम्। विदाम्+कृ+लुङ्। विदाम्+अट्+कृ+च्लि+झि। विदाम्+अ+कृ+०+अन्ति। विदाम्+अ+कृ+अन्त्। विदामक्रन्त्। विदामक्रन्।

यहां 'विद ज्ञाने' (अ०प०) धातु से 'लुङ्' परे होने पर निपातन से 'आम्' प्रत्यय, 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का अभाव है। 'आम्' प्रत्यय के पश्चात् निपातन से 'लुङ्' में कृञ् का प्रयोग, 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय,

'मन्त्रे घसह्वरणश०' (२।४।८०) से 'च्लि' का लुक्, 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'झ' को अन्त-आदेश, 'इतश्च' (३।४।१००) 'अन्ति' के इकार का लोप, 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से संयोगान्त तकार का लोप और 'इको यणचि' (६।१।७४) से 'कृ' को यण् (र्) आदेश होता है।

(७) अभ्युदसीषदत्। अभि+उत्+सादि+लुङ्। अभ्युत्+अट्+सादि+च्लि+ल्। अभ्युत्+अ+सादि+चङ्+तिप्। अभ्युत्+अ+सादि+अ+त्। अभ्युत्+अ+सद्+सद्+अ+त्। अभ्युत्+अ+सि+सद्+अ+त्। अभ्युत्+अ+सी+षद्+अ+त्। अभ्युदसीषदत्।

यहां 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय, णिजन्त 'सादि' धातु से भूतकाल में 'लुङ्' (३।२।११०) से लुङ् प्रत्यय, 'च्लि लुङि' (३।१।४०) से 'च्लि' प्रत्यय, णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश, 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' (७।४।१) से 'सादि' धातु का उपधा-ह्रस्व (सदि), 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप, 'इतश्च' (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप, 'चङि' (६।१।११) से धातु को द्वित्व, 'सन्वल्लघुनि०' (७।४।९३) से सन्वद्भाव, 'सन्यतः' (७।४।७९) से अभ्यास के अकार को इत्व, 'दीर्घो लघोः' (७।४।९४) से इ को दीर्घ और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

(८) प्राजीजनत्। प्र उपसर्गपूर्वक 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् सिद्ध करें।

(९) अरीरमत्। 'रमु क्रीडायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् सिद्ध करें।

(१०) अचैषीत्। 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से लुङ्, 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से ईट् आगम, 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' (७।२।१) से वृद्धि और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

लुङ्-लकारः

च्लिः—

(१) च्लि लुङि।४३।

प०वि०-च्लि १।१ (लुप्तप्रथमा) लुङि ७।१।

अनु०-धातोरित्यनुवतति।

अन्वयः-धातोश्च्लिः प्रत्ययो लुङि।

अर्थः-धातोः परः च्लिः प्रत्ययो भवति, लुङि प्रत्यये परतः।

उदा०-च्लि-स्थाने सिजादीनादेशान् वक्ष्यति, अतोऽग्रे उदाहरिष्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (च्लि) च्लि प्रत्यय होता है (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदि आदेश हो जाते हैं, अतः इसके उदाहरण आगे दिये जायेंगे।

सिच्-

(२) च्लेः सिच्।४४।

वि०-च्लेः ६।१ सिच् १।१।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोः परस्य च्लेः सिच् लुङि।

अर्थः-धातोः परस्य च्लेः स्थाने सिच्-आदेशो भवति लुङि परतः।

उदा०-अकार्षीत्। अहार्षीत्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (सिच्) सिच् आदेश होता है (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-**अकार्षीत्।** उसने किया। **अहार्षीत्।** उसने हरण किया।*

सिद्धि-*(१) **अकार्षीत्।** कृ+लुङ्। अट्+कृ+च्लि+ल्। अ+कृ+सिच्+तिप्। अ+कृ+स्+ईट्+त्। अ+कार्+ष्+ई+त्। अकार्षीत्।*

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से सामान्य भूतकाल में 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय, 'लङ्लुङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से 'अट्' आगम, 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और इस सूत्र से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। 'इतश्च' (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप, 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से 'ईट्' आगम, 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' (७।२।१) से 'कृ' धातु को वृद्धि (कार्) और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से सिच् को षत्व होता है।

*(२) **अहार्षीत्।** 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) से पूर्ववत् सिद्ध करें।*

विशेष-अनुवृत्ति-'धातोः' पद की अनुवृत्ति 'कुषिरजोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च' (३।१।९०) तक है। 'च्लेः' और 'लुङि' इन दोनों की अनुवृत्ति 'चिण् भावकर्मणोः' (३।१।६५) तक है, अतः इन तीन पदों की अनुवृत्ति पुनः पुनः नहीं दिखाई जायेगी।

क्सः-

(३) शल इगुपधादनिटः क्सः।४५।

प०वि०-शलः ५।१ इगुपधात् ५।१ अनिटः ६।१ क्सः १।१।

स०-इक् उपधा यस्य स इगुपधः, तस्मात्-इगुपधात् (बहुव्रीहिः)। न विद्यते इट् यस्य सोऽनिट्, तस्मात्-अनिटः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-शल इगुपधाद् धातोरनिटश्च्लेः क्सो लुङि।

अर्थः-शलन्ताद् इगुपधाद् धातोः परस्यानिटश्च्लिप्रत्ययस्य स्थाने क्स आदेशो भवति, लुङि परतः।

उदा०-(दुह्) अधुक्षत्। (लिह्) अलिक्षत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(शलः) शल् प्रत्याहारी वर्ण जिसके अन्त में है, (उगुपधात्) इक् प्रत्याहारी वर्ण जिसकी उपधा में है, ऐसी (धातोः) धातु से परे (अनिटः) इट् आगम से रहित (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (क्सः) क्स-आदेश होता है, (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(दुह्) अधुक्षत्। उसने दूध निकाला। (लिह्) अलिक्षत्। उसने आस्वादन किया, चखा।

सिद्धि-(१) अधुक्षत्। दुह्+लुङ्। अट्+दुह्+च्लि+ल्। अ+दुह्+क्स+तिप्। अ+दुघ्+स+त्। अ+धुघ्+स+त्। अ+धुक्+ष+त्। अधुक्षत्।

यहां 'दुह् प्रपूरणे' (अदा०प०) इस शलन्त, इगुपध, धातु से परे इस सूत्र से अनिट् च्लि प्रत्यय के स्थान में क्स आदेश होता है। 'दादेर्धातोर्घः' (८।२।३२) से दुह् के ह् को घ्, 'एकाचो बशो भष्०' (८।२।३७) से दुह् के द् को ध्, 'खरि च' (८।४।५४) से घ् को क् और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से क्स के स् को षत्व होता है।

(२) अलिक्षत्। 'लिह् आस्वादने' (अ०प०)। 'हो ढः' (८।२।३१) से लिह् के ह् को ढ्, 'षढोः कः सि' (८।२।४१) से ढ् को क् और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से क्स के स् को षत्व होता है।

क्सः-

(४) शिलष आलिङ्गने।४६।

प०वि०-शिलषः ५।१ आलिङ्गने ७।१।

अनु०-क्स इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आलिङ्गने शिलषो धातोश्च्लेः क्सो लुङि।

अर्थः-आलिङ्गनेऽर्थे वर्तमानात् शिलषो धातोः परस्य च्लि-प्रत्ययस्य स्थाने क्स आदेशो भवति, लुङि परतः।

उदा०-(शिलष्) अश्लिक्षत् पत्नीं देवदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(आलिङ्गने) आलिङ्गन अर्थ में विद्यमान (शिलषः) शिलष् (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (क्सः) क्स आदेश होता है (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(शिलष्) अश्लिक्षत् पत्नीं देवदत्तः। देवदत्त ने पत्नी का आलिङ्गन किया।

सिद्धि-अश्लिक्षत्। यहां 'श्लिष् आलिङ्गने' (दि०प०) धातु से परे इस सूत्र से च्लि प्रत्यय के स्थान में क्स आदेश होता है। 'षढोः कः सि' (८।२।४१) से श्लिष् के ष् को क् और 'आदेशप्रत्ययोः' (८।३।५९) से क्स के स् को षत्व होता है।

क्सप्रतिषेधः-

(५) न दृशः।४७।

प०वि०-न अव्ययपदम्, दृशः ५।१।

अनु०-क्स इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-दृशो धातोश्च्लेः क्सो न लुङि।

अर्थः-दृशो धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने क्स आदेशो न भवति, लुङि परतः।

उदा०-(दृश्) अदर्शत्। अद्राक्षीत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(दृशः) दृश् (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (क्सः) क्स आदेश (न) नहीं होता है (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(दृश्) अदर्शत्। अद्राक्षीत्। उसने देखा।

सिद्धि-(१) अदर्शत्। दृश्+लुङ्। अट्+दृश्+च्लि+ल्। अ+दृश्+अङ्+तिप्। अ+दर्श्+अ+त्। अदर्शत्।

यहां 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से परे इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'क्स' आदेश का निषेध हो जाने से 'इरितो वा' (३।१।५७) से 'अङ्' ओदश होता है। 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से 'दृश्' को गुण हो जाता है।

(२) अद्राक्षीत्। दृश्+लुङ्। अट्+दृश्+च्लि+ल्। अ+दृश्+सिच्+तिप्। अ+दृ अम् श्+स्+इट्+त्। अ+द् र् अ श्+स्+ई+त्। अ+दर् आ ष्+स्+ई+त्। अद्राक्+ष्+ई+त्। अद्राक्षीत्।

यहां 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से परे इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'क्स' आदेश का निषेध हो जाने से 'इरितो वा' (३।१।५७) से विकल्प पक्ष में 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'सिच्' आदेश होता है। 'सृजिदृशोर्झल्यमकिति' (६।१।५७) से 'दृश्' को 'अम्' आगम होता है। 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से 'ईट्' आगम होता है। 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) से वृद्धि होती है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से दृश् के श् को ष्, 'षढोः कः सि' (८।२।४१) से ष् को क् और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से सिच् के स् को षत्व होता है।

दृश् धातु के शलन्त और इगुपध होने से 'शल इगुपधादनिटः क्सः' (१।३।४५) से अनिट् 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'क्स' आदेश प्राप्त था, इस सूत्र से उसका प्रतिषेध

किया गया है। दृशिर् धातु के इरित् होने से 'इरितो वा' (३।१।५७) से 'अङ्' और पक्ष में 'सिच्' आदेश होता है।

चङ्–

(६) णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्।४८।

प०वि०-णि-श्रि-द्रु-स्रुभ्यः ५।३ कर्तरि ७।१ चङ् १।१।

स०-णिश्च श्रिश्च द्रुश्च स्रुश्च ते णिश्रिद्रुस्रुवः, तेभ्यः-णिश्रिद्रुस्रुभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-णिश्रिद्रुस्रुभ्यो धातुभ्यश्च्लेश्चङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-ण्यन्तेभ्यः श्रिद्रुस्रुभ्यश्च धातुभ्यः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने चङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-ण्यन्त (कृ) अचीकरत्। (हृ) अजीहरत्। (श्रि) अशिश्रियत् (द्रु) अदुद्रुवत्। (स्रु) असुस्रुवत्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(णिश्रिद्रुस्रुभ्यः) णि-अन्त धातु और श्रि, द्रु, स्रु (धातोः) धातुओं से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (चङ्) चङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-ण्यन्त (कृ) **अचीकरत्।** उसने करवाया (बनवाया)। (हृ) **अजीहरत्।** उसने हरण करवाया। (श्रि) **अशिश्रियत्।** उसने सेवा की। (द्रु) **अदुद्रवत्।** उसने दौड़ लगाई। (स्रु) **असुस्रुवत्।** वह बह गया।*

सिद्धि-अचीकरत्। *कृ+णिच्। कार्+इ। कारि। कारि+लुङ्। अट्+कारि+च्लि+ल्। अ+कारि+चङ्+तिप्। अ+करि+अ+त्। अ+कर्+कर्+अ+त्। अ+च+कर्+अ+त्। अ+चि+कर्+अ+त्। अ+ची+कर्+अ+त्। अचीकरत्।*

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से हेतुमान् अर्थ में 'हेतुमति च' (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय है। णिजन्त 'कारि' धातु से इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' (७।४।१) से धातु की उपधा को ह्रस्व (करि) होता है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णि' का लोप और 'इतश्च' (३।४।१००) से 'तिप्' के इ का लोप होता है। 'चङि' (६।१।११) से धातु को द्वित्व, 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के क् को च् होता है। 'सन्वल्लघुनि०' (७।४।९३) से सन्वद्भाव, 'सन्यतः' (७।४।७९) से अभ्यास के अ को इ (चि) और 'दीर्घो लघोः' (७।४।९४) से उसे दीर्घ (ची) होता है। अचीकरत्।

(२) अजीहरत्। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के ह् को झ् (हकारेण चतुर्थाः) और 'अभ्यासे चर्च' (८।४५३) से झ् को जश् ज् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) अशिश्रियत्। 'श्रिञ् सेवायाम्' (भ्वा०उ०)। यहां 'चङ्' प्रत्यय के ङित् होने से 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है। अतः 'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' (६।४।७७) से 'इयङ्' आदेश होता है।

(४) अदुद्रुवत्। 'द्रु गतौ' (भ्वा०प०)। पूर्ववत् 'उवङ्' आदेश होता है।

(५) असुस्रुवत्। 'स्रु सवणे' (भ्वा०प०)। पूर्ववत् 'उवङ्' आदेश होता है।

विशेष-कर्तृवाच्य- 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' (३।४।६९) से लकार कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य अर्थ में होते हैं। यहां 'चङ्' प्रत्यय कर्तृवाची लुङ्लकार में किया गया है। कर्मवाची और भाववाची लुङ् में 'सिच्' प्रत्यय होता है।

चङ्-विकल्पः–

(७) विभाषा धेट्श्व्योः।४६।

प०वि०-विभाषा १।१ धेट्-श्व्योः ६।२।

स०-धेट् च श्विश्च तौ धेट्श्वी, तयोः-धेट्श्व्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, चङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धेट्श्विभ्यां धातुभ्यां च्लेर्विभाषा चङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-धेट्श्विभ्यां धातुभ्यां परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन चङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः। पक्षे यथाप्राप्तं प्रत्ययो भवति।

उदा०-(धेट्) अदधत् (चङ्)। अधात् (सिच्-लुक्)। अधासीत् (सिच्)। (श्वि) अशिश्वयत् (चङ्)। अश्वत् (अङ्)। अश्वयीत् (सिच्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(धेट्श्व्योः) धेट् और श्वि (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (चङ्) चङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(धेट्)-अदधत्। (चङ्)। अधात् (सिच् लुक्)। अधासीत् (सिच्)। उसने दुग्ध आदि पीया। (श्वि) अशिश्वियत् (चङ्)। अश्वत् (अङ्)। अश्वयीत् (सिच्)। उसने गति अथवा वृद्धि की।

सिद्धि-(१) अदधत्। 'धेट् पाने' (भ्वा०प०)। यहां आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से धातु को आ-आदेश (धा) होता है। 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से अभ्यास के ध को जश् (द्) होता है।

(२) अधात्। यहां विभाषा 'घ्राधेट्शाच्छासः' (२।४।७८) से 'सिच्' प्रत्यय का लुक् होगया है।

(३) अधासीत्। यहां विकल्प पक्ष में 'सिच्' प्रत्यय का लुक् नहीं है। 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से ईट् आगम है।

(४) अशिश्वियत्। 'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः' (भ्वा०प०)। यहां 'चङ्' में 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्राप्त गुण का निषेध हो जाने पर 'अचिश्नु०' (६।४।७७) से 'श्वि' को 'इयङ्' आदेश होता है।

(५) अश्वत्। यहां 'जॄस्तम्भु०' (३।१।५८) से विकल्प पक्ष में 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। अङ् परे होने पर 'श्वयतेरः' (७।४।१८) से श्वि को अकार अन्तादेश होता है। उसे 'अतो गुणे' (६।१।९५) से पररूप हो जाता है।

(६) अश्वयीत्। यहां विकल्प पक्ष में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'सिच्' आदेश है। 'ह्म्यन्तक्षणश्वस०' (७।२।५) से 'सिच्' में वृद्धि का प्रतिषेध होने पर 'श्वि' को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण होता है।

चङ्-विकल्पः—

(८) गुपेश्छन्दसि।५०।

प०वि०-गुपेः ५।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-कर्तरि, चङ्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि गुपेर्धातोश्च्लेर्विभाषा चङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-छन्दसि विषये गुपेर्धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन चङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-(गुप्) इमान् नो मित्रावरुणौ गृहान् अजूगुपतम्। भाषायाम्-अगौप्तम्, अगोपिष्टम्, अगोपायिष्टम् इति रूपत्रयं भवति।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (गुपेः) गुप् (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (चङ्) चङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(गुप्) इमान् नो मित्रावरुणौ गृहान् अजूगुपतम्। हे मित्र और वरुण तुम दोनों ने हमारे इन गृहजनों की रक्षा की। भाषा में ये तीन रूप होते हैं-अगौप्तम्। अगोपिष्टम्। अगोपायिष्टम्। तुम दोनों ने रक्षा की।

सिद्धि-(१) अजूगुपतम्। गुप्+लुङ्। अट्+गुप्+च्लि+ल्। अ+गुप्+चङ्+थस्। अ+गुप्+गुप्+अ+तम्। अ+जु+गुप्+अ+तम्। अजुगुप्तम्।

यहां छन्द में 'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चङ्' आदेश, 'चङि' (६।१।११) से धातु को द्वित्व और 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के ग् को जकार आदेश होता है।

(२) अगौप्तम्। यहां भाषा में 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, 'झलो झलि' (८।२।२६) से 'सिच्' का लोप, उसे असिद्ध मानकर 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) से गुप् को वृद्धि होती है।

(३) अगोपिष्टम्। यहां भाषा में 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, गुपू धातु के ऊदित् होने से इडागम के विकल्प पक्ष में 'स्वरतिसूति०' (७।२।४४) से 'सिच्' को 'इट्' आगम, 'नेटि' (७।२।४) से प्राप्त वृद्धि का निषेध, 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से गुप् को लघूपध गुण होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से सिच् के स् को षत्वम् और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से तम् प्रत्यय के त् को ट् होता है।

(४) अगोपायिष्टम्। यहां गुप् धातु से 'गुपूधूप०' (३।१।२८) से आय् प्रत्यय, 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से इट् आगम, पूर्ववत् षत्व और ष्टुत्व होता है।

चङ्-प्रतिषेधः—

(६) नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः।५१।

प०वि०-न अव्ययपदम्, ऊनयति-ध्वनयति-एलयति-अर्दयतिभ्यः ५।३।

स०-ऊनयतिश्च ध्वनयतिश्च एलयतिश्च अर्दयतिश्च ते-ऊनयति०अर्दयतयः, तेभ्यः-ऊनयति०अर्दयतिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-चङ्, कर्तरि, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि ऊनयति०अर्दयतिभ्यो धातुभ्यश्च्लेश्चङ् न कर्तरि लुङि।

अर्थः-छन्दसि विषये ऊनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यो धातुभ्यः परस्य च्लि-प्रत्ययस्य स्थाने चङ् आदेशो न भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-(ऊनयति) काममूनयीः (ऋ० १।५३।३)। औनिनत् इति भाषायाम्। **(ध्वनयति) मा त्वाग्निर्ध्वनयीत् (ऋ०१।१६२।१५)**। अदिध्वनत्

इति भाषायाम्। (एलयति) काममैलयीत्। ऐलिलत् इति भाषायाम्। (अर्दयति) मैनमर्दयीत्। आर्दिदत् इति भाषायाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ऊनयति०अर्दयतिभ्यः) ऊनयति, ध्वनयति, एलयति, अर्दयति (धातोः) धातुओं से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (चङ्) चङ् आदेश (न) नहीं होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(ऊनयति) काममूनयीः। तूने काम (एषणा) का परित्याग किया। औनिनत्। उसने परित्याग किया। (ध्वनयति) मा त्वाग्निर्ध्वनयीत्। अग्नि ने तुझे शब्दायित नहीं किया। अदिध्वनत्। उसने शब्द कराया। (एलयति) काममैलयीत्। उसने काम को प्रेरित किया। ऐलीलत्। उसने प्रेरित किया। (अर्दयति) मैनमर्दयीत्। उसने इससे याचना नहीं कराई। आर्दिदत्। उसने याचना कराई।

सिद्धि-(१) ऊनयीत्। ऊन्+णिच्। ऊन्+इ+। ऊनि। ऊनि+लुङ्। ऊनि+च्लि+ल्। ऊन्+सिच्+तिप्। ऊनि+इट्+स्+ईट्+त्। ऊने+इ+०+ई+त्। ऊनयीत्।

यहां 'ऊन परिहाणे' (चु०उ०) धातु से 'सत्यापपाश०' (१।३।२५) से स्वार्थ में 'णिच्' प्रत्यय, णिजन्त 'ऊनि' धातु से लुङ् प्रत्यय, 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' (६।४।७५) से 'आट्' आगम का अभाव है। इस सूत्र से 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में प्राप्त 'चङ्' आदेश का निषेध होने से उसके स्थान में उत्सर्ग 'सिच्' आदेश होता है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'सिच्' को 'इट्' आगम, 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से 'त्' को 'ईट्' आगम और 'इट ईटि' (७।२।२८) से 'सिच्' का लोप होता है।

(२) औनिनत्। 'ऊन परिहाणे' (चु०उ०) धातु से पूर्ववत् णिच् प्रत्यय, णिजन्त ऊनि धातु से लुङ्, 'आडजादीनाम्' (६।४।७२) से 'आट्' आगम, णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' (३।१।४८) से भाषा में 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश, 'अजादेर्द्वितीयस्य' (६।१।२) से अजादि धातु को द्वितीय अच् के द्वित्व के नियम से 'चङि' (६।१।११) से 'ऊनि' के द्वितीय अच् 'नि' को द्वित्व और 'आटश्च' (६।१।८७) से वृद्धि होती है।

(३) ध्वनयीत्। अदिध्वनत्। ध्वन शब्दे (भ्वा०प०) से हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) ऐलयीत्। ऐलिलत्। 'इल प्रेरणे' (चु०प०) धातु से 'सत्यापपाश०' (१।३।२५) से चुरादि 'णिच्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) आर्दयीत्। आर्दिदत्। 'अर्द गतौ याचने च' (भ्वा०प०) धातु से हेतुमति च' (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अङ्–

(१०) अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ।५२।

प०वि०-अस्यति-वक्ति-ख्यातिभ्यः ५।३ अङ् १।१।

स०-अस्यतिश्च वक्तिश्च ख्यातिश्च ते-अस्यतिवक्तिख्यातयः, तेभ्यः-अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि इत्यनुवर्तति।

अन्वयः-अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यो धातुभ्यश्च्लेरङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः परस्य च्लि-प्रत्ययस्य स्थानेऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-(अस्यति) पर्यास्थत (वक्ति) अवोचत्। (ख्याति) आख्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः) अस्यति, वक्ति, ख्याति (धातोः) धातुओं से परे (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (अङ्) अङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(अस्यति) पर्यास्थत्। उसने फैंका। (वक्ति) अवोचत्। उसने कहा। (ख्याति) आख्यत्। उसने कहा।

सिद्धि-(१) पर्यास्थत। परि+अस्+लुङ्। परि+आट्+अस्+च्लि+ल्। परि+आ+अस्+अङ्+त्। परि+आस्+थुक्+अ+त। परि+आस्+थ्+अ+त। पर्यास्थत।

यहां 'असु क्षेपणे' (दि०प०) धातु से लुङ्, 'आडजादीनाम्' (६।४।७२) से 'आट्' आगम होता है। इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। 'वा०-उपसर्गादस्त्यूह्योर्वावचनम्' (१।३।३०) से आत्मनेपद होता है। 'अस्यतेस्थुक्' (७।४।१७) से धातु को 'थुक्' आगम होता है।

(२) अवोचत्। 'वच परिभाषणे' (अदा०प०)। 'वच उम्' (७।४।२०) से धातु को 'उम्' आगम होता है।

(३) आख्यत्। 'ख्या प्रकथने' (अदा०प०) 'आलो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'ख्या' के आ का लोप होता है। यहां आङ् उपसर्ग है।

अङ्–

(११) लिपिसिचिह्वश्च ।५३।

प०वि०-लिपि-सिचि-ह्वः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-लिपिश्च सिचिश्च ह्वाश्च ते लिपिसिचिह्वाः, तस्मात्-लिपिसिचिह्वः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, अङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लिपिसिचिह्वश्च धातोश्च्लेरङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-लिपिसिचिह्वभ्यो धातुभ्योऽपि परस्य च्लि-प्रत्ययस्य स्थानेऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-(**लिपि**) अलिपत्। (**सिचि**) असिचत्। (**ह्वा**) आह्वत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(लिपिसिचिह्वः) लिपि, सिचि, ह्वा (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (अङ्) अङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(लिपि) अलिपत्। उसने लिपाई की। (सिचि) असिचत्। उसने सिंचाई की। (ह्वा) आह्वत्। उसने आह्वान किया (बुलाया)।

सिद्धि-(१) अलिपत्। यहां 'लिप् उपदेहे' (तु०उ०) धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में अङ् आदेश होता है।

(२) असिचत्। 'षिच् क्षरणे' (तु०अ०) पूर्ववत् अङ् आदेश है।

(३) आह्वत्। ह्वेञ् स्पर्धायाम्' (भ्वा०उ०)। यहां 'आङ्' उपसर्ग है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'ह्वा' के 'आ' का लोप होता है।

अङ्-विकल्पः-

(१२) आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्।५४।

प०वि०-आत्मनेपदेषु ७।३। अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-कर्तरि, अङ्, लिपिसिचिह्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लिपिसिचिह्वश्च धातोश्च्लेरन्यतरस्यामङ् कर्तरि लुङि आत्मनेपदेषु।

अर्थः-लिपिसिचिह्वाभ्योऽपि धातुभ्यः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन अङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि आत्मनेपदेषु परतः।

उदा०-(**लिपि**) अलिपत (अङ्)। अलिप्त (सिच्)। (**सिचि**) असिचत (अङ्)। असिक्त (सिच्)। (**ह्वा**) अह्वत। (अङ्)। अह्वास्त (सिच्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(लिपिसिचिह्वः) लिपि, सिचि, ह्वा (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अङ्) अङ् आदेश होता

है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् लकार में (आत्मनेपदेषु) आत्मनेपद प्रत्ययों के परे होने पर।

उदा०-(लिपि) अलिपत (अङ्)। अलिप्त (सिच्)। उसने लिपाई की। (सिचि) असिचत (अङ्)। असिक्त (सिच्)। उसने सिंचाई की। (ह्वा) अह्वत (अङ्)। अह्वास्त (सिच्)। उसने आह्वान किया (बुलाया)।

सिद्धि-(१) अलिपत। 'लिप उपदेहे' (तु०उ०) यहां आत्मनेपद में च्लि-प्रत्यय के स्थान में अङ्-आदेश है।

(२) असिक्त। यहां उक्त लिप् धातु से आत्मनेपद में विकल्प पक्ष में च्लि-प्रत्यय के स्थान में सिच्-आदेश है। 'झलो झलि' (८।२।२६) से 'सिच्' का लोप हो जाता है।

(३) असिचत। 'सिच् क्षरणे' (तु०उ०) पूर्ववत् अङ् आदेश है।

(४) असिक्त। उक्त सिच् धातु से पूर्ववत् सिच् आदेश है।

(५) अह्वत। 'ह्वेञ् स्पर्धायाम्' (भ्वा०उ०)। पूर्ववत् अङ् आदेश है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से ह्वा के आ का लोप होता है।

(६) अह्वास्त। उक्त ह्वेञ् धातु से पूर्ववत् सिच् आदेश है।

अङ्-

(१३) पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु।५५।

प०वि०-पुषादि-द्युतादि-ॡदितः ५।१ परस्मैपदेषु ७।३।

स०-पुष आदिर्येषां ते पुषादयः, द्युत आदिर्येषां ते द्युतादयः, ॡद् इत् यस्य स ॡदित्। पुषादयश्च द्युतादयश्च ॡदिच्च एतेषां समाहारः पुषादिद्युताद्यॢदित्, तस्मात्-पुषादिद्युताद्यॢदितः (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि अङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पुषादिद्युताद्यॢदितो धातोश्च्लेरङ् कर्तरि लुङि परस्मैपदेषु।

अर्थः-पुषादिभ्यो द्युतादिभ्य ॡदिद्भ्यश्च धातुभ्यः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थानेऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परस्मैपदेषु परतः।

उदा०-(पुषादिः) पुष्-अपुषत्। शुष्-अशुषत्। (द्युतादिः) द्युत्-अद्युतत्। श्विता-अश्वितत्। (ॡदित्) गम्ॡ-अगमत्। शक्ॡ-अशकत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(पुषादिद्युताद्यॢदितः) पुषादि, द्युतादि और ॡदित् (धातोः) धातुओं से परे (च्लेः) च्लिप्रत्यय के स्थान में (अङ्) अङ् आदेश होता है, (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ्लकार में (परस्मैपदेषु) परस्मैपद प्रत्ययों के परे होने पर।

उदा०-(पुषादि) पुष्-अपुषत्। वह पुष्ट होगया। शुष्-अशुषत्। वह सूख गया। (द्युतादि) द्युत्-अद्युतत्। वह चमका। श्विता-अश्वितत्। वह सफेद होगया। (लृदित्) गम्लृ-अगमत्। वह गया। शक्लृ-अशकत्। वह कर सका।

सिद्धि-(१) अपुषत्। 'पुष् पुष्टौ' (दि०प०) धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश है।

(२) अशुषत्। 'शुष शोषणे' (दि०प०) पूर्ववत्।

(३) अद्युतत्। 'द्युत दीप्तौ' (भ्वा०आ०) द्युत आदि गण की धातु आत्मनेपद है 'द्युद्भ्यो लुङि' (१।३।९१) से लुङ् में परस्मैपद होता है।

(४) अश्वितत्। 'श्विता वर्णे' (भ्वा०आ०)। पूर्ववत् परस्मैपद है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से श्विता के आ का लोप होता है।

(५) अगमत्। 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' (१।३।२) से 'लृ' की इत् संज्ञा होती है। लृदित् होने से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है।

(६) अशकत्। 'शक्लृ शक्तौ' (स्वा०प०) पूर्ववत्।

विशेष-पुषादिगण पाणिनीय धातुपाठ के दिवादिगण के और द्युतादिगण भ्वादिगण के अन्तर्गत हैं। वहां देख लेवें।

अङ्-

(१४) सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च।५६।

प०वि०-सर्ति-शास्ति-अर्तिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-सर्तिश्च शास्तिश्च अर्तिश्च ते-सर्तिशास्त्यर्तयः, तेभ्यः-सर्तिशास्त्यर्तिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, अङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च धातुभ्यश्च्लेरङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-सर्तिशास्त्यर्तिभ्यो धातुभ्यश्च परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थानेऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-(सर्तिः) सृ-असरत्। (शास्तिः) शास्-अशिषत्। (अर्तिः) ऋ-आरत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सर्तिशास्त्यर्तिभ्यः) सर्ति, शास्ति, अर्ति (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (अङ्) अङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(सर्ति) सृ-असरत्। वह फैल गया। (शास्ति) शास्-अशिषत्। उसने शिक्षा की। (अर्तिः) ऋ-आरत्। उसने गति की अथवा पहुंचाया।

सिद्धि-(१) असरत्। 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है किन्तु 'अङ्' परे होने पर 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से सृ को गुण (सर्) होता है।

(२) अशिषत्। 'शासु अनुशिष्टौ' (अदा०प०) से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश है। अङ् परे होने पर 'शास इदङ्हलोः' (६।४।३४) से 'शास्' को इ आदेश (शिस्) और 'शासिवसिघसीनां च' (८।३।६०) से षत्व (शिष्) होता है।

(३) आरत्। 'ऋ गतिप्रापणयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है किन्तु अङ् परे होने पर 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से ऋ धातु को गुण (अर्) होता है। 'आडजादीनाम्' (६।४।७२) से ऋ धातु को आट् आगम होता है।

अङ्-विकल्पः--

(१५) इरितो वा।५७।

प०वि०-इरितः ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०-इर् इत् यस्य स इरित्, तस्मात्-इरितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कर्तरि, अङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इरितो धातोश्च्लेर्वाऽङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-इरितो धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेनाऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-(भिदिर्) भिद् अभिदत्, अभैत्सीत् वा। **(छिदिर्)** छिद्-अच्छिदत्, अच्छैत्सीत् वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(इरितः) जिसका 'इर्' इत् है उस (धातोः) धातु से परे (च्लेः) 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में (वा) विकल्प से (अङ्) अङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय होने पर।

उदा०-(भिदिर्) भिद्-अभिदत्, अभैत्सीत् वा। उसने विदारण किया (फाड़ा)। (छिदिर्) छिद्-अच्छिदत्, अच्छैत्सीत् वा। उसने छेदन किया (काटा)।

सिद्धि-(१) अभिदत्। 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से परे 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश है। अङ् प्रत्यय के ङित् होने से 'भिद्' धातु को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है।

(२) अभैत्सीत्। यहां पूर्वोक्त 'भिद्' धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'सिच्' आदेश है। 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) से 'भिद्' के अच् को वृद्धि (भैत्) और 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से त् प्रत्यय को ईट् आगम होता है।

(३) अच्छिदत्। अच्छैत्सीत्। 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०) पूर्ववत्।

अङ्-विकल्पः-

(१६) जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च।५८।

प०वि०-जॄ-स्तम्भु-म्रुचु-म्लुचु-ग्रुचु-ग्लुचु-ग्लुञ्चु-श्विभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-जॄश्च स्तम्भुश्च म्रुचुश्च म्लुचुश्च ग्रुचुश्च ग्लुचुश्च ग्लुञ्चुश्च श्विश्च ते-जॄ०श्वयः, तेभ्यः-जॄ०श्विभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, अङ् वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-जॄ०श्विभ्यश्च धातुभ्यश्च्लेर्वाऽङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यो धातुभ्योऽपि परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेनाऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः। पक्षे सिच्-आदेशो भवति।

उदा०-(जॄ) अजरत्, अजारीत् वा। (स्तम्भु) अस्तभत्, अस्तम्भीत् वा। (म्रुचु) अम्रुचत्, अम्रोचीत् वा। (म्लुचु) अम्लुचत्, अम्लोचीत् वा। (ग्रुचु) अग्रुचत्, अग्रोचीत् वा। (ग्लुचु) अग्लुचत्, अग्लोचीत् वा। (ग्लुञ्चु) अग्लुचत्, अग्लुञ्चीत् वा। (श्वि) अश्वत्, अश्वयीत्, अशिश्वियत् वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(जॄ०श्विभ्यः) जॄ, स्तम्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, ग्लुचु, ग्लुञ्चु, श्वि (धातोः) धातुओं से (च) भी परे (च्लेः) 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में (वा) विकल्प से (अङ्) अङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(जॄ) अजरत्, अजारीत् वा। वह बूढ़ा होगया। (स्तम्भु) अस्तभत्, अस्तम्भीत् वा। वह रुक गया। (म्रुचु) अम्रुचत्, अम्रोचीत् वा। उसने गति की। (म्लुचु) अम्लुचत्, अम्लोचीत् वा। उसने गति की। (ग्रुचु) अग्रुचत्, अग्रोचीत् वा।

उसने चोरी की। (ग्लुचु) अग्लुचत्, अग्लोचीत् वा। उसने चोरी की। (ग्लुञ्चु) अग्लुचत्, अग्लुञ्चीत् वा। उसने गति की। (श्वि) अश्वत्, अश्वयीत्, अशिश्वियत्। उसने गति अथवा वृद्धि की।

सिद्धि-(१) अजरत्। 'जॄ वयोहानौ' (भ्वा०प०) यहां 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश है। 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से 'जॄ' को गुण (जर्) होता है।

(२) अजारीत्। यहां पूर्वोक्त धातु से विकल्प पक्ष में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'सिच्' आदेश होता है। 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' (७।२।२८) से 'जॄ' धातु को वृद्धि होती है।

(३) अस्तभत्। 'स्तम्भु स्तम्भे' {रुकना} (सौत्रधातु)। यहां 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से स्तम्भ के अनुनासिक का लोप होता है।

(४) अस्तम्भीत्। यहां पूर्वोक्त धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में पूर्ववत् 'सिच्' आदेश है।

(५) अम्रुचत्। 'म्रुचु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत् 'अङ्' प्रत्यय है।

(६) अम्रोचीत्। 'म्रुचु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत् सिच् प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से म्रुचु को लघूपध गुण होता है।

(७) अम्लुचत्। 'म्लुचु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत् अङ्।

(८) अम्लोचीत्। 'म्लुचु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत् सिच्।

(९) अग्रुचत्। 'ग्रुचु स्तेयकरणे' (भ्वा०प०) पूर्ववत् अङ्।

(१०) अग्रोचीत्। 'ग्लुचु स्तेयकरणे' (भ्वा०प०) पूर्ववत् सिच्।

(११) अग्लुचत्। 'ग्लुचु स्तेयकरणे' (भ्वा०प०) पूर्ववत् अङ्।

(१२) अग्लोचीत्। 'ग्लुचु स्तेयकरणे' (भ्वा०प०) पूर्ववत् सिच्।

(१३) अग्लुचत्। 'ग्लुञ्चु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत् अङ्। जो 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से अनुनासिक लोप नहीं मानते हैं-अग्लुञ्चत्।

(१४) अग्लुञ्चीत्। 'ग्लुञ्चु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत् सिच्।

(१५) अश्वत्। (१६) अश्वयीत्। (१७) अशिश्वियत्। तीन पदों की सिद्धि 'विभाषा धेट्श्व्योः' (१।३।४९) के प्रवचन में देख लेवें।

अङ्-

(१७) कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि।५६।

प०वि०-कृ-मृ-दृ-रुहिभ्यः ५।३ छन्दसि ७।१।

स०-कृश्च मृश्च दृश्च रुहिश्च ते कृमृदृरुहयः, तेभ्यः-कृमृदृरुहिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, अङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कृमृदृरुहिभ्यो धातुभ्यश्च्लेरङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-छन्दसि विषये कृमृदृरुहिभ्यो धातुभ्यः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थानेऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि प्रत्यये परतः।

उदा०-(कृ) अकरत्। (मृ) अमरत्। (दृ) अदरत्। (रुहि) अरुहत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कृमृदृरुहिभ्यः) कृ, मृ, दृ, रुह् (धातोः) धातुओं से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (अङ्) अङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(कृ) अकरत्। उसने किया। (मृ) अमरत्। वह मर गया। (दृ) अदरत्। उसने आदर किया। (रुह्) अरुहत्। वह अंकुरित हुआ अथवा प्रकट हुआ।

वैदिक प्रयोग-(कृ) शकलाङ्गुष्ठकोऽकरत्। (मृ) अथोऽमरत्। (दृ) अदरदर्थान्। (रुह्) सानुमारुहत्। अन्तरिक्षाद् दिवमारुहम्।

सिद्धि-(१) अकरत्। 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश है। 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से कृ को गुण कर् होता है। यहां 'च्लेः सिच्' (१।३।४४) से सिच् आदेश प्राप्त था।

(२) अमरत्। 'मृङ् प्राणत्यागे' (तु०आ०) पूर्ववत् अङ् आदेश है। यहां छन्द में व्यत्यय से परस्मैपद होता है।

(३) अदरत्। 'दृङ् आदरे' (तु०आ०) पूर्ववत् अङ् आदेश है। यहां छन्द में व्यत्यय से परस्मैपद होता है।

(४) अरुहत्। 'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च' (भ्वा०प०) यहां पूर्ववत् अङ् आदेश है। 'शल इगुपधादनिटः क्सः' (१।३।४५) से 'क्स' आदेश प्राप्त था।

चिण्-

(१८) चिण् ते पदः।६०

प०वि०-चिण् १।१ ते ७।१ पदः ५।१।

अनु०-कर्तरि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पदो धातोश्च्लेश्चिण् कर्तरि लुङि ते।

अर्थः-पदो धातोः परस्य च्लि-प्रत्ययस्य स्थाने चिण् आदेशो भवति कर्तृवाचिनि लुङि ते प्रत्यये परतः।

उदा०-(पद) उदपादि सस्यम्। समपादि भैक्षम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(पदः) पद (धातोः) धातु से परे (च्लेः) 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में (चिण्) चिण् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङ्) लुङ्लकार में (ति) 'त' प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(पद) उदपादि सस्यम्। उसने खेती को उत्पन्न किया। समपादि भैक्षम्। उसने भिक्षा-अन्न को सिद्ध किया।

सिद्धि-(१) उदपादि। उत्+पद्+लुङ्। उत्+अट्+पद्+च्लि+ल्। उत्+अ+पद्+चिण्+त। उत्+अ+पाद्+इ+०। उदपादि।

यहां 'पद गतौ' (दिवा०आ०) धातु से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'पद्' धातु को उपधावृद्धि (पाद्) होती है। 'चिणो लुक्' (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् (लोप) हो जाता है।

चिण्-विकल्पः-

(१६) दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्।६१।

प०वि०-दीप-जन-बुध-पूरि-तायि-प्यायिभ्यः ५।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-दीपश्च जनश्च बुधश्च पूरिश्च तायिश्च प्यायिश्च ते-दीप०प्याययः, तेभ्यः-दीप०प्यायिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, चिण्, ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दीप०प्यायिभ्यो धातुभ्यश्च्लेरन्यतरस्यां चिण् कर्तरि लुङि ते।

अर्थः-दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्यो धातुभ्यः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन चिण् आदेशो भवति कर्तृवाचिनि लुङि ते प्रत्यये परतः। पक्षे सिच्-आदेशो भवति।

उदा०-**(दीप)** अदीपि, अदीपिष्ट वा। **(जन)** अजनि, अजनिष्ट वा। **(बुध)** अबोधि, अबुद्ध वा। **(पूरि)** अपूरि, अपूरिष्ट वा। **(तायि)** अतायि, अतायिष्ट वा। **(प्यायि)** अप्यायि, अप्यायिष्ट वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(दीप०प्यायिभ्यः) दीप, जन, बुध, पूरि, तायि, प्यायि (धातोः) धातुओं से परे (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (चिण्) चिण् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् में (ति) त प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(दीप) अदीपि, अदीपिष्ट वा। वह दीप्त (प्रकाशित) हुआ। (जन) अजनि, अजनिष्ट वा। वह उत्पन्न हुआ। (बुध) अबोधि, अबुद्ध वा। उसने जाना

(समझा)। (पूरि) पूर्-अपूरि, अपूरिष्ट वा। उसने पूर्ण किया (भरा)। (तायि) ताय्-अतायि, अतायिष्ट वा। उसने फैलाया अथवा पालन किया। (प्यायि) प्याय्-अप्यायि, अप्यायिष्ट वा। वह बढ़ा।

सिद्धि-(१) अदीपि। 'दीपी दीप्तौ' (दि०आ०) धातु से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश है। 'चिणो लुक्' (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् (लोप) हो जाता है।

(२) अदीपिष्ट। यहां पूर्वोक्त धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'सिच्' आदेश है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से 'सिच्' के स् को षत्व और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से 'त' प्रत्यय को ष्टुत्व (ट) होता है।

(३) 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०)। 'बुध अवगमने' (दि०आ०)। 'पूरी आप्यायने' (दि०आ०)। 'तायृ सन्तानपालनयोः' (भ्वा०आ०)। 'ओप्यायी वृद्धौ' (भ्वा०आ०) इन धातुओं से पूर्वोक्त 'दीप' धातु के समान रूप सिद्ध करें।

चिण्-विकल्पः—

(२०) अचः कर्मकर्तरि।६२।

प०वि०-अचः ५।१ कर्मकर्तरि ७।१।

स०-कर्म चासौ कर्ता इति कर्मकर्ता, तस्मिन्-कर्मकर्तरि (कर्मधारयतत्पुरुषः)।

अनु०-चिण् ते, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अचो धातोश्च्लेरन्यतरस्यां चिण् कर्मकर्तरि लुङि ते।

अर्थः-अजन्ताद् धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन चिण् आदेशो भवति कर्मकर्तृवाचिनि लुङि ते प्रत्यये परतः। पक्षे सिच् आदेशो भवति।

उदा०-(कृ) अकारि कटः स्वयमेव (चिण्)। अकृत कटः स्वयमेव (सिच्)। (लू) अलावि केदारः स्वयमेव (चिण्)। अलविष्ट केदारः स्वयमेव (सिच्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अचः) अच् जिसके अन्त में है उस (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (चिण्) चिण् आदेश होता है (कर्मकर्तरि) कर्मकर्तावाची (लुङि) लुङ्लकार में (ते) 'त' प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(कृ) अकारि कटः स्वयमेव (चिण्)। अकृत कटः स्वयमेव (सिच्)। चटाई स्वयं ही बन गई। (लू) अलावि केदारः स्वयमेव (चिण्)। अलविष्ट केदारः स्वयमेव। खेत स्वयं ही कट गया।

सिद्धि-(१) अकारि। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) इस अजन्त धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि (कार्) होती है। 'चिणो लुक्' (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(२) अकृत। यहां अजन्त 'कृ' धातु से विकल्प पक्ष में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'सिच्' आदेश होता है। 'ह्रस्वादङ्गात्' (८।२।२७) से 'सिच्' का लोप हो जाता है।

(३) अलावि। अलविष्ट। 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् सिद्ध करें।

चिण्-विकल्पः–

(२१) दुहश्च।६३।

प०वि०-दुहः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-चिण्, ते, कर्मकर्तरि, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दुहश्च धातोश्च्लेरन्यतरस्याम् चिण् कर्मकर्तरि लुङि ते।

अर्थः-दुहो धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन चिण् आदेशो भवति, कर्मकर्तृवाचिनि लुङि ते प्रत्यये परतः। पक्षे क्स-आदेशो भवति।

उदा०-(दुह्) अदोहि गौः स्वयमेव (चिण्)। अदुग्ध गौः स्वयमेव (क्स)।

आर्यभाषा-अर्थ-(दुहः) दुह् (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (चिण्) चिण् आदेश होता है (कर्मकर्तरि) कर्मकर्तावाची (लुङि) लुङ्लकार में (ते) 'त' प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(दुह्) अदोहि गौः स्वयमेव (चिण्)। गौ स्वयं ही दुही गई। अदुग्ध गौः स्वयमेव (क्स)। अर्थ पूर्ववत्।

सिद्धि-(१) अदोहि। 'दुह प्रपूरणे' (अदा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'दुह्' की उपधा को गुण होता है। 'चिणो लुक्' (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(२) अदुग्ध। यहां पूर्वोक्त 'दुह्' धातु से विकल्प पक्ष में इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'शल इगुपधादनिटः क्सः' (३।१।४५) से 'क्स' आदेश होता है। 'क्सस्याचि' (७।३।७२) की अनुवृत्ति में 'लुग् वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये' (७।३।७३) से

'क्स' आदेश का लुक् होता है। 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से 'त' को 'ध' और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से घ् को जश् (ग्) होता है।

चिण्-प्रतिषेधः—

(२२) न रुधः।६४।

प०वि०—न अव्ययपदम्, रुधः ५।१।

स०—चिण्, ते, कर्मकर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः—रुधो धातोश्च्लेश्चिण् न कर्मकर्तरि लुङि ते।

अर्थः—रुधो धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने चिण् आदेशो न भवति, कर्मकर्तृवाचिनि लुङि ते प्रत्यये परतः।

उदा०—अवारुद्ध गौः स्वयमेव।

आर्यभाषा-अर्थ-(रुधः) रुध् (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (चिण्) चिण् आदेश (न) नहीं होता है (कर्मकर्तरि) कर्मकर्तावाची (लुङि) लुङ्लकार में (ति) 'त' प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(रुध्) अवारुद्ध गौः स्वयमेव। गौ गोष्ठ में स्वयं ही बन्द होगई।

सिद्धि-अवारुद्ध। 'रुधिर् आवरणे' (रुधा०उ०) इस धातु से परे 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश नहीं होता है, अपितु 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'सिच्' आदेश होता है। 'झलो झलि' (८।२।२६) से सिच् का लोप हो जाता है। 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से 'त' को 'ध' और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से 'रुध्' के ध् को जश् (द्) होता है।

विशेष-'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः' (३।१।८) से कर्ता को कर्मवद्भाव का विधान किया गया है। उससे कर्मवद्भाव होकर 'चिण् भावकर्मणोः' (३।१।६६) से कर्मकर्ता में 'रुध्' धातु से परे 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका पूर्वविप्रतिषेध किया गया है।

चिण्-प्रतिषेधः—

(२३) तपोऽनुतापे च।६५।

प०वि०—तपः ५।१ अनुतापे ७।१ च अव्ययपदम्। अनुतापः= पश्चात्तापः, तस्मिन्-अनुतापे।

अनु०—चिण्, ते, कर्मकर्तरि न इति चानुवर्तते।

अन्वयः—तपो धातोश्च्लेश्चिण् न, कर्मकर्तरि अनुतापे च लुङि ते।

अर्थः-तपो धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने चिण् आदेशो न भवति, कर्मकर्तरि अनुतापे चार्थे लुङि ते प्रत्यये परतः। अनेन चिणादेशे प्रतिषिद्धे उत्सर्गः सिच्-आदेशो भवति।

उदा०-(कर्मकर्तरि) तप-अतप्त तपस्तापसः। (पश्चात्तापे) रावणेनाऽन्वातप्त पापेन कर्मणा।

आर्यभाषा-अर्थ-(तपः) तप (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (चिण्) चिण् आदेश (न) नहीं होता है (कर्मकर्तरि) कर्मकर्ता (च) और (अनुतापे) पश्चात्ताप अर्थ में (लुङि) लुङ्लकार में (ति) त-प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(कर्मकर्ता) तप्-अतप्त तपस्तापसः। तपस्वी ने स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिये तप=ज्ञानविशेष का अर्जन किया। (पश्चात्ताप) तप्-रावणेनाऽन्वातप्त पापेन कर्मणा। रावण के द्वारा पाप कर्म के कारण पश्चात्ताप किया गया।

सिद्धि-(१) अतप्त। 'तप सन्तापे' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से कर्मकर्तृवाच्य में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश का प्रतिषेध है, अतः 'च्लेः सिच्' (३।१।४०) से 'सिच्' आदेश होता है। 'झलो झलि' (८।२।२६) से 'सिच्' का लोप हो जाता है।

विशेष-(१) यहां 'तपस्तपकर्मकस्यैव' (३।१।८८) से तप धातु के कर्ता का कर्मवद्भाव होता है। कर्मवद्भाव होने से 'चिण् भावकर्मणोः' (३।१।६६) से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश प्राप्त था, इस सूत्र से उसका पूर्व प्रतिषेध किया गया है।

(२) तपांसि तापसमतपन्त। यहां तापस कर्म है वह 'अतप्त तपस्तापसः' में कर्ता बन गया है। अतः यह कर्मकर्ता है।

(३) रावणेनाऽन्वातप्त पापेन कर्मणा। यहां 'तप' धातु से भाववाच्य में लुङ् लकार है। 'चिण् भावकर्मणोः' (३।१।६६) से भाववाच्य में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश प्राप्त था, उसका इस सूत्र से पूर्वप्रतिषेध किया गया है।

चिण्-

(२४) चिण् भावकर्मणोः।६६।

प०वि०-चिण् १।१ भाव-कर्मणोः ७।२।

स०-भावश्च कर्म च ते भावकर्मणी, तयोः भावकर्मणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोश्च्लेश्चिण् भावकर्मणोर्लुङि ते।

अर्थः-धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने चिण् आदेशो भवति, भावकर्मवाचिनि लुङि ते प्रत्यये परतः।

उदा०-(**भावे**) अशायि भवता। (**कर्मणि**) अकारि कटो देवदत्तेन। अहारि भारो यज्ञदत्तेन।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (चिण्) चिण् आदेश होता है (भावकर्मणोः) भाववाची और कर्मवाची (लुङि) लुङ्लकार में (ति) 'त' प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(भाव) **अशायि भवता**। आपके द्वारा शयन किया गया। (कर्म) **अकारि कटो देवदत्तेन**। देवदत्तेन के द्वारा चटाई बनाई गई। **अहारि भारो यज्ञदत्तेन**। यज्ञदत्त के द्वारा भार हरण किया गया।*

सिद्धि-(१) अशायि। 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से भाववाच्य में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'शी' धातु को वृद्धि होती है। 'चिणो लुक्' (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(२) अकारि। 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से कर्मवाच्य में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) अहारि। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

विशेष-'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' (३।४।६९) से सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म अर्थ में लकार होते हैं और अकर्मक धातुओं से कर्ता और भाव अर्थ में लकार होते हैं। यहां अकर्मक 'शीङ्' धातु से भाव अर्थ में और सकर्मक 'कृ' तथा 'हृ' धातु से कर्म अर्थ में लुङ् लकार है।

सार्वधातुकम् (भावे कर्मणि च)

यक्-

(१) सार्वधातुके यक्।६७।

प०वि०-सार्वधातुके ७।१ यक् १।१।

अनु०-भावकर्मणोः इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्यक् भावकर्मणोः सार्वधातुके।

अर्थः-धातोः परो यक् प्रत्ययो भवति, भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(**भावे**) आस्यते भवता। शय्यते भवता। (**कर्मणि**) क्रियते कटो देवदत्तेन। गम्यते ग्रामो यज्ञदत्तेन।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (यक्) यक् प्रत्यय होता है (भावकर्मणोः) भाववाची और कर्मवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(भाव) आस्यते भवता। आपके द्वारा बैठा जाता है। शय्यते भवता। आपके द्वारा सोया जाता है। (कर्म) क्रियते कटो देवदत्तेन। देवदत्त के द्वारा चटाई बनाई जाती है। गम्यते ग्रामो यज्ञदत्तेन। यज्ञदत्त के द्वारा गांव जाया जाता है।

सिद्धि-(१) आस्यते। 'आस् उपवेशने' (अदा०आ०) धातु से भाववाच्य में 'यक्' प्रत्यय है।

(२) शय्यते। 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से भाववाच्य में 'यक्' प्रत्यय है। 'अयङ् यि क्ङिति' (७।४।२२) से 'शी' धातु को 'अयङ्' आदेश होता है।

(३) क्रियते। 'डुकृञ् करणे' (तना०आ०) धातु से कर्मवाच्य में 'यक्' प्रत्यय है। 'रिङ् शयग्लिङ्क्षु' (७।४।२८) से 'कृ' को 'रिङ्' आदेश होता है।

(४) ह्रियते। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

विशेष-'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' (३।४।११३) से 'तिङ्' और 'शित्' प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा है।

सार्वधातुकम् (कर्तरि)

शप्-

(१) कर्तरि शप्।६८।

प०वि०-कर्तरि ७।१ शप् १।१।

अनु०-सार्वधातुके इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोः शप् कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-धातोः परः शप् प्रत्ययो भवति कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(भू) भवति। (पच्) पचति।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (शप्) 'शप्' प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(भू) भवति। वह है। (पच्) पचति। वह पकाता है।

सिद्धि-(१) भवति। भू+लट्। भू+शप्+तिप्। भो+अ+ति। भवति।

यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से वर्तमानकाल में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से विकरण 'शप्'

प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से भू को गुण (भो) हो जाता है। 'एचोऽयवायावः' (८।१।७८) से अव्-आदेश होता है।

(२) पचति। 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

श्यन्–

(२) दिवादिभ्यः श्यन्।६६।

प०वि०–दिवादिभ्यः ५।३ श्यन् १।१।

स०–दिव् आदिर्येषां ते दिवादयः, तेभ्यः–दिवादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–सार्वधातुके कर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दिवादिभ्यो धातुभ्यः श्यन् कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः–दिवादिभ्यो धातुभ्यः परः श्यन् प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०–(दिव्) दीव्यति। (सिव्) सीव्यति।

आर्यभाषा-अर्थ–(दिवादिभ्यः) दिव् आदि (धातोः) धातुओं से परे (श्यन्) श्यन् प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०–(दिव्) दीव्यति। वह खेलता है। (सिव्) सीव्यति। वह सीमता है।

सिद्धि–(१) दीव्यति। 'दिवु क्रीडाविजीगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु' (दि०प०) धातु से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्यन्' प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) 'श्यन्' प्रत्यय के 'ङित्' होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का निषेध हो जाता है। 'हलि च' (८।२।७७) से 'दिव्' की उपधा को दीर्घ होता है।

(२) सीव्यति। 'सिवु तन्तुसन्ताने' (दि०प०) पूर्ववत्।

विशेष–दिवादि धातु पाणिनीय धातुपाठ के दिवादिगण में देख लेवें।

श्यन्-विकल्पः–

(३) वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः।७०।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, भ्राश–भ्लाश–भ्रमु–क्रमु–क्लमु–त्रसि–त्रुटि–लषः ५।१।

स०–भ्राशश्च भ्लाशश्च भ्रमुश्च क्रमुश्च क्लमुश्च त्रसिश्च त्रुटिश्च लष् च एतेषां समाहारो भ्राश०लष्, तस्मात्–भ्राश०लषः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-सार्वधातुके कर्तरि श्यन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भ्राश०लषो धातोर्वा श्यन् कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषभ्यो धातुभ्यः परो विकल्पेन श्यन् प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-**(भ्राश)** भ्राश्यते, भ्राशते वा। **(भ्लाश)** भ्लाश्यते, भ्लाशते वा। **(भ्रमु)** भ्राम्यति, भ्रमति वा। **(क्रमु)** क्राम्यति, क्रामति वा। **(क्लमु)** क्लाम्यति, क्लामति वा। **(त्रसि)** त्रस्यति, त्रसति वा। **(त्रुटि)** त्रुट्यति, त्रुटति वा। **(लष्)** लष्यति, लषति वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(भ्राश०लषः) भ्राश, भ्लाश, भ्रमु, क्रमु, क्लमु, त्रसि, त्रुटि, लष (धातोः) धातुओं से परे (वा) विकल्प से (श्यन्) श्यन् प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(भ्राश) भ्राश्यते, भ्राशते वा। वह चमकता है। (भ्लाश) भ्लाश्यते, भ्लाशते वा। वह चमकता है। (भ्रमु) भ्राम्यति, भ्रमति वा। वह घूमता है। (क्रमु) क्राम्यति, क्रामति वा। वह चलता है। (क्लमु) क्लाम्यति, क्लामति वा। वह ग्लानि करता है। (त्रसि) त्रस्यति, त्रसति वा। वह उद्विग्न (व्याकुल) होता है। (त्रुटि) त्रुट्यति, त्रुटति वा। वह टूटता है। (लष्) लष्यति, लषति वा। वह कामना करता है।

सिद्धि-(१) भ्राश्यते। 'टुभ्राशृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से सार्वधातुक 'त' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्यन्' प्रत्यय है।

(२) भ्राशते। पूर्वोक्त 'भ्राश्' धातु से विकल्प पक्ष में सार्वधातुक 'त' प्रत्यय परे होने पर 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय है।

(३) भ्लाश्यते, भ्लाशते। 'भ्लाशृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०)।

(४) भ्राम्यति, भ्रमति। 'भ्रमु अनवस्थाने' (भ्वा०प०)। 'भ्रमु चलने' (दि०प०)। 'शमामष्टानां दीर्घः श्यनि' (७।३।७४) से दीर्घ होता है।

(५) क्राम्यति, क्रामति। 'क्रमु विक्षेपे' (भ्वा०प०) 'क्रमः परस्मैपदेषु' (७।३।७६) से दीर्घ होता है।

(६) क्लाम्यति, क्लामति। 'क्लमु ग्लानौ' (दि०प०) 'शमामष्टानां दीर्घः श्यनि' (७।३।७४) तथा 'ष्ठिवुक्लमुचमां शिति' (७।३।७५) से दीर्घ होता है।

(७) त्रस्यति, त्रसति। 'त्रसी उद्वेगे' (दि०प०)।

(८) त्रुट्यति, त्रुटति। 'त्रुटी छेदने' (त०प०)। विकल्प पक्ष में 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' प्रत्यय होता है।

(९) लष्यति, लषति। 'लष कान्तौ' (भ्वा०प०)।

श्यन्-विकल्पः–

(४) यसोऽनुपसर्गात्।७१।

प०वि०-यसः ५।१ अनुपर्गात् ५।१।

स०-न विद्यते उपसर्गो यस्य सः-अनुपसर्गः, तस्मात्-अनुपसर्गात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, श्यन्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनुपसर्गाद् यसो धातोर्वा श्यन् कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-अनुपसर्गात्=उपसर्गरहिताद् यसो धातोः परो विकल्पेन श्यन् प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(**यस्**) यस्यति, यसति वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गात्) उपसर्ग से रहित (यसः) यस् (धातोः) धातु से परे (वा) विकल्प से (श्यन्) श्यन् प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(यस्) यस्यति, यसति वा। वह प्रयत्न करता है।

सिद्धि-यस्यति, यसति वा। 'यसु प्रयत्ने' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'श्यन्' और 'शप्' प्रत्यय है।

श्यन्-विकल्पः–

(५) संयसश्च।७२।

प०वि०-संयसः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, श्यन् वा इति चानुवर्तते।

अर्थः-सम्-उपसर्गपूर्वाद् यसो धातोश्च परो विकल्पेन श्यन् प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(**संयस्**) संयस्यति, संयसति वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(संयसः) सम् उपसर्गपूर्वक यस् (धातोः) धातु से परे (वा) विकल्प से (श्यन्) श्यन् प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(संयस्) संयस्यति, संयसति वा। वह मिलकर प्रयत्न करता है। सम् इत्येकीभावे (निरुक्त)।

सिद्धि-संयस्यति, संयसति। 'यसु प्रयत्ने' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् श्यन् और शप् प्रत्यय है।

श्नुः-

(६) स्वादिभ्यः श्नुः।७३।

प०वि०-सु-आदिभ्यः ५।३ श्नुः १।१।

स०-सु आदिर्येषां ते स्वादयः, तेभ्यः-स्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सार्वधातुके कर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्वादिभ्यो धातुभ्यः श्नुः कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-सु-आदिभ्यो धातुभ्यः परः श्नुः प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(सु) सुनोति। (सि) सिनोति।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वादिभ्यः) सु आदि (धातोः) धातुओं से परे (श्नुः) श्नु प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(सु) सुनोति। वह रस निचोड़ता है। (सि) सिनोति। वह बांधता है।

सिद्धि-(१) सुनोति। 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से सार्वधातुक तिप् प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्नु' प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'श्नु' प्रत्यय के ङित् होने से, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है। 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर 'श्नु' को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण होता है।

(२) सिनोति। 'षिञ् बन्धने' (दिवा०उ०) पूर्ववत्।

विशेष-सु-आदि धातु पाणिनीय धातुपाठ के स्वादिगण में देख लेवें।

श्नुः-

(७) श्रुवः शृ च।७४।

प०वि०-श्रुवः ५।१ (६।१) शृ १।१ (लुप्तप्रथमा) च अव्ययपदम्।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, श्नुः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्रुवो धातोः श्नुस्तस्य च शृः कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-श्रुवो धातोः परः श्नुः प्रत्ययो भवति, श्रुवः स्थाने च शृ-आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(श्रु) शृणोति।

आर्यभाषा-अर्थ-(श्रुवः) श्रु धातु से परे (श्नुः) श्नु प्रत्यय होता है (च) और (श्रुवः) श्रु के स्थान में (शृ) शृ आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(श्रु) शृणोति। वह सुनता है।

सिद्धि-शृणोति। श्रु+लट्। श्रु+श्नु+तिप्। शृ+नो+ति। शृणोति।

यहां 'श्रु श्रवणे' (भ्वा०प०) धातु के भ्वादिगण में पठित होने से 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय प्राप्त था। इस सूत्र से 'श्नु' प्रत्यय और 'श्रु' के स्थान में 'शृ' आदेश होता है। 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'श्नु' प्रत्यय के ङित् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से 'शृ' धातु को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का निषेध हो जाता है। 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर 'श्नु' प्रत्यय को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण होता है। 'वा०-ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्' (८।४।१) से णत्व होता है।

श्नु-विकल्पः-

(८) अक्षोऽन्यतरस्याम्।७५।

प०वि०-अक्षः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, श्नुः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अक्षो धातोरन्यतरस्यां श्नुः कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-अक्षो धातोः परो विकल्पेन श्नुः प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः। पक्षे शप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अक्ष्) अक्ष्णोति, अक्षति वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अक्षः) अक्ष् (धातोः) धातु से परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (श्नुः) श्नु प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर। विकल्प पक्ष में 'शप्' प्रत्यय होता है।

उदा०-(अक्ष्) अक्ष्णोति, अक्षति वा। वह व्याप्त होता है।

सिद्धि-अक्ष्णोति, अक्षति। 'अक्षू व्याप्तौ' (भ्वा०प०) धातु से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्नु' प्रत्यय होता है। 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (८।४।१) से णत्व होता है। 'अक्षति' यहां विकल्प पक्ष में 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय है।

श्नु-विकल्पः—

(९) तनूकरणे तक्षः ।७६।

प०वि०-तनूकरणे ७ ।१ तक्षः ५ ।१ ।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, श्नुः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तनूकरणे तक्षो धातोरन्यतरस्यां श्नुः कर्तरि सार्वधातुके ।

अर्थः-तनूकरणेऽर्थे वर्तमानात् तक्षो धातोः परो विकल्पेन श्नुः प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः । पक्षे शप् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-(तक्ष्) तक्ष्णोति, तक्षति वा काष्ठम् ।

आर्यभाषा-अर्थ-(तनूकरणे) छीलने अर्थ में विद्यमान (तक्षः) तक्ष् (धातोः) धातु से परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (श्नुः) प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर। विकल्प पक्ष में शप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(तक्ष्) तक्ष्णोति, तक्षति वा काष्ठम्। वह लकड़ी को छीलता है।

सिद्धि-(१) तक्ष्णोति, तक्षति। 'तक्षू तनूकरणे' (भ्वा०प०) से 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्राप्त था, इस सूत्र से 'श्नु' प्रत्यय का भी विधान किया गया है। सब कार्य अक्ष्णोति/अक्षति के समान हैं।

विशेष-पाणिनीय धातुपाठ में 'तक्षू' धातु 'तनूकरणे' अर्थ में पठित है, फिर यहां तनूकरण अर्थ के कथन से विदित होता है कि 'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति' अर्थात् धातु अनेकार्थक होती हैं। धातुपाठ में प्रदर्शित धातु अर्थ केवल उदाहरण मात्र हैं। बहुलमेतन्निदर्शनम्-धातुपाठे)।

शः—

(१०) तुदादिभ्यः शः ।७७।

प०वि०-तुदादिभ्यः ५ ।३ शः १ ।१ ।

स०-तुद् आदिर्येषां ते तुदादयः, तेभ्यः-तुदादिभ्यः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०-सार्वधातुके कर्तरि इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तुदादिभ्यो धातुभ्यः शः कर्तरि सार्वधातुके ।

अर्थः-तुदादिभ्यो धातुभ्यः परः शः प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः ।

उदा०-(तुद्) तुदति । (नुद्) नुदति ।

आर्यभाषा-अर्थ-(तुदादिभ्यः) तुद् आदि (धातोः) धातुओं से परे (शः) श-प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(तुद्) तुदति। वह पीड़ा देता है। (नुद्) नुदति। वह प्रेरणा करता है।

सिद्धि-(१) तुदति। 'तुद् व्यथने' (तु०प०) धातु से इस सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय के परे होने पर 'श' प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'श' प्रत्यय के ङित् होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है।

(२) नुदति। 'णुद् प्रेरणे' (तु०प०) पूर्ववत्।

विशेष-तुदादि धातु पाणिनीय धातुपाठ के तुदादिगण में देख लेवें।

श्नम्-

(११) रुधादिभ्यः श्नम्।७८।

प०वि०-रुधादिभ्यः ५।३ श्नम् १।१।

स०-रुध् आदिर्येषां ते रुधादयः, तेभ्यः-रुधादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सार्वधातुके कर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रुधादिभ्यो धातुभ्यः श्नम् कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-रुधादिभ्यो धातुभ्यः परः श्नम् प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(रुध्) रुणद्धि। **(भिद्)** भिनत्ति।

आर्यभाषा-अर्थ-(रुधादिभ्यः) रुध् आदि (धातोः) धातुओं से परे (श्नम्) श्नम् प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(रुध्) रुणद्धि। वह रोकता है। (भिद्) भिनत्ति। वह फाड़ता है।

सिद्धि-(१) रुणद्धि। रुध्+लट्। रु श्नम् ध्+ति। रुनध्+धि। रुणद्+धि। रुणद्धि। यहां 'रुधिर् आवरणे' (रुधा०प०) धातु से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से श्नम् प्रत्यय होता है। 'श्नम्' के मित् होने से वह 'मिदचोऽन्त्यात् परः' (१।१।४६) से 'रुध्' धातु के अन्त्य अच् से परे रखा जाता है। उसे 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।४।२) से णत्व होता है। 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से 'रुध्' के 'ध्' को जश् (द्) होता है।

(२) भिनत्ति। 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०)। इस धातु से पूर्ववत् 'श्नम्' प्रत्यय और 'खरि च' (८।४।५४) से भिद् धातु के द् को चर् (त्) होता है।

विशेष-रुधादि धातु पाणिनीय धातुपाठ के रुधादिगण में देख लेवें।

उः–

(१२) तनादिकृञ्भ्य उः ।७६।

प०वि०-तनादि-कृञ्भ्यः ५ ।३ उः १ ।१ ।

स०-तन् आदिर्येषां ते तनादयः, तनादयश्च कृञ् च ते-तनादिकृञः, तेभ्यः-तनादिकृञ्भ्यः (बहुव्रीहिगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-सार्वधातुके कर्तरि इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तनादिकृञ्भ्यो धातुभ्य उः कर्तरि सार्वधातुके ।

अर्थः-तनादिभ्यो धातुभ्यः कृञ्-धातोश्च पर उः प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः ।

उदा०-(तनादिः) तन्-तनोति । सन्-सनोति । (कृञ्) करोति ।

*आर्यभाषा-अर्थ-(तनादिकृञ्भ्यः) तनादि **और कृञ्** (धातोः) धातु से परे (उः) उ-प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-(तनादि) **तन्-तनोति।** वह फैलाता है। **सन्-सनोति।** वह देता है। (कृञ्) **करोति।** वह करता है।*

सिद्धि-(१) तनोति। 'तनु विस्तारे' (तना०प०) धातु से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय होता है और उसे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण हो जाता है।

(२) सनोति। 'षणु दाने' (तना०उ०) पूर्ववत्।

(३) करोति। 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) पूर्ववत्। कृञ् धातु का तनादिगण में पाठ है, फिर सूत्र में 'कृञ्' का पृथक् ग्रहण इसलिये किया गया है कि 'कृञ्' धातु से 'उ' प्रत्यय ही हो, अन्य तनादि का कार्य न हो। जैसे 'तनादिभ्यस्तथासोः' (२।४।७९) से 'कृ' धातु से विकल्प से सिच् का लुक् नहीं होता है-अकृत, अकृथाः।

विशेष-तनादि धातु पाणिनीय धातुपाठ के तनादिगण में देख लेवें।

उः–

(१३) धिन्विकृण्व्योर च ।८०।

प०वि०-धिन्वि-कृण्व्योः ६ ।२ अ १ ।१ (लुप्तप्रथमा) च अव्ययपदम् ।

स०-धिन्विश्च कृण्विश्च तौ धिन्विकृण्वी, तयोः-धिन्विकृण्व्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, उः इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-धिन्विकृण्विभ्यां धातुभ्याम् उः, तयोरकारश्च कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-धिन्विकृण्विभ्यां धातुभ्यां पर उः प्रत्ययो भवति, तयोरन्त्यस्य वकारस्य स्थानेऽकारादेशोऽपि भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(धिन्वि) धिनोति। (कृण्वि) कृणोति।

आर्यभाषा-अर्थ-(धिन्विकृण्व्योः) धिन्वि और कृण्वि (धातोः) धातु से परे (उः) उ-प्रत्यय होता है और उनके अन्त्य वकार के स्थान में (अ) अकार आदेश (च) भी होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(धिन्वि) धिनोति। वह तृप्त करता है। (कृण्वि) कृणोति। वह हिंसा करता है/वह करता है/वह गति करता है।

सिद्धि-(१) धिनोति। धिन्व+लट्। धिन् अ+उ+तिप्। धिन्०+ओ+ति। धिनोति। यहां 'धिवि प्रीणनार्थः' (भ्वा०प०) धातु के इदित् होने से 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है। सूत्र में दोनों धातु 'नुम्' आगम सहित पढ़ी गई है। इस सूत्र से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर 'उ' प्रत्यय होता है और धातु के अन्त्य वकार के स्थान में अकार आदेश भी होता है। 'अतो लोपः' (६।४।४८) से अकार का लोप हो जाता है। 'धिन्' को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से गुण करने में वह अकार-लोप 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' (१।१।५६) से स्थानिवत् हो जाता है, अतः उक्त लघूपध गुण नहीं होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'उ' को गुण (ओ) हो जाता है।

(२) कृणोति। कृवि हिंसा-करणयोश्च, चकाराद् गत्यर्थोऽपि (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

श्ना–

(१४) क्र्यादिभ्यः श्ना।८१।

प०वि०-क्री-आदिभ्यः ५।३ श्ना १।१ (लुप्तप्रथमा)।

स०-क्री आदिर्येषां ते क्र्यादयः, तेभ्यः-क्र्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सार्वधातुके कर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्र्यादिभ्यो धातुभ्यः श्ना कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-क्र्यादिभ्यो धातुभ्यः परः श्ना प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(क्री) क्रीणाति। (प्री) प्रीणाति।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्र्यादिभ्यः) क्री-आदि धातुओं से परे (श्ना) श्ना-प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(क्री) क्रीणाति। वह खरीदता है। (प्री) प्रीणाति। वह तृप्त करता है।

सिद्धि-(१) क्रीणाति। 'डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये' (क्र्या०उ०) धातु से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्ना' प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'श्ना' प्रत्यय के 'ङित्' होने से 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।४।२) से 'श्ना' के न् को णत्व होता है।

(२) प्रीणाति। 'प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च' (क्र्यादि०उ०) पूर्ववत्।

विशेष-क्र्यादि धातु पाणिनीय धातुपाठ के क्र्यादिगण में देख लेवें।

श्नाः+श्नुः-

(१५) स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च।८२।

प०वि०-स्तम्भु-स्तुम्भु-स्कम्भु-स्कुम्भु-स्कुञ्भ्यः ५।३ श्नुः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-स्तम्भुश्च स्तुम्भुश्च स्कम्भुश्च स्कुम्भुश्च स्कुञ् च ते-स्तम्भु०स्कुञः, तेभ्यः-स्तम्भु०स्कुञ्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, श्ना इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्तम्भु०स्कुञ्भ्यो धातुभ्यः श्नाः श्नुश्च कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यो धातुभ्यः परः श्नाः श्नुश्च प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(स्तम्भु) स्तभ्नाति, स्तभ्नोति च। **(स्तुम्भु)** स्तुभ्नाति, स्तुभ्नोति च। **(स्कम्भु)** स्कभ्नाति, स्कभ्नोति च। **(स्कुम्भु)** स्कुभ्नाति, स्कुभ्नोति च। **(स्कुञ्)** स्कुनाति, स्कुनोति च।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्तम्भु०स्कुञ्भ्यः) स्तम्भु, स्तुम्भु, स्कम्भु, स्कुम्भु, स्कुञ् (धातोः) धातु से परे (श्ना) श्ना (च) और (श्नुः) श्नु प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(स्तम्भु) स्तभ्नाति, स्तभ्नोति च। वह रोकता है। (स्तुम्भु) स्तुभ्नाति, स्तुभ्नोति च। वह खाज करता है। (स्कम्भु) स्कभ्नाति, स्कभ्नोति च। वह रोकता है।

(स्कुम्भु) स्कुभ्नाति, स्कुभ्नोति च। वह धारण करता है। (स्कुञ्) स्कुनाति, स्कुनोति च। वह कूदता है।

सिद्धि-(१) स्तभ्नाति। 'स्तम्भु स्तम्भे' (सौत्रधातु) से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्ना' प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'श्ना' प्रत्यय के 'ङित्' होने से 'अनिदितां हल उपधाया: क्ङिति' (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप हो जाता है।

(२) स्तभ्नोति। यहां पूर्वोक्त धातु से पूर्ववत् 'श्नु' प्रत्यय है।

(३) 'स्तुम्भु निष्कोषणे' (सौत्रधातु)। 'स्कम्भु स्तम्भे' (सौत्रधातु)। 'स्कुम्भु धारणे' (सौत्रधातु)। 'स्कुञ् आप्रवणे' {कूदना} (क्र्या०उ०) धातु से शेष पद सिद्ध करें।

विशेष-यहां सौत्र धातुओं के लिखे अर्थ 'माधवीयधातुवृत्ति' पर आश्रित हैं।

शानच्-

(१६) हल: श्न: शानज्झौ।८३।

प०वि०-हल: ५।१ श्न: ६।१ शानच् १।१ हौ ७।१।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वय:-हलो धातो: श्न: शानच् कर्तरि सार्वधातुके हौ।

अर्थ:-हलन्ताद् धातो: परस्य श्ना-प्रत्ययस्य स्थाने शानच्-आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके हि-प्रत्यये परत:।

उदा०-(मुष्) त्वं मुषाण। (पुष्) त्वं पुषाण।

आर्यभाषा-अर्थ-(हल:) हल् जिसके अन्त में है उस (धातो:) धातु से परे (श्न:) श्ना प्रत्यय के स्थान में (शानच्) शानच्-आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक (हौ) हि प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(मुष्) त्वं मुषाण। तू चोरी कर। (पुष्) त्वं पुषाण। तू पुष्ट हो।

सिद्धि-(१) मुषाण। मुष्+लोट्। मुष्+श्ना+तिप्। मुष्+शानच्+हि। मुष्+आन+०। मुषाण।

यहां 'मुष स्तेये' (क्र्यादि०प०) धातु से सार्वधातुक 'सिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्ना' प्रत्यय के स्थान में शानच् आदेश है। 'सेर्ह्यपिच्च' (३।४।८७) से 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश होता है। 'अतो हे:' (६।४।१२) से 'हि' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।२।४) से 'शानच्' के न् को ण् होता है।

(२) पुषाण। 'पुष पुष्टौ' (क्र्यादि०प०) पूर्ववत्।

शानच्-शायचौ–

(१७) छन्दसि शायजपि।८४।

प०वि०–छन्दसि ७।१ शायच् १।१ अपि अव्ययपदम्।

अनु०–सार्वधातुके, कर्तरि, हलः, श्नः, शानच्, हौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि हलो धातोः श्नः शानच् शायजपि कर्तरि सार्वधातुके हौ।

अर्थः–छन्दसि विषये हलन्ताद् धातोः परस्य श्ना-प्रत्ययस्य स्थाने शानच् शायजपि चाऽऽदेशो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके हि-प्रत्यये परतः।

उदा०–(बध्) शानच्–बधान देव सवितः। (ग्रह्) गृभाय जिह्वया मधु।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (हलः) हलन्त (धातोः) धातु से परे (श्नः) श्ना-प्रत्यय के स्थान में (शानच्) शानच् आदेश और (शायच्) शायच् आदेश (अपि) भी होता है। (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक (हौ) हि प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(बध्) शानच्-बधान देव सवितः। हे सविता देव! तू बांध। (ग्रह्) गृभाय जिह्वया मधु। तू जिह्वा से मधु ग्रहण कर।

सिद्धि-(१) बधान। बध्+लोट्। बध्+श्ना+सिप्। बध्+शानच्+हि। बध्+आन+०। बधान।

यहां 'बध बन्धने' (क्र्या०प०) से सार्वधातुक 'सिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्ना' प्रत्यय के स्थान में 'शानच्' आदेश है। 'सेर्ह्यपिच्च' (३।४।८७) 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश होता है और 'अतो हेः' (६।४।१०५) से 'हि' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(२) गृभाय। ग्रह्+लोट्। ग्रह्+श्ना+सिप्। ग्रह्+शायच्+हि। ग्रह्+आय+०। गृ भ्+आय। गृभाय।

यहां 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्ना' प्रत्यय के स्थान में 'शायच्' आदेश होता है। 'सेर्ह्यपिच्च' (३।४।८७) से 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश और 'अतो हेः' (६।४।१०५) से 'हि' का लुक् होता है। 'ग्रहिज्या०' (६।१।१६) से 'ग्रह्' को सम्प्रसारण (गृह्) और 'वा०-हृग्रहोर्भश्छन्दसि हस्येति वक्तव्यम्' (८।२।३५) से 'गृह्' के ह् को भ् आदेश होता है।

शबादीनां व्यत्ययः–

(१८) व्यत्ययो बहुलम्।८५।

प०वि०–व्यत्ययः १।१ बहुलम् १।१।

अनु०–सार्वधातुके कर्तरि छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि धातोः शबादीनां बहुलं व्यत्ययः।

अर्थः–छन्दसि विषये धातोः परेषां शबादीनां विकरण-प्रत्ययानां बहुलं व्यत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः। व्यतिगमनं व्यत्ययः, व्यतिहारः, विषयान्तरे विधानमित्यर्थः। क्वचिद् द्विविकरणता, क्वचित् त्रिविकरणताऽपि भवति।

उदा०–(भिद्) **विकरणव्यत्ययः**–अण्डा शुष्मस्य भेदति। भिनत्तीति प्राप्ते। (मृङ) ताश्चिन्नु न मरन्ति। म्रियन्ते इति प्राप्ते। **द्विविकरणता**–इन्द्रो वस्तेन नेषतु। नयतु इति प्राप्ते। **त्रिविकरणता**–इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्। तरेम इति प्राप्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (धातोः) धातु से परे पूर्वोक्त शप् आदि प्रत्ययों का (बहुलम्) बहुलता से (व्यत्ययः) व्यत्यय=विषयान्तर विधान होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(भिद्) विकरणव्यत्यय-अण्डा शुष्मस्य भेदति। भिनत्तीति प्राप्ते। वह शुष्म के अण्डों का भेदन करता है। यहां 'भेदति' के स्थान में 'भिनत्ति' प्रयोग प्राप्त था। (मृङ्) ताश्चिन्नु न मरन्ति। म्रियते इति प्राप्ते। क्या वे मरती नहीं है ? यहां 'मरन्ति' के स्थान में 'म्रियन्ते' प्रयोग प्राप्त था। दो विकरण प्रत्यय-इन्द्रो वस्तेन नेषतु। इन्द्र तुम्हें न ले जावे। यहां 'नेषतु' के स्थान पर 'नयतु' प्रयोग प्राप्त था। तीन विकरण प्रत्यय-इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्। इन्द्र के सहयोग से हम वृत्र को पार करें, जीतें। यहां 'तरुषेम' के स्थान में 'तरेम' प्रयोग प्राप्त था।

सिद्धि-(१) भेदति। भिद्+लट्। भिद्+शप्+तिप्। भेद्+अ+ति। भेदति।

यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से विकरण व्यत्यय मानकर 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। 'रुधादिभ्यः श्नम्' (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण प्रत्यय होना चाहिये था-भिनत्ति।

(२) मरन्ति। मृङ्+लट्। मृ+शप्+झि। मृ+अ+अन्ति। मरन्ति।

यहां 'मृङ् प्राणत्यागे' (तुदा०आ०) धातु से इस सूत्र से विकरण व्यत्यय मानकर 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय होना चाहिये था। यहां आत्मनेपद के स्थान में परस्मैपद भी व्यत्यय से होता है-म्रियन्ते।

(३) नेषतु। नी+लोट्। नी+तिप्। नी+सिप्+शप्+तु। ने+स्+अ+तु। नेषतु।

यहां 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) धातु से 'लोट्' लकार में 'सिब् बहुलं लेटि' (३।१।३४) से 'सिप्' प्रत्यय और 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से दूसरा 'शप्' विकरण प्रत्यय भी होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व हो जाता है।

(४) तरुषेम। तॄ+लिङ्। तॄ+मस्। तॄ+यासुट्+मस्। तॄ+उ+यास्+म। तॄ+उ+सिप्+यास्+म। तॄ+उ+स्+अङ्+यास्+म। तर्+उ+ष्+अ+इय्+म। तरुषेम।

यहां 'तॄ प्लवनसन्तरणयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'आशिषि लिङ्लोटौ' (३।३।१७३) से आशीः (इच्छा) अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय, 'नित्यं ङितः' (३।४।९९) से 'मस्' के स् का लोप, 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम, 'छन्दस्युभयथा' (३।४।११७) से आशीर्लिङ् की सार्वधातुक संज्ञा, 'तनादिकृञ्भ्यः उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय, 'सिब्बहुलं लेटि' (३।१।३४) से दूसरा 'सिप्' विकरण प्रत्यय, 'लिङ्याशिष्यङ्' (३।१।८६) से तीसरा 'अङ्' विकरण प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से तॄ को गुण (तर्) 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से 'सिप्' के स् को षत्व, 'अतो येयः' (७।२।८०) से 'यासुट्' के या को इय् आदेश, 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'यासुट्' के स् का लोप और 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'इय्' के य् का लोप होता है। यहां व्यत्यय से तीन विकरण प्रत्यय है।

अङ्—

(१६) लिङ्याशिष्यङ्।८६।

प०वि०-लिङि ७।१ आशिषि ७।१ अङ् १।१।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि धातोरङ् कर्तरि सार्वधातुके आशिषि लिङि।

अर्थः-छन्दसि विषये धातोः परोऽङ् प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके आशिषि लिङि प्रत्यये परतः। शपोऽपवादः। 'छन्दस्युभयथा'

(३।४।११७) इति आशीर्लिङः सार्वधातुकसंज्ञा वर्तते। स्थागागमिवचिविदिशकिरुहिधातवः प्रयोजयन्ति।

उदा०-(स्था) उपस्थेयं वृषभं तुग्रियाणाम्। (गा) सत्यमुपगेयम्। (गमि) गृहं गमेम। (वचि) मन्त्रं वोचेमाग्नये। (विदि) विदेमेमां मनसि प्रविष्टाम्। (शकि) व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयम्। (रुहि) स्वर्गं लोकमारुहेयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (धातोः) धातु से परे (अङ्) अङ् प्रत्यय होता है, (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक विषय में (आशिषि) इच्छार्थक (लिङि) लिङ्-प्रत्यय परे होने पर। यह शप् विकरण प्रत्यय का अपवाद है। 'छन्दस्युभयथा' (३।४।११७) से 'आशीर्लिङ्' की सार्वधातुक संज्ञा होती है। यहां स्था, गा, गम्, वच्, विद्, शक्, रुह धातुओं से ही अङ् विकरण प्रत्यय का विधान करना प्रयोजन है।

उदा०-(स्था) उपस्थेयं वृषभं तुग्रियाणाम्। मैं तुग्रियजनों के वृषभ को प्राप्त करूं, ऐसी इच्छा है। (गा) सत्यमुपगेयम्। मैं सत्य का गान करूं, ऐसी इच्छा है। (गमि) गृहं गमेम। हम घर चलें, ऐसी इच्छा है। (वचि) मन्त्रं वोचेमाग्नये। हम अग्नि देवता के लिये मन्त्र उच्चारण करें, ऐसी इच्छा है। (विदि) विदेमेमां मनसि प्रविष्टाम्। हम इस मन में प्रविष्ट हुई वासना को जानें, ऐसी इच्छा है। (शकि) व्रतं चरिष्यामि, तच्छकेयम्। मैं व्रत का आचरण करूंगा, मैं उसे कर सकूं ऐसी इच्छा है। (रुहि) स्वर्गं लोकमारुहेयम्। मैं स्वर्गलोक में आरोहण करूं ऐसी इच्छा है।

सिद्धि-(१) उपस्थेयम्। उप+स्था+लिङ्। उप+स्था+मिप्। उप+स्था+अङ्+यासुट्+अम्। उप+स्था+अ+यास्+अम्। उप+स्थ्+अ+इय्+अम्। उपस्थेयम्।

यहां उप-उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् आशीर्लिङ्, 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' (३।४।१०१) से 'मिप्' को अम्-आदेश और इस सूत्र से 'अङ्' विकरण प्रत्यय होता है। 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम, 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'यासुट्' के 'स्' का लोप, 'अतो येयः' (७।२।८०) से 'यासुट्' के या को इय्-आदेश और 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'स्था' के आ का लोप होता है।

(२) 'गै शब्दे' (भ्वा०प०) 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) 'शक्लृ शक्तौ' (रुधा०प०) 'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च' (भ्वा०प०) धातु से शेष पदों की सिद्धि करें।

इति विकरणप्रत्ययप्रकरणम्।

कर्मवद्भावप्रकरणम्

(१) कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः।८७।

प०वि०-कर्मवत् अव्ययपदम्, कर्मणा ३।१ तुल्यक्रियः १।१। कर्मणा तुल्यमिति कर्मवत् (तद्धितवृत्तिः)। कर्मस्था क्रिया इति कर्म, तस्मिन् कर्मणि। यथा मञ्चाः क्रोशन्तीत्यत्र मञ्चस्थाः पुरुषा मञ्चा इत्युच्यन्ते तथाऽत्र कर्मस्था क्रिया 'कर्म' इत्युच्यते।

स०-तुल्या क्रिया यस्य स तुल्यक्रियः {कर्ता} (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'कर्तरि शप्' इत्यतः 'कर्तरि' इति पदं मण्डूकप्लुत्याऽनुवर्तते, तच्च सप्तम्यन्तम्, अर्थवशाद् प्रथमायां विपरिणम्यते। **'लिङ्याशिष्यङ्'** (३।१।८६) इत्यत्र द्विलकारको निर्देश इति मत्वा ल इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-कर्मणा तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवल्लकार्येषु।

अर्थः-कर्मणा=कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवद् भवति, ल-कार्येषु। यस्मिन् कर्मणि कर्तृभूतेऽपि तत्तुल्या क्रिया लक्ष्यते यथा कर्मणि, स कर्ता कर्मवद् भवति, कर्माश्रयाणि कार्याणि प्रतिपद्यते। यगात्मनेपद-चिण्चिण्वद्भावाः प्रयोजयन्ति।

उदा०-**(यक्)** भिद्यते काष्ठं स्वयमेव। **(चिण्)** अभेदि काष्ठं स्वयमेव। **(चिण्वद्भावः)** कारिष्यते कटः स्वयमेव।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणा) जो कर्मस्थ क्रिया के (तुल्यक्रियः) तुल्यक्रियावाला (कर्तरि) कर्ता है वह (कर्मवत्) कर्म के तुल्य=सदृश हो जाता है (लः) लकारसम्बन्धी कार्य करने में, अर्थात्-जिस कर्म के कर्ता हो जाने पर जैसी कर्म में क्रिया थी वह वैसी ही रहती है, तब वह कर्ता कर्मवत् हो जाता है, कर्माश्रित कार्यों को प्राप्त कर लेता है। इसके यक्, आत्मनेपद, चिण् और चिण्वद्भाव प्रयोजन हैं।

*उदा०-(यक्) **भिद्यते काष्ठं स्वयमेव।** लकड़ी स्वयं ही फट रही है। (चिण्) **अभेदि काष्ठं स्वयमेव।** लकड़ी स्वयं ही फट गई। (चिण्वद्भाव) **कारिष्यते कटः स्वयमेव।** चटाई स्वयं ही बन जायेगी।*

*सिद्धि-(१) **भिद्यते।** यहां **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०) कर्मस्थ क्रिय धातु से इस सूत्र से कर्म (काष्ठम्) के कर्ता हो जाने से **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से*

कर्मकर्तृवाच्य में 'यक्' प्रत्यय है और 'भावकर्मणोः' (१।३।१३) से आत्मनेपद होता है।

(२) अभेदि। यहां पूर्वोक्त कर्मस्थक्रिय धातु से इस सूत्र से कर्म (काष्ठम्) के कर्ता हो जाने से 'चिण् भावकर्मणोः' (३।१।६६) से 'चिण्' प्रत्यय होता है। 'चिणो लुक्' (६।४।१०४) से आत्मनेपद त-प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(३) कारिष्यते। कृ+लृट्। कृ+स्य+त। कार्+इट्+स्य+त। कार्+इ+ष्य+ते। कारिष्यते।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) लृट् प्रत्यय, 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण प्रत्यय, 'स्यसिच्सीयुट्तासिषु०' (६।४।६२) से चिण्वद्भाव होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' को वृद्धि और 'स्य' प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है।

विशेष-धातु के भेद-(१) जिन धातुओं का भाव (अर्थ) कर्ता में स्थित रहता है उन्हें कर्तृस्थभावक धातु कहते हैं। जैसे-देवदत्तो ग्रामं गच्छति। यहां गमनक्रिया कर्ता देवदत्त में होती है, ग्राम में नहीं, अतः 'गम्' धातु कर्तृस्थभावक है। जिन धातुओं का भाव (अर्थ) कर्म में स्थित रहता है उन्हें कर्मस्थभावक धातु कहते हैं। जैसे-देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति। यहां भेदन क्रिया कर्म काष्ठ में होती है, कर्ता देवदत्त में नहीं, अतः 'भिद्' धातु कर्मस्थभावक है। इस सूत्र से कर्मस्थभावक (कर्मस्थक्रिय) धातुओं का ही कर्ता कर्मवत् होता है, कर्तृस्थभावक (कर्तृस्थक्रिय) धातुओं का नहीं।

(२) कई वैयाकरण भाव और क्रिया में भेद मानकर धातुओं के कर्तृस्थवाचक, कर्तृस्थक्रिय और कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय ये चार भेद मानते हैं। उनका कहना है कि जो चेष्टारहित है वह भाव है, जैसे-आस्ते और जो चेष्टासहित है वह 'क्रिया' कहाती है। यह मन्तव्य पाणिनिमुनि के मन्तव्य के विरुद्ध है क्योंकि उन्होंने 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' (२।३।३७) आदि में चेष्टासहित धात्वर्थ को भाव कहा है।

(२) तपस्तपःकर्मकस्यैव।८८।

प०वि०-तपः ६।१ तपःकर्मकस्य ६।१ एव अव्ययपदम्।

स०-तपः कर्म यस्य स तपःकर्मकः, तस्य तपःकर्मकस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कर्तरि, लः, कर्मवद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तपःकर्मकस्यैव तपो धातोः कर्ता कर्मवल्लकार्येषु।

अर्थः-तपःकर्मकस्यैव तपो धातोः कर्ता कर्मवद् भवति, ल-कार्येषु।

उदा०-ब्रह्मचर्यादीनि तपांसि तापसं तपन्ति। दुःखयन्तीत्यर्थः। स तापसो व्रतैकमनाः स्वर्गाय तपस्तप्यते। तपोऽर्जयतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तपःकर्मकस्य) 'तपः' कर्मवाली (एव) ही (तपः) तप (धातोः) धातु का (कर्तरि) कर्ता (कर्मवद्) कर्मवत् होता है (लः) लकारसम्बन्धी कार्यों के करने में।

उदा०-(तप्) ब्रह्मचर्यादीनि तपांसि तापसं तपन्ति। ब्रह्मचर्य आदि तप तपस्वी ब्रह्मचारी को कष्ट देते हैं। स तापसो व्रतैकमनास्तपस्तप्यते। वह तपस्वी ब्रह्मचारी अपने व्रत में दत्तचित्त होकर स्वर्ग=सुखविशेष की प्राप्ति के लिये तप को अर्जित करता है।

सिद्धि-(१) ब्रह्मचर्यादीनि तपांसि तापसं तपन्ति। यहां 'तप सन्तापे' (भ्वा०प०) धातु का कर्म तापस (ब्रह्मचारी) है। स तापसो व्रतैकमनाः स्वर्गाय तपस्तप्यते। वह यहां कर्ता बन गया है। इस प्रकार कर्म के कर्ता बन जाने पर कर्मकर्तृवाच्य में 'तप्यते' पद में 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से यक् प्रत्यय और 'भावकर्मणोः' (१।३।१३) से आत्मनेपद होता है।

विशेष-'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः' (१।३।८७) से कर्मस्थ क्रिया के समान क्रियावाले कर्ता को कर्मवद्भाव कहा गया है। तप धातु कर्मस्थक्रिय नहीं अपितु कर्तृस्थक्रिय है। अतः पूर्वोक्त सूत्र से कर्मवद्भाव प्राप्त नहीं था, अतः इस सूत्र से विधान किया गया है।

यक्-चिण्प्रतिषेधः-

(३) न दुहस्नुनमां यक्चिणौ।८६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, दुह-स्नु-नमाम् ६।३ यक्-चिणौ १।२।

स०-दुहश्च स्नुश्च नम् च ते-दुहस्नुनमः, तेषाम्-दुहस्नुनमाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। यक् च चिण् च तौ-यक्चिणौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, कर्मवद्, ल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दुहस्नुनमां धातूनां कर्ता कर्मवल्लकार्येषु परं यक्चिणौ न।

अर्थः-दुहस्नुनमां धातूनां कर्ता कर्मवद् भवति, ल-कार्येषु, किन्तु तत्र कर्मवद्भावव्यपदिष्टौ यक्-चिणौ प्रत्ययौ न भवतः।

उदा०-(दुह्) दुग्धे गौः स्वयमेव। अदुग्ध गौः स्वयमेव। अदोहि गौः स्वयमेव। **(स्नु)** प्रस्नुते गौः स्वयमेव। प्रास्नोष्ट गौः स्वयमेव। **(नम्)** नमते दण्डः स्वयमेव। अनंस्त दण्डः स्वयमेव।

आर्यभाषा-अर्थ-(दुहस्नुनमाम्) जो दुह, स्नु और नम् (धातोः) धातुओं का (कर्तरि) कर्ता है वह (कर्मवत्) कर्म के तुल्य हो जाता है किन्तु वहां कर्मवद्भाव में कहे (यक्-चिणौ) यक् और चिण् प्रत्यय (न) नहीं होते हैं।

उदा०-(दुह्) दुग्धे गौः स्वयमेव। गाय स्वयं ही दुही जारही है। अदुग्ध गौः स्वयमेव। गाय स्वयं ही दुह गई। अदोहि गौः स्वयमेव। पूर्ववत्। (स्नु) प्रस्नुते गौः स्वयमेव। गाय स्वयं ही पावस रही है। प्रास्नोष्ट गौः स्वयमेव। गाय स्वयं ही पावस गई। (नम्) नमते दण्डः स्वयमेव। दण्ड स्वयं ही झुकता है। अनंस्त दण्डः स्वयमेव। दण्ड स्वयं ही झुक गया।

सिद्धि-(१) दुग्धे। दुह्+लट्। दुह्+शप्+त। दुह्+०+त। दुघ्+ध। दुग्+धे। दुग्धे।

यहां 'दुह प्रपूरणे' (अदा०प०) धातु से लट्-प्रत्यय, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। 'दादेर्धातोर्घः' (८।२।३२) से दुह् के ह् को घ्, 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४७) से 'त' प्रत्यय को ध, 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से घ् को जश् (ग्) होता है।

यहां कर्मकर्तरिवाच्य में 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से 'यक्' प्रत्यय नहीं हुआ। 'भावकर्मणोः' (१।३।१३) से आत्मनेपद होगया है।

(२) अदुग्ध। दुह्+लुङ्। अट्+दुह्+च्लि+त्। अ+दुह्+क्स+त। अ+दुह्+०+त। अ+दुघ्+ध। अ+दुग्+ध। अदुग्ध।

यहां पूर्वोक्त 'दुह्' धातु से लुङ्, इस सूत्र से 'चिण्' का प्रतिषेध होने से 'शल इगुपधादनिटः क्सः' (३।१।४५) से कर्मकर्तृवाच्य में 'क्स' प्रत्यय होता है। 'लुग् वा दुहदिहलिहामात्मनेपदे दन्त्ये' (७।३।७३) से 'क्स' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(३) अदोहि। दुह्+लुङ्। अट्+दुह्+च्लि+ल्। अ+दुह्+चिण्+त। अ+दोह्+इ+०। अदोहि।

यहां पूर्वोक्त 'दुह्' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय और 'दुहश्च' (३।१।६३) से विकल्प पक्ष में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश हो जाता है। 'चिणो लुक्' (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् होता है।

(४) प्रस्नुते। प्र-उपसर्ग 'स्नु प्रस्रवणे' (अदा०प०) धातु से पद सिद्ध करें।

(५) प्रास्नोष्ट। यहां पूर्वोक्त धातु से इस सूत्र से कर्मकर्तृवाच्य में 'चिण्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने से लुङ्लकार में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से सिच् आदेश होता है।

(६) नमते। 'णम प्रह्वत्वे शब्दे' (भ्वा०प०) कर्मवद्भाव से 'भावकर्मणोः' (१।३।१३) से आत्मनेपद होता है।

(७) अनंस्त। पूर्वोक्त 'नम' धातु से इस सूत्र से 'चिण्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने से पूर्ववत् 'सिच्' प्रत्यय होता है।

श्यन्–

(४) कुषिरजोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च।६०।

प०वि०–कुषि-रजोः ६।२ प्राचाम् ६।३ श्यन् १।१ परस्मैपदम् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–कर्तरि, कर्मवत्, ल इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कुषिरजोर्धात्वोः कर्ता कर्मवल्लकार्येषु, श्यन् परस्मैपदं च प्राचाम्।

अर्थः–कुषिरजोर्धात्वोः कर्ता कर्मवद् भवति, ल-कार्येषु, ताभ्यां च परः श्यन् प्रत्ययः परस्मैपदं च भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन। प्राचाम्-ग्रहणं विकल्पार्थम्, न पूजार्थम्, पूजार्थे विकल्पाभावः स्यात्।

उदा०–(कुष्) कुष्यति पादः स्वयमेव। कुष्यते पादः स्वयमेव। (रज्) रज्यति वस्त्रं स्वयमेव। रज्यते वस्त्रं स्वयमेव।

आर्यभाषा-अर्थ–(कुषिरजोः) जो कुष् और रज् धातु का (कर्तरि) कर्ता है वह (कर्मवद्) कर्मवत् होता है और उनसे परे (श्यन्) श्यन् प्रत्यय (च) और (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है (प्राचाम्) प्राची देश के आचार्यों के मत में। यहां 'प्राचाम्' का ग्रहण विकल्प के लिये है, पूजा के लिये नहीं। जहां पूजा के लिये ग्रहण किया जाता है, वहां विकल्प नहीं होता है।

*उदा०–(कुष्) **कुष्यति पादः स्वयमेव। कुष्यते पादः स्वयमेव।** पांव स्वयं ही खुजला रहा है। (रज्) **रज्यति वस्त्रं स्वयमेव। रज्यते वस्त्रं स्वयमेव।** वस्त्र स्वयं ही रंगा जारहा है।*

सिद्धि–(१) कुष्यति/कुष्यते। यहां 'कुष निष्कर्षे' (क्र्या०प०) धातु से कर्मकर्तृवाच्य में इस सूत्र से प्राग्देशीय आचार्यों के मत में श्यन् प्रत्यय और परस्मैपद होता है। पाणिनिमुनि के मत में पूर्ववत् यक् और आत्मनेपद होता है।

(२) रज्यति/रज्यते। 'रञ्ज रागे' (दि०उ०) पूर्ववत्।

(३) प्राग्देशीय आचार्यों के मत में 'श्यन्' प्रत्यय 'यक्' प्रत्यय का अपवाद है और परस्मैपद होना आत्मनेपद का अपवाद है।

इति कर्मवद्भावप्रकरणम्।

अथ धातु-अधिकारः

(१) धातोः ।६१।

प०वि०-धातोः ५ ।१।

अर्थः-धातोरित्यधिकारोऽयम्, आ तृतीयाध्यायपरिसमाप्तेः। यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामस्तद् धातोरिति वेदितव्यम्। वक्ष्यति-**तव्यत्तव्यानीयरः** (३।१।९६) इति। धातोस्ते भवन्ति-कर्त्तव्यम्, करणीयम् इति।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) तृतीय अध्याय की समाप्ति तक 'धातोः' का अधिकार है। इससे आगे जो कहेंगे उसे 'धातु से' जानना चाहिये। कहेगा-तव्यत्तव्यानीयरः (३।१।९६)। ये तव्यत्, तव्य, अनीयर् प्रत्यय धातु से होते हैं। जैसे-कर्त्तव्यम्, करणीयम्।

सिद्धि-कर्त्तव्यम्, करणीयम्। इनकी सिद्धि यथास्थान (३।१।९६) की जायेगी।

उपपदसंज्ञा-

(२) तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ।६२।

प०वि०-तत्र अव्ययपदम्, उपपदम् १।१ सप्तमीस्थम् १।१।

स०-सप्तम्यां तिष्ठतीति सप्तमीस्थम् (उपपदसमासः)।

अन्वयः-तत्र सप्तमीस्थमुपपदम्।

अर्थः-तत्र=तस्मिन् धात्वधिकारे सप्तमीस्थं पदम् उपपदसंज्ञकं भवति।

उदा०- **'कर्मण्यण्'** (३।२।१) इति वक्ष्यति। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। नगरं करोतीति नगरकारः। इत्यादि।

आर्यभाषा-अर्थ-(तत्र) उस धातु-अधिकार में जो (सप्तमीस्थम्) सप्तमी विभक्ति से निर्दिष्ट पद है उसकी (उपपदम्) उपपद संज्ञा होती है।

उदा०-कर्मण्यण् (३।२।१)। कर्म उपपद हो तो धातु से 'अण्' प्रत्यय होता है। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। जो कुम्भ (घड़ा) बनाता है वह कुम्भकार होता है। नगरं करोतीति नगरकारः। जो नगर बनाता है वह नगरकार होता है।

सिद्धि-कुम्भकारः। कुम्भ+अम्+कृ+अण्। कुम्भ+कृ+अ। कुम्भ+कार्+अ। कुम्भकार+सु। कुम्भकारः।

यहां 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से 'कुम्भ' कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से अण्-प्रत्यय होता है। 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से नित्य उपपद-समास होता है। 'कर्मण्यण्' (३।२।१) में 'कर्मणि' पद सप्तमी विभक्ति से निर्दिष्ट है, अतः उसकी उपपद संज्ञा है।

कृत्-संज्ञा—

(३) कृदतिङ्।६३।

प०वि०-कृत् १।१ अतिङ् १।१।

स०-न तिङ् इति अतिङ् (नञ्तत्पुरुषः)।.

अनु०-तत्र इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्रातिङ् कृत्।

अर्थः-तत्र=तस्मिन् धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्-संज्ञको भवति।

उदा०-कर्तव्यम्। करणीयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(तत्र) उस धातु-अधिकार में (अतिङ्) तिङ् से भिन्न प्रत्यय की (कृत्) कृत् संज्ञा होती है।

उदा०-कर्तव्यम्। करणीयम्। करना चाहिये।

सिद्धि-कर्तव्यम्। कृ+तव्यत्। कृ+तव्य। कर्+तव्य। कर्तव्य+सु। कर्तव्यम्।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से कृत्-संज्ञक तव्यत् प्रत्यय होता है। कृत्प्रत्ययान्त 'कर्तव्य' शब्द की 'कृत्तद्धितसमासाश्च' (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है।

असरूपप्रत्ययविधिः—

(४) वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्।६४।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, असरूपः १।१ अस्त्रियाम् ७।१।

स०-समानं रूपं यस्य स सरूपः, न सरूप इति असरूपः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)। न स्त्री इति अस्त्री, तस्याम्-अस्त्रियाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-तत्र इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्रासरूपः प्रत्ययो वाऽस्त्रियाम्।

अर्थः-तत्र=तस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्ययो विकल्पेन बाधको भवति, स्त्री-अधिकारविहितं प्रत्ययं वर्जयित्वा।

'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) इति ण्वुल्-तृचौ प्रत्ययावुत्सर्गौ वर्तेते। **'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः'** (३।१।१३५) इति कः प्रत्ययस्तयोरपवादः। सोऽसरूपत्वाद् विकल्पेन बाधको भवति। विकल्पेन सोऽपि भवतीत्यर्थः।

उदा०-(ण्वुल्) विक्षेपकः। (तृच्) विक्षेप्ता। (क) विक्षिपः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तत्र) उस धातु-अधिकार में (असरूपः) असमानरूपवाला अपवादरूप प्रत्यय (वा) विकल्प से बाधक होता है (अस्त्रियाम्) स्त्री-अधिकार में विहित प्रत्यय को छोड़कर।

'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से धातुमात्र से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय का उत्सर्ग रूप में विधान किया गया है। 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' (३।१।१३५) से इगुपध धातु से उन दोनों का अपवाद 'क' प्रत्यय है। वह असरूप होने से उन दोनों का विकल्प से बाधक होता है अर्थात् विकल्प से वह भी हो जाता है।

उदा०-विक्षेपकः। यहां ण्वुल् प्रत्यय है। विक्षेप्ता। यहां तृच् प्रत्यय है। विक्षिपः। यहां 'क' प्रत्यय है।

सिद्धि-इनकी सिद्धि यथास्थान दर्शायी जायेगी।

अथ कृत्यप्रत्ययप्रकरणम्

✓ (१) कृत्याः।६५।

प०वि०-कृत्याः १।३।

अनु०-तत्र इत्यनुवर्तते।

अर्थः-तत्र=तस्मिन् धात्वधिकारे 'प्राङ् ण्वुलः' (३।१।१३३) ये प्रत्ययास्ते कृत्यसंज्ञका भवन्ति, इत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-यथास्थानमुदाहरिष्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(तत्र) उस धातु-अधिकार में 'ण्वुलतृचौ' (३।१।१३३) से पहले जो प्रत्यय कहे गये हैं उनकी (कृत्याः) कृत्य संज्ञा होती है, यह कृत्य संज्ञा का अधिकार है।

*उदा०-उदाहरण यथास्थान देख लेना। कृत्यसंज्ञक प्रत्यय 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' (३।४।७०) से भाववाच्य और कर्मवाच्य अर्थ में होते हैं, कर्तृवाच्य अर्थ में नहीं। **देवदत्तेन कर्तव्यम्।** यज्ञदत्तेन करणीयम्।*

तव्यदादयः-

(१) तव्यत्तव्यानीयरः।६६।

प०वि०-तव्यत्-तव्य-अनीयरः १।३।

स०-तव्यच्च तव्यश्च अनीयर् च ते-तव्यत्तव्यानीयरः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-धातोः परे तव्यत्तव्यानीयरः प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-(तव्यत्) कर्तव्यम्। (तव्य) कर्तव्यम्। (अनीयर्) करणीयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (तव्यत्तव्यानीयरः) तव्यत्, तव्य, अनीयर् प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-(तव्यत्) **कर्तव्यम्।** (तव्य) **कर्तव्यम्।** (अनीयर्) **करणीयम्।** करना चाहिये।*

सिद्धि-(१) कर्तव्यम्। कृ+तव्यत्। कर्+तव्य। कर्तव्य+सु। कर्तव्यम्।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से तव्यत् प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से कृ को गुण (कर्) हो जाता है। तव्यत् प्रत्यय के तित् होने से 'तित् स्वरितम्' (६।१।१७९) से स्वरित स्वर होता है।

(२) कर्तव्यम्। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से तव्य प्रत्यय है। तव्य प्रत्यय का 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से आद्युदात्त स्वर होता है।

(३) करणीयम्। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'अनीयर्' प्रत्यय है। 'कृ' धातु को पूर्ववत् गुण होता है। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।४।२) से णत्व होता है। अनीयर् प्रत्यय के 'रित्' होने से 'उपोत्तमं रिति' (६।१।२११) से अन्तिम स्वर से पूर्व स्वर उदात्त होता है।

यत्-

(१) अचो यत्।६७।

प०वि०-अचः ५।१ यत् १।१

अर्थः-अजन्ताद् धातोः **परो यत् प्रत्ययो** भवति। अच इत्युच्यमाने 'येन विधिस्तदन्तस्य' (१।१।७१) इत्यनेनाजन्तस्य ग्रहणं क्रियते।

उदा०-(गा) गेयम्। (पा) पेयम्। (चि) चेयम्। (जि) जेयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अचः) अच् जिसके अन्त में है उस (धातोः) धातु से (यत्) यत् प्रत्यय होता है। अच् कहने पर 'येन विधिस्तदन्तस्य' (१।१।७१) से अजन्त का ग्रहण किया जाता है।

उदा०-(गा) गेयम्। गाने योग्य। (पा) पेयम्। पीने योग्य। (चि) चेयम्। चयन करने योग्य। (जि) जेयम्। जीतने योग्य।

सिद्धि-(१) गेयम्। गा+यत्। गी+य। गे+य। गेय+सु। गेयम्।

यहां 'गै शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय होता है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से गै को आत्त्व, 'ईद् यति' (६।४।६५) से ईत्त्व और 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण होता है।

(२) 'पा पाने' (भ्वा०प०)। 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०)। 'जि जये' (भ्वा०प०) धातु से शेष पद सिद्ध करें।

विशेष-यत् प्रत्यय में तकार-अनुबन्ध 'यतोऽनावः' (६।१।२००) से आद्युदात्त स्वर के लिये है।

(२) पोरदुपधात्।९८।

प०वि०-पोः ५।१ अद्-उपधात् ५।१।

स०-अद् उपधा यस्य सोऽदुपधः, तस्मात्-अदुपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पोरदुपधाद् धातोर्यत्।

अर्थः-पवर्गान्ताद् अदुपधाद् धातोः परो यत् प्रत्ययो भवति। 'पुः' इत्युच्यमाने 'येन विधिस्तदन्तस्य' (१।१।७१) इत्यनेन पवर्गान्तस्य ग्रहणं क्रियते।

उदा०-(शप्) शप्यम्। (लभ्) लभ्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(पोः) पवर्ग जिसके अन्त में है और (अदुपधात्) अकार जिसकी उपधा में है उस (धातोः) धातु से (यत्) यत् प्रत्यय होता है। 'पु' कहने पर 'येन विधिस्तदन्तस्य' (१।१।७१) से पवर्गान्त का ग्रहण किया जाता है।

उदा०-(शप्) शप्यम्। शाप के योग्य। (लभ्) लभ्यम्। प्राप्त करने योग्य।

सिद्धि-(१) शप्यम्। शप्+यत्। शप्+य। शप्य+सु। शप्यम्।

यहां 'शप आक्रोशे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय होता है। यहां 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से ण्यत् प्रत्यय प्राप्त था।

(२) लभ्यम्। 'डुलभष् प्राप्तौ' (भ्वा०आ०) पूर्ववत्।

(३) शकिसहोश्च।९९।

प०वि०-शकि-सहो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

स०-शकिश्च सह् च तौ शकिसहौ, तयो:-शकिसहो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-शकिसहिभ्यां च धातुभ्यां यत्।

अर्थ:-शकिसहिभ्यां धातुभ्यां परो यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(शक्) शक्यम्। **(सह्)** सह्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(शकिसहो:) शक् और सह् (धातो:) धातु से परे (यत्) प्रत्यय होता है।

उदा०-(शक्) शक्यम्। हो सकने योग्य। (सह्) सह्यम्। सहन करने योग्य।

सिद्धि-(१) शक्यम्। 'शक्लृ शक्तौ' (स्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। यहां 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था। यहां 'शक विभाषितो मर्षणे' (दि०प०) धातु का भी ग्रहण किया जाता है।

(२) सह्यम्। 'षह मर्षणे' (भ्वा०आ०)। 'षह शक्यार्थे' (दि०प०)।

(४) गदमदचरयमश्चानुपसर्गे।१००।

प०वि०-गद-मद-चर-यम: ५।१ च अव्ययपदम्, अनुपसर्गे ७।१।

स०-गदश्च मदश्च चरश्च यम् च एतेषां समाहारो गदमदचरयम्, तस्माद्-गदमदचरयम: (समाहारद्वन्द्व:)। न विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्ग:, तस्मिन्-अनुपसर्गे (बहुव्रीहि:)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-अनुपसर्गे गदमदचरयमश्च धातोर्यत्।

अर्थ:-अनुपसर्गेभ्य:=उपसर्गरहितेभ्यो गदमदचरयमिभ्यो धातुभ्य: परो यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(गद्) गद्यम्। **(मद्)** मद्यम्। **(चर्)** चर्यम्। **(यम्)** यम्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गेभ्य:) उपसर्ग से रहित (गदमदचरयम:) गद्, मद्, चर्, यम् (धातो:) धातुओं से परे (यत्) यत् प्रत्यय होता है।

उदा०-(गद्) गद्यम्। बोलने योग्य। (मद्) मद्यम्। हर्ष के योग्य। (चर्) चर्यम्। गति और भक्षण के योग्य। (यम्) यम्यम्। उपराम के योग्य।

सिद्धि-(१) गद्यम्। 'गद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से ण्यत् प्रत्यय प्राप्त था।

(२) 'मदी हर्षे' (दि०प०)। 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) 'यमु उपरमे' (भ्वा०प०) धातु से शेष पद सिद्ध करें।

निपातनम् (यत्)–

(५) अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु।१०१।

प०वि०-अवद्य-पण्य-वर्याः १।३ गर्ह्य-पणितव्य-अनिरोधेषु ७।३।

स०-अवद्यं च पण्यं च वर्या च ताः-अवद्यपण्यवर्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। गर्ह्यं च पणितव्यं च अनिरोधश्च ते-गर्ह्यपणितव्या-निरोधाः, तेषु-गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-अवद्यपण्यवर्याः शब्दा यथासंख्यं गर्ह्यपणितव्यानिरोधेष्वर्थेषु यत्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-अवद्यम्=गर्ह्यम्। पापमित्यर्थः। पण्यम्=पणितव्यम्। पण्यः कम्बलः क्रेतव्य इत्यर्थः। पण्या गौः, क्रेतव्या इत्यर्थः। वर्या इति स्त्रियां निपात्यते, अनिरोधश्चेद् भवति। शतेन वर्या। सहस्रेण वर्या।

आर्यभाषा-अर्थ-(अवद्यपण्यवर्याः) अवद्य, पण्य, वर्या शब्द यथासंख्य (गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु) गर्ह्य, पणितव्य अनिरोध अर्थ में (यत्) यत्-प्रत्ययान्त निपातित किये जाते हैं।

उदा०-अवद्यम्=गर्ह्यम्। निन्दा के योग्य पापाचरण। पण्यम्=पणितव्यम्। पण्यः कम्बलः। खरीदने योग्य कम्बल। पण्या गौः। खरीदने योग्य गाय। वर्या, यह शब्द स्त्रीलिङ्ग में निपातित है, यदि अनिरोध अर्थ हो। अनिरोध=प्रतिबन्धरहित। (बिना रोक-टोक) शतेन वर्या। सहस्रेण वर्या। बहुत जनों से सेवन करने योग्य नारी (वेश्या)।

सिद्धि-(१) अवद्यम्। न+वद्+यत्। अ+वद्+य। अवद्य+सु। अवद्यम्।

यहां नञ्पूर्वक 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से गर्ह्य अर्थ में 'यत्' प्रत्यय निपातित है। 'वदः सुपि क्यप् च' (३।१।१०६) से क्यप् प्रत्यय प्राप्त था।

(२) पण्यम्। 'पण व्यवहारे' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र पणितव्य (क्रेतव्य) अर्थ में 'यत्' प्रत्यय निपातित है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से ण्यत् प्राप्त था।

(३) वर्या। 'वृङ् सम्भक्तौ' (स्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से अनिरोध (अप्रतिबन्ध) अर्थ में 'यत्' प्रत्यय निपातित है। 'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' (३।१।१०९) से क्यप् प्रत्यय प्राप्त था।

निपातनम् (यत्)–

(६) वह्यं करणम्।१०२।

प०वि०-वह्यम् १।१ करणम् १।१।

अनु०-'यत्' इत्यनुवर्तते।

अर्थः-करणे कारके वह्यमिति यत्-प्रत्ययान्तं निपात्यते।

उदा०-वहत्यनेन इति वह्यम्, शकटमित्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणम्) करण कारक अर्थ में (वह्यम्) वह्य शब्द यत्-प्रत्ययान्त निपातित है।

उदा०-वहत्यनेन इति वह्यम्, शकटमित्यर्थः। देशान्तर में पहुंचने का साधन शकट (गाड़ी) आदि।

सिद्धि-वह्यम्। 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में यत् प्रत्यय निपातित है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

निपातनम् (यत्)–

(७) अर्यः स्वामिवैश्ययोः।१०३।

प०वि०-अर्यः १।१ स्वामि-वैश्ययोः ७।२।

स०-स्वामी च वैश्यश्च तौ स्वामिवैश्यौ, तयोः-स्वामिवैश्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-स्वामिवैश्ययोरर्थयोरर्य इति यत्-प्रत्ययान्तो निपात्यते।

उदा०-अर्यः स्वामी। अर्यो वैश्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वामिवैश्ययोः) स्वामी और वैश्य अर्थ में (अर्यः) अर्य शब्द (यत्) यत्-प्रत्ययान्त निपातित है।

उदा०-अर्यः स्वामी। मालिक। अर्यो वैश्यः। व्यापारी।

सिद्धि-अर्यः। ऋ+यत्। अर्+य। अर्य+सु। अर्यः।

'ऋ गतौ' (जु०प०) धातु से इस सूत्र से स्वामी और वैश्य अर्थ में यत्-प्रत्यय निपातित है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से ण्यत् प्रत्यय प्राप्त था। स्वामी और वैश्य अर्थ से अन्यत्र 'ण्यत्' प्रत्यय होता है-आर्यो ब्राह्मणः।

निपातनम् (यत्)-

(८) उपसर्या काल्या प्रजने।१०४।

प०वि०-उपसर्या १।१ काल्या १।१ प्रजने ७।१। प्राप्तकाला= काल्या। **'तदस्य प्राप्तम्'** (५।१।१०३) इत्यनुवर्तमाने **'कालाद् यत्'** (५।३।१०६) इति कालशब्दाद् यत् प्रत्ययः। प्रथमगर्भग्रहणम्=प्रजनम्, तस्मिन्-प्रजने।

अर्थः-प्रजने=प्रथमगर्भग्रहणेऽर्थे उपसर्या इति यत्-प्रत्ययान्तो निपात्यते, प्रथमगर्भग्रहणे काल्या=प्राप्तकाला चेत् सा भवति।

उदा०-उपसर्या गौः। उपसर्या वडवा। गर्भाधानार्थं वृषभेण, अश्वेन वा उपगन्तुं योग्या, इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रजने) प्रथम गर्भग्रहण अर्थ में (उपसर्या) उपसर्या पद (यत्) यत् प्रत्ययान्त निपातित है, (काल्या) यदि उसका प्रथम गर्भग्रहण करने का समय आगया हो।

उदा०-उपसर्या गौः। वह गाय जिसका प्रथम गर्भग्रहण करने का समय आगया है। उपसर्या वडवा। वह घोड़ी जिसका प्रथम गर्भग्रहण करने का समय आगया है।

सिद्धि-उपसर्या। उप+सृ+यत्। उप+सर्+य। उपसर्य+टाप्। उपसर्या+सु। उपसर्या।

यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से प्रथम गर्भग्रहण काल में इस सूत्र से यत्-प्रत्यय निपातित है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

निपातनम् (यत्)-

(९) अजर्यं सङ्गतम्।१०५।

प०वि०-अजर्यम् १।१ सङ्गतम् १।१।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-संगते=संगमने कर्तरि कारकेऽर्थे 'अजर्यम्' इति यत्-प्रत्ययान्तं निपात्यते।

उदा०-न जीर्यतीति-अर्जयम्। अजर्यमार्यसङ्गतम्। अजर्यं नोऽस्तु सङ्गतम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सङ्गतम्) संगमन=संगति अर्थ में (अजर्यम्) अजर्य शब्द (यत्) यत्-प्रतययान्त निपातित है।

उदा०-न जीर्यतीति-अजर्यम्। जो जीर्ण नहीं होता है, वह 'अजर्य' कहाता है। अजर्यमार्यसङ्तम्। पुरानी न होनेवाली आर्यों की संगति। अजर्यं नोऽस्तु सङ्गतम्। हमारी संगति पुरानी न होनेवाली हो, सदा नयी रहे।

सिद्धि-(१) अजर्यम्। न+जॄ+यत्। अ+जर्+य। अजर्य+सु। अजर्यम्।

यहां नञ्पूर्वक 'जॄष् वयोहानौ' (दिवा०प०) धातु से संगत अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय निपातित है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से ण्यत् प्रत्यय प्राप्त था।

(२) सङ्गतम्। यहां 'नपुंसके भावे क्तः' (३।३।११४) से भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। सङ्गतम्=सङ्गमनम्।

यत्+क्यप्–

(१०) वदः सुपि क्यप् च।१०६।

प०वि०-वदः ५।१ सुपि ७।१ क्यप् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-यत्, निपातनपञ्चकमुल्लङ्घ्य **'अनुपसर्गे'** (३।१।१००) इति चानुवर्तति। अग्रिमसूत्राच्च 'भावे' इत्यनुकर्षणीयम्।

अन्वयः-अनुपसर्गे सुपि वदो धातोभवि यत् क्यप् च।

अर्थः-अनुपसर्गे=उपसर्गवर्जिते सुबन्ते उपपदे वदो धातोः परो भावेऽर्थे यत् क्यप् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(यत्) ब्रह्मवद्यम्। सत्यवद्यम्। (क्यप्) ब्रह्मोद्यम्। सत्योद्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गे) उपसर्ग को छोड़कर (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (वदः) वद् धातु से परे (भावे) भाव अर्थ में (यत्) यत् (च) और (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(यत्) ब्रह्मवद्यम्। ब्रह्म (विद) का कथन। सत्यवद्यम्। सत्य का कथन। (क्यप्) ब्रह्मोद्यम्। सत्योद्यम्। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) ब्रह्मवद्यम्। ब्रह्मन्+ङस्+वद्+यत्। ब्रह्म+वद्+य। ब्रह्मवद्य+सु। ब्रह्मवद्यम्।

यहां 'ब्रह्म' सुबन्त उपपद होने पर 'वद वक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भाव अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है। ऐसे ही-सत्यवद्यम्।

(२) ब्रह्मोद्यम्। ब्रह्मन्+ङस्+वद्+क्यप्। ब्रह्म+वद्+य। ब्रह्म+उ अ द्+य। ब्रह्म+उद्+य। ब्रह्मोद्य+सु। ब्रह्मोद्यम्।

यहां ब्रह्म सुबन्त उपपद होने पर पूर्वोक्त 'वद्' धातु से इस सूत्र से भाव अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है। क्यप् के कित् होने से 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से 'वद्' धातु को सम्प्रसारण, 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०४) से 'अ' को पूर्वरूप और 'आद्गुणः' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश होता है।

विशेष-क्यप् प्रत्यय में 'प्' अनुबन्ध 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त स्वर के लिये है।

क्यप्-

(१) भुवो भावे।१०७।

प०वि०-भुवः ५।१ भावे ७।१।

अनु०-अनुपसर्गे, सुपि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनुपसर्गे सुपि भुवो धातोर्भावे क्यप्।

अर्थः-अनुपसर्गे=उपसर्गवर्जिते सुबन्ते उपपदे भुवो धातोः परो भावेऽर्थे क्यप्-प्रत्ययो भवति।

उदा०(भू) ब्रह्मभूयं गतः। देवभूयं गतः। ब्रह्मभावं देवभावं वा प्राप्त इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गे) उपसर्ग को छोड़कर (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (भावे) भाव अर्थ में (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(भू) ब्रह्मभूयं गतः। ब्रह्मत्व को प्राप्त हुआ। देवभूयं गतः। देवत्व को प्राप्त हुआ।

सिद्धि-(१) ब्रह्मभूयम्। ब्रह्मन्+ङस्+भू+क्यप्। ब्रह्म+भू+य। ब्रह्मभूय+सु। ब्रह्मभूयम्।

यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'ब्रह्म' सुबन्त उपपद होने पर इस सूत्र से भाव अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है। क्यप् के कित् होने से 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है। ऐसे ही-देवभूयम्।

(२) हनस्त च।१०८।

प०वि०-हनः ५।१ त १।१ (लुप्तप्रथमा) च अव्ययपदम्।

अनु०-अनुपसर्गे सुपि क्यप् भावे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनुपसर्गे सुपि हनो धातोर्भावे क्यप्, तश्च।

अर्थः-अनुपसर्गे=उपसर्गवर्जिते सुबन्ते उपपदे हनो धातोः परो भावेऽर्थे क्यप् प्रत्ययो भवति, तकारश्चान्तादेशो भवति।

उदा०-ब्रह्मणो हननमिति ब्रह्महत्या। वृत्रस्य हननमिति वृत्रहत्या।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गे) उपसर्ग को छोड़कर (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (भावे) भाव अर्थ में (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है (च) और हन् को (त) तकार अन्तादेश होता है।

उदा०-ब्रह्मणो हननमिति ब्रह्महत्या। ब्रह्म का हनन। वेदाज्ञा का उल्लंघन। वृत्रस्य हननमिति वृत्रहत्या। वृत्र राक्षस का हनन (वध)। अविद्या-अन्धकार नाश।

सिद्धि-ब्रह्महत्या। ब्रह्मन्+ङस्+हन्+क्यप्। ब्रह्म+हन्+य। ब्रह्म+हत्+य। ब्रह्महत्य+टाप्। ब्रह्महत्या+सु। ब्रह्महत्या।

यहां ब्रह्म सुबन्त उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय और 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५१) से 'हन्' के अन्त्य 'न्' को 'त्' आदेश होता है। स्त्रीत्व विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।

क्यप्-

(३) एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्।१०९।

प०वि०-एति-स्तु-शास्-वृ-दृ-जुषः ५।१ क्यप् १।१।

स०-एतिश्च स्तुश्च शास् च वृश्च दृश्च जुष् च एतेषां समाहार एतिस्तुशास्वृदृजुष्, तस्मात्-एतिस्तुशास्वृदृजुषः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-एतिस्तुशास्वृदृजुषो धातोः क्यप्।

अर्थः-एतिस्तुशास्वृदृजुषिभ्यो धातुभ्यः परः क्यप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(एति=इण्) इत्यः। (स्तु) स्तुत्यः। (शास्) शिष्यः। (वृ) वृत्यः। (दृ) आदृत्यः। (जुष्) जुष्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(एतिस्तुशास्वृदृजुषः) एति=इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ, जुष् (धातोः) धातुओं से (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(एति=इण्) इत्यः। प्राप्ति के योग्य। (स्तु) स्तुत्यः। स्तुति के योग्य। (शास्) शिष्यः। शिक्षा करने योग्य। (वृ) वृत्यः। स्वीकार करने योग्य। (दृ) आदृत्यः। आदर करने योग्य। (जुष्) जुष्यः। प्रीति और सेवा करने योग्य।

सिद्धि-(१) इत्यः। यहां 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। क्यप् प्रत्यय के पित् कृत् होने से 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'इण्' धातु को 'तुक्' आगम होता है।

(२) 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०प०)। 'शासु अनुशिष्टौ' (अदा०आ०)। 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०)। 'दृङ् आदरे' (तु०आ०)। 'जुषी प्रतिसेवनयोः' (तु०आ०) धातुओं से शेष पद सिद्ध करें।

(३) क्यप् प्रत्यय की अनुवृत्ति होने पर भी फिर 'क्यप्' प्रत्यय का ग्रहण बाधक प्रत्यय के बाधन के लिये है। अतः 'ओरावश्यके' (३।१।१२५) से प्राप्त 'ण्यत्' प्रत्यय को बाधकर 'स्तु' धातु से 'क्यप्' प्रत्यय ही होता है-अवश्यस्तुत्यः।

(४) ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः।११०।

प०वि०-ऋदुपधात् ५।१ च अव्ययपदम् अक्लृपि-चृतेः ५।१।

स०-ऋत् उपधा यस्य स ऋदुपधः, तस्मात्-ऋदुपधात् (बहुव्रीहिः)। क्लृपिश्च चृतिश्च एतयोः समाहारः क्लृपिचृतिः, न क्लपिचृतिरिति अक्लृपिचृतिः, तस्मात्-अक्लृपिचृतेः (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ऋदुपधाच्च धातोः क्यप्, अक्लृपिचृतेः।

अर्थः-ऋकारोपधाद् धातोरपि परः क्यप् प्रत्ययो भवति, क्लृपिचृती धातू वर्जयित्वा।

उदा०-(वृत्) वृत्यम्। (वृध्) वृध्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ऋदुपधात्) ऋकार उपधावाली (धातोः) धातु से (च) भी परे (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है (अक्लृपिचृतेः) क्लृप् और चृत् धातु को छोड़कर।

उदा०-(वृत्) वृत्यम्। बरतने योग्य। (वृध्) वृध्यम्। बढ़ने योग्य।

सिद्धि-(१) वृत्यम्। 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) इस ऋकार उपधावाली धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'क्यप्' प्रत्यय के कित् होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

(२) वृध्यम्। 'वृधु वृद्धौ' (भ्वा०आ०) पूर्ववत्।

विशेष- 'कृपू सामर्थ्ये' (भ्वा०उ०) धातु के 'ऋ' के रेफांश को 'कृपो रो लः' (८।२।१८) से 'र' आदेश होने पर 'कृप्' धातु 'क्लृप्' बन जाती है। 'पूर्वत्रासिद्धम्' (८।२।१) से उसे असिद्ध मानने पर यह 'क्लृप्' धातु ऋकारोपध समझी जाती है-कृप्।

(५) ई च खनः। १११।

प०वि०-ई १।१ च अव्ययपदम्, खनः ५।१।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-खनो धातोः क्यप् ई च।

अर्थः-खनो धातोः परः क्यप् प्रत्ययो भवति, ईकारश्चान्तादेशो भवति।

उदा०-(खन्) खेयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(खनः) खन् (धातोः) धातु से परे (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है (च) और खन् को (ई) ईकार अन्तादेश होता है।

उदा०-(खन्) खेयम्। खोदने योग्य।

सिद्धि-खेयम्। खन्+क्यप्। ख ई+य। खे+य। खेय+सु। खेयम्।

यहां 'खनु अवदारणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय और 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५१) से 'खन्' के अन्त्य न् को 'ईकार' आदेश होता है। 'आद्गुणः' (६।१।८४) से गुणरूप एकादेश (ए) हो जाता है।

(६) भृञोऽसंज्ञायाम्।११२।

प०वि०-भृञः ५।१ असंज्ञायाम् ७।१।

स०-न संज्ञा इति असंज्ञा, तस्याम्-असंज्ञायाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-भृञो धातोः क्यप् असंज्ञायाम्।

अर्थः-भृञो धातोः परः क्यप् प्रत्ययो भवति, असंज्ञायां विषये।

उदा०-(भृञ्) भृत्यः कर्मकरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भृञः) भृञ् (धातोः) धातु से परे (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है (असंज्ञायाम्) संज्ञा विषय को छोड़कर।

उदा०-(भृञ्) भृत्यः कर्मकरः। नौकर।

सिद्धि-भृत्यः। भृ+क्यप्। भृ+तुक्+य। भृ+त्+य। भृत्य+सु। भृत्यः।

यहां 'भृञ् भरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से असंज्ञा विषय में 'क्यप्' प्रत्यय है। 'क्यप्' प्रत्यय के पित् होने से 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'भृ' को 'तुक्' आगम होता है।

(७) मृजेर्विभाषा।११३।

प०वि०-मृजेः ५।१ विभाषा १।१।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मृजेर्धातोर्विभाषा क्यप्।

अर्थः-मृजेर्धातोः परो विकल्पेन क्यप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(मृज्) परिमृज्यः (क्यप्)। परिमार्ग्यः (ण्यत्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(मृजेः) मृज् (धातोः) धातु से (विभाषा) विकल्प से (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है। पक्ष में ण्यत् हो जाता है।

उदा०-(मृज्) परिमृज्यः (क्यप्)। परिमार्ग्यः (ण्यत्)। परिशोधन करने योग्य।

सिद्धि-(१) परिमृज्यः। यहां परि उपसर्गपूर्वक 'मृजूष् शुद्धौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। क्यप् प्रत्यय के कित् होने से 'मृजेर्वृद्धिः' (७।२।११४) से प्राप्त वृद्धि का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है।

(२) परिमार्ग्यः। परि+मृज्+ण्यत्। परि+मृग्+य। परि+मार्ग्+य। परिमार्ग्य+सु। परिमार्ग्यः।

यहां परि उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'मृज्' धातु से इस सूत्र विकल्प पक्ष में 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय होता है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व और 'मृजेर्वृद्धिः' (७।२।११४) से 'मृज्' धातु को वृद्धि होती है।

(३) मृज् धातु के ऋदुपध होने से 'ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः' (३।१।११०) से नित्य 'क्यप्' प्रत्यय प्राप्त था, इस सूत्र से विकल्प विधान किया गया है।

निपातनम् (क्यप्)-

(८) राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः।११४।

प०वि०-राजसूय-सूर्य-मृषोद्य-रुच्य-कुप्य-कृष्टपच्य-अव्यथ्याः १।३।

स०-राजसूयश्च सूर्यश्च मृषोद्यं च रुच्यश्च कुप्यं च कृष्टपच्याश्च अव्यथ्यश्च ते-राजसूय०अव्यथ्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तति।

अर्थः-राजसूय-सूर्य-मृषोद्य-रुच्य-कुप्य-कृष्टपच्य-अव्यथ्याः शब्दाः क्यप्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-राजा सूयते यत्र स क्रतुः राजसूयः। सरति, सुवति वा सूर्यः। मृषोद्यम्। रोचतेऽसौ रुच्यः। कुप्यम्। कृष्टे पच्यते इति कृष्टपच्याः। न व्यथते इति अव्यथ्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(राजसूय०अव्यथ्याः) राजसूय, सूर्य, मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यथ्य शब्द (क्यप्) क्यप् प्रत्ययान्त निपातित हैं।

*उदा०-**राजसूयः**। वह यज्ञ जिसमें किसी को राजा बनाया जाता है। **सूर्यः**। सूरज। **मृषोद्यम्**। मिथ्या वचन। **रुच्यः**। सुन्दर। **कुप्यम्**। सोना और चांदी से भिन्न धन का नाम। **कृष्टपच्याः**। हल चलाई हुई भूमि में स्वयं पकनेवाली ओषधियां। **अव्यथ्यः**। व्यथित न होनेवाला।*

सिद्धि-(१) राजसूय। राजन्+सु+सुञ्+क्यप्। राजन्+सु+य। राज+सू+य। राजसूय+सु। राजसूयः।

यहां राजन् सुबन्त उपपद होने पर 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से क्यप्-प्रत्यय, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से प्राप्त 'तुक्' आगम का अभाव और सु को दीर्घत्व निपातन से होता है।

(१) {क} सूर्यः। सृ+क्यप्। सृ+य। सुर्+य। सूर्+य। सूर्य+सु। सूर्यः।

यहां 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय निपातित है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था। 'सृ' के 'ऋ' को निपातन से 'उत्व' होता है।

{ख} सूर्यः। सू+क्यप्। सू+रुट्+य। सू+र्+य। सूर्य+सु। सूर्यः।

यहां 'षू प्रेरणे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय निपातित है। 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था। 'सू' धातु को 'रुट्' आगम निपातन से होता है।

(३) मृषोद्यम्। मृषा+सु+वद्+क्यप्। मृषा+वद्+य। मृषा+उ अ द्+य। मृषा+उ द्+य। मृषोद्य+सु। मृषोद्यम्।

*यहां मृषा सुबन्त उपपद होने पर 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से नित्य 'क्यप्' प्रत्यय होता है। '**वदः सुपि क्यप् च**' (३।१।१०६) से विकल्प से 'क्यप्' प्रत्यय प्राप्त था। '**वचिस्वपियजादीनां किति**' (६।१।१५) से 'वद्' को **सम्प्रसारण** और '**सम्प्रसारणाच्च**' (६।१।१०४) से 'अ' को पूर्वरूप होता है।*

(४) रुच्यः। रुच्+क्यप्। रुच्+य। रुच्य+सु। रुच्यः।

यहां 'रुच् दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से कर्ता अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है। 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' अथवा 'तृच्' प्रत्यय प्राप्त था।

(५) कुप्यम्। गुप्+क्यप्। गुप्+य। कुप्+य। कुप्य+सु। कुप्यम्।

यहां 'गुप् गोपने' (भ्वा०प०) 'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है और निपातन से धातु के 'ग्' को 'क्' होता है।

(६) कृष्टपच्याः। कृष्ट+ङि+पच्+क्यप्। कृष्ट+पच्+य। कृष्टपच्य+जस्। कृष्टपच्याः।

यहां कृष्ट सुबन्त उपपद होने पर 'डुपचष् पाके' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से कर्मकर्ता अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है।

(७) अव्यथ्यः। न+व्यथ्+क्यप्। अ+व्यथ्+य। अव्यथ्य+सु। अव्यथ्यः।

यहां 'व्यथ भयसंचलनयोः' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से कर्ता अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है। 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' अथवा 'तृच्' प्रत्यय प्राप्त था।

निपातनम् (क्यप्)–

(६) भिद्योद्ध्यौ नदे।११५।

प०वि०-भिद्य-उद्ध्यौ १।२ नदे ७।१।

स०-भिद्यश्च उद्ध्यश्च तौ-भिद्योध्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-भिद्य-उद्ध्यौ शब्दौ क्यप्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते, नदेऽभिधेये।

उदा०-भिनत्ति कूलमिति भिद्यः (नदी)। उज्झत्युदकमिति उद्ध्यः (नदी)।

आर्यभाषा-अर्थ-(भिद्योद्ध्यौ) भिद्य और उद्ध्य शब्द (क्यप्) क्यप्-प्रत्ययान्त निपातित हैं (नदे) नदी अर्थ में।

उदा०-भिनत्ति कूलमिति भिद्यः। वह नदी जो किनारे को तोड़ती है। उज्झत्युदकमिति उद्ध्यः। वह नदी जो जल को छोड़ती है।

सिद्धि-(१) भिद्यः। भिद्+क्यप्। भिद्+य। भिद्य+सु। भिद्यः।

यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से कर्ता अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है। 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' अथवा 'तृच्' प्रत्यय प्राप्त था।

(२) उद्ध्यः। उज्झ्+क्यप्। उज्ध्+य। उद्ध्+य। उद्ध्य+सु। उद्ध्यः।

यहां 'उज्झ उत्सर्गे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से कर्ता अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ण्वुल्' अथवा 'तृच्' प्रत्यय प्राप्त था। निपातन से उज्झ् के झ् को ध् आदेश होता है। 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से ज् को जश् (द्) हो जाता है।

नदी-उद्ध्य का वर्तमान नाम 'उझ' है। यह जम्मू इलाके के जसरोटा जिले में होती हुई, कुछ दूर पंजाब में बहकर गुरदासपुर जिले में रावी के दाहिनी किनारे पर मिल गई है। उझ के लगभग १५ मील पच्छिम जम्मू प्रदेश से ही बई नाम की दूसरी नदी गुरदासपुर जिले में ही रावी में मिली है। यही प्राचीन भिद्य ज्ञात होती है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५२-५३)।

कवि कालिदास ने राम और लक्ष्मण की जोड़ी की उपमा भिद्य और उद्ध्य नदी से रघुवंश में दी है-

वीचिलोलभुजयोस्तयोर्गतं,
शैशवाच्चापलमप्यशोभत।
तोयदागम इवोद्ध्यभिद्ययो-
र्नामसदृशं विचेष्टितम्।। (११।८)

निपातनम् (क्यप्)-

(१०) पुष्यसिध्यौ नक्षत्रे।११६। X

प०वि०-पुष्य-सिध्यौ १।२ नक्षत्रे ७।१।

स०-पुष्यश्च सिध्यश्च तौ पुष्यसिध्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-पुष्यसिध्यौ शब्दौ क्यप्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते, नक्षत्रेऽभिधेये।

उदा०-पुष्यन्त्यर्था अस्मिन्निति-पुष्यः। सिध्यन्त्यर्था अस्मिन्निति-सिध्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पुष्यसिध्यौ) पुष्य और सिध्य शब्द (क्यप्) क्यप्-प्रत्ययान्त निपातित हैं (नक्षत्रे) नक्षत्र अर्थ में।

उदा०-पुष्यन्त्यर्था अस्मिन्निति-पुष्यः। वह नक्षत्र जिसमें पदार्थ पुष्ट होते हैं। सिध्यन्त्यर्था अस्मिन्निति-सिध्यः। वह नक्षत्र जिसमें अर्थ सिद्ध होते हैं।

सिद्धि-पुष्यः, सिध्यः। यहां 'पुष पुष्टौ' (दि०प०) तथा 'सिधु संराद्धौ' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से अधिकरण कारक में क्यप् प्रत्यय है। 'करणाधिकरणयोश्च' (३।३।११७) से ल्युट् प्रत्यय प्राप्त था।

विशेष-नक्षत्र-अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में एक नक्षत्र का नाम पुष्य है। सिध्य शब्द पुष्य नक्षत्र का पर्यायवाची है। पुष्य और सिध्य नक्षत्र को तिष्य भी कहते हैं। पुष्य नाम अधिक प्रसिद्ध है।

निपातनम् (क्यप्)-

(११) विपूयविनीयजित्या मुञ्जकल्कहलिषु।११७।

प०वि०-विपूय-विनीय-जित्याः १।३ मुञ्ज-कल्क-हलिषु ७।३।

स०-विपूयश्च विनीयश्च जित्यश्च ते-विपूयविनीयजित्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। मुञ्जश्च कल्कश्च हलिश्च ते-मुञ्जकल्कहलयः तेषु-मुञ्जकल्कहलिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-विपूय-विनीय-जित्याः शब्दा यथासंख्यं मुञ्ज-कल्क-हलिष्वर्थेषु क्यप्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-विपूयः=मुञ्जः। विनीयः=कल्कः। जित्यः=हलिः। बृहद् हलं हलिः, इति न्यासकारः। कृष्टसमीकरणार्थं स्थूलं काष्ठं हलिरित्युच्यते। इति पदमञ्जर्यां हरदत्तमिश्रः।

आर्यभाषा-अर्थ-(विपूयविनीयजित्याः) विपूय, विनीय, जित्य शब्द यथासंख्य (मुञ्जकल्कहलिषु) मुञ्ज, कल्क, हलि अर्थों में (क्यप्) क्यप्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

उदा०-विपूयः=मुञ्जः। कुशा (मूंज)। विनीयः=कल्कः। औषध आदि की गाध। जित्यः=हलिः। बड़ा हल। यह बल से वश में करने योग्य होने से जित्य कहाता है। ईख बोने के लिये हल के मुख के दोनों ओर गंडीरी बांधकर जो बड़ा हल बनाया जाता है, उसे 'हलि' कहते हैं।

सिद्धि-(१) विपूयः- यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

(२) विनीयः। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से क्यप् प्रत्यय है। पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

(३) जित्यः। यहां 'जि जये' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'क्यप्' प्रत्यय के पित् होने से 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'जि' धातु को 'तुक्' आगम होता है। 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

(१२) प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि।११८। ×

प०वि०-प्रति-अपिभ्याम् ५।२ ग्रहेः ५।१ छन्दसि ७।१।

स०-प्रतिश्च अपिश्च तौ प्रत्यपी, ताभ्याम्-प्रत्यपिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि प्रत्यपिभ्यां ग्रहेर्धातोः क्यप्।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रति-अपिपूर्वाद् ग्रहिधातोः परः क्यप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(प्रति) **मत्तस्य न प्रतिगृह्यम्** (तै०ब्रा० १।३।२।७)। **(अपि) तस्मान्नापिगृह्यम्** (का०सं० ३।१।११८)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (प्रत्यपिभ्याम्) प्रति और अपि उपसर्गपूर्वक (ग्रहेः) ग्रह (धातोः) धातु से परे (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(प्रति) मत्तस्य न प्रतिगृह्यम्। पागल की बात नहीं माननी चाहिये। तस्मान्नापिगृह्यम्। उस कारण से स्वीकार नहीं करना चाहिये।

सिद्धि-प्रतिगृह्यम्। यहां प्रति उपसर्गपूर्वक 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'क्यप्' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'ग्रहिज्यावयि०' (६।१।१६) से सम्प्रसारण होता है। 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादि समास होता है। ऐसे ही-अपिगृह्यम्।

(१३) पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च।११९। ×

प०वि०-पद-अस्वैरि-बाह्या-पक्ष्येषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-पदं च अस्वैरी च बाह्या च पक्ष्यश्च ते-पदास्वैरिबाह्यापक्ष्याः, तेषु-पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यप्, ग्रहेः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च ग्रहेर्धातोः क्यप्।

अर्थः-पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु चार्थेषु ग्रहि-धातोः परः क्यप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(पदम्)** प्रगृह्यं पदम्। यस्य प्रगृह्यसंज्ञा विहिता तत्। अवगृह्यं पदम्। यस्यावग्रहः क्रियते तत्। **(अस्वैरी)** अस्वैरी=परतन्त्रः।

गृह्यका इमे। गृहीतका इत्यर्थः। **(बाह्या)** ग्रामगृह्या सेना। ग्रामाद् बहिर्भूता इत्यर्थः। नगरगृह्या सेना। नगराद् बहिर्भूता इत्यर्थः। **(पक्ष्यः)** वासुदेवगृह्याः। कृष्णपक्षाश्रिता इत्यर्थः। अर्जुनगृह्याः। अर्जुनपक्षाश्रिता इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु) पद, अस्वैरी=परतन्त्र, बाह्या, पक्ष्य अर्थों में (ग्रहेः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(पदम्) प्रगृह्यं पदम्। वह पद जिसकी प्रगृह्य संज्ञा अष्टा० (१।१।११-१८) की गई है। अवगृह्यं पदम्। वह पद जिसका अवग्रह (विच्छेद) किया गया है। जैसे समास वाक्य में 'राज्ञः पुरुषः' में पदों का अवग्रह है। (अस्वैरी) गृह्यका इमे शुकाः। ये पञ्जर आदि के बन्धन से पराधीन बनाये हुये शुक आदि हैं। यहां 'अनुकम्पायाम्' (५।३।७६) से कन्-प्रत्यय है। (बाह्या) ग्रामगृह्या सेना। वह सेना जो गांव से बाहर होगई है। नगरगृह्या सेना। वह सेना जो शहर से बाहर होगई है। (पक्ष्य) वासुदेवगृह्याः। वासुदेव (कृष्ण) के पक्ष के लोग। अर्जुनगृह्याः। अर्जुन के पक्ष के लोग।

सिद्धि-प्रगृह्यम्। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से क्यप् प्रत्यय होता है। पूर्ववत् सम्प्रसारण और समास होता है। यहां ग्रह धातु का अर्थ असन्निकर्ष है। प्रगृह्य संज्ञा में स्वरों का सन्निकर्ष नहीं होता है। इसके सहाय से शेष पदों की सिद्धि समझ लेवें।

(१४) विभाषा कृवृषोः।१२०।

प०वि०-विभाषा १।१ कृ-वृषोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-कृश्च वृष् च तौ कृवृषौ, तयोः-कृवृषोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कृवृषिभ्यां धातुभ्यां विभाषा क्यप्।

अर्थः-कृवृषिभ्यां धातुभ्यां परो विकल्पेन क्यप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(कृ) कृत्यम् (क्यप्)। कार्यम् (ण्यत्)। **(वृष्)** वृष्यम् (क्यप्)। वर्ष्यम् (ण्यत्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(कृवृषोः) कृ और वृष् (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(कृ) कृत्यम्। कार्यम्। करने योग्य। (वृष्) वृष्यम्। वर्ष्यम्। वीर्य सेचन करने के योग्य। बल-वीर्य वर्धक। बरसने योग्य।

सिद्धि-(१) कृत्यम्। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'क्यप्' प्रत्यय के पित् होने से 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'कृ' को 'तुक्' आगम होता है। यहां 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से नित्य 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था, इससे विकल्प विधान किया गया है।

(२) कार्यम्। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से विकल्प पक्ष में 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है।

(३) वृष्यम्। यहां 'वृषु सेचने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'क्यप्' प्रत्यय के कित् होने से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च'(१।१।५) से प्रतिषेध होता है। 'ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः' (३।१।११०) से नित्य 'क्यप्' प्रत्यय प्राप्त था। इससे विकल्प विधान किया गया है।

(४) वर्ष्यम्। यहां पूर्वोक्त वृष् धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से विकल्प पक्ष में 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपध गुण होता है।

निपातनम् (क्यप्)-

(१५) युग्यं च पत्रे।१२१।

प०वि०-युग्यम् १।१ च अव्ययपदम्, पत्रे ७।१। पतति=गच्छत्यनेन इति पत्रम्, तस्मिन् पत्रे। पत्रम्=वाहनमित्यर्थः।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-पत्रेऽर्थे युग्यमिति पदं क्यप्-प्रत्ययान्तं निपात्यते।

उदा०-युग्यो गौः। युग्योऽश्वः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पत्रे) वाहन अर्थ में (युग्यम्) युग्य पद (क्यप्) क्यप्-प्रत्ययान्त निपातित है।

उदा०-युग्यो गौः। गाड़ी में जोड़ने योग्य बैल। युग्योऽश्वः। तांगे आदि में जोड़ने योग्य घोड़ा।

सिद्धि-युग्यः। यहां 'युजिर् योगे' (रुधा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है और निपातन से कुत्व होता है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

निपातनम् (ण्यत्)-

(१५) अमावस्यदन्यतरस्याम्।१२२।

प०वि०-अमावस्यत् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-अत्र तकारानुबन्धाद् ण्यत्-प्रत्ययोऽभिसम्बध्यते, न क्यप्।

अर्थः-अमावस्यदिति ण्यत्-प्रत्ययान्तं निपात्यते, तस्मिन् सति विकल्पेन वृद्धिर्भवति।

उदा०-अमा=सह वसतो यस्मिन् काले सूर्याचन्द्रमसाविति सा-अमावस्या, अमावास्या वा (तिथिः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अमावस्यत्) अमावस्यत् यह ण्यत्-प्रत्ययान्त निपातित है, 'ण्यत्' प्रत्यय होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से वृद्धि होती है। अमावस्यत् यहां तकार अनुबन्ध के संकेत से 'ण्यत्' प्रत्यय का ग्रहण किया जाता है, 'क्यप्' प्रत्यय का नहीं।

उदा०-अमावस्या, अमावास्या। जिस काल में सूर्य और चन्द्रमा अमा=साथ वस्=रहते हैं उस तिथि को अमावस्या तथा अमावास्या कहते हैं।

सिद्धि-(१) अमावस्या। यहां अमा उपपद होने पर 'वस् निवासे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है और 'अत उपधायाः' ((७।२।११६) से प्राप्त वृद्धि नहीं होती है।

(२)अमावास्या। यहां अमा उपपद होने पर पूर्वोक्त 'वस्' धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय है और विकल्प से 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से वृद्धि हो जाती है।

विशेष-सूत्र में 'त्' अनुबन्ध के संकेत से यहां 'ण्यत्' प्रत्यय होता है और 'तित् स्वरितम्' (६।१।१७९) से यहां स्वरित स्वर है।

(१६) छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि।१२३।

प०वि०-छन्दसि ७।१ निष्टर्क्य-देवहूय-प्रणीय-उन्नीय-उच्छिष्य-मर्य-स्तर्या-ध्वर्य-खन्य-खान्य-देवयज्या-आपृच्छ्य-प्रतिषीव्य-ब्रह्मवाद्य-भाव्य-स्ताव्य-उपचाय्यपृडानि १।३।

स०-निष्टर्क्यश्च देवहूयश्च प्रणीयश्च उन्नीयश्च उच्छिष्यश्च मर्यश्च स्तर्या च ध्वर्यश्च खन्यश्च खान्यश्च देवयज्या च आपृच्छ्यश्च प्रतिषीव्यश्च ब्रह्मवाद्यं च भाव्यं च स्ताव्यश्च उपचाय्यपृडं च तानि-निष्टर्क्य०उपचाय्यपृडानि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-छन्दसि विषये निष्टर्क्यादयः शब्दा निपात्यन्ते।

उदा०-(**निष्टर्क्यः**) निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः। देवहूयः। प्रणीयः। उन्नीयः। उच्छिष्यम्। मर्यः। स्तर्या। ध्वर्यः। खन्यः। खान्यः। देवयज्या।

आपृच्छ्यः। प्रतीषव्यः। ब्रह्मवाद्यम्। भाव्यम्। स्ताव्यः। उपचाय्यपृडम्। (सुवर्णम्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (निष्टर्क्य०उपचाय्यपृडानि) निष्टर्क्य, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय, उच्छिष्य, मर्य, स्तर्या, ध्वर्य, खन्य, खान्य, देवयज्या, आपृच्छ्य, प्रतिषीव्य, ब्रह्मवाद्य, भाव्य, स्ताव्य, उपचाय्यपृड शब्द निपातित हैं। जो यहां सूत्र से सिद्ध न हो उसे निपातन से सिद्ध समझें।

उदा०-ऊपर संस्कृत-भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) निष्टर्क्यः। यहां निस् उपसर्गपूर्वक 'कृती छेदने' (तु०प०) धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः' (३।१।११०) से 'क्यप्' प्रत्यय प्राप्त था। 'कर्त्' का आद्यन्तविपर्यय (तर्क्) होता है। 'निस्' के 'स्' को षत्व और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से टुत्व होता है।

(२) देवहूयः। यहां देव सुबन्त उपपद होने पर 'हु दानादनयोः' (जु०प०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय है, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से प्राप्त 'तुक्' आगम का अभाव है और 'हु' को दीर्घ हो जाता है।

(३) प्रणीयः। प्र-उपसर्गपूर्वक 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

(४) उन्नीयः। उत्-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'नी' धातु से पूर्ववत्।

(५) उच्छिष्यम्। उत्-उपसर्गपूर्वक 'शिष्लृ विशेषणे' (रु०प०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था। 'शश्छोऽटि' (८।४।६६) से 'श्' को 'छ्' और 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) से 'त्' को 'च्' होता है।

(६) मर्यः। 'मृङ् प्राणत्यागे' (तु०आ०) धातु से 'यत्' प्रत्यय है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

(७) स्तर्या। 'स्तृञ् आच्छादने' (स्वा०उ०) से 'यत्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था। यह निपातन स्त्रीलिङ्ग में ही है। अतः 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(८) ध्वर्यः। 'ध्वृ हूर्च्छने' (भ्वा०प०) धातु से 'यत्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

(९) खन्यः। 'खनु अवदारणे' (भ्वा०उ०) धातु से 'यत्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

(१०) खान्यः। पूर्वोक्त 'खन्' धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय है।

(११) देवयज्या। देव सुबंन्त उपपद होने पर 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से 'यत्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था। यह स्त्रीलिङ्ग में ही निपातन है। पूर्ववत् 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(१२) आपृच्छ्य:। यहां आङ्पूर्वक 'प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्' (तु०प०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'ग्रहिज्या०' (६।१।१६) से सम्प्रसारण होता है।

(१३) प्रतिषीव्य:। यहां प्रति-उपसर्गपूर्वक 'षीवु तन्तुसन्ताने' (दि०प०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था। निपातन से धातु को षत्व होता है।

(१४) ब्रह्मवाद्यम्। 'ब्रह्मन्' उपपद होने पर 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय है।

(१५) भाव्यम्। यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय और 'आव्' आदेश है। 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

(१६) स्ताव्य:। यहां 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय और 'आव्' आदेश है। पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

(१७) उपचाय्यपृडम्। यहां उप-उपसर्गपूर्वक 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय और 'आय्' आदेश है। यह 'पृड' उत्तरपद होने पर ही निपातन है।

ण्यत्–

(१) ऋहलोर्ण्यत्।१२४।

प०वि०–ऋ-हलो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ण्यत् १।१।

स०–ऋश्च हल् च तौ ऋहलौ, तयो:-ऋहलो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। व्यत्ययेन पञ्चम्यर्थे षष्ठी विभक्तिरेषा, "छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति।"

अन्वय:–ऋहल्भ्यां धातुभ्यां ण्यत्।

अर्थ:–ऋकारान्ताद् हलन्ताच्च धातो: परो ण्यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(ऋ) कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्। (हल्) वाक्यम्। पाक्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ऋहलो:) ऋकारान्त और हलन्त (धातो:) धातु से परे (ण्यत्) 'ण्यत्' प्रत्यय होता है।

उदा०-(ऋ) कार्यम्। करने योग्य। हार्यम्। हरण करने योग्य। धार्यम्। धारण करने योग्य। (हल्) वाक्यम्। कहने योग्य। पाक्यम्। पकाने योग्य।

सिद्धि-(१) कार्यम्। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' को वृद्धि (कार्) होती है। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) से-हार्यम्। 'धृञ् धारणे' (भ्वा०उ०) से-धार्यम्।

(२) वाक्यम्। वच्+ण्यत्। वच्+य। वाक्+य। वाक्य+सु। वाक्यम्।

यहां 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से वृद्धि और 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।२।५२) से 'च्' को 'क्' होता है। 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से-पाक्यम्।

विशेष-अनुबन्ध-ण्यत्-प्रत्यय में ण्कार अनुबन्ध 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से आदि वृद्धि के लिये तथा तकार अनुबन्ध 'तित् स्वरितम्' (६।१।१७९) से स्वरित स्वर के लिये है।

(२) ओरावश्यके।१२५।

प०वि०-ओ: ५।१ आवश्यके ७।१।

स०-अवश्यं भाव आवश्यकम्। **'द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च'** (५।१।१३२) इति वुञ् प्रत्ययः।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ओर्धातोर्ण्यदाऽऽवश्यके।

अर्थः-उकारान्ताद् धातोः परो ण्यत्-प्रत्ययो भवति, आवश्यकेऽर्थे गम्यमाने। यतोऽपवादः।

उदा०-(लू) लाव्यम्। (पू) पाव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ओः) उकारान्त (धातोः) धातु से परे (ण्यत्) ण्यत्-प्रत्यय होता है (आवश्यके) आवश्यक अर्थ में।

उदा०-(लू) लाव्यम्। अवश्य काटने योग्य। (पू) पाव्यम्। अवश्य शुद्ध-पवित्र करने योग्य।

सिद्धि-लाव्यम्। यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि और 'वान्तो यि प्रत्यये' (६।१।७६) से आव्-आदेश होता है। 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से-पाव्यम्। यहां 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है।

(३) आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च।१२६।

प०वि०-आसु-यु-वपि-रपि-लपि-त्रपि चमः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-आसुश्च युश्च वपिश्च रपिश्च लपिश्च त्रपिश्च चम् च एतेषां समाहार आसु०चम्, तस्माद्-आसु०चमः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आसु०चमश्च धातोर्ण्यत्।

अर्थः-आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमिभ्यो धातुभ्योऽपि परो ण्यत्प्रत्ययो भवति। यतोऽपवादः।

उदा०-(**आसु**) आसाव्यम्। (**यु**) याव्यम्। (**वपि**) वाप्यम्। (**रपि**) राप्यम्। (**लपि**) लाप्यम्। (**त्रपि**) त्राप्यम्। (**चमि**) आचाम्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(आसु०चमः) आसु, यु, वप्, रप्, लप्, त्रप्, चम् (धातोः) धातुओं से (च) भी परे (ण्यत्) ण्यत्-प्रत्यय होता है।

*उदा०-(आसु) **आसाव्यम्**। निचोड़ने योग्य। (यु) **याव्यम्**। मिश्रण-अमिश्रण करने योग्य। (वपि) **वाप्यम्**। बोने वा काटने योग्य। (रपि) **राप्यम्**। कहने योग्य। (लपि) **लाप्यम्**। कहने योग्य। (त्रपि) **त्राप्यम्**। लज्जा के योग्य। (चमि) **आचाम्यम्**। आचमन करने योग्य।*

*सिद्धि-(१) **आसाव्यम्**। यहां आङ्पूर्वक '**षुञ् अभिषवे**' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से वृद्धि और '**वान्तो यि प्रत्यये**' (६।१।७६) से आव्-आदेश है। यहां '**अचो यत्**' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था। '**यु मिश्रणेऽमिश्रणे च**' (अ०प०) धातु से-**याव्यम्**।*

*(२) **वाप्यम्**। यहां '**डुवप् बीजसन्ताने छेदने च**' (भ्वा०प०) से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। '**अत उपधायाः**' (७।२।११७) से वृद्धि होती है। यहां '**पोरदुपधात्**' (३।१।९८) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

*(३) '**रप-लप व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०), '**त्रपूष् लज्जायाम्**' (भ्वा०आ०), '**चमु अदने**' (भ्वा०प०) धातु से शेष पद सिद्ध करें।*

निपातनम् (ण्यत्)-

(४) आनाय्योऽनित्ये।१२७।

प०वि०-आनाय्यः १।१ अनित्ये ७।१।

स०-न नित्यमिति अनित्यम्, तस्मिन्-अनित्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-आनाय्यः शब्दो ण्यत्-प्रत्ययान्तो निपात्यतेऽनित्येऽर्थे गम्यमाने।

उदा०-आनाय्यो दक्षिणाग्निः।

आर्यभाषा-अर्थ-(आनाय्य) शब्द (ण्यत्) 'ण्यत्' प्रत्ययान्त निपातित है (अनित्ये) अनित्य अर्थ प्रकट होने पर।

उदा०-आनाय्यो दक्षिणाग्निः। सदा सुरक्षित न रहनेवाली दक्षिणाग्नि।

सिद्धि-आनाय्यः। आङ्+नी+ण्यत्। आ+नै+य। आ+नाय्+य। आनाय्य+सु। आनाय्यः।

यहां आङ्पूर्वक 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि होती है। निपातन से आय्-आदेश होता है। यहां 'अचो यत्' (३।१।९७) से से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

विशेष-दक्षिणाग्नि। (१) आनाय्य शब्द दक्षिणाग्नि के लिये रूढ़ है। श्रौत-यज्ञ की अग्नि अरणी मन्थन से उत्पन्न की जाती है। उसे यजमान गार्हपत्य नामक वेदी में गार्हपत्याग्नि के रूप में सुरक्षित रखता है। वहां आहवनीय और दक्षिणाग्नि नामक दो वेदियां और होती हैं। यजमान गार्हपत्य नामक वेदी में से अग्नि लेकर उन दोनों वेदियों में अग्नि का आधान करता है। जैसे ही आहुतियां समाप्त होती हैं, वे दोनों अग्नियां भी समाप्त हो जाती हैं, ये अनित्य हैं। किन्तु गोर्हपत्यग्नि सदा सुरक्षित रखी जाती है।

(२) एक ऐसी भी प्रथा है कि गार्हपत्याग्नि में से दक्षिणाग्नि न लेकर वैश्यकुल से अथवा चूल्हे से यह अग्नि लाई जाती है। अतः इसे आनाय्य कहते हैं।

निपातनम् (ण्यत्)-

(५) प्रणाय्योऽसम्मतौ।१२८।

प०वि०-प्रणाय्यः १।१ असम्मतौ ७।१।

स०-न विद्यते सम्मतिर्यस्मिन् सोऽसम्मतिः, तस्मिन्-असम्मतौ (बहुव्रीहिः)। सम्मतिः=पूजा। असम्मतिः=पूजाऽभावः।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-असम्मतावर्थे प्रणाय्यः शब्दो ण्यत्-प्रत्ययान्तो निपात्यते।

उदा०-प्रणाय्यश्चोरः। असम्मानित इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(असम्मतौ) असम्मान अर्थ में (प्रणाय्यः) प्रणाय्य शब्द (ण्यत्) ण्यत्-प्रत्ययान्त निपातित है।

उदा०-प्रणाय्यश्चोरः। असम्मानित चोर पुरुष।

सिद्धि-प्रणाय्यः। प्र+णी+ण्यत्। प्र+नै+य। प्र+नाय्+य। प्रणाय्य+सु। प्रणाय्यः।

यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि और आय्-आदेश निपातित है। 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

निपातनम् (ण्यत्)–

(६) पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाया मानहविर्निवास-सामिधेनीषु।१२६।

प०वि०-पाय्य-सान्नाय्य-निकाय्य-धाय्या: १।३। मानहवि:-निवास-सामिधेनीषु ७।३।

स०-पाय्यं च सान्नाय्यं च निकाय्यश्च धाय्या च ता:-पाय्यसान्नाय-निकाय्यधाय्या: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। मानं च हविश्च निवासश्च सामिधेनी च ता:-मानहविर्निवाससामिधेन्य:, तासु-मानहविर्निवाससामिधेनीषु (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थ:-पाय्यसान्नायनिकाय्यधाय्या: शब्दा यथासंख्यं मानहविर्निवास-सामिधेनीषु ण्यत्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-पाय्यम्=मानम्। सान्नाय्यम्=हविर्विशेष:। निकाय्य:=निवास:। धाय्या=सामिधेनी, ऋग्विशेष:।

आर्यभाषा-अर्थ-(पाय्य०धाय्या:) पाय्य, सान्नाय, निकाय्य, धाय्या शब्द यथासंख्य (मान०सामिधेनीषु) मान, हवि:, निवास, सामिधेनी अर्थों में (ण्यत्) ण्यत्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

*उदा०-**पाय्यम्=मानम्।** अन्न मांपने का पात्र मांप आदि। **सान्नाय्यम्=हवि:।** एक हवि विशेष। **निकाय्य:=निवास:।** आवास। **धाय्या=सामिधेनी,** ऋचा विशेष।*

सिद्धि-(१) पाय्यम्। मा+ण्यत्। पा+य। पा+युक्+य। पाय्य+सु। पाय्यम्।

यहां 'माङ्माने' (जु०आ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। धातु के 'म्' को 'प्' और 'युक्' आगम निपातित है। यहां 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

(२) सान्नाय्यम्। यहां सम्-पूर्वक 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'नी' को वृद्धि और आय्-आदेश निपातित है। निपातन से 'सम्' उपसर्ग को दीर्घ होता है।

(३) निकाय्य:। यहां नी-पूर्वक 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय, पूर्ववत् वृद्धि और आय्-आदेश निपातित है। 'चि' धातु के 'च्' को 'क्' निपातन से होता है।

(४) धाय्या। यहां 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय और युक् आगम निपातित है। स्त्रीत्व विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।

विशेष-(१) सान्नाय-दर्शेष्टि नामक यज्ञ में तीन आहुतियां होती हैं, पहली अग्निदेवता के लिये पुरोडाश की, दूसरी इन्द्र के लिये दधि की, तीसरी इन्द्र के लिये दूध की। दूसरी और तीसरी आहुति को साथ मिलाने से सान्नाय आहुति बनती है। पहले चमस में दही भरकर, उसके ऊपर दूध छोड़ने से 'सान्नाय' हवि बनती है। सम्+नी=सानना (मिलाना)।

(२) धाय्या-ऋग्वेद की निम्नलिखित ११ ऋचायें सामिधेनी कहाती हैं-

(१) प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या।
देवाञ्जिगाति सुम्नयुः।।

(२) ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम्।
श्रुष्टीवानं धितावानम्।।

(३) अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः।
अति द्वेषांसि तरेम।।

(४) समिध्यमानोऽध्वरे३ऽग्निः पावक ईड्यः।
शोचिष्केशस्तमीमहे।।

❋ (५) पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः।
अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट्।।

❋ (६) तं सबाधो सतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः।
आ चक्रुरग्निमूतये।।

❋ (७) होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया।
विदथानि प्रचोदयन्।।

❋ (८) वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते।
विप्रो यज्ञस्य साधनः।।

❋ (९) धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे।
दक्षस्य पितरं तना।।

❋ (१०) नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत।
अग्ने सुदीतिमुशिजम्।।

(११) अग्ने यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः।
विप्रा वाजैः समिन्धते।। (ऋ० ३।२७।१-११)।

इन ११ ऋचाओं में से पहली और ग्यारहवीं ऋचा को तीन-तीन बार पढ़ने से कुल १५ सामिधेनी ऋचायें हो जाती हैं। इनमें से चौथी ऋचा और ग्यारहवीं ऋचा के बीच की

६ ऋचायें 'धाय्या' नामक सामिधेनी कहाती हैं जिन्हें पुष्पचिह्न के द्वारा दर्शाया गया है। इन ऋचाओं से यज्ञ में समिधाओं का आधान किया जाता है इसलिये इन्हें धाय्या कहा जाता है। धीयते यया समिदिति-धाय्या।

निपातनम् (ण्यत्)-

(७) क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ।१३०।

प०वि०-क्रतौ ७।१ कुण्डपाय्य-संचाय्यौ १।२।

स०-कुण्डपाय्यश्च संचाय्यश्च तौ-कुण्डपाय्यसंचाय्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-क्रतावर्थे कुण्डपाय्य-संचाय्यौ शब्दौ ण्यत्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते।

उदा०-कुण्डेन पीयते यस्मिन् सोम इति कुण्डपाय्यः क्रतुः (यज्ञः)। संचीयते यस्मिन् सोम इति संचाय्यः क्रतुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रतौ) यज्ञ अर्थ में (कुण्डपाय्यसंचाय्यौ) कुण्डपाय्य और संचाय्य शब्द (ण्यत्) ण्यत्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

उदा०-कुण्डेन पीयते यस्मिन् सोम इति कुण्डपाय्यः क्रतुः (यज्ञः)। जिस सोमयाग में कुण्ड से सोमपान किया जाता है, उसे 'कुण्डपाय्य' कहते हैं। संचीयते यस्मिन् सोम इति संचाय्यः क्रतुः। जिस सोमयाग में सोम का संचय किया जाता है उसे 'संचाय्य' कहते हैं।

सिद्धि-(१) कुण्डपाय्यः। कुण्ड+टा+पा+ण्यत्। कुण्ड+पा+युक्+य। कुण्डपाय्य+सु। कुण्डपाय्यः।

यहां तृतीयान्त कुण्ड उपपद होने पर 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है और निपातन से 'युक्' आगम होता है।

(२) संचाय्यः। यहां सम्-पूर्वक 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि और आय्-आदेश निपातित है। यहां दोनों स्थानों पर 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय था।

निपातनम् (ण्यत्)-

(८) अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः।१३१।

प०वि०-अग्नौ ७।१ परिचाय्य-उपचाय्य-समूह्याः १।३।

स०-परिचाय्यश्च उपचाय्यश्च समूह्यश्च ते-परिचाय्य-उपचाय्य-समूह्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-अग्नावर्थे परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः शब्दा ण्यत्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-परिचाय्योऽग्निः। उपचाय्योऽग्निः। समूह्योऽग्निः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अग्नौ) अग्नि अर्थ में (परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः) परिचाय्य, उपचाय्य, समूह्य शब्द (ण्यत्) ण्यत्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

उदा०-परिचाय्योऽग्निः। परिचाय्य नामक यज्ञाग्नि। उपाचाय्योऽग्निः। उपचाय्य नामक यज्ञाग्नि। समूह्योऽग्निः। समूह्य नामक यज्ञाग्नि।

सिद्धि-(१) परिचाय्यः। यहां परि-पूर्वक 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (३।२।११५) से वृद्धि और निपातन से आय्-आदेश होता है। यहां 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

(२) उपचाय्यः। यहां उप-पूर्वक पूर्वोक्त 'चि' धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) समूह्यः। यज्ञ के अन्त में इधर-उधर बिखरी हुई अग्नि को बटोरकर राख आदि का ढेर लगा देना समूह्य अग्नि है। समूह=ढेर।

निपातनम् (यः)-

(६) चित्याग्निचित्ये च।१३२।

प०वि०-चित्य-अग्निचित्ये १।२ च अव्ययपदम्।

स०-चित्यश्च अग्निचित्या च ते-चित्याग्निचित्ये (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-चित्य-अग्निचित्ये शब्दौ य-प्रत्ययान्तौ निपात्येते।

उदा०-चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः। अग्निचयनमेव-अग्निचित्या।

आर्यभाषा-अर्थ-(चित्याग्निचित्ये) चित्य और अग्निचित्या शब्द य-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

उदा०-चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः। जिसका चयन किया जाता है उसे 'चित्य' अग्नि कहते हैं। अग्निचयनमेव-अग्निचित्या। अग्नि के चयन को 'अग्निचित्या' कहते हैं।

सिद्धि-चित्यः। यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से निपातन से 'य' प्रत्यय और तुक् आगम होता है। ऐसे ही अग्नि शब्द उपपद होने पर-अग्निचित्या।

विशेष-(१) चित्याग्नि-श्रौत यज्ञों के लिये उपयुक्त अग्नि को चित्याग्नि कहते हैं। यह गार्हपत्य अग्नि, दक्षिणाग्नि और आहवनीय अग्निभेद से तीन प्रकार की होती है।

(२) अग्निचित्या-यज्ञवेदी की भूमि पर श्येनचित् और कंकचित् आदि भेद से अनेक प्रकार के यज्ञकुण्ड बनाये जाते हैं। उनमें जो विशिष्ट प्रकार का अग्निचयन होता है उसे अग्निचित्या (अग्निचयन) कहते हैं।

इति कृत्यप्रत्ययप्रकरणम्।

अथ कृत्प्रत्ययप्रकरणम्

ण्वुल्+तृच्–

(१) ण्वुल्तृचौ।१३३।

प०वि०–ण्वुल्-तृचौ १।२।

स०–ण्वुल् च तृच् च तौ–ण्वुल्-तृचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः–सर्वेभ्यो धातुभ्यः परौ कर्तरि कारके ण्वुल्तृचौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–(ण्वुल्) कारकः। हारकः। (तृच्) कर्ता। हर्ता।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातुमात्र से परे कर्ता कारक में (ण्वुल्तृचौ) ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(ण्वुल्) कारकः। करनेवाला। हारकः। हरनेवाला। (तृच्) कर्ता। करनेवाला। हर्ता। हरनेवाला।

सिद्धि-(१) कारकः। कृ+ण्वुल्। कृ+वु। कार्+अक। कारक+सु। कारकः।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से कर्ता अर्थ में 'ण्वुल्' प्रत्यय है। 'ण्वुल्' प्रत्यय के 'णित्' होने से 'कृ' को 'अचो ञ्णिति' (७।२।११६) वृद्धि होती है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक-आदेश होता है। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-हारकः।

(२) कर्ता। कृ+तृच्। कृ+तृ। कर्+तृ। कर्तृ+सु। कर्ता।

यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से इस सूत्र से कर्ता अर्थ में 'तृच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' को गुण होता है। पूर्वोक्त 'हृ' धातु से-हर्ता।

विशेष-(१) अनुबन्ध। 'ण्वुल्' प्रत्यय में 'ण्' अनुबन्ध 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) आदि से अङ्ग की वृद्धि के लिये है। 'ल्' अनुबन्ध 'लिति' (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्व अच् के उदात्त-स्वर के लिये है। 'तृच्' में 'च्' अनुबन्ध 'चितः' (६।१।१५७) से अन्तोदात्त स्वर के लिये है।

(२) कृत्-ण्वुल् और तृच् प्रत्यय की 'कृदतिङ्' (३।१।९३) से 'कृत्' संज्ञा है। 'कर्तरि कृत्' (३।४।६७) से कृत्-संज्ञक प्रत्यय कर्ता कारक में होते हैं। ऐसे ही सर्वत्र समझें।

ल्युः+णिनिः+अच्–

(१) नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः।१३४।

प०वि०–नन्दि-ग्रहि-पचादिभ्यः ५।३ ल्यु-णिनि-अचः १।३।

स०–नन्दिश्च ग्रहिश्च पच् च ते–नन्दिग्रहिपचः। आदिश्च आदिश्च आदिश्च ते–आदयः। नन्दिग्रहिपचादयो येषां ते–नन्दिग्रहिपचादयः, तेभ्यः नन्दिग्रहिपचादिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। ल्युश्च णिनिश्च अच् च ते–ल्युणिन्यचः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः–नन्द्यादिभ्यो ग्रह्यादिभ्यः पचादिभ्यश्च धातुभ्यः परे यथासंख्यं ल्यु-णिनि-अचः प्रत्यया भवन्ति।

उदा०–**नन्द्यादिभ्यो ल्युः**–नन्दयतीति नन्दनः। वाशयतीति वाशनः। **ग्रह्यादिभ्यो णिनिः**–गृह्णातीति ग्राही। उत्सहते इति उत्साही। **पचादिभ्योऽच्**–पचतीति पचः। वदतीति वदः।

(१) **नन्द्यादयः**–वा० नन्दिवाशिमदिदूषिसाधिवर्द्धिशोभिरोचिभ्यो ण्यन्तेभ्यः संज्ञायाम्। नन्दनः। वाशनः। मदनः। दूषणः। साधनः। वर्धनः। शोभनः। रोचनः। वा०–सहितपिदमेः संज्ञायाम्। सहनः। तपनः। दमनः। जल्पनः। रमणः। दर्पणः। संक्रन्दनः। संकर्षणः। संहर्षणः। जनार्दनः। यवनः। मधुसूदनः। विभीषणः। लवणः। निपातनाण्णत्वम्। वित्तविनाशनः। कुलदमनः। शत्रुदमनः। इति नन्द्यादिः।

(२) **ग्रह्यादयः।** ग्रह। उत्सह। उद्वस। उद्भास। स्था। मन्त्र। सम्मर्द।। ग्राही। उत्साही। उद्वासी। उद्भासी। स्थायी। मन्त्री। सम्मर्दी। वा०–रक्षश्रुवसवपशां नौ। निरक्षी। निश्रावी। निवासी। निवायी। निशायी। याचिव्याहृसंव्याहृव्रजवदवसां प्रतिषिद्धानाम्। अयाची। अव्याहारी। असंव्याहारी। अव्राजी। अवादी। अवासी। वा०– अचामचित्तकर्तृकाणाम्। प्रतिषिद्धानामित्येव। अकारी। अहारी। अविनायी। वा०–विशयी विषयी देशे। विशयी। विषयी देशः। वा०–अभिभावी भूते। अभिभावी। अपराधी। उपरोधी। परिभावी। परिभवी। इति गृह्यादिः।

३. पचादयः। पच। वच। वप। वद। चल। शल। तप। पत। नदट्। भषट्। वस। गरट्। प्लवट्। चरट्। तरट्। चोरट्। ग्राहट्। जर। मर। क्षर। क्षम। सूदट्। देवट्। मोदट्। सेव। मेष। कोप। मेधा। नर्त। व्रण। दर्श। दंश। दम्भ। जारभरा। श्वपच। पचादिराकृतिगणः।

आर्यभाषा-अर्थ-(नन्दिग्रहिपचादिभ्यः) नन्द्यादि, ग्रह्यादि, पचादि धातुओं से परे यथासंख्य (ल्युणिन्यचः) ल्यु, णिनि, अच् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-नन्द्यादि से ल्यु-नन्दयतीति नन्दनः। आनन्दित करनेवाला। वाशयतीति वाशनः। चाहनेवाला। गृह्यादि से णिनि-गृह्णातीति ग्राही। ग्रहण करनेवाला। उत्सहते इति उत्साही। उत्साह करनेवाला। पचादि से अच्-पचतीति पचः। पकानेवाला। वदतीति वदः। बोलनेवाला।

सिद्धि-(१) नन्दनः। नन्द+णिच्+ल्यु। नन्द+अन। नन्दन+सु। नन्दनः।

यहां णिजन्त 'टुनदि समृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'ल्यु' प्रत्यय है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१९ से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश है। णिजन्त 'वश कान्तौ' (अदा०प०) धातु से-वाशनः।

(२) ग्राही। ग्रह्+णिनि। ग्राह्+इन्। गाहिन्+सु। ग्राही।

यहां 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। उत्पूर्वक 'षह मर्षणे' (भ्वा०आ०) धातु से-उत्साही।

(३) पचः। पच्+अच्। पच्+अ। पच+सु। पचः।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से-वदः।

विशेष-गण-नन्द्यादि, ग्रह्यादि और पचादि धातु पाणिनीय धातुपाठ में गणरूप में पठित नहीं हैं। इन्हें प्रत्ययविधि के लिये संकलित किया गया है।

कः-

(१) इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः।१३५।

प०वि०-इगुपध-ज्ञा-प्री-किरः ५।१ कः १।१।

स०-इक् उपधा स इगुपधः। इगुपधश्च ज्ञाश्च प्रीश्च कॄश्च एतेषां समाहार इगुपधज्ञाप्रीकॄ, तस्मात्-इगुपधज्ञाप्रीकिरः (बहुव्रीहिगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-इगुपधेभ्यो ज्ञाप्रीकॄभ्यश्च धातुभ्यः परः कः प्रत्ययो भवति।

उदा०-इगुपधः (क्षिप्)-विक्षिपतीति विक्षिपः। (लिख्) विलिखतीति विलिखः। (बुध्) बोधतीति बुधः। (ज्ञा) जानातीति ज्ञः। (प्री) प्रीणातीति प्रियः। (कॄ) किरतीति किरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(इगुपधज्ञाप्रीकिरः) इक् उपधावाली और ज्ञा, प्री, कॄ (धातोः) धातुओं से परे (कः) 'क' प्रत्यय होता है।

उदा०-इगुपधः (क्षिप्)-विक्षिपतीति विक्षिपः। फैंकनेवाला। (लिख्) विलिखतीति विलिखः। लिखनेवाला। (बुध्) बोधतीति बुधः। समझनेवाला। (ज्ञा) जानातीति ज्ञः। जाननेवाला। (प्री) प्रीणातीति प्रियः। तृप्त करनेवाला अथवा चाहनेवाला। (कॄ) किरतीति किरः। फैंकनेवाला।

सिद्धि-(१) विक्षिपः। यहां वि-पूर्वक 'क्षिप् प्रेरणे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है।

(२) विलिखः। 'लिख् अक्षरविन्यासे' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(३) बुधः। 'बुध अवगमने' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(४) ज्ञः। 'ज्ञा अवबोधने' (क्र्या०प०) से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'ज्ञा' के 'आ' का लोप हो जाता है।

(५) प्रियः। यहां 'प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'अचि श्नुधातुभ्रुवां०' (६।४।७७) से 'इयङ्' आदेश होता है।

(६) किरः। 'कॄ विक्षेपे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'ॠत इद् धातोः' (७।१।१००) से इकार आदेश होता है।

(२) आतश्चोपसर्गे।१३६।

प०वि०-आतः ५।१ च अव्ययपदम्, उपसर्गे ७।१।

अनु०-क इत्यनुवर्तति।

अन्वयः-उपसर्गे आतश्च धातोः कः।

अर्थः-उपसर्गे उपपदे आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः परः कः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(स्था) प्रतिष्ठते इति प्रस्थः। **(ग्ला)** सुष्ठु ग्लायतीति सुग्लः। **(म्ला)** सुष्ठु म्लायतीति सुम्लः।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपसर्गे) उपसर्ग उपपद होने पर (आतः) आकारान्त (धातोः) धातुओं से परे (कः) क प्रत्यय होता है।

उदा०-(स्था) प्रतिष्ठते इति प्रस्थः। प्रस्थान करनेवाला। (ग्ला) सुष्ठु ग्लायतीति सुग्लः। अधिक ग्लानिवाला। (म्ला) सुष्ठु म्लायतीति सुम्लः। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) प्रस्थः। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के कित् होने से 'आतो लोप इटि च' (६।४।६८) से 'स्था' के 'आ' का लोप हो जाता है।

(२) सुग्लः। सुम्लः। यहां सु-उपसर्गपूर्वक 'ग्लै म्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से ग्लै, म्लै को आत्त्व होता है। शेष पूर्ववत्।

शः-

(१) पाघ्राध्माधेट् दृशः शः।१३७।

प०वि०-पा-घ्रा-ध्मा-धेट्-दृशः ५।१ शः १।१।

स०-पाश्च घ्राश्च ध्माश्च धेट् च दृश् च एतेषां समाहारः पाघ्राध्माधेट्दृश्, तस्मात्-पाघ्राध्माधेट्दृशः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उपसर्गे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्गे पा०दृशो धातोः शः।

अर्थः-उपसर्गे उपपदे पाघ्राध्माधेट्दृशिभ्यो धातुभ्यः परः शः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पा) उत्पिबः। विपिबः। **(घ्रा)** उज्जिघ्रः। विजिघ्रः। **(ध्मा)** उद्धमः। विधमः। **(धेट्)** उद्धयः। विधयः। **(दृश्)** उत्पश्यः विपश्यः।

केचित् उपसर्गे इति नानुवर्तयन्ति, तेषां मते-**पिबः। जिघ्रः। धयः। पश्यः।**

आर्यभाषा-अर्थ-(उपसर्गे) उपसर्ग उपपद होने पर (पाघ्राध्माधेट्दृशः) पा, घ्रा, ध्मा, धेट्, दृश् (धातोः) धातुओं से परे (कः) क प्रत्यय होता है।

उदा०-(पा) उत्पिबः। उत्कृष्ट पान करनेवाला। विपिबः। विशिष्ट पान करनेवाला। (घ्रा) उज्जिघ्रः। उत्कृष्ट गन्ध ग्रहण करनेवाला। विजिघ्रः। विशिष्ट गन्ध ग्रहण करनेवाला। (ध्मा) उद्धमः। उत्कृष्ट शब्द/अग्निसंयोग करनेवाला। (धेट्) उद्धयः। उत्कृष्ट पान करनेवाला। विधयः। विशिष्ट पान करनेवाला। (दृश्) उत्पश्यः। उत्कृष्ट देखनेवाला। विपश्यः। विशिष्ट देखनेवाला।

कई आचार्य यहां 'उपसर्गे' की अनुवृत्ति नहीं करते हैं। उनके मत में-पिबः। जिघ्रः। धमः। धयः। पश्यः। पद बनते हैं।

सिद्धि-(१) उत्पिबः। उत्+पा+श। उत्+पा+शप्+अ। उत्+पिब+अ+अ। उत्+पिब+अ। उत्पिब+सु। उत्पिबः।

यहां उत्-उपसर्गपूर्वक 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'श' प्रत्यय। 'श' प्रत्यय के 'शित्' होने से 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' (३।४।११३) से इसकी सार्वधातुक संज्ञा है। सार्वधातुक परे होने पर 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय होता है। 'शप्' परे होने पर 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'पा' के स्थान में 'पिब' आदेश होता है। वि-उपसर्गपूर्वक 'पा' धातु से-विपिबः।

(२) उज्जिघ्रः। उद्धमः। उत्-उपसर्गपूर्वक 'घ्रा गन्धोपादाने' (भ्वा०प०) और 'ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः' (भ्वा०प०) से पूर्ववत् पद सिद्ध करें।

(३) उद्धयः। उत्-उपसर्गपूर्वक 'धेट् पाने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(४) उत्पश्यः। उत्-उपसर्गपूर्वक 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् कार्य है। 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'दृश्' के स्थान में 'पश्य' आदेश होता है।

(२) अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसाति-साहिभ्यश्च।१३८।

प०वि०-अनुपसर्गात् ५।१ लिम्प-विन्द-धारि-पारि-वेदि-उदेजि-चेति-साति-साहिभ्यः ५।३। च अव्ययपदम्।

स०-न विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गः, तस्मात्-अनुसर्गात् (बहुव्रीहिः)। लिम्पश्च विन्दश्च धारिश्च पारिश्च वेदिश्च उदेजिश्च चेतिश्च सातिश्च साहिश्च ते-लिम्प०साहयः, तेभ्यः-लिम्प०साहिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-श इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुपसर्गेभ्यो लिम्प०साहिभ्यश्च धातुभ्यः शः।

अर्थः-अनुपसर्गात्=उपसर्गरहितेभ्यो लिम्पादिभ्यश्च धातुभ्यः परः शः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**लिम्प**) लिम्पतीति लिम्पः। (**विन्द**) विन्दतीति विन्दः। (**धारि**) धारयतीति धारयः। (**पारि**) पारयतीति पारयः। (**विदि**) वेदयतीति वेदयः। (**उदेजि**) उदेजयतीति उदेजयः। (**चेति**) चेतयतीति चेतयः। (**साति**) सातयतीति सातयः। (**साहि**) साहयतीति साहयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गात्) उपसर्ग से रहित (लिम्प०साहयः) लिम्प, विन्द, धारि, पारि, वेदि, उदेजि, चेति, साति, सहि (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (शः) श-प्रत्यय होता है।

उदा०-(लम्प) लिम्पतीति लिम्पः। लिपाई करनेवाला। (विन्द) विन्दतीति विन्दः। लाभ=प्राप्त करनेवाला। (धारि) धारयतीति धारयः। धारण करनेवाला। (पारि) पारयतीति पारयः। पार करनेवाला। (विदि) वेदयतीति वेदयः। जनानेवाला। (उदेजि) उदेजयतीति उदेजयः। उत्कम्पित करनेवाला। (चेति) चेतयतीति चेतयः। सचेत करनेवाला। (साति) सातयतीति सातयः। सुख देनेवाला। (साहि) साहयतीति साहयः। सहन करनेवाला।

सिद्धि-(१) लिम्पः। लिप्+श। लिनुम्प्+शप्+अ। लि न् प्+अ+अ। लि ं प्+अ। लिम्प्+अ। लिम्प+सु। लिम्पः।

यहां 'लिप् उपदेहे' धातु से इस सूत्र से 'श' प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) 'शप्' प्रत्यय, 'शे मुचादीनाम्' (७।१।५९) से नुम् आगम, 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) न् को अनुस्वार, 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से परसवर्ण और 'अतो गुणे' (६।१।९७) से पररूप अकारादेश होता है।

(२) विन्दः। 'विद्लृ लाभे' (तु०उ०) से पूर्ववत्।

(३) 'धृञ् धारणे' (भ्वा०उ०)। 'पॄ पालनपूरणयोः' (जु०प०)। 'विद ज्ञाने' (अदा०प०), उत्पूर्वक। 'एजृ कम्पने' (भ्वा०आ०)। 'चिती संज्ञाने' (भ्वा०प०)। 'साति सुखे' (सौत्रधातु)। 'षह मर्षणे' (भ्वा०प०)। इन णिजन्त धातुओं से सम्बन्धित पद सिद्ध करें।

(३) ददातिदधात्योर्विभाषा।१३६।

प०वि०-ददाति-दधात्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)। विभाषा १।१।

स०-ददातिश्च दधातिश्च तौ ददातिदधाती। तयोः-ददातिदधात्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-श इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ददातिदधातिभ्यां धातुभ्यां विभाषा शः।

अर्थः-ददातिदधातिभ्यां धातुभ्यां परो विकल्पेन शः-प्रत्ययो भवति। णस्यापवादः।

उदा०-(दा) ददातीति ददः, दायो वा। (धा) दधातीति दधः, धायो वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(ददातिदधात्योः) दा और धा (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (शः) श-प्रत्यय होता है। यह ण-प्रत्यय का अपवाद है।

उदा०-(दा) ददातीति ददः, दायो वा। देनेवाला। (धा) दधातीति दधः, धायो वा। धारण-पोषण करनेवाला।

सिद्धि-(१) ददः। दा+श। दा+शप्+अ। दा+०+अ। दा दा+अ। द द्+अ। दद+सु। ददः।

यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'श' प्रत्यय, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७२) से 'शप्' को 'श्लु', 'श्लौ' (६।१।१०) से 'दा' धातु को द्वित्व, 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व, 'श्नाभ्यस्तयोरातः' (६।४।११२) से 'दा' के 'आ' का लोप होता है।

(२) दायः। दा+ण। दा+युक्+अ। दा+य्+अ। दाय+सु। दायः।

यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से विकल्प पक्ष में 'श्याद्व्यधा०' (३।१।१४१) से 'ण' प्रत्यय है। 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।

(३) दधः, धायः। 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से पूर्ववत्।

णः-

(१) ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः।१४०।

प०वि०-ज्वलिति-कसन्तेभ्यः १।१ णः १।१।

स०-ज्वल् इतिः (आदिः) येषां ते ज्वलितयः। कस् अन्ते येषां ते कसन्ताः। ज्वलितयश्च ते कसन्ता इति ज्वलितिकसन्ताः, तेभ्यः-ज्वलितिकसन्तेभ्यः (बहुव्रीहिगर्भितकर्मधारयः) इतिशब्दोऽत्रादिपर्यायः।

अनु०-विभाषा इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ज्वलितिकसन्तेभ्यो धातुभ्यो विभाषा णः।

अर्थः-ज्वलादिभ्यः कसन्तेभ्यो धातुभ्यः परो विकल्पेन णः प्रत्ययो भवति। अचोऽपवादः।

उदा०-(ज्वल्) ज्वालः, ज्वलः। (चल्) चालः, चलः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ज्वलितिकसन्तेभ्यः) ज्वल् जिनके आदि में है और कस् जिनके अन्त में है उन (धातोः) धातुओं से (विभाषा) विकल्प से (णः) ण-प्रत्यय होता है। यह अच् प्रत्यय का अपवाद है।

उदा०-(ज्वल्) ज्वालः, ज्वलः। जलनेवाला। (चल्) चालः, चलः। चलनेवाला।

सिद्धि-(१) ज्वालः। ज्वल्+ण। ज्वाल्+अ। ज्वाल्+अ। ज्वाल+सु। ज्वालः।

यहां 'ज्वल् दीप्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधा-वृद्धि होती है।

(२) ज्वलः। यहां पूर्वोक्त ज्वल धातु से विकल्प पक्ष में 'नन्दिग्रहि०' (३।१।१३४) से 'अच्' प्रत्यय है।

(३) चालः। चलः। 'चल गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

विशेष-ज्वलादि। 'ज्वल दीप्तौ' से लेकर 'कस गतौ' पर्यन्त धातु पाणिनीय धातुपाठ के भ्वादिगण में देख लेवें।

(२) श्याऽऽद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिष-श्वसश्च।१४१।

प०वि०- श्या-आद्-व्यध-आस्रु-संस्रु-अतीण्-अवसा-अवसा-अवहृ-लिह-श्लिष-श्वसः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-श्याश्च आच्च व्यधश्च आस्रुश्च संस्रुश्च अतीण् च अवसाश्च अवहृश्च लिहश्च श्लिषश्च श्वस् च एतेषां समाहारः श्या०श्वस्, तस्मात्-श्या०श्वसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-ण इत्यनुवतति।

अन्वयः-श्याऽऽद०श्वसश्च धातोर्णः।

अर्थः-श्याऽऽद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसिभ्यो धातुभ्यः परोऽपि णः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(श्या) अवश्यायः। प्रतिश्यायः। (आत्) दायः। धायः। (व्यध्) व्याधः। (आस्रु) आस्रावः। (संस्रु) संस्रावः। (अतीण्) अत्यायः।

(अवसाः) अवसायः। (अवहृ) अवहारः। (लिह्) लेहः। (श्लिष) श्लेषः। (श्वस्) श्वासः।

आर्यभाषा-अर्थ-(श्याऽऽद्०श्वसः) श्या, आकारान्त धातु, व्यध, आस्रु, संस्रु, अतीण्, अवसा, अवहृ, लिह, श्लिष, श्वस् (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (णः) ण-प्रत्यय होता है।

उदा०-(श्या) अवश्यायः। नीचे की ओर गतिवाला (ओस)। प्रतिश्यायः। प्रतिकूल गतिवाला (जुकाम)। (आत्) दा-दायः। देनेवाला। (धा) धायः। धारण-पोषण करनेवाला। (व्यध) व्याधः। ताडना करनेवाला (शिकारी)। (आस्रु) आस्रावः। सब ओर बहनेवाला। मूत्रातिसार, प्रमेह, संग्रहणी रोग। (संस्रु) संस्रावः। मिलकर बहनेवाला। अत्यायः। अतिक्रमण करनेवाला। (अवसा) अवसायः। अवसान करनेवाला। (अवहृ) अवहारः। अवहरण करनेवाला चोर। (लिह) लेहः। चाटनेवाला। (श्लिष्) श्लेषः। आलिङ्गन करनेवाला। (श्वस्) श्वासः। प्राण लेनेवाला, प्राणी।

सिद्धि-(१) अवश्यायः। यहां अवपूर्वक 'श्यङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से ण-प्रत्यय है। 'आतो युक् चिण् कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है। यहां 'आतश्चोपसर्गे' (३।१।१३६) से 'क' प्रत्यय प्राप्त था। उसे हटाने के लिये 'ण' प्रत्यय का विधान किया गया है। प्रति-पूर्वक श्या धातु से-प्रतिश्यायः।

(२) दायः। धायः। इनकी सिद्धि ३।१।१३९ में देख लेवें।

(३) व्याधः। 'व्यध ताडने' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधा वृद्धि होती है।

(४) आस्रावः। यहां आङ्पूर्वक 'स्रु गतौ' (भ्वा०प०) से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि होती है। सम्पूर्वक 'स्रु गतौ' (भ्वा०प०) धातु से-संस्रावः।

(५) अत्यायः। अतिपूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और पूर्ववत् वृद्धि होती है।

(६) अवसायः। अवपूर्वक 'षोऽन्तकर्मणि' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय, 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से 'आत्' आदेश और 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।

(७) अवहारः। अवपूर्वक 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और पूर्ववत् वृद्धि होती है।

(८) लेहः। 'लिह आस्वादने' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से गुण होता है।

(९) श्लेषः। 'श्लिष आलिङ्गने' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।

(१०) श्वासः। 'श्वस प्राणने' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

(३) दुन्योरनुपसर्गे।१४२।

प०वि०-दुन्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) अनुपसर्गे ७।१।

स०-दुश्च नीश्च तौ दुन्यौ, तयोः-दुन्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गः, तस्मिन्-अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ण इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुपसर्गे दुनीभ्यां धातुभ्यां णः।

अर्थः-अनुपसर्गे उपपदे दुनीभ्यां धातुभ्यां परो णः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(दु) दुनोतीति दावः। (नी) नयतीति नायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गे) उपसर्ग उपपद न होने पर (दुन्योः) 'दु' और 'नी' (धातोः) धातु से परे (णः) ण-प्रत्यय होता है।

उदा०-(दु) दुनोतीति दावः। जङ्गल। दावानल नामक अग्नि। (नी) नयतीति नायः। देशान्तर में ले जानेवाला नायक।

सिद्धि-दावः। नावः। 'टुदु उपतापे' (स्वा०प०) और 'णीञ् प्रापणे' ((भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि होती है।

(४) विभाषा ग्रहः।१४३।

प०वि०-विभाषा १।१ ग्रहः ५।१।

अनु०-ण इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ग्रहो धातोर्विभाषा णः।

अर्थः-ग्रहो धातोः परो विकल्पेन णः-प्रत्ययो भवति। पक्षेऽच् प्रत्यये भवति।

उदा०-(ग्रह्) ग्राहः। ग्रहः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ग्रहः) ग्रह धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (णः) प्रत्यय होता है। विकल्प पक्ष में अच्-प्रत्यय होता है।

उदा०-(ग्रह्) ग्राहः । पकड़नेवाला जलचर (मगरमच्छ)। ग्रहः । नक्षत्र । नौ ग्रह ।

सिद्धि-ग्राहः, ग्रहः । 'ग्रह उपादाने' (क्रया०उ०) धातु से इस सूत्र से जलचर (मगरमच्छ) अर्थ में ण-प्रत्यय होता है-ग्राहः । पूर्वोक्त ग्रह धातु से नक्षत्र अर्थ में 'नन्दिग्रहिपचादिभ्य०' (३।१।१३४) से नक्षत्र अर्थ में अच्-प्रत्यय होता है-ग्रहः ।

विशेष-(१) नवग्रह-सोम, मङ्गल, बुध, शुक्र, शनि, रवि, राहु, केतु ये नौ ग्रह हैं।

(२) व्यवस्थित विभाषा-यह व्यवस्थित विभाषा है। इससे जलचर अर्थ में 'ण' प्रत्यय और नक्षत्र अर्थ में 'अच्' प्रत्यय होता है।

कः-

(१) गेहे कः ।१४४।

प०वि०-गेहे ७।१ कः १।१।

अनु०-ग्रह इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ग्रहो धातोः को गेहे।

अर्थः-ग्रहो धातोः परः कः प्रत्ययो भवति, गेहे कर्तरि।

उदा०-(गह्) गृह्णातीति गृहं वेश्म। तत्रावस्थानात्-ग्रह्णन्तीति गृहा दारा इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (कः) क-प्रत्यय होता है (गेहे) यदि उस ग्रह् धातु का कर्ता गेह=घर हो।

उदा०-(ग्रह्) ग्रह्णातीति गृहम् । जो व्यक्ति को ग्रहण करता है=पकड़ लेता है उसे 'गृहम्' कहते हैं। गेह=घर में रहने से दारा भी 'गृहम्' कहाती हैं। ये भी व्यक्ति को पकड़ लेती हैं, जाने नहीं देती।

सिद्धि-गृहम् । ग्रह्+क । गृ अ ह्+अ । गृह्+अ । गृह+सु । गृहम् । 'ग्रह उपादाने' (क्रया०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'ग्रहिज्यावयि०' (६।१।१६) से 'ग्रह्' को सम्प्रसारण (ऋ), 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०४) से 'अ' को पूर्वरूप होता है।

ष्वुन्-

(१) शिल्पिनि ष्वुन् ।१४५।

प०वि०-शिल्पिनि ७।१ ष्वुन् १।१।

स०-शिल्पमस्यास्तीति शिल्पी, तस्मिन्-शिल्पिनि (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-ग्रह इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ग्रहो धातोः ष्वुन् शिल्पिनि।

अर्थः-ग्रहो धातोः परः ष्वुन् प्रत्ययो भवति, शिल्पिनि कर्तरि सति।

उदा-(नृत्) नृत्यतीति नर्तकः। (खन्) खनतीति खनकः। (रञ्ज) रज्यतीति रजकः। स्त्रियाम्-नर्तकी। खनकी। रजकी।

आर्यभाषा-अर्थ-(ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (ष्वुन्) ष्वुन प्रत्यय होता है (शिल्पिनि) यदि सम्बन्धित धातु का कर्ता शिल्पी हो।

उदा०-(नृत्) नृत्यतीति नर्तकः। नाचनेवाला-नट। (खन्) खनतीति खनकः। शरीर के अंग पर नाम आदि खिननेवाला। (रञ्ज्) रज्यतीति रजकः। कपड़े रंगनेवाला रंगरेज। स्त्रीलिङ्ग में-नर्तकी। खनकी। रजकी।

सिद्धि-(१) नर्तकः। 'नृती गात्रविक्षेपे' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'ष्वुन्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपध गुण होता है।

(२) खनकः। 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) रजकः। 'रञ्ज रागे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्। 'वा०-रञ्जेरनुनासिकलोपश्च' (३।१।१४५) से 'रञ्ज' के अनुनासिक का लोप होता है।

(४) नर्तकी। ष्वुन् प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीलिङ्ग में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-खनकी, रजकी।

थकन्-

(१) गस्थकन्।१४६।

प०वि०-गः ५।१ थकन् १।१।

अनु०-शिल्पिनि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-गो धातोस्थकन् शिल्पिनि।

अर्थः-गा-धातोः परस्थकन् प्रत्ययो भवति, शिल्पिनि कर्तरि सति।

उदा०-(गा) गायतीति गाथकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(गः) गा (धातोः) धातु से परे (थकन्) थकन् प्रत्यय होता है (शिल्पिनि) यदि 'गा' धातु का कर्ता शिल्पी हो।

उदा०-(गा) गायतीति गाथकः। गानेवाला, गवैय्या।

सिद्धि-गाथकः। 'गै शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'थकन्' प्रत्यय है। 'थकन्' प्रत्यय में 'न्' अनुबन्ध 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर के लिये है।

ण्युट्–

(१) ण्युट् च।१४७।

प०वि०–ण्युट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–शिल्पिनि, ग इति चानुवर्तते।

अन्वयः–गो धातोर्ण्युट् च शिल्पिनि।

अर्थः–गा-धातोः परो ण्युट्-प्रत्ययोऽपि भवति, शिल्पिनि कर्तरि सति।

उदा०–(गा) गायतीति गायनः। स्त्रियाम्-गायनी।

आर्यभाषा-अर्थ-(गः) गा (धातोः) धातु से परे (ण्युट्) ण्युट् प्रत्यय (च) भी होता है (शिल्पिनि) यदि 'गा' धातु का कर्ता शिल्पी हो।

उदा०-(गा) गायतीति गायनः। गानेवाला। स्त्री हो तो-गायनी। गानेवाली।

सिद्धि-(१) गायनः। 'गै शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्युट्' प्रत्यय है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४५) से 'गै' धातु को आत्त्व, 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'ण्युट्' के 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश है।

(२) गायनी। 'ण्युट्' प्रत्यय के टित् होने से 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

(२) हश्च व्रीहिकालयोः।१४८।

प०वि०–हः ५।१ च अव्ययपदम्, व्रीहि-कालयोः ७।२।

स०–व्रीहिश्च कालश्च तौ व्रीहिकालौ, तयोः-व्रीहिकालयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ण्युट् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–हश्च धातोर्ण्युट् व्रीहिकालयोः।

अर्थः–हा-धातोः परोऽपि ण्युट्प्रत्ययो भवति, व्रीहौ काले च कर्तरि सति।

उदा०–(हा) जहत्युदकम् इति हायनाः। हायना नाम व्रीहयः। जाङ्गलदेशोद्भवाः। जिहीते=गच्छति पदार्थानिति-हायनः संवत्सरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(हः) हां (धातोः) धातु से परे (च) भी (ण्युट्) ण्युट् प्रत्यय होता है। (व्रीहिकालयोः) यदि 'हा' धातु का कर्ता व्रीहि=चावल और काल हो।

उदा०-(हा) जहत्युदकमिति हायना:। जो जल को छोड़ देते हैं वे जंगली चावल। जिहीते=गच्छति पदार्थानिति हायन: संवत्सर:। जो सब पदार्थों को परिमापक भाव से व्याप्त करता है वह संवत्सर (वर्ष)। यह पदार्थ इतने वर्ष का होगया है।

सिद्धि-हायन:। 'ओहाक् त्यागे' (जु०प०) 'ओहाङ् गतौ' (जु०आ०) आत्मनेपद धातु से इस सूत्र से 'ण्युट्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'ण्युट्' के 'यु' को 'अन' आदेश होता है। 'आतो युक् चिण्कृतो:' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।

वुन्–

(१) प्रुसृल्व: समभिहारे वुन्।१४६।

प०वि०-प्रु-सृ-ल्व: ५।१ समभिहारे ७।१ वुन् १।१।

अन्वय:-प्रुसृल्वो धातोर्वुन् समभिहारे।

अर्थ:-प्रुसृलूभ्यो धातुभ्य: परो वुन् प्रत्ययो भवति, समभिहारे कर्तरि सति।

उदा०-(प्रु) प्रवते इति प्रवक:। (सृ) सरतीति सरक:। (लू) लुनातीति लवक:।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रुसृल्व:) प्रु, सृ, लू (धातो:) धातुओं से परे (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (समभिहारे) यदि 'प्रु' आदि धातुओं का कर्ता समभिहार=साधुकारी हो। उन क्रियाओं को ठीक-ठीक करनेवाला हो।

उदा०-(प्रु) प्रवते इति प्रवक:। अच्छे प्रकार कूदनेवाला। (सृ) सरतीति सरक:। अच्छे प्रकार सरकनेवाला सर्प आदि। (लू) लुनातीति लवक:। अच्छे प्रकार काटनेवाला।

सिद्धि-(१) प्रवक:। 'प्रुङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयो:' (७।३।८४) से 'प्रु' धातो को गुण हो जाता है। 'वुन्' में 'न्' अनुबन्ध 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर के लिये है।

(२) सरक:। 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) लवक:। 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत्।

विशेष-समभिहार-समभिहार शब्द का अर्थ किसी क्रिया को बार-बार करना होता है किन्तु यहां समभिहार का अर्थ क्रिया को ठीक-ठीक करना है। यदि कर्ता सम्बन्धित क्रिया को एक बार भी अच्छे प्रकार करता है तो 'वुन्' प्रत्यय होता है, यदि कर्ता बार-बार भी क्रिया को अच्छे प्रकार नहीं करता है तो 'वुन्' प्रत्यय नहीं होता है।

(२) आशिषि च।१५०।

प०वि०-आशिषि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-अप्राप्तस्याभिलषितस्य वस्तुनः प्रार्थना=आशीः। तस्याम्-आशिषिः।

अनु०-वुन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आशिषि च धातोर्वुन्।

अर्थः-आशिषि गम्यामानायामपि धातुमात्राद् वुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-जीवतादयमिति जीवकः। नन्दतादयमिति-नन्दकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(आशिषि) अप्राप्त अभीष्ट वस्तु की इच्छा अर्थ प्रकट करने पर (च) भी (धातोः) धातुमात्र से (वुन्) वुन्-प्रत्यय होता है।

उदा०-जीवातादयमिति जीवकः। यह जीवित रहे ऐसी ईश्वर से प्रार्थना है। नन्दतादयमिति नन्दकः। आनन्दित रहे ऐसी ईश्वर से प्रार्थना है।

सिद्धि-(१) जीवकः। 'जीव प्राणधारणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से आशीर्वाद अर्थ में 'वुन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वुन्' के 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है।

(२) नन्दकः। 'टुनदि समृद्धौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः

कृत्प्रत्ययप्रकरणम्

अण्–

(१) कर्मण्यण्।१।

प०वि०–कर्मणि ७।१ अण् १।१।

अन्वयः–कर्मण्युपपदे धातोरण्।

अर्थः–कर्मणि कारके उपपदे धातोः परोऽण् प्रत्ययो भवति। निर्वर्त्य-विकार्य-प्राप्य-भेदात् त्रिविधं कर्म भवति।

उदा०–**(निर्वर्त्यम्)** कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। नगरं करोतीति नगरकारः। **(विकार्यम्)** काण्डं लुनातीति काण्डलावः। शरं लुनातीति शरलावः। **(प्राप्यम्)** वेदमधीते इति वेदाध्यायः। चर्चां पारयतीति चर्चापारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (अण्) अण् प्रत्यय होता है। निर्वर्त्य, विकार्य और प्राप्य भेद से कर्म तीन प्रकार का है।

उदा०-(निर्वर्त्य) कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। कुम्भ (घड़ा) को बनानेवाला कुम्हार। नगरं करोतीति नगरकारः। नगर को बनानेवाला। (विकार्य) काण्डं लुनातीति काण्डलावः। शाखा को काटनेवाला। शरं लुनातीति शरलावः। सरकंडा को काटनेवाला। (प्राप्य) वेदमधीते इति वेदाध्यायः। वेद को पढ़नेवाला। चर्चां पारयतीति चर्चापारः। चर्चा=अध्ययन को पूरा करनेवाला।

सिद्धि-(१) कुम्भकारः। कुम्भ+ङस्+कृ+अण्। कुम्भ+कार्+अ। कुम्भकारः। यहां कुम्भ कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है।

(२) काण्डलावः। काण्ड कर्म उपपद 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत्।

(३) वेदाध्यायः। वेद कर्म उपपद अधिपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत्।

(४) चर्चापारः। चर्चा कर्म उपपद णिजन्त 'पॄ पालनपूरणयोः' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत्।

(५) यहां सर्वत्र 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपद समास होता है। 'कर्तृकर्मणोः कृति' (२।३।६५) से कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है।

(२) ह्वावामश्च।२।

प०वि०-ह्वा-वा-मः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-ह्वाश्च वाश्च माश्च एतेषां समाहारो ह्वावाम्, तस्मात्-ह्वावामः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे ह्वावामश्च धातोरण्।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे ह्वावामाभ्यो धातुभ्यः परोऽपि अण् प्रत्ययो भवति। क-प्रत्ययस्यापवादः।

उदा०-(ह्वा) स्वर्गं ह्वयते इति स्वर्गह्वायः। (वा) तन्तुं वयते इति तन्तुवायः। (मा) धान्यं मिमीते इति धान्यमायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (ह्वावामः) ह्वा, वा, मा (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (अण्) अण् प्रत्यय होता है।

उदा०-(ह्वा) स्वर्गं ह्वयते इति स्वर्गह्वायः। स्वर्ग की स्पर्धा करनेवाला। (वा) तन्तुं वयते इति तन्तुवायः। तन्तु को फैलनेवाला-जुलाहा। (मा) धान्यं मिमीते इति धान्यमायः। धान्य (अन्न) को मापनेवाला।

सिद्धि-(१) स्वर्गह्वायः। यहां स्वर्ग कर्म उपपद 'ह्वेञ् स्पर्धायाम्' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होता है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से आत्त्व, 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।

(२) तन्तुवायः। यहां तन्तु कर्म उपपद 'वेञ् तन्तुसन्ताने' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।

(३) धान्यमायः। यहां धान्य कर्म उपपद 'माङ् माने' (जु०आ०) धातु से पूर्ववत्।

विशेष-यहां 'आतोऽनुपसर्गे कः' (३।२।३) से क-प्रत्यय प्राप्त था। उसका यह पुरस्ताद् अपवाद है।

कः—

(१) आतोऽनुपसर्गे कः।३।

प०वि०-आतः ५।१ अनुपसर्गे ७।१ कः १।१।

स०-न विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गः, तस्मिन्-अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कर्मणि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदेऽनुपसर्गे आतो धातोः कः।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे अनुपसर्गे=उपसर्गरहितेभ्य आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः कः प्रत्ययो भवति। अण्-प्रत्ययस्यापवादः।

उदा०-(दा) गां ददातीति गोदः। कम्बलं ददातीति कम्बलदः। (त्रा) पार्ष्णिं त्रायते इति पार्ष्णित्रम्। अङ्गुलीस्त्रायते इति अङ्गुलित्रम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (अनुपसर्गे) उपसर्गरहित (आतः) आकारान्त (धातोः) धातुओं से परे (कः) क-प्रत्यय होता है।

*उदा०-(दा) **गां ददातीति गोदः।** गौ का दान करनेवाला-यजमान। **कम्बलं ददातीति कम्बलदः।** कम्बल का दान करनेवाला-धनवान्। (त्रा) **पार्ष्णिं त्रायते इति पार्ष्णित्रम्।** पादतल की रक्षा करनेवाला-जूता। **अङ्गुलीस्त्रायते इति अङ्गुलित्रम्।** अङ्गुलियों की रक्षा करनेवाला-दस्ताना।*

*सिद्धि-(१) **गोदः।** यहां गौ कर्म उपपद होने पर 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'दा' के आ का लोप होता है। ऐसे ही कम्बल कर्म उपपद होने पर-**कम्बलदः।***

*(२) **पार्ष्णित्रम्।** यहां पार्ष्णि कर्म उपपद होने पर 'त्रैङ् पालने' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् कार्य है। ऐसे ही-**अङ्गुलित्रम्।***

कः-

(२) सुपि स्थः।४।

सूचना-अत्र योगविभागः कर्तव्यः-

(क) सुपि।

प०वि०-सुपि ७।१।

अनु०-आतः, क इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सुप्युपपदे आतो धातोः कः।

अर्थः-सुबन्ते उपपदे आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः परः कः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पा) द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः। पादैः पिबतीति पादपः। कच्छेन पिबतीति कच्छपः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (आतः) आकारान्त (धातोः) धातुओं से परे (कः) 'क' प्रत्यय होता है।

उदा०-(पा) द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः। सूंड और मुख दोनों से पानी पीनेवाला-हाथी। पादैः पिबतीति पादपः। पांवों से पानी पीनेवाला-वृक्ष। कच्छेन पिबतीति कच्छपः। कच्छ नामक अङ्गविशेष से पानी पीनेवाला-कछुआ।

सिद्धि-द्विपः। यहां द्वि सुबन्त उपपद होने पर 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'पा' के आ का लोप हो जाता है। ऐसे ही पाद और कच्छ सुबन्त उपपद होने पर 'पा' धातु से-पादपः और कच्छपः।

(ख) स्थः।

प०वि०-स्थः ५।१।

अनु०-सुपि, क इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सुप्युपपदे स्थो धातोः कः।

अर्थः-सुबन्ते उपपदे स्था-धातोः परः कः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(स्था) समे तिष्ठतीति-समस्थः। विषमे तिष्ठतीति विषमस्थः।

योगविभागः किमर्थः ? कर्तरि कारके पूर्वयोगः। अनेन भावेऽर्थेऽपि कः प्रत्ययो यथा स्यात्-आखूनाम् उत्थानमिति-आखूत्थः। शलभाना-मुत्थानमिति-शलभोत्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (स्थः) स्था (धातोः) धातु से (कः) 'क' प्रत्यय होता है।

उदा०-(स्था) समे तिष्ठतीति समस्थः। सम अवस्था में रहनेवाला-योगी। विषमे तिष्ठतीति विषमस्थः। विषम अवस्था में रहनेवाला-साधारण जन।

योग विभाग किसलिये किया है ? पहला सूत्र 'कर्तरि कृत्' (३।४।६७) से 'कर्ता' अर्थ में होता है। इस सूत्र से 'स्था' धातु से 'भाव' अर्थ में भी 'क' प्रत्यय हो जाये इसलिए यह योगविभाग किया गया है। जैसे-आखूनाम् उत्थानम् आखूत्थः। चूहों का उठाव। शलभानामुत्थानम्-शलभोत्थः। शलभ (टिड्डी) नामक पतंगों का उठाव।

सिद्धि-(१) समस्थः। अधिकरण सम उपपद होने पर 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'स्था' के आ का लोप हो जाता है। विषम उपपद होने पर-विषमस्थः।

(२) आखूत्थः। यहां 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' से 'स्था' के स् को पूर्वसवर्ण त् होता है। शेष पूर्ववत् है। शलभ उपपद होने पर-शलभोत्थः।

विशेष-अनुवृत्ति-इससे आगे कर्मणि और सुपि इन दोनों पदों की अनुवृत्ति है किन्तु सकर्मक धातुवाले सूत्रों में कर्मणि की और शेष सूत्रों में सुपि की अनुवृत्ति की जाती है।

कः–

(३) तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः।५।

प०वि०-तुन्द-शोकयोः ७।२ परिमृज-अपनुदोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-तुन्दश्च शोकश्च तौ तुन्दशोकौ, तयोः-तुन्दशोकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। परिमृजश्च अपनुद् च तौ परिमृजापनुदौ, तयोः-परिमृजापनुदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि क इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तुन्दशोकयोः कर्मणोरुपपदयोः परिमृजापनुदिभ्यां धातुभ्यां कः।

अर्थः-तुन्दशोकयोः कर्मणोरुपपदयोर्यथासंख्यं परिमृजापनुदिभ्यां धातुभ्यां परः कः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(तुन्दः) तुन्दं परिमार्ष्टि इति तुन्दपरिमृज आस्ते। (शोकः) शोकमपनुदतीति-शोकापनुदः पुत्रः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तुन्दशोकयोः) तुन्द और शोक (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर यथासंख्य (परिमृजापनुदोः) परिमृज और अपनुद् (धातोः) धातुओं से परे (कः) क-प्रत्यय होता है।

उदा०-(तुन्द) तुन्दं परिमार्ष्टीति-तुन्दपरिमृजः। तुन्द-महोदर का परिमार्जन करनेवाला-आलसी। (शोक) शोकमपनुदतीति-शोकापनुदः। शोक को दूर भगानेवाला पुत्र।

सिद्धि-(१) तुन्दपरिमृजः। यहां तुन्द कर्म उपपद होने पर 'मृजूष् शुद्धौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'मृजेर्वृद्धिः' (७।२।११४) से प्राप्त वृद्धि का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है।

(२) शोकापनुदः। यहां शोक कर्म उपपद होने पर 'णुद प्रेरणे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है।

कः–

(४) प्रे दाज्ञः।६।

प०वि०–प्रे ७।१ दा-ज्ञ: ५।१।

स०–दाश्च ज्ञाश्च एतयोः समाहारो दाज्ञम्, तस्मात्-दाज्ञः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, क इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मणि प्रे-चोपपदे दाज्ञाभ्यां धातुभ्यां परः कः प्रत्ययो भवति।

उदा०–(दा) सर्वं प्रददातीति सर्वप्रदः। **(ज्ञा)** पन्थानं प्रजानातीति पथिप्रज्ञः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक और (प्रे) प्र-उपसर्ग उपपद होने पर (दा-ज्ञ:) दा और ज्ञा धातु से परे (कः) 'क' प्रत्यय होता है।

उदा०–(दा) सर्वं प्रददातीति सर्वप्रदः। सर्वस्व प्रदान करनेवाला। (ज्ञा) पन्थानं प्रजानातीति पथिप्रज्ञः। मार्ग को यथावत् जाननेवाला।

सिद्धि-सर्वप्रदः। यहां 'सर्व' कर्म और 'प्र' उपसर्ग उपपद होने पर 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'दा' के आ का लोप होता है।

(२) पथिप्रज्ञः। यहां 'पथिन्' कर्म और 'प्र' उपसर्ग उपपद होने पर 'ज्ञा अवबोधने' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'क' प्रत्यय है।

कः–

(५) समि ख्यः।७।

प०वि०–समि ७।१ ख्य: ५।१।

अनु०–कर्मणि, क इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मणि समि चोपपदे ख्यो धातोः कः।

अर्थः–कर्मणि कारके सम्-उपसर्गे चोपपदे ख्या-धातोः परः कः प्रत्ययो भवति।

उदा०–(ख्या) गाः संचष्टे इति गोसंख्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक और (समि) सम्-उपसर्ग उपपद होने पर (ख्यः) ख्या (धातोः) धातु से परे (कः) 'क' प्रत्यय होता है।

उदा०-(ख्या) गाः संचष्टे इति गोसंख्यः। गौओं की संख्या करनेवाला।

सिद्धि-गोसंख्यः। यहां गौ कर्म और सम् उपसर्ग उपपद होने पर 'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि' (अदा०आ०) धातु से 'क' प्रत्यय है। 'चक्षिङः ख्याञ्' (२।४।५४) से 'चक्षिङ्' के स्थान में ख्याञ्-आदेश होता है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'ख्या' के आ का लोप होता है।

विशेष-ख्या-यहां 'चक्षिङः ख्याञ्' (२।४।५४) से जो 'चक्षिङ्' के स्थान में 'ख्या' आदेश होता है उसी का यहां ग्रहण किया जाता है, 'ख्या प्रकथने' (अदा०प०) धातु का नहीं है, क्योंकि उसका सम्-उपसर्गपूर्वक प्रयोग नहीं होता है।

टक्-

(१) गापोष्टक्।८।

प०वि०-गापोः ६।२ पञ्चम्यर्थे। टक् १।१।

स०-गाश्च पाश्च तौ गापौ, तयोः-गापोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, अनुपसर्गे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्यनुपसर्गे चोपपदे गापाभ्यां धातुभ्यां टक्।

अर्थः-कर्मणि कारकेऽनुपसर्गे चोपपदे गापाभ्यां धातुभ्यां परष्टक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(गा)** शक्रं गायतीति शक्रगः। साम गायतीति सामगः। स्त्रियाम्-शक्रगी। सामगी। **(पा)** सुरां पिबतीति सुरापः। शीधुं पिबतीति शीधुपः। स्त्रियाम्-सुरापी। शीधुपी।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक और (अनुपसर्गे) उपसर्गरहित उपपद होने पर (गापोः) 'गा' और 'पा' (धातोः) धातु से परे (टक्) 'टक्' प्रत्यय होता है।

उदा०-(गा) शक्रं गायतीति शक्रगः। इन्द्र देवता की स्तुति करनेवाला। साम गायतीति गायतीति सामगः। साम-वेद का गान करनेवाला। स्त्रीलिङ्ग में-शक्रगी। इन्द्र देवता की स्तुति करनेवाली नारी। सामगी। सामवेद का गान करनेवाली नारी। (पा) सुरां पिबतीति सुरापः। सुरा का पान करनेवाला। शीधुं पिबतीति शीधुपः। अंगूरी शराब का पान करनेवाला। स्त्रीलिङ्ग में-सुरापी। सुरा का पान करनेवाली नारी। शीधुपी। अंगूरी शराब का पान करनेवाली नारी।

सिद्धि-(१) शक्रगः। यहां शक्र कर्म उपपद तथा अनुपसर्ग 'गै शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'टक्' प्रत्यय है। 'टक्' प्रत्यय के कित् होने से 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'गा' के आ का लोप होता है। 'टक्' प्रत्यय के 'टित्' होने से स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-शक्रगी। ऐसे ही-सामगः और सामगी।

(२) सुरापः। यहां सुरा कर्म उपपद तथा अनुपसर्ग 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'टक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अच्-

(१) हरतेरनुद्यमनेऽच्।६।

प०वि०-हरतेः ५।१ अनुद्यमने ७।१ अच् १।१।

स०-उद्यमनम्=उत्क्षेपणम्, न उद्यमनमिति अनुद्यमनम्, तस्मिन्-अनुद्यमने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-कर्मणि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्यनुद्यमने हरतेर्धातोरच्।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदेऽनुद्यमनेऽर्थे वर्तमानाद् हृञ्-धातोः परोऽच् प्रत्ययो भवति। अण्-प्रत्ययस्यापवादः।

उदा०-(हृ) अंशं हरतीति-अंशहरः। रिक्थं हरतीति-रिक्थहरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (अनुद्यमने) ऊपर उठाना अर्थ को छोड़कर (हरतेः) हृञ् (धातोः) धातु से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है। यह अण् प्रत्यय का अपवाद है।

उदा०-(हृ) अंशं हरतीति अंशहरः। अंश=भाग को ग्रहण करनेवाला-राजा। रिक्थं हरतीति-रिक्थहरः। दायभाग के धन को ग्रहण करनेवाला-दायभागी।

सिद्धि-अंशहरः। यहां अंश कर्म उपपद होने पर 'अनुद्यमन' अर्थ में 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'हृ' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-रिक्थहरः।

अच्-

(२) वयसि च।१०।

प०वि०-वयसि ७।१ च अव्ययपदम्। वयः=आयुः, तस्मिन् वयसि।

अनु०-कर्मणि, हरतेः, अच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे हरतेर्धातोर्वयसि चाऽच्।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे हृञ्-धातोः परो वयसि गम्यमानेऽपि अच् प्रत्ययो भवति।

कालकृता शरीरावस्था यौवनादिकं वयः। यद् उद्यमनम् (उत्क्षेपणम्) क्रियमाणं सम्भाव्यमानं वा वयो गमयति तत्रायं प्रत्ययविधिर्भवति।

उदा०-(हृ) अस्थि हरतीति-अस्थिहरः श्वा। कवचं हरतीति-कवचहरः क्षत्रियकुमारः।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हरतेः) हृञ् (धातोः) धातु से परे (वयसि) आयु प्रकट होने पर (च) भी (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

***उदा०**-(हृ) अस्थि हरतीति-अस्थिहरः श्वा। हड्डी को उठानेवाला कुत्ता। कवचं हरतीति कवचहरः क्षत्रियकुमारः। कवच को धारण कर सकनेवाला राजकुमार।*

***सिद्धि**-अस्थिहरः। यहां अस्थि कर्म उपपद होने पर 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'हृ' धातु को गुण होता है-कवचहरः। यहां दोनों स्थानों पर श्वा और राजकुमार की वय=युवावस्था प्रकट हो रही है।*

अच्-

(३) आङि ताच्छील्ये।११।

प०वि०-आङि ७।१ ताच्छील्ये ७।१।

स०-तस्य शीलमिति-तच्छीलम्, तच्छीलस्य भावस्ताच्छील्यम्, तस्मिन् ताच्छील्ये (षष्ठीतत्पुरुषस्ततो तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-कर्मणि, हरतेः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्याङि चोपपदे हरतेर्धातोरच् ताच्छील्ये।

अर्थः-कर्मणि कारके आङ्-उपसर्गे चोपपदे हृञ् धातोः परोऽच् प्रत्ययो भवति, ताच्छील्ये गम्यमाने।

उदा०-पुष्पाण्याहरतीति-पुष्पाहरः। फलान्याहरतीति-फलाहरः।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(कर्मणि) कर्म कारक और (आङि) आङ् उपसर्ग उपपद होने पर (हरतेः) हृञ् (धातोः) धातु से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है (ताच्छील्ये) यदि आहरण क्रिया में उसका स्वभाव प्रकट हो।*

***उदा०**-(हृ) पुष्पाण्याहरतीति-पुष्पाहरः। फूलों को निष्कामभाव से लानेवाला। फलान्याहरतीति-फलाहरः। फलों को निष्कामभाव से लानेवाला।*

सिद्धि-पुष्पाहरः। यहां पुष्प कर्म और आङ् उपसर्ग उपपद होने पर 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'हृ' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-फलाहरः।

अच्-

(४) अर्हः।१२।

प०वि०-अर्हः ५।१।

अनु०-कर्मणि, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदेऽर्हो धातोरच्।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे अर्ह-धातोः परोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अर्ह्) पूजामर्हतीति-पूजार्हा ब्राह्मणी। गन्धमर्हतीति-गन्धार्हा नारी। मालामर्हतीति-मालार्हा नारी।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (अर्हः) अर्ह् (धातोः) धातु से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है।

उदा०-(अर्ह्) पूजामर्हतीति-पूजार्हा ब्राह्मणी। पूजा के योग्य विदुषी नारी। गन्धमर्हति-गन्धार्हा। सुगन्ध लगानेवाली नारी। मालामर्हति-मालार्हा। माला धारण करनेवाली नारी।

सिद्धि-पूजार्हा। यहां पूजा कर्म उपपद होने पर 'अर्ह पूजायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। स्त्रीलिङ्ग में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही गन्धार्हा आदि।

अच्-

(५) स्तम्बकर्णयो रमि जपोः।१३।

प०वि०-स्तम्ब-कर्णयोः ७।२ रमि-जपोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-स्तम्बश्च कर्णश्च तौ स्तम्बकर्णौ, तयोः स्तम्बकर्णयोः। रमिश्च जप् च तौ रमिजपौ, तयोः रमिजपोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुपि इत्यनुवर्तते न कर्मणि।

अन्वयः-स्तम्बकरणयोः सुपोरुपपदयोः रमिजपिभ्यां धातुभ्यामच्।

अर्थः-स्तम्बकर्णयोः सुबन्तयोरुपपदयोर्यथासंख्यं रमिजपिभ्यां धातुभ्यां परोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(स्तम्बः) स्तम्बे रमते इति स्तम्बेरमः हस्ती। (कर्णः) कर्णे जपतीति कर्णेजपः सूचकः (पिशुनः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्तम्बकर्णयोः) स्तम्ब और कर्ण (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर यथासंख्य (रमिजपोः) रम, जप् धातु से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है।

उदा०-(स्तम्ब) स्तम्बे रमते इति स्तम्बेरमः-हस्ती। स्तम्ब=वृक्षों की शाखा अथवा घास के समूह में रमण करनेवाला-हाथी। (कर्ण) कर्णे जपतीति कर्णेजपः-सूचकः। कान में कुछ कहनेवाला-जुगलखोर।

सिद्धि-(१) स्तम्बेरमः। यहां सप्तम्यन्त सुबन्त स्तम्ब उपपद होने पर 'रमु क्रीडायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। हलन्ताद् सप्तम्याः संज्ञायाम्' (६।३।७) से समास में सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है।

(२) कर्णेजपः। यहां सप्तम्यन्त सुबन्त कर्ण उपपद होने पर 'जप व्यक्तायां वाचि मानसे च' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। शेष पूर्ववत्।

अच्-

(६) शमि धातोः संज्ञायाम्।१४।

प०वि०-शमि ७।१ धातोः ५।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-अच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-शम्युपपदे धातोरच् संज्ञायाम्।

अर्थः-शमि उपपदे धातुमात्रात् परोऽच् प्रत्ययो भवति संज्ञायां विषये।

उदा०-(शम्) शं करोतीति-शङ्करः। शं भवतीति शंभवः। शं वदतीति शंवदः।

आर्यभाषा-अर्थ-(शमि) शम् उपपद होने पर (धातोः) धातुमात्र से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।

उदा०-(शम्) शं करोतीति-शङ्करः। शम्=सुख देनेवाला-भगवान्। शं भवतीति-शंभवः। सुखस्वरूप ईश्वर। शं वदतीति शंवदः। सुख का उपदेश करनेवाला-ऋषि।

सिद्धि-(१) शङ्करः। यहां शम् उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः(७।३।८४) से 'कृ' को गुण होता है।

(२) शम्भवः। 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) से पूर्ववत्।

(३) शंवदः। 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) से पूर्ववत्।

विशेष-धातु-धातु की अनुवृत्ति होने पर भी फिर 'धातोः' पद का ग्रहण इसलिये किया है शम् उपपद होने पर धातु से संज्ञा विषय में 'अच्' प्रत्यय ही हो, 'कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु' (३।२।२०९ से 'ट' प्रत्यय न हो। जैसे-शङ्करा नाम परिव्राजिका। शङ्करा नाम शकुनिका, तच्छीला च।

अच्–

(७) अधिकरणे शेतेः।१५।

प०वि०-अधिकरणे ७।१ शेतेः ५।१।

अनु०-सुपि, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणे सुप्युपपदे शेतेर्धातोरच्।

अर्थः-अधिकरणे सुबन्ते उपपदे शीङ्-धातोः परोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(शीङ्) खे शेते इति-खशयः। गर्ते शेते इति-गर्तशयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अधिकरणे) अधिकरण (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (शेतेः) शीङ् (धातोः) धातु से परे (अच्) अच्-प्रत्यय होता है।

उदा०-(शीङ्) खे शेते इति खशयः। आकाश में रहनेवाला। वृक्ष की शाखा। गर्ते शेते इति-गर्तशयः। गड्ढे में रहनेवाला, खम्भा।

सिद्धि-(१) खशयः। यहां अधिकरण सुबन्त 'ख' उपपद होने पर 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'शी' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-गर्तशयः।

विशेष-शीङ् धातु का अर्थ सोना है, किन्तु यहां प्रकरणवश रहना अर्थ लिया जाता है 'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति' (महाभाष्यम्)।

टः–

(९) चरेष्टः।१६।

प०वि०-चरेः ५।१ टः १।१।

अनु०-सुपि, अच्, अधिकरणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणे सुप्युपपदे चरेर्धातोरच्। परट!

अर्थः-अधिकरणे सुबन्ते उपपदे चर-धातोः परोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(चर्) कुरुषु चरतीति-कुरुचरः। स्त्रियाम्-कुरुचरी। मद्रेषु चरतीति-मद्रचरः। स्त्रियाम्-मद्रचरी।

आर्यभाषा-अर्थ-(अधिकरणे) अधिकरण (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (चरेः) चर् (धातोः) धातु से परे (अच्) अच्-प्रत्यय होता है।

उदा०-(चर्) कुरुषु चरतीति-कुरुचरः। कुरु देश में विचरण करनेवाला। स्त्रीलिङ्ग में-कुरुचरी। मद्रेषु चरतीति-मद्रचरः। मद्र देश में विचरण करनेवाला। स्त्रीलिङ्ग में-मद्रचरी।

सिद्धि-कुरुचरः। यहां कुरु अधिकरण सुबन्त उपपद होने पर 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय है। 'ट' प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-कुरुचरी। ऐसे ही-मद्रचरः। मद्रचरी।

विशेष-दिल्ली और मेरठ प्रदेश का प्राचीन नाम 'कुरु' है। रावी और चनाब नदी के बीच का प्रदेश 'मद्र' कहाता है।

टः-

(२) भिक्षासेनाऽऽदायेषु च।१७।

प०वि०-भिक्षा-सेना-आदायेषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-भिक्षा च सेना च आदायश्च ते भिक्षासेनाऽऽदायाः, तेषु-भिक्षासेनाऽऽदायेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुपि, चरेः, ट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भिक्षासेनाऽऽदायेषु च सुप्सूपपदेषु चरेर्धातोष्टः।

अर्थः-भिक्षासेनाऽऽदायेषु सुबन्तेषु उपपदेषु चर-धातोः परष्टः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(भिक्षा) भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः। (सेना) सेनां चरतीति सेनाचरः। (आदाय) आदाय चरतीति आदायचरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भिक्षासेनाऽऽदायेषु) भिक्षा, सेना, आदाय (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (चरेः) चर् (धातोः) धातु से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है।

उदा०-(भिक्षा) भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः। भिक्षा को घूम-घूमकर अर्जित करनेवाला। यहां 'चर्' धातु घूमकर अर्जन करने अर्थ में है। (सेना) सेनां चरतीति सेनाचरः। सेना में भर्ती (प्रविष्ट) होनेवाला। यहां 'चर्' धातु प्रवेश अर्थ में हैं। (आदाय) आदाय चरतीति आदायचरः। लेकर खानेवाला, वापिस न देनेवाला।

सिद्धि-भिक्षाचरः। यहां भिक्षा सुबन्त उपपद होने पर 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय है। ऐसे ही-सेनाचरः और आदायचरः।

विशेष-धातु अर्थ-पाणिनीय धातुपाठ में जो धातुओं के अर्थ बतलाये गये हैं वे केवल उदाहरणमात्र हैं "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" (महाभाष्यम्)।

टः-

(३) पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः।१८।

प०वि०-पुरः-अग्रतः-अग्रेषु ७।३ सर्तेः ५।१।

स०-पुरश्च अग्रतश्च अग्रे च ते-पुरोऽग्रतोऽग्रयः, तेषु पुरोऽग्रतोऽग्रेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुपि, ट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सुप्सूपपदेषु सर्तेर्धातोष्टः।

अर्थः-पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सुबन्तेषु उपपदेषु सृ-धातोः परष्टः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पुरः) पुरः सरतीति पुरस्सरः। (अग्रतः) अग्रतः सरतीति अग्रतस्सरः। (अग्रे) अग्रे सरतीति अग्रेसरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पुरोऽग्रतोऽग्रेषु) पुरः, अग्रतः, अग्रे (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (सर्तेः) सृ (धातोः) धातु से परे (टः) 'ट' प्रत्यय होता है।

उदा०-(पुरः) पुरः सरतीति पुरस्सरः। पहले चलनेवाला। (अग्रतः) अग्रतः सरतीति अग्रतस्सरः। आगे से चलनेवाला। (अग्रे) अग्रे सरतीति अग्रेसरः। आगे चलनेवाला। यहां 'अग्रे' शब्द एकारान्त निपातित है।

सिद्धि-पुरस्सरः। यहां 'पुरः' उपपद होने पर 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'सृ' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-अग्रतस्सरः और अग्रेसरः।

टः-

(४) पूर्वे कर्तरि।१९।

प०वि०-पूर्वे ७।१ कर्तरि ७।१।

अनु०-सुपि, टः, सर्तेः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्तरि पूर्वे सुप्युपपदे सर्तेर्धातोष्टः।

अर्थः-कर्तृवाचिनि पूर्वे सुबन्ते उपपदे सृ-धातोः परष्टः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पूर्वः) पूर्वः सरतीति पूर्वसरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्तरि) कर्तावाची (पूर्वे) पूर्व (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (सर्तेः) सृ (धातो) धातु से परे (टः) 'ट' प्रत्यय होता है।

उदा०-(पूर्वः) पूर्वः सरतीति पूर्वसरः। प्रथम चलनेवाला।

सिद्धि-पूर्वसरः। यहां कर्तावाची पूर्व सुबन्त उपपद होने पर 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'सृ' धातु को गुण होता है।

टः-

(५) कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु।२०।

प०वि०-कृञः ५।१ हेतु-ताच्छील्य-आनुलोम्येषु ७।३।

स०-तस्य शीलमिति तच्छीलम्, तच्छीलस्य भावः-ताच्छील्यम्। अनुलोमस्य भाव आनुलोम्यम्। हेतुश्च ताच्छील्यं च आनुलोम्यं च तानि-हेतुताच्छील्यानुलोम्यानि, तेषु-हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। हेतुः=ऐकान्तिकं कारणम्। ताच्छील्यम्=तत्स्वभावता। आनुलोम्यम्=अनुकूलता।

अनु०-कर्मणि, ट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे कृञो धातोष्टो हेतुताच्छील्यानुलाम्येषु।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे कृञ्-धातोः परष्टः प्रत्ययो भवति, हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु गम्यमानेषु।

उदा०-(हेतुः) शोकं करोतीति शोककरी कन्या। यशः करोति यशस्करी विद्या। कुलं करोतीति कुलकरं धनम्। **(ताच्छील्यम्)** श्राद्धं करोतीति श्राद्धकरः पुत्रः। **(आनुलोम्यम्)** प्रैषं करोतीति प्रैषकरः शिष्यः। वचनं करोतीति वचनकरः शिष्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (टः) 'ट' प्रत्यय होता है (हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु) हेतु=कारण, ताच्छील्य, उसका स्वभाव होना और आनुलोम्य=अनुकूलता अर्थ प्रकट होने पर।*

उदा०-(हेतु) शोकं करोतीति शोककरी कन्या। शोक उत्पत्ति का कारण कन्या। यशः करोतीति यशस्करी विद्या। यश की उत्पत्ति का कारण विद्या। कुलं करोतीति कुलकरं धनम्। कुल के निर्माण का कारण धन। (ताच्छील्य) श्राद्धं करोतीति श्राद्धकरः पुत्रः। श्रद्धा से सेवा-शुश्रूषा करनेवाला पुत्र। (आनुलोम्य) प्रैषं करोतीति प्रैषकरः शिष्यः। आज्ञा के अनुकूल आचरण करनेवाला शिष्य। वचनं करोतीति वचनकरः शिष्यः। गुरुवचन के अनुकूल कार्य करनेवाला शिष्य।

सिद्धि-शोककरी। यहां शोक कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है। 'ट' प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-यशस्करी आदि पद सिद्ध करें।

टः-

(६) दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिबहुनान्दी-किंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घा-बाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु।२१।

प०वि०-दिवा-विभा-निशा-प्रभा-भास्-कार-अन्त-अनन्त-आदि-बहु-नान्दी-किम्-लिपि-लिबि-बलि-भक्ति-कर्तृ-चित्र-क्षेत्र-संख्या-जङ्घा-बाहु-अहर्-यत्-तत्-धनुर्-अरुष्षु ७।३।

स०-दिवा च विभा च निशा च प्रभा च भास् च कारश्च अन्तश्च अनन्तश्च आदिश्च बहुश्च नान्दी च किं च लिपिश्च बलिश्च भक्तिश्च कर्ता च चित्रं च क्षेत्रं च संख्या च जङ्घा च बाहुश्च अहश्च यच्च तच्च धनुश्च अरुश्च तानि-दिवा०अरूंषि, तेषु-दिवा०अरुष्षु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, सुपि, कृञः, ट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिवा०अरुष्षु कर्मसु सुपि चोपपदे कृञो धातोष्टः।

अर्थः-दिवादिषु कर्मसु सुबन्ते चोपपदे कृञ्-धातोः परष्टः प्रत्ययो भवति। अत्र दिवाशब्दोऽधिकरणवाची, तेन 'सुपि' इति सम्बध्यते, शेषैश्च 'कर्मणि' इति।

उदा०-(**दिवा**) दिवा (प्राणिनश्चेष्टायुक्तान्) करोतीति-दिवाकरः। (**विभा**) विभां करोतीति विभाकरः। (**निशा**) निशां करोतीति निशाकरः।

(प्रभा) प्रभां करोतीति प्रभाकरः। (भास्) भासं करोतीति भास्करः। (कारः) कारं करोतीति कारकरः। (अन्तः) अन्तं करोतीति अन्तकरः। (अनन्तः) अनन्तं करोतीति अनन्तकरः। (आदिः) आदिं करोतीति आदिकरः। (बहु) बहुं करोतीति बहुकरः। (नान्दी) नान्दीं करोतीति नान्दीकरः। (किम्) किं करोतीति किङ्करः। (लिपिः) लिपिं करोतीति लिपिकरः। (लिबिः) लिबिं करोतीति लिबिकरः। (बलिः) बलिं करोतीति बलिकरः। (भक्तिः) भक्तिं करोतीति भक्तिकरः। (कर्तृ) कर्तारं करोतीति कर्तृकरः। (चित्रम्) चित्रं करोतीति चित्रकरः। (क्षेत्रम्) क्षेत्रं करोतीति क्षेत्रकरः। संख्या-(एकः) एकं करोतीति एककरः। (द्वि) द्वे करोतीति द्विकरः। (त्रि) त्रीणि करोतीति त्रिकरः। (जङ्घा) जङ्घां करोतीति जङ्घाकरः। (बाहुः) बाहुं करोतीति बाहुकरः। (अहः) अहः करोतीति अहस्करः। (यत्) यत् करोतीति यत्करः। (तत्) तत् करोतीति तत्करः। (धनुः) धनुः करोतीति धनुष्करः। (अरुः) अरुः करोतीति अरुष्करः।

आर्यभाषा-अर्थ-(दिवा०अरुष्षु) दिवा, विभा, निशा, प्रभा, भास्, कार, अन्त, अनन्त, आदि, बहु, नान्दी, किम्, लिपि, लिबि, बलि, भक्ति, कर्तृ, चित्र, क्षेत्र, संख्यावाची शब्द, जंघा, बाहु, अहः, यत्, तत्, धनुः अरुः (कर्मणि) कर्म कारक और (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (टः) 'ट' प्रत्यय होता है। यहां दिवा शब्द अधिकरण कारकवाची है अतः उसका सुपि=सुबन्त उपपद के साथ सम्बन्ध है और शेष का कर्मणि=कर्म उपपद से सम्बन्ध है।

उदा०-(दिवा) दिवा (प्राणिनचेष्टायुक्तान्) करोतीति दिवाकरः। दिवा=दिन में प्राणियों को चेष्टायुक्त करनेवाला (सूर्य)। (विभा) विभां करोतीति विभाकरः। विशिष्ट दीप्ति करनेवाला (सूर्य)। (निशा) निशां करोतीति निशाकरः। निशा को बनानेवाला (चन्द्रमा)। (प्रभा) प्रभां करोतीति प्रभाकरः। प्रकृष्ट दीप्ति करनेवाला (सूर्य)। (भास्) भासं करोतीति भास्करः। भाः=दीप्ति करनेवाला (सूर्य)। (अन्त) अन्तं करोतीति अन्तकरः। अन्त करनेवाला (मृत्यु)। (अनन्त) अनन्तं करोतीति अनन्तकरः। अनन्त जगत् को बनानेवाला (ईश्वर)। (आदि) आदिं करोतीति आदिकरः। आरम्भ करनेवाला। (बहु) बहुं करोतीति बहुकरः। बड़ा कार्य करनेवाला। (नान्दी) नान्दीं करोतीति नान्दीकरः। नाटक के प्रारम्भ में नान्दीपाठ करनेवाला। (किम्) किं करोतीति किङ्करः। कुछ करनेवाला (नौकर)। (लिपि) लिपिं करोतीति लिपिकरः। लिपि=पुस्तक आदि की नकल करनेवाला। (लिबि) लिबिं करोतीति लिबिकरः। लिब शब्द लिपि का

पर्यायवाची है। (बलि) बलिं करोतीति बलिकरः। बलिदान करनेवाला। (भक्ति) भक्तिं करोतीति भक्तिकरः। ईश्वर की भक्ति करनेवाला भक्त। (कर्तृ) कर्तारं करोतीति कर्तृकरः। कर्ता को उत्साहित करनेवाला। (चित्र) चित्रं करोतीति चित्रकरः। चित्र बनानेवाला। (क्षेत्र) क्षेत्रं करोतीति क्षेत्रकरः। खेत को उत्तम बनानेवाला किसान। संख्या-(एक) एकं करोतीति एककरः। एक बनानेवाला। (द्वि) द्वे करोतीति द्विकरः। दो बनानेवाला। (त्रि) त्रीणि करोतीति त्रिकरः। तीन बनानेवाला। (जङ्घा) जङ्घां करोतीति जङ्घाकरः। दौड़नेवाला। (बाहु) बाहुं करोतीति बाहुकरः। बाहु से कार्य करनेवाला पुरुषार्थी। (यत्) करोतीति यत्करः। जिस किसी कार्य को करनेवाला। (तत्) तत् करोतीति तत्करः। उसी (निर्धारित) कार्य को करनेवाला। (धनुः) धनुः करोतीति धनुष्करः। धनुष बनानेवाला। (अरुः) अरुः करोतीति अरुष्करः। घाव करनेवाला।

सिद्धि-(१) दिवाकरः। अधिकरणवाची 'दिवा' उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'ट' प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' को गुण होता है।

(२) भास्करः। यहां भास् के सकार को 'कुप्वोः ᳲकᳲपौ च' (८।३।४८) से जिह्वामूलीय अथवा विसर्जनीय नहीं होता क्योंकि सूत्र में सकार का उच्चारण किया गया है अथवा 'कस्कादिषु च' (८।३।४८) से सत्व होता है।

(३) कारकरः। कर एव कारः। यहां 'प्रज्ञादिभ्यश्च' (५।४।३८) से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय है-कारः।

(४) बहुकरः। यहां संख्या का पृथक् ग्रहण करने से संख्यावाची बहु शब्द का ग्रहण नहीं किया जाता अपितु विपुल अर्थ का ग्रहण किया जाता है।

(५) अहस्करः। यहां 'अहन्' शब्द के न् को 'रोऽसुपि' (८।२।६९) से रेफ और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय तथा 'अतः कृकमि०' (८।३।४६) से विसर्जनीय को सत्व होता है।

(६) अरुष्करः। यहां 'अरुस्' शब्द के स् को 'नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य' (८।३।४५) से षत्व होता है।

टः-

(७) कर्मणि भृतौ।२२।

प०वि०-कर्मणि ७।१ भृतौ ७।१। भृतिः=वेतनम्, कर्ममूल्यमित्यर्थः।

अनु०-कर्मणि, कृञः, ट इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मणि कर्मण्युपपदे कृञो धातोष्टो भृतौ।

अर्थः-कर्मकारके कर्मशब्दे उपपदे कृञ्-धातोः परष्टः प्रत्ययो भवति, भृतौ गम्यमानायम्।

उदा०-(कृ) कर्म करोतीति कर्मकरः=भृतकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक में (कर्मणि) कर्म शब्द के उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (टः) 'ट' प्रत्यय होता हो (भृतौ) यदि वहां वेतन अर्थ प्रकट हो।

*उदा०-(कृ) कर्म करोतीति **कर्मकरः**। कर्म का मूल्य प्राप्त करनेवाला=नौकर। जो भृति नहीं लेता वह-**कर्मकारः**।*

*सिद्धि-**कर्मकरः**। यहां कर्म कारक में 'कर्म' शब्द उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'कृ' को गुण होता है।*

ट-प्रतिषेधः-

(८) न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु।२३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, शब्द-श्लोक-कलह-गाथा-वैर-चाटु-सूत्र-मन्त्र-पदेषु ७।३।

स०-शब्दश्च श्लोकश्च कलहश्च गाथा च वैरं च चाटुश्च सूत्रं च मन्त्रश्च पदं च तानि शब्द०पदानि, तेषु-शब्द०पदेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, टः, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शब्द०पदेषु कर्मसूपपदेषु कृञो धातोष्टो न।

अर्थः-शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु कर्मसु उपपदेषु कृञ्-धातोः परष्टः प्रत्ययो न भवति। अनेन प्रतिषद्धे **'कर्मण्यण्'** (३।२।१) इत्युत्सर्गोऽण् प्रत्ययो विधीयते।

उदा०-**(शब्दः)** शब्दं करोतीति शब्दकारः। **(श्लोकः)** श्लोकं करोतीति श्लोककारः। **(कलहः)** कलहं करोतीति कलहकारः। **(गाथा)** गाथां करोतीति गाथाकारः। **(वैरम्)** वैरं करोतीति वैरकारः। **(चाटुः)** चाटुं करोतीति चाटुकारः। **(सूत्रम्)** सूत्रं करोतीति सूत्रकारः। **(मन्त्रः)** मन्त्रं करोतीति मंन्त्रकारः। **(पदम्)** पदं करोतीति पदकारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(शब्द०पदेषु) शब्द, श्लोक, कलह, गाथा, वैर, चाटु, सूत्र, मन्त्र, पद (कर्मणि) इन कर्मों के उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (टः) 'ट'

प्रत्यय (न) नहीं होता है। इस सूत्र से प्रतिषेध होने पर 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से उत्सर्ग अण् प्रत्यय होता है।

उदा०-(शब्द) शब्दं करोतीति शब्दकारः। शब्द को बनानेवाला-वैयाकरण। (श्लोक) श्लोकं करोतीति श्लोककारः। श्लोक को बनानेवाला-कवि। (कलह) कलहं करोतीति कलहकारः। कलह करनेवाला-मूर्ख। (गाथा) गाथां करोतीति गाथाकारः। गाथा बनानेवाला-प्रचारक। (वैर) वैरं करोतीति वैरकारः। वैर करनेवाला शत्रु। (चाटु) चाटुं करोतीति चाटुकारः। चाटु=मीठी-मीठी बात करनेवाला-चापलूस। (सूत्र) सूत्रं करोतीति सूत्रकारः। सूत्र बनानेवाला-पाणिनिमुनि। (मन्त्र) मन्त्रं करोतीति मन्त्रकारः। वेदमन्त्र बनानेवाला ईश्वर अथवा मन्त्रार्थ का दर्शन करनेवाला-ऋषि। (पद) पदं करोतीति पदकारः। वेदमन्त्रों का पद विभाग करनेवाला-ऋषि।

सिद्धि-(१) शब्दकारः। यहां 'शब्द' कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय का प्रतिषेध हो जाने पर 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से उत्सर्ग 'अण्' प्रत्यय होता है। अण् प्रत्यय के णित् होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' को वृद्धि होती है।

(२) ऐसे ही 'श्लोककारः' आदि पदों की सिद्धि करें।

इन्–

(१) स्तम्बशकृतोरिन्।२४।

प०वि०–स्तम्ब-शकृतोः ७।२ इन् १।१।

स०–स्तम्बश्च शकृच्च तौ स्तम्बशकृतौ, तयोः स्तम्बशकृतोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स्तम्बशकृतोः कर्मणोरुपपदयोः कृञ इन्।

अर्थः–स्तम्बशकृतोः कर्मणोरुपपदयोः कृञ्-धातोः पर इन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(स्तम्बः) स्तम्बं करोतीति स्तम्बकरिः (व्रीहिः)। (शकृत्) शकृत् करोतीति शकृत्करिः (वत्सः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्तम्बशकृतोः) स्तम्ब और शकृत् (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (इन्) इन् प्रत्यय होता है।

उदा०-(स्तम्ब) स्तम्बं करोतीति स्तम्बकरिः। अतिसार को थामनेवाला-चावल। (शकृत्करिः) शकृत् करोतीति शकृत्करिः। शकृत्=गोबर करनेवाला बछड़ा (छोटा दूध पीता बच्चा, घास न खानेवाला)।

सिद्धि-स्तम्बकरिः। यहां 'स्तम्ब' कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'इन्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है। 'इन्' प्रत्यय में न् अनुबन्ध 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से कृदन्त पद के आद्युदात्त स्वर के लिये है। ऐसे ही-शकृत्करिः।

इन्–

(२) हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ।२५।

प०वि०-हरतेः ५।१ दृति-नाथयोः ७।२ पशौ ७।१।

स०-दृतिश्च नाथश्च तौ दृतिनाथौ, तयोः-दृतिनाथयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, इन्, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दृतिनाथयोः कर्मणोरुपपदयोर्हरतेरिन् पशौ।

अर्थः-दृतिनाथयोः कर्मणोरुपपदयोर्हृञ्-धातोः पर इन्-प्रत्ययो भवति, पशौ कर्तरि सति।

उदा०-(दृतिः) दृतिं हरतीति दृतिहरिः पशुः। **(नाथः)** नाथं हरतीति नाथहरिः पशुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(दृतिनाथयोः) दृति और नाथ (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (हरतेः) हृञ् (धातोः) धातु से परे (इन्) इन् प्रत्यय होता है (पशौ) यदि हृञ् धातु का कर्ता पशु हो।

उदा०-(दृति) दृतिं हरतीति दृतिहरः पशुः। दृति=मशक को ढोनेवाला पशु (भैंसा आदि)। (नाथ) नाथं हरतीति नाथहरिः। नाक में नाथ को धारण करनेवाला पशु (बैल आदि)।

सिद्धि-दृतिहरिः। यहां दृति कर्म उपपद होने पर 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'इन्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'हृञ्' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-नाथहरिः।

इन् (निपातनम्)–

(३) फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च।२६।

प०वि०-फलेग्रहिः १।१ आत्मम्भरिः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-इन् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च शब्दौ इन्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते।

उदा०-फलानि गृह्णातीति फलेग्रहिर्वृक्षः। आत्मानं बिभर्तीति आत्मम्भरिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(फलेग्रहिः) फलेग्रहि (च) और (आत्मम्भरिः) आत्मम्भरि शब्द (इन्) इन्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

उदा०-फलानि गृह्णातीति फलेग्रहिर्वृक्षः। फलों को ग्रहण करनेवाला अर्थात् फलदार वृक्ष। आत्मानं बिभर्तीति आत्मम्भरिः। केवल अपना ही धारण-पोषण करनेवाला अपरोपकारी मनुष्य।

सिद्धि-(१) फलेग्रहिः। यहां 'फल' कर्म उपपद होने पर 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'इन्' प्रत्यय है। 'फल' शब्द में एकार निपातित है।

(२) आत्मम्भरिः। यहां आत्मा कर्म उपपद होने पर 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'इन्' प्रत्यय है। 'आत्मा' शब्द को 'मुम्' आगम निपातित है।

इन्–

(४) छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्।२७।

प०वि०-छन्दसि ७।१ वन-सन-रक्षि-मथाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-वनश्च सनश्च रक्षिश्च मथ् च ते वनसनरक्षिमथः, तेषाम्-वनसनरक्षिमथाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, इन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कर्मण्युपपदे वनसनरक्षिमथिभ्यो धातुभ्य इन्।

अर्थः-छन्दसि विषये कर्मणि कारके उपपदे वनसनरक्षिमथिभ्यो धातुभ्यः पर इन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(वन) ब्रह्म वनतीति ब्रह्मवनिः। क्षत्रं वनतीति क्षत्रवनिः। **'ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि'** (यजु० १।१७)। **(सन)** गां सनतीति गोसनिः। **'गोसनिः'** (यजु० ८।१२)। **(रक्षि)** पन्थानं रक्षतीति पथिरक्षिः। **'यौ पथिरक्षी श्वानौ'** (अथर्व० ८।१।९)। **(मथ्)** हविर्मथतीति हविर्मथिः। **'हविर्मथीनाम्'** (ऋ० ७।१०४।२१)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (वनसनरक्षिमथाम्) वन्, सन्, रक्ष, मथ (धातोः) धातुओं से परे (इन्) इन् प्रत्यय होता है।

उदा०-(वन) ब्रह्म वनतीति ब्रह्मवनिः। ब्राह्मण=वेदज्ञ विद्वान् की सेवा करनेवाला। क्षत्रं वनतीति क्षत्रवनिः। राजा की सेवा करनेवाला। 'ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि' (यजु० १।१७)। (सन) गां सनतीति गोसनिः। गाय की सेवा करनेवाला। 'गोसनिः' (यजु० ८।१२)। (रक्षि) पन्थानं रक्षतीति पथिरक्षिः। मार्ग का पालन करनेवाला। 'यो पथिरक्षी श्वानौ' (अथर्व० ८।१।९)। (मथ्) हविर्मथतीति हविर्मथिः। हवि का विलोडन करनेवाला। 'हविर्मथीनाम्' (ऋ० ७।१०४।२१)।

सिद्धि-(१) ब्रह्मवनिः। यहां 'ब्रह्म' कर्म उपपद होने पर 'वन सम्भक्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र 'इन्' प्रत्यय है।

(२) गोसनिः। यहां 'गौ' कर्म उपपद होने पर 'षण सम्भक्तौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) पथिरक्षिः। यहां 'पथिन्' कर्म उपपद होने पर 'रक्ष पालने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(४) हविर्मथिः। 'हविः' कर्म उपपद होने पर 'मथे विलोडने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

खश्-

(१) एजेः खश्।२८।

प०वि०-एजेः ५।१ खश् १।१।

अनु०-कर्मणि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे एजेर्धातोः खश्।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे णिजन्ताद् एजि-धातोः परः खश् प्रत्ययो भवति। 'एजेः' इति **'एजृ कम्पने'** इत्यस्य णिजन्तनिर्देशः।

उदा०-(एजि) अङ्गम् एजयतीति अङ्गमेजयः। जनान् एजयतीति जनमेजयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (एजेः) णिजन्त एजृ (धातोः) धातु से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है।

उदा०-(एजि) अङ्गम् एजयतीति अङ्गमेजयः। अङ्ग को कंपानेवाला (वातरोग)। जनान् एजयतीति जनमेजयः। दुष्टजनों को कंपानेवाला (धार्मिक राजा)। हस्तिनापुर का एक प्रसिद्ध राजा।

सिद्धि-अङ्गमेजयः। यहां 'अङ्ग' कर्म उपपद होने पर णिजन्त 'एजृ कम्पने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से खश् प्रत्यय। खश् प्रत्यय के 'शित्' होने से 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' (३।४।११३) से सार्वधातुक संज्ञा, 'कर्तरि शप्' (३।१।६२) से शप्-प्रत्यय होता है। 'खश्' प्रत्यय के 'खित्' होने से 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६७) से 'अङ्ग' शब्द को 'मुम्' आगम होता है। ऐसे ही-जनमेजयः।

खश्-

(२) नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः।२६।

प०वि०-नासिका-स्तनयोः ७।२ ध्मा-धेटोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-नासिका च स्तनं च ते नासिकास्तने, तयोः-नासिकास्तनयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पाणिनिमुनिवचनात् स्तनशब्दस्य **'अल्पाच्तरम्'** (२।२।३४) इति न पूर्वनिपातः। ध्माश्च धेट् च तौ ध्माधेटौ; तयोः-ध्माधेटोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, खश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नासिकास्तनयोः कर्मणोरुपपदयो ध्मधिटिभ्यां धातुभ्यां खश्।

अर्थः-नासिकास्तनयोः कर्मणोरुपपदयोर्ध्मधिटिभ्यां धातुभ्यां परः खश् प्रत्ययो भवति। यथासंख्यमत्र नेष्यते नासिकास्तनसमासे लक्षणव्यभिचारात्। नासिकायां ध्माधेटिभ्यां, स्तने च धेटः खश् प्रत्ययो विधीयते।

उदा०-(नासिका) नासिकां धमतीति नासिकन्धमः। नासिकां धयतीति नासिकन्धयः। स्त्रियाम्-नासिकन्धयी। **(स्तनम्)** स्तनं धयतीति स्तनन्धयः। स्त्रियाम्-स्तनन्धयी।

आर्यभाषा-अर्थ-(नासिकास्तनयोः) नासिका और स्तन (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (ध्माधेटोः) ध्मा और धेट् (धातोः) धातुओं से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है। यहां ***'नासिकास्तनयोः'*** *पद के समास में लक्षण व्यभिचार होने से यथासंख्य प्रत्ययविधि नहीं होती है। नासिका उपपद होने पर ध्मा और धेट् धातु से और स्तन उपपद होने पर धेट् धातु से खश् प्रत्यय किया जाता है।*

*उदा०-(नासिका) **नासिकां धमतीति नासिकन्धमः।** नासिका को धमनेवाला (बजानेवाला)। **नासिकां धयतीति नासिकन्धयः।** नासिका से दुग्ध आदि पीनेवाला। **स्त्रीलिङ्ग में-नासिकन्धयी।** (स्तन) **स्तनं धयतीति स्तनन्धयः।** स्तन पीनेवाला (बालक)। **स्त्रीलिङ्ग में-स्तनन्धयी।** स्तन पीनेवाली (बालिका)।*

सिद्धि-(१) नासिकन्धमः । यहां नासिका कर्म उपपद होने पर 'ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'खश्' प्रत्यय है। 'खश्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से 'कर्तरि शप्' (३।१।६२) से 'शप्' प्रत्यय होता है। 'खश्' प्रत्यय के 'खित्' होने से 'खित्यनव्ययस्य' (६।३।६६) से 'नासिका' को ह्रस्व तथा 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६७) से नासिका को 'मुम्' आगम होता है। 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'ध्मा' के स्थान में 'धम' आदेश होता है।

(२) नासिकन्धयः । यहां 'नासिका' कर्म उपपद होने पर 'धेट् पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। 'धेट्' धातु के 'टित्' होने से स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-नासिकन्धयी । शेष पूर्ववत् ।

(३) स्तनन्धयः । स्तनन्धयी । यहां 'स्तन' कर्म उपपद होने पर पूर्वोक्त 'धेट्' धातु से पूर्ववत् ।

खश्-

(३) नाडीमुष्ट्योश्च ।३०।

प०वि०-नाडी-मुष्ट्योः ७।२ च अव्ययपदम् ।

स०-नाडी च मुष्टिश्च ते नाडीमुष्टी, तयोः नाडीमुष्ट्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पाणिनिमुनिवचनाद् मुष्टिशब्दस्य **'द्वन्द्वे घि'** (२।२।३२) इति न पूर्वनिपातः ।

अनु०-कर्मणि खश्, ध्माधेटोरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः-नाडीमुष्ट्योश्च कर्मणोरुपपदयोर्ध्माधेटिभ्यां धातुभ्यां खश् ।

अर्थः-नाडीमुष्टयोरपि कर्मणो रुपपदयोर्ध्माधेटिभ्यां धातुभ्यां परः खश्प्रत्ययो भवति । यथासंख्यमत्र नेष्यते नाडीमुष्टिसमासे लक्षणव्यभिचारात् । उभयोरुपपदयोरुभाभ्यां धातुभ्यां खश्प्रत्ययो विधीयते ।

उदा०-**(नाडी)** नाडीं धमतीति नाडिन्धमः । नाडीं धमतीति नाडिन्धयः **(मुष्टिः)** मुष्टिं धमतीति मुष्टिन्धमः । मुष्टिं धयतीति मुष्टिन्धयः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(नाडीमुष्ट्योः) नाडी और मुष्टि (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (च) भी (ध्माधेटोः) ध्मा और धेट् (धातोः) धातुओं से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है। यहां 'नाडीमुष्ट्योः' पद के समास में लक्षणव्यभिचार होने से यथासंख्य प्रत्ययविधि नहीं होती है, दोनों उपपद होने पर दोनों धातुओं से खश् प्रत्यय किया जाता है।

उदा०-(नाडी) नाडीं धमतीति नाडिन्धमः। नाडी (नाली) बांसुरी बजानेवाला। नाडीं धयतीति नाडिन्धयः। नाली पीनेवाला (सुवर्णकार)। (मुष्टि) मुष्टिं धमतीति मुष्टिन्धमः। अपनी मुट्ठी को बजानेवाला (कलाकार)। मुष्टिं धयतीति मुष्टिन्धयः। अपनी मुट्ठी को चूमनेवाला (बालक)।

सिद्धि-नाडिन्धमः, नाडिन्धयः पदों को 'नासिकन्धमः' आदि के समान सिद्ध करें।

खश्–

(४) उदि कूले रुजिवहोः।३१।

प०वि०-उदि ७।१ कूले ७।१ रुजि-वहोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-रुजिश्च वह् च तौ रुजिवहौ, तयोः-रुजिवहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, खश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कूले कर्मणि उदि चोपपदे रुजिवहिभ्यां धातुभ्यां खश्।

अर्थः-कूले कर्मणि कारके उत्-उपसर्गे चोपपदे रुजिवहिभ्यां धातुभ्यां परः खश् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(रुजि) कूलम् उद्रुजतीति कूलमुद्रुजः (रथः)। कूलम् उद्वहतीति कूलमुद्वहः (जलप्रवाहः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(कूले) कूल कर्म कारक और (उदि) उत् उपसर्ग उपपद होने पर (रुजिवहोः) रुज् और वह् (धातोः) धातु से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है।

उदा०-(रुज्) कूलम् उद्रुजतीति कूलमुद्रुजः (रथः)। किनारे को तोड़नेवाला (रथ)। कूलम् उद्वहतीति कूलमुद्वहः (जलप्रवाहः)। किनारे को बहा ले जानेवाला (जलप्रवाह)।

सिद्धि-कूलमुद्रुजः। यहां 'कूल' कर्म और उत् उपसर्ग उपपद होने पर 'रुजो भङ्गे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। 'खश्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय होता है। 'श' प्रत्यय के 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'ङित्' होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'रुज्' को प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है। 'खश्' प्रत्यय के 'खित्' होने से 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६७) से कूल उपपद को 'मुम्' आगम होता है।

(२) कूलमुद्वहः। यहां कूल कर्म और उत् उपसर्ग उपपद होने पर 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'खश्' प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६२) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत्।

खश्–

(५) वहाभ्रे लिहः।३२।

प०वि०–वहाभ्रे ७।१ लिहः ५।१।

स०–वहश्च अभ्रश्च एतयोः समाहारो वहाभ्रम्, तस्मिन्–वहाभ्रे (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, खश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–वहाभ्रे कर्मण्युपपदे लिहो धातोः खश्।

अर्थः–वहेऽभ्रे च कर्मणि कारके उपपदे लिह्–धातोः परः खश् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(वहः) वहं लेढीति वहंलिहः (गौः)। **(अभ्रः)** अभ्रं लेढीति अभ्रंलिहः (वायुः)।

आर्यभाषा-अर्थ– *(वहाभ्रे) वह और अभ्र (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (लिहः) लिह धातु से (खश्) खश् प्रत्यय होता है।*

उदा०–(वह) वहं लेढीति वहंलिहः (गौः)। वह=कंधे को चाटनेवाला (बैल)। (अभ्र) अभ्रं लेढीति अभ्रंलिहः (वायुः)। बादल को छूनेवाला (वायु)।

सिद्धि– *वहंलिहः। यहां 'वह' कर्म उपपद होने पर 'लिह आस्वादने' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। 'खश्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से 'कर्तरि शप्' (३।१।६२) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।६२) से 'शप्' का 'लुक्' हो जाता है। 'खश्' प्रत्यय के 'खित्' होने से 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६७) से 'वह' उपपद को 'मुम्' आगम होता है। ऐसे ही–अभ्रंलिहः।*

खश्–

(६) परिमाणे पचः।३३।

प०वि०–परिमाणे ७।१ पचः ५।१।

अनु०–कर्मणि, खश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–परिमाणे कर्मण्युपपदे पचो धातोः खश्।

अर्थः-परिमाणवाचिनि कर्मणि कारके उपपदे पच-धातोः परः खश् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रस्थं पचतीति प्रस्थम्पचा स्थाली। द्रोणं पचतीति द्रोणम्पचः कटाहः। खारीं पचतीति खारिम्पचः कटाहः।

आर्यभाषा-अर्थ-(परिमाणे) परिमाणवाची (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (पचः) पच् (धातोः) धातु से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**प्रस्थं पचतीति प्रस्थम्पचा स्थाली।** प्रस्थ=एक सेर पकानेवाली पतीली। **द्रोणं पचतीति द्रोणम्पचः कटाहः।** एक द्रोण (धौण २० सेर) पकानेवाला कढाहा। **खारीं पचतीति खारिम्पचः कटाहः।** एक खारी (मण) पकानेवाला कढाहा।*

*सिद्धि-**प्रस्थम्पचः।** पूर्ववत्।*

खश्-

(७) मितनखे च।३४।

प०वि०-मितनखे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-मितं च नखं च एतयोः समाचारो मितनखम्, तस्मिन्-मितनखे (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, खश्, पच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मितनखे च कर्मण्युपपदे पचो धातोः खश्।

अर्थः-मिते नखे च कर्मणि कारके उपपदे पच-धातोः परः खश् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**मितम्**) मितं पचतीति मितम्पचा ब्राह्मणी। (**नखम्**) नखं पचतीति नखम्पचा यवागूः।

आर्यभाषा-अर्थ-(मितनखे) मित और नख (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (पचः) पच् (धातोः) धातु से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(मित) **मितं पचतीति मितम्पचा ब्राह्मणी।** मात्रा में पकानेवाली ब्राह्मणी। (नख) **नखं पचतीति नखम्पचा यवागूः।** नाखून को जलानेवाली गर्म लापसी।*

*सिद्धि-**मितम्पचा।** यहां 'मित' कर्म उपपद होने पर 'डुपचष् पाके' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'शप्' विकरण प्रत्यय और 'मित' को 'मुम्'*

आगम होता है। स्त्रीलिङ्ग में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-नखम्पचा।

खश्-

(७) विध्वरुषोस्तुदः।३५।

प०वि०-विधु-अरुषोः ७।२ तुदः ५।१।

स०-विधुश्च अरुश्च ते विध्वरुषी, तयोः-विध्वरुषोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि खश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-विध्वरुषोः कर्मणोरुपपदयोस्तुदो धातोः खश्।

अर्थः-विधावरुषि च कर्मणि कारके उपपदे तुद-धातोः परः खश् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(विधुः) विधुं तुदतीति विधुन्तुदः। **(अरुः)** अरुषं तुदतीति अरुन्तुदः।

आर्यभाषा-अर्थ-(विध्वरुषोः) विधु और अरुः (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (तुदः) तुद् (धातोः) धातु से (खश्) खश् प्रत्यय होता है।

उदा०-(विधु) विधुं तुदतीति विधुन्तुदः। विधु=चन्द्रमा को आच्छादित करनेवाला (राहुः)। यहां तुद् धातु आच्छादन अर्थ में है व्यथा अर्थ सम्भव न होने से "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" (महाभाष्यम्)। (अरुः) अरुषं तुदतीति अरुन्तुदः। मर्मस्थल को पीड़ित करनेवाला-रोग।

सिद्धि-(१) विधुन्तुदः। यहां विधु कर्म उपपद होने पर 'तुद व्यथने' (तुदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। 'खश्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय होता है। 'श' प्रत्यय के 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'ङित्' होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है। पूर्ववत् 'मुम्' आगम होता है।

(२) अरुन्तुदः। यहां 'अरुष्' कर्म उपपद होने पर पूर्वोक्त 'तुद' धातु से इस सूत्र से खश् प्रत्यय है। 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६५) से 'मुम्' आगम, 'मिदचोऽन्त्यात् परः' (१।१।४६) से अरुष् के उ से परे होता है। 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से 'स्' का लोप, 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से 'म्' को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण (न्) होता है।

खश्–

(८) असूर्यललाटयोर्दृशितपोः ।३६।

प०वि०–असूर्य-ललाटयोः ७।२ दृशि-तपोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०–असूर्यश्च ललाटं च ते असूर्यललाटे, तयोः–असूर्यललाटयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। दृशिश्च तप् च तौ दृशितपौ, तयोः–दृशितपोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि खश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–असूर्यललाटयोः कर्मणोरुपपदयोर्दृशितपिभ्यां धातुभ्यां खश्।

अर्थः–असूर्ये ललाटे च कर्मणि कारके उपपदे यथासंख्यं दृशितपिभ्यां धातुभ्यां परः खश् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(असूर्यः)** सूर्यं न पश्यन्तीति असूर्यम्पश्या राजदाराः। **(ललाटम्)** ललाटं तपतीति ललाटन्तप आदित्यः।

आर्यभाषा-अर्थ–(असूर्यललाटयोः) असूर्य और ललाट (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (दृशितपोः) दृशि और तप् (धातोः) धातु से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है।

उदा०–(असूर्यः) सूर्यं न पश्यन्तीति असूर्यंपश्या राजदाराः। सूर्य को न देखनेवाली राजा की पत्नियां। यह वचन गुप्तिपरक है कि वे ऐसे गुप्तरूप से रहती हैं कि अनिवार्य दर्शनवाले सूर्य को भी नहीं देखती हैं। (ललाटं) ललाटं तपतीति ललाटन्तप आदित्यः ललाट (मस्तक) को तपानेवाला तेज सूर्य।

सिद्धि–(१) असूर्यंपश्याः। यहां असूर्य कर्म उपपद होने पर 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। 'खश्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से 'कर्तरि शप्' (३।१।६२) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'दृश्' के स्थान में 'पश्य' आदेश होता है। पूर्ववत् 'मुम्' आगम है। सूर्यं न पश्यन्तीति असूर्यम्पश्याः। यहां 'नञ्' का सम्बन्ध पश्यति क्रिया के साथ होने से असमर्थसमास है।

(२) ललाटन्तपः। यहां ललाट कर्म उपपद होने पर 'तप सन्तापे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

खश् (निपातनम्)–

(६) उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च।३७।

प०वि०–उग्रम्पश्य–इरम्मद–पाणिन्धमा: १।३ च अव्ययपदम्।

स०–उग्रम्पश्यश्च इरम्मदश्च पाणिन्धमश्च ते–उग्रम्पश्येरम्मद–पाणिन्धमा:। (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)

अनु०–खश् इत्यनुवतति।

अर्थः–उग्रम्पश्य–इरम्मद–पाणिन्धमा: शब्दा अपि खश्–प्रत्ययन्ता निपात्यन्ते।

उदा०–उग्रं पश्यतीति उग्रम्पश्य:। इरया माद्यतीति इरम्मद:। पाणयो ध्मायन्ते येषु ते पाणिन्धमा: पन्थान:।

आर्यभाषा-अर्थ-(उग्रम्पश्य०) उग्रम्पश्य, इरम्मद, पाणिन्धम शब्द (च) भी (खश्) खश्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

*उदा०–**उग्रं पश्यतीति उग्रम्पश्य:।** क्रूर दृष्टिवाला। **इरया माद्यतीति इरम्मद:।** इरा=जल से समृद्ध होनेवाला वडवानल। यहां 'मद' धातु का अर्थ बढ़ना है, हर्ष सम्भव न होने से "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" (महाभाष्यम्)। **पाणयो ध्मायन्ते येषु ते पाणिन्धमा: पन्थान:।** वे अन्धकारपूर्ण मार्ग जिनमें जानेवाले लोग कुछ भी दिखाई न देने के कारण हथेली बजाकर चलते हैं, ध्वनि को सुनते हुये।*

*सिद्धि-(१) **उग्रम्पश्यं:।** यहां 'उग्र' कर्म उपपद होने पर 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'दृश्' के स्थान में 'पश्य' आदेश होता है। 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से अण् प्रत्यय प्राप्त था, निपातन से 'खश्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **इरम्मद:।** यहां इरा कर्म उपपद होने पर 'मदी हर्षे' (दि०प०) से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। 'दिवादिभ्य: श्यन्' (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय था, निपातन से 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है।*

*(३) **पाणिन्धम:।** यहां पाणि कर्म उपपद होने पर 'ध्मा शब्दाग्निसंयोगयो:' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'पाघ्राध्मा०' (३।३।७८) से 'ध्मा' के स्थान में 'धम:' आदेश होता है। यहां अधिकरण कारक में 'करणाधिकरणयोश्च' (३।३।११७) से 'ल्युट्' प्रत्यय प्राप्त था, निपातन से 'खश्' प्रत्यय होता है।*

खच्–

(१) प्रियवशे वदः खच्।३८।

प०वि०–प्रिय-वशे ७।१ वदः ५।१ खच् १।१।

स०–प्रियश्च वशश्च एतयोः समाहारः प्रियवशम्, तस्मिन्-प्रियवशे (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–प्रियवशे कर्मण्युपपदे वदो धातोः खच्।

अर्थः–प्रिये वशे च कर्मणि कारके उपपदे वद्-धातोः परः खच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**प्रियः**) प्रियं वदतीति प्रियंवदः। (**वशः**) वशं वदतीति वशंवदः।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रियवशे) प्रिय और वश (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (वदः) वद् (धातोः) धातु से परे (खच्) खच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(प्रिय) **प्रियं वदतीति प्रियंवदः।** प्रिय वचन बोलनेवाला (मधुरभाषी)। **वशं वदतीति वशंवदः।** अनुकूल वचन बोलनेवाला (आज्ञाकारी)।*

*सिद्धि-**प्रियंवदः।** यहां प्रिय कर्म उपपद होने पर 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। 'खच्' प्रत्यय के 'खित्' होने से 'अरुर्द्विषजन्तस्य मुम्' (६।३।६५) से 'प्रिय' को 'मुम्' आगम होता है। ऐसे ही-**वशंवदः।***

खच्–

(२) द्विषत्परयोस्तापेः।३६।

प०वि०–द्विषत्-परयोः ७।२ तापेः ५।१।

स०–द्विषन् च परश्च तौ द्विषत्परौ, तयोः-द्विषत्परयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, खच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–द्विषत्परयोः कर्मणोरुपपदयोस्तापेर्धातोः खच्।

अर्थः–द्विषति परे च **कर्मणि कारके उपपदे तापि-धातोः परः खच् प्रत्ययो भवति।**

उदा०-(द्विषत्) द्विषन्तं तापयतीति द्विषन्तपः । (परः) परं तापयतीति परन्तपः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्विषत्परयोः) द्विषत् और पर (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (तापेः) तापि (धातोः) धातु से परे (खच्) खच् प्रत्यय होता है।

उदा०-(द्विषत्) द्विषन्तं तापयतीति द्विषन्तपः । द्वेष करनेवाले (शत्रु) को सन्ताप देनेवाला। (पर) परं सन्तापयतीति परन्तपः । पर=शत्रु को सन्ताप देनेवाला।

सिद्धि-(१) द्विषन्तपः । यहां द्विषत् कर्म उपपद होने पर णिजन्त 'तप सन्तापे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप और 'खचि ह्रस्वः' (६।४।९४) से 'ताप्' को ह्रस्व (तप्) होता है। 'खच्' प्रत्यय के 'खित्' होने से 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६५) से 'द्विषत्' उपपद को 'मुम्' आगम होता है और वह 'मित्' होने से 'मिदचोऽन्त्यात् परः' (१।१।४६) से अन्त्य 'अच्' से परे (द्विष मुम् त्) होता है। 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से 'त्' का लोप, 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से 'म्' को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण (न्) होता है।

(२) परन्तपः । पर कर्म उपपद होने पर पूर्वोक्त तप धातु से पूर्ववत्।

खच्-

(३) वाचि यमो व्रते ।४०।

प०वि०-वाचि ७।१ यमः ५।१ व्रते ७।१ ।

अनु०-कर्मणि खच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वाचि कर्मण्युपपदे यमो धातोः खच् व्रते।

अर्थः-वाचि कर्मणि कारके उपपदे यम्-धातोः परः खच् प्रत्ययो भवति व्रते गम्यमाने।

उदा०-वाचं यच्छतीति वाचंयमः (व्रती)।

आर्यभाषा-अर्थ-(वाचि) वाक् शब्द (कर्मणि) कर्म कारक में उपपद होने पर (यमः) यम् (धातोः) धातु से (खच्) खच् प्रत्यय होता है (व्रते) यदि वहां शास्त्रानुसार व्रत रखना अर्थ प्रकट हो।

उदा०-(वाक्) वाचं यच्छतीति वाचंयमः । वाणी को शास्त्रविधि से नियम में रखनेवाला (व्रती)।

सिद्धि-वाचंयमः । यहां वाक् कर्म उपपद होने पर 'यम उपरमे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। 'वाचंयमपुरन्दरौ च' (६।३।६७) से 'मुम्' आगम का अभाव और 'वाक्' शब्द अम्-प्रत्ययान्त (वाचम्) निपातित है।

खच्–

(४) पूःसर्वयोर्दारिसहोः ।४१।

प०वि०–पूः सर्वयोः ७ ।२ दारि-सहोः ६ ।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०–पूश्च सर्वश्च तौ पूःसर्वौ, तयोः-पूःसर्वयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। दारिश्च सह् च तौ दारिसहौ, तयोः-दारिसहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, खच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–पूःसर्वयोः कर्मणोरुपपदयोर्दारिसहिभ्यां धातुभ्यां खच्।

अर्थः–पूःसर्वयोः कर्मकारकयोरुपपदयोर्यथासंख्यं दारिसहिभ्यां धातुभ्यां परः खच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(पूः) पुरं दारयतीति पुरन्दरः (इन्द्रः)। (सर्वः) सर्वं सहते इति सर्वंसहः (राजा)।

आर्यभाषा-अर्थ–(पूःसर्वयोः) पुर् और सर्व (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर यथासंख्य (दारिसहोः) णिजन्त दारि और सह् (धातोः) धातुओं से परे (खच्) खच्-प्रत्यय होता है।

उदा०(पुर्) पुरं दारयतीति पुरन्दरः। किले को तोड़नेवाला (इन्द्र)। (सह) सर्वं सहते इति सर्वंसहः। सब कार्य सिद्ध करनेवाला (राजा)।

सिद्धि–(१) पुरन्दरः। यहां 'पुर्' कर्म उपपद होने पर णिजन्त 'दॄ विदारणे' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। 'णेरनिटि' (६ ।४ ।५१) से 'णिच्' का लोप और 'खचि ह्रस्वः' (६ ।४ ।९४) से 'दार्' को ह्रस्व (दर्) होता है। 'वाचंयमपुरन्दरौ' (६ ।३ ।६७) से 'मुम्' आगम का अभाव और 'पुर्' शब्द अम्-प्रत्ययान्त (पुरम्) निपातित है।

(२) सर्वंसहः। यहां सर्व कर्म उपपद होने पर 'षह मर्षणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। 'खच्' प्रत्यय के खित् होने से 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६ ।३ ।६५) से 'सर्व' उपपद को 'मुम्' आगम होता है। यहां 'सह' धातु का अर्थ सिद्ध करना है, सहन करना नहीं–"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" (महाभाष्यम्)।

खच्–

(५) सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ।४२।

प०वि०–सर्व-कूल-अभ्र-करीषेषु ७ ।३ कषः ५ ।१।

स०–सर्वश्च कूलं च अभ्रश्च करीषश्च ते-सर्वकूलाभ्रकरीषाः, तेषु सर्वकूलाभ्रकरीषेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, खश् इति चानुवर्तते।

अर्थः-सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कर्मकारकेषु उपपदेषु कष्-धातोः परः खच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**सर्वः**) सर्वं कषतीति सर्वङ्कषः (खलः)। (**कूलम्**) कूलं कषतीति कूलङ्कषा (नदी)। (**अभ्रः**) अभ्रं कषतीति अभ्रङ्कषो गिरिः। (**करीषः**) करीषं कषतीति करीषङ्कषा (वात्या)।

आर्यभाषा-अर्थ-(सर्वकूलाभ्रकरीषेषु) सर्व, कूल, अभ्र, करीष (कर्मणि) कर्मकारक उपपद होने पर (कषः) कष् (धातोः) धातु से परे खच्-प्रत्यय होता है।

*उदा०-(सर्व) सर्वं कषतीति **सर्वङ्कषः**। सबको पीड़ा देनेवाला (दुष्ट)। (कूल) कूलं कषतीति **कूलङ्कषा**। कूल=तट को तोड़नेवाली (नदी)। 'कष्' धातु हिंसार्थक है। यहां वह तोड़ने अर्थ में है, हिंसा अर्थ सम्भव न होने से **"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति"** (महाभाष्यम्)। (अभ्र) अभ्रं कषतीति **अभ्रंकषः**। बादल को छूनेवाला (पर्वत)। यहां पूर्ववत् 'कष्' धातु का अर्थ छूना है। (करीष) करीषं कषतीति **करीषङ्कषा**। करीष=सूखे गोबर (करस) को उड़ा ले जानेवाली (वात्या=आंधी)। यहां पूर्ववत् 'कष्' धातु का अर्थ उड़ा ले जाना है।*

*सिद्धि-(१) **सर्वङ्कषः**। यहां 'सर्व' कर्म उपपद होने पर 'कष' हिंसार्थः' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'मुम्' आगम होता है। ऐसे ही-**कूलङ्कषा** आदि।*

*विशेष-पाणिनीय धातुपाठ में 'कष' धातु हिंसार्थक पढी है। **"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति"** (महाभाष्यम्) के प्रमाण से यहां 'कष' धातु के हिंसा अर्थ से भिन्न अर्थ भी प्रसङ्गवश होते हैं। पाणिनीय धातुपाठ में दर्शाये गये अर्थ केवल उदाहरणमात्र हैं। (बहुलमेतन्निदर्शनम्, चुरादिः)।*

खच्-

(६) मेघर्तिभयेषु कृञः।४३।

प०वि०-मेघ-ऋति-भयेषु ७।३ कृञः ५।१।

स०-मेघश्च ऋतिश्च भयं च तानि-मेघर्तिभयानि, तेषु-मेघर्तिभयेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, खच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मेघर्तिभयेषु कर्मसूपपदेषु कृञो धातोः खच्।

अर्थः-मेघर्तिभयेषु कर्मकारकेषु उपपदेषु कृञ्-धातोः परः खच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**मेघः**) मेघं करोतीति मेघङ्करः। (**ऋतिः**) ऋतिं करोतीति ऋतिङ्करः। (**भयम्**) भयं करोतीति भयङ्करः।

आर्यभाषा-अर्थ-(मेघर्तिभयेषु) मेघ, ऋति, भय (कर्मणि) कर्म कारक में उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से (खच्) खच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(मेघ) **मेघं करोतीति मेघङ्करः।** मेघ को उत्पन्न करनेवाला (यज्ञ)। (ऋति) **ऋतिं करोतीति ऋतिङ्करः।** घृणा करनेवाला। (भय) **भयं करोतीति भयङ्करः।** भय उत्पन्न करनेवाला।*

*सिद्धि-**मेघङ्करः।** यहां मेघ कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। 'खच्' प्रत्यय के 'खित्' होने से '**अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्**' (६।३।६७) से मेघ उपपद को 'मुम्' आगम होता है। ऐसे ही-**ऋतिङ्करः** और **भयङ्करः।***

खच्+अण्-

(७) क्षेमप्रियमद्रेऽण् च।४४।

प०वि०-क्षेम-प्रिय-मद्रे ७।१ अण् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-क्षेमं च प्रियं च मद्रं च एतेषां समाहारः क्षेमप्रियमद्रम्, तस्मिन्-क्षेमप्रियमद्रे (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, खच्, कृञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्षेमप्रियमद्रे कर्मण्युपपदे कृञो धातोः खच् अण् च।

अर्थः-क्षेमप्रियमद्रेषु कर्मकारकेषु उपपदेषु कृञ्-धातोः परः खच् अण् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**क्षेमम्**) क्षेमं करोतीति क्षेमङ्करः, क्षेमकारश्च। (**प्रियम्**) प्रियं करोतीति प्रियङ्करः, प्रियकारश्च। (**मद्रम्**) मद्रं करोतीति मद्रङ्करः, मद्रकारश्च।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्षेमप्रियमद्रेषु) क्षेम, प्रिय, मद्र (कर्मणि) इन कर्म कारकों के उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (खच्) खच् (च) और (अण्) अण् प्रत्यय होता है।

उदा०-(क्षेम) क्षेमं करोतीति क्षेमङ्करः, क्षेमकारश्च। नीरोग/सुख करनेवाला। (प्रिय) प्रियं करोतीति प्रियङ्करः, प्रियकारश्च। प्रिय कार्य करनेवाला। (मद्र) मद्रं करोतीति मद्रङ्करः, मद्रकारश्च। मद्र राज्य की स्थापना करनेवाले सैनिक। (पा०का० भारतवर्ष ७२)

सिद्धि-(१) क्षेमङ्करः। यहां क्षेम कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। क्षेम उपपद को पूर्ववत् 'मुम्' आगम होता है।

(२) क्षेमङ्कारः। यहां क्षेम उपपद होने पर पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'अण्' प्रत्यय है। 'अण्' प्रत्यय के णित् होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' को वृद्धि (कार्) होती है।

खच्-

(८) आशिते भुवः करणभावयोः।४५।

प०वि०-आशिते ७।१ भुवः ५।१ करण-भावयोः ७।२।

स०-करणं च भावश्च तौ करणभावौ, तयोः-करणभावयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अर्थवशात् सुपि इत्यनुवतति, न कर्मणि। खच् इति चानुवतति।

अन्वयः-आशिते सुप्युपपदे भुवो धातोः खच् करणभावयोः।

अर्थः-आशिते सुबन्ते उपपदे भू-धातोः परः खच् प्रत्ययो भवति, करणे कारके भावे चार्थे।

उदा०-(करणम्) आशितः=तृप्तो भवति येन सः-आशितम्भव ओदनः। **(भावः)** आशितस्य भवनमिति आशितम्भवं वर्तते।

आर्यभाषा-अर्थ-(आशिते) आशित (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (भुवः) भू (धातोः) धातु से (खच्) खच् प्रत्यय होता है (करणभावयोः) करण कारक और भाव अर्थ में।

उदा०-(करण) आशितः=तृप्तो भवति येन सः-आशितम्भव ओदनः। वह ओदन (भात) जिससे भोक्ता तृप्त हो जाता है। (भाव) आशितस्य भवनमिति आशितम्भवं वर्तते। अब तृप्त होने की क्रिया चल रही है (भोजन चल रहा है)।

सिद्धि-आशितम्भवः। यहां 'आशित' कर्म उपपद होने पर 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। 'आशित' उपपद को पूर्ववत् 'मुम्' आगम होता है।

खच्–

(६) संज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदमः।४६।

प०वि०–संज्ञायाम् ७।१ भृ-तृ-वृ-जि-धारि-सहि-तपि-दमः ५।१।

स०–भृश्च तृश्च वृश्च जिश्च धारिश्च सहिश्च तपिश्च दम् च एतेषां समाहारो भृ०दम्, तस्मात्-भृ०दमः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, सुपि चेत्युभयमनुवर्तते। संज्ञावशाच्च यथासम्भवं सम्बध्यते। खच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मणि, सुपि चोपपदे भृ०दमिभ्यो धातुभ्यः खच् संज्ञायाम्।

अर्थः–कर्मणि सुबन्ते चोपपदे भृतृवृजिधारिसहितपिदमिभ्यो धातुभ्यः परः खच् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–(भृ) विश्वं बिभर्तीति विश्वम्भरा (वसुन्धरा)। (तृ) रथेन तरतीति रथन्तरम् (सामगानम्)। (वृ) पतिं वृणुते इति पतिम्वरा (कन्या)। (जि) शत्रुं जयतीति शत्रुञ्जयः (हस्ती)। (धारि) युगं धारयतीति युगन्धरः (पर्वतः)। (सहि) शत्रुं सहते इति शत्रुंसहः (वीरः)। (तपि) शत्रुं तपतीति शत्रुन्तपः (वीरः)। (दम्) अरिं दाम्यतीति अरिन्दमः (योद्धा)।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म और (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (भृ०दमः) भृ, तृ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि, दम् इन (धातोः) धातुओं से परे (खच्) खच् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ प्रकट हो।

उदा०-(भृ) विश्वं बिभर्तीति विश्वम्भरा (वसुन्धरा)। सबका धारण-पोषण करनेवाली वसुन्धरा=पृथिवी। (तृ) रथेन तरतीति रथन्तरम् (साम)। रथ से सन्तरण करनेवाला सामगान विशेष। (वृ) पतिं वृणुते इति पतिम्वरा कन्या। पति का वरण (चुनाव) करनेवाली कन्या। (जि) शत्रुं जयतीति शत्रुञ्जयः (हस्ती)। शत्रु को जीतनेवाला हाथी। (धारि) युगं धारयतीति युगन्धरः (पर्वत)। युग=कालविशेष को धारण करनेवाला पर्वत। (सहि) शत्रुं सहते इति शत्रुंसहः। शत्रु का मर्षण (विनाश) करनेवाला वीर। (तपि) शत्रुं तपतीति शत्रुन्तपः (वीरः)। शत्रु को सन्तप्त करनेवाला वीर। (दम्) अरिं दाम्यतीति अरिन्दमः (योद्धा)। अरि=शत्रु का दमन करनेवाला योद्धा।

सिद्धि-विश्वम्भरा। यहां 'विश्व' कर्म उपपद होने पर 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय होता है। 'खच्' प्रत्यय के खित् होने से पूर्ववत् 'मुम्' आगम होता है। ऐसे ही-रथन्तरम् आदि।

खच्–

(१०) गमश्च ।४७।

प०वि०–गमः ५ ।१ च अव्ययपदम् ।

अनु०–कर्मणि, खच्, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते ।

अर्थः–कर्मणि कारके उपपदे गम्-धातोः परः खच् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये ।

उदा०–सुतं गच्छतीति सुतङ्गमः पुरुषविशेषः । सुतङ्गमस्यापत्यम्-सौतङ्गमिः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (गमः) गम् (धातोः) धातु से परे (खच्) खच् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में ।

उदा०-सुतं गच्छतीति सुतङ्गमः पुरुषविशेषः । सुतङ्गमस्यापत्यं सौतङ्गमिः । सुत को प्राप्त करनेवाला-सुतङ्गम नामक पुरुष । सुतङ्गम का पुत्र-सौतङ्गमि ।

सिद्धि-सुतङ्गमः । यहां 'सुत' कर्म उपपद होने पर 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है । पूर्ववत् सुत उपपद को 'मुम्' आगम होता है । सौतङ्गमिः-यहां 'अत इञ्' (४ ।१ ।९५) से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है ।

डः–

(१) अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ।४८।

प०वि०–अन्त-अत्यन्त-अध्व-दूर-पार-सर्व-अनन्तेषु ७ ।३ डः १ ।१ ।

स०–अन्तं च अत्यन्तं च अध्वा च दूरं च पारं च सर्वं च अनन्तं च तानि अन्त०अनन्तानि, तेषु-अन्त०अनन्तेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०–कर्मणि, गम इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–अन्त०अनन्तेषु कर्मसूपपदेषु गमो धातोर्डः ।

अर्थः–अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु कर्मकारकेषु उपपदेषु गम्-धातोः परो डः प्रत्ययो भवति ।

उदा०–**(अन्तम्)** अन्तं गच्छतीति अन्तगः । **(अत्यन्तम्)** अत्यन्तं गच्छतीति अत्यन्तगः । **(अध्वा)** अध्वानं गच्छतीति अध्वगः । **(दूरम्)**

दूरं गच्छतीति दूरगः। **(पारम्)** पारं गच्छतीति पारगः। **(सर्वम्)** सर्वं गच्छतीति सर्वगः। **(अनन्तम्)** अनन्तं गच्छतीति अनन्तगः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्त०अनन्तेषु) अन्त, अत्यन्त, अध्वा, दूर, पार, सर्व, अनन्त (कर्मणि) इन कर्म कारकों के उपपद होने पर (गमः) गम् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय होता है।

उदा०-(अन्त) अन्तं गच्छतीति अन्तगः। अन्त (सीमा) तक जानेवाला। (अत्यन्त) अत्यन्तं गच्छतीति अत्यन्तगः। अन्त (सीमा) का अतिक्रमण करके जानेवाला। (अध्वा) अध्वानं गच्छतीति अध्वगः। मार्ग चलनेवाला (पथिक)। (दूर) दूरं गच्छतीति दूरगः। दूर तक जानेवाला। (पार) पारं गच्छतीति पारगः। पार जानेवाला। (सर्व) सर्वं गच्छतीति सर्वगः। सर्वत्र जानेवाला। (अनन्त) अनन्तं गच्छतीति अनन्तगः। अन्त तक न जानेवाला।

सिद्धि-अन्तगः। यहां 'अन्त' कर्म उपपद होने पर 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। 'ड' प्रत्यय के डित् होने से 'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से गम् के टिभाग (अम्) का लोप हो जाता है। ऐसे ही 'अत्यन्तगः' आदि।

डः-

(२) आशिषि हनः।४६।

प०वि०-आशिषि ७।१ हनः ५।१।

अनु०-कर्मणि, ड इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे हनो धातोर्ड आशिषि।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे धातोः परो डः प्रत्ययो भवति, आशिषि गम्यमानायाम्।

उदा०-(हन्) तिमिं वध्यात् इति तिमिहः। शत्रुं वध्यादिति-शत्रुहः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय होता है (आशिषि) यदि वहां आशीः=इच्छाविशेष (आशीर्वाद) अर्थ प्रकट हो।

उदा०-(हन्) तिमिं वध्यादिति-तिमिहः। वह तिमि=ह्वेल मछली को मारनेवाला हो, ऐसी इच्छा है। शत्रुं वध्यादिति शत्रुहः। वह शत्रु को मारनेवाला हो, ऐसी इच्छा है।

सिद्धि-तिमिहः। यहां 'तिमि' कर्म उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। 'ड' प्रत्यय के डित् होने से पूर्ववत् 'हन्' धातु के टि-भाग (अन्) का लोप हो जाता है। ऐसे ही-शत्रुहः।

डः–

(३) अपे क्लेशतमसोः।५०।

प०वि०-अपे ७।१ क्लेश-तमसोः ७।२।

स०-क्लेशश्च तमश्च ते क्लेशतमसी, तयोः-क्लेशतमोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, डः, हन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्लेशतमसोः कर्मणोरुपपदयोर्हनो धातोर्डः।

अर्थः-क्लेशे तमसि च कर्मणि कारके अप-उपसर्गे चोपपदे हन्-धातोः परो डः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(क्लेशः) क्लेशम् अपहन्तीति-क्लेशापहः (पुत्रः)। (तमः) तमोऽपहन्तीति तमोऽपहः (सूर्यः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्लेशतमसोः) क्लेश और तमस् (कर्मणि) कर्म कारक और (अपे) अप उपसर्ग उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय होता है।

उदा०-(क्लेशः) क्लेशमपहन्तीति-क्लेशापहः (पुत्रः)। क्लेश=दुःख को नष्ट करनेवाला पुत्र। (तमस्) तमोऽपहन्तीति तमोऽपहः (सूर्यः)। अन्धकार को नष्ट करनेवाला सूर्य।

सिद्धि-क्लेशापहः। यहां क्लेश कर्म और अप उपसर्ग उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से परे इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। 'ड' प्रत्यय के 'डित्' होने से पूर्ववत् 'हन्' धातु के 'टि-भाग' (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-तमोऽपहः।

णिनिः–

(१) कुमारशीर्षयोर्णिनिः।५१।

प०वि०-कुमार-शीर्षयोः ७।२ णिनिः १।१।

स०-कुमारश्च शिरश्च ते कुमारशीर्षे, तयोः-कुमारशीर्षयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, हन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कुमारशीर्षयोः कर्मणोरुपपदयोर्हनो धातोर्णिनिः।

अर्थः-कुमारे शिरसि च कर्मणि कारके उपपदे हन्-धातोः परो णिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा० (कुमारः) कुमारं हन्तीति कुमारघाती। (शिरः) शिरो हन्तीति शीर्षघाती।

आर्यभाषा-अर्थ-(कुमारशीर्षयोः) कुमार और शिरस् (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से (णिनिः) णिनि-प्रत्यय होता है।

*उदा०-(कुमार) **कुमारं हन्तीति कुमारघाती।** कुमार को मारनेवाला। (शिरस्) **शिरो हन्तीति शीर्षघाती।** शिर को काटनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **कुमारघाती।** कुमार कर्म उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'णिनि' प्रत्यय के परे होने पर 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।३।५४) से 'हन्' धातु के 'ह्' को कुत्व (घ्) होता है। 'अत उपधायाः' (७।३।११६) से उपधा-अकार को वृद्धि होती है। कुमारघातिन्+सु। 'सु' प्रत्यय परे होने पर 'सौ च' (७।४।१३) से नकारान्त-उपधा 'इ' को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६८) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है-कुमारघाती।*

*(२) **शीर्षघाती।** यहां 'शिरस्' कर्म उपपद होने पर पूर्वोक्त 'हन्' धातु से इस सूत्र से णिनि प्रत्यय है। सूत्रोक्त निपातन से 'शिरस्' के स्थान में 'शीर्ष' आदेश होता है। शेष पूर्ववत्।*

टक्-

(१) लक्षणे जायापत्योष्टक्।५२।

प०वि०-लक्षणे ७।१ जाया-पत्योः ७।२ टक् १।१।

स०-जाया च पतिश्च तौ जायापती, तयोः-जायापत्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि हन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-जायापत्योः कर्मणोरुपपदयोर्हनो धातोष्टक् लक्षणे।

अर्थः-जायायां पत्यौ च कर्मणि कारके उपपदे हन्-धातोः परष्टक् प्रत्ययो भवति, लक्षणवति कर्तरि सति।

उदा०-(जाया) जायां हन्तीति जायाघ्नो ब्राह्मणः। (पतिः) पतिं हन्तीति पतिघ्नी वृषली।

आर्यभाषा-अर्थ-(जायापत्योः) जाया और पति (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (टक्) टक् प्रत्यय होता है (लक्षणे) यदि हन् धातु का कर्ता हत्या के लक्षणवाला है।

उदा०-(जाया) जायां हन्तीति जायाघ्नो ब्राह्मणः। अपनी जाया=पत्नी को मारनेवाला दुराचारी ब्राह्मण। (पति) पतिं हन्तीति पतिघ्नी वृषली। पति को मारनेवाली व्यभिचारिणी नीच नारी।

सिद्धि-(१) जायाघ्नः। यहां जाया कर्म उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'टक्' प्रत्यय है। 'टक्' प्रत्यय के कित् होने से 'गमहनजन०' (६।४।९८) से 'हन्' धातु की उपधा का लोप और 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।३।५४) से 'हन्' के 'ह्' को कुत्व (घ्) होता है।

(२) पतिघ्नी। यहां पति कर्म उपपद होने पर पूर्वोक्त 'हन्' धातु से इस सूत्र से 'टक्' प्रत्यय है। 'टक्' प्रत्यय के टित् होने से 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

टक्-

(२) अमनुष्यकर्तृके च।५३।

प०वि०-अमनुष्यकर्तृके ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-न मनुष्योऽमनुष्यः। अमनुष्यः कर्ता यस्य सोऽमनुष्यकर्तृकः, तस्मिन्-अमनुष्यकर्तृके (नञ्तत्पुरुषगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-कर्मणि, हनः, टक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे हनो धातोष्टक्, अमनुष्यकर्तृके च।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे हन्-धातोः परष्टक् प्रत्ययो भवति, अमनुष्यकर्तृके च सति।

उदा०-(हन्) जायां हन्तीति जायाघ्नस्तिलकालकः। पतिं हन्तीति पतिघ्नी पाणिरेखा। श्लेष्माणं हन्तीति श्लेष्मघ्नं मधु। पित्तं हन्तीति पित्तघ्नं घृतम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (टक्) टक् प्रत्यय होता है (अमनुष्यकर्तृके च) यदि उस हन् धातु का कर्ता मनुष्य न (च) भी हो।

उदा०-(हन्) जायां हन्तीति जायाघ्नस्तिलकालकः। जाया को मारनेवाला काला तिल। पतिं हन्तीति पतिघ्नी पाणिरेखा। पति को मारनेवाली हस्तरेखा। श्लेष्माणं

हन्तीति श्लेष्मघ्नं मधु। कफ को नष्ट करनेवाला शहद। पित्तं हन्तीति पित्तघ्नं घृतम्। पित्त विकार को नष्ट करनेवाला घी। यहां 'हन्' धातु का हिंसा अर्थ नहीं अपितु नष्ट करना अर्थ है "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" (महाभाष्यम्)। 'जायाघ्नः' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

विशेष- 'जायाघ्नस्तिलकालकः' और 'पतिघ्नी पाणिरेखा' उदाहरण फलित ज्योतिष पर आधारित हैं।

टक्–

(३) शक्तौ हस्तिकपाटयोः।५४।

प०वि०-शक्तौ ७।१ हस्ति-कपाटयोः ७।२।

स०-हस्ती च कपाटं च ते हस्तिकपाटे, तयोः-हस्तिकपाटयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, हनः, टक् चानुवर्तते।

अन्वयः-हस्तिकपाटयोः कर्मणोरुपपदयोर्हनो धातोष्टक् शक्तौ।

अर्थः-हस्तिनि कपाटे च कर्मणि कारके उपपदे हन्-धातोः परष्टक् प्रत्ययो भवति, शक्तौ गम्यमानायाम्।

उदा०-(हस्ती) हस्तिनं हन्तुं शक्त इति हस्तिघ्नः शूरः। **(कपाटम्)** कपाटं हन्तुं शक्त इति कपाटघ्नश्चौरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(हस्तिकपाटयोः) हस्ती और कपाट (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (टक्) टक् प्रत्यय होता है (शक्तौ) यदि हन् धातु के कर्ता में वह शक्ति लक्षित हो।

उदा०-(हस्ती) हस्तिनं हन्तुं शक्त इति हस्तिघ्नः शूरः। हाथी को मारने की शक्ति रखनेवाला शूर वीर। (कपाट) कपाटं हन्तुं शक्त इति कपाटघ्नश्चौरः। किवाड़ को तोड़ने की शक्ति रखनेवाला चौर। यहां 'हन्' धातु का अर्थ हिंसा नहीं अपितु तोड़ना अर्थ है "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" (महाभाष्यम्)।

सिद्धि-पूर्ववत् (३।२।५२)।

टक् (निपातनम्)–

(४) पाणिघताडघौ शिल्पिनि।५५।

प०वि०-पाणिघ-ताडघौ १।२ शिल्पिनि ७।१।

स०-पाणिघश्च ताडघश्च तौ पाणिघताडघौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-पाणिघताडघौ शब्दौ निपात्येते शिल्पिनि कर्तरि सति।

उदा०-पाणिं हन्तीति पाणिघः शिल्पी। ताडं हन्तीति ताडघः शिल्पी।

आर्यभाषा-अर्थ-(पाणिघताडघौ) पाणिघ और ताडघ शब्द निपातित हैं (शिल्पिनि) यदि वहां 'हन्' धातु का कर्ता शिल्पी हो। शिल्पी=कलाकार।

उदा०-पाणिं हन्तीति पाणिघः शिल्पी। हाथ से मृदङ्ग=ढोलक बजानेवाला कलाकार। ताडं हन्तीति ताडघः शिल्पी। ताली बजानेवाला कलाकार।

*सिद्धि-पाणिघः। यहां पाणि कर्म उपपद होने पर 'हन्' धातु से 'टक्' प्रत्यय और 'टक्' प्रत्यय के परे होने पर 'हन्' के टि-भाग (अन्) का लोप और 'हन्' के 'ह्' को 'घ्' आदेश निपातित हैं। ऐसे ही-ताडघः। यहां हन् धातु का हिंसा अर्थ नहीं अपितु बजाना अर्थ है **"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति"** (महाभाष्यम्)।*

ख्युन्-

(१) आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन्।५६।

प०वि०-आढ्य-सुभग-स्थूल-पलित-नग्न-अन्ध-प्रियेषु ७।३ च्वि-अर्थेषु ७।३ अच्वौ ७।१ कृञः ५।१ करणे ७।१ ख्युन् १।१।

स०-आढ्यश्च सुभगश्च स्थूलश्च पलितश्च नग्नश्च अन्धश्च प्रियश्च ते आढ्य०प्रियाः, तेषु-आढ्य०प्रियेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अच्विषु च्व्यर्थेषु आढ्य०प्रियेषूपपदेषु कृञो धातोः करणे ख्युन्।

अर्थः-च्वि-प्रत्ययान्तवर्जितेषु च्वि-अर्थेषु आढ्यसुभगस्थूलपलित-नग्नान्धप्रियेषु कर्मकारकेषु उपपदेषु करणे कारके कृञ्-धातोः परः ख्युन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(आढ्यः)** अनाढ्यमाढ्यं कुर्वन्ति येन तत्-आढ्यङ्करणम्। **(सुभगः)** असुभगं सुभगं कुर्वन्ति येन तत्-सुभगङ्करणम्। **(स्थूलः)** अस्थूलं स्थूलं कुर्वन्ति येन तत्-स्थूलङ्करणम्। **(पलितः)** अपलितं पलितं कुर्वन्ति येन तत्-पलितङ्करणम्। **(नग्नः)** अनग्नं नग्नं कुर्वन्ति येन

तत्-नग्नङ्करणम्। (अन्धः) अनन्धमन्धं कुर्वन्ति येन तत्-अन्धङ्करणम्। (प्रियः) अप्रियं प्रियं कुर्वन्ति येन तत्-प्रियङ्करणम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अच्वौ) 'च्वि' प्रत्यय से रहित किन्तु (च्वि-अर्थेषु) 'च्वि' प्रत्यय के अभूततद्भाव अर्थ में वर्तमान (आढ्य०प्रियेषु) आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध, प्रिय (कर्मणि) इन कर्म-कारकों के उपपद होने पर (करणे) करण कारक में (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से (ख्युन्) ख्युन् प्रत्यय होता है।

उदा०-(आढ्य) अनाढ्यमाढ्यं कुर्वन्ति येन तत्-आढ्यङ्करणम्। वह करण=साधन जिससे निर्धन को धनवान् बनाते हैं। (सुभग) असुभगं सुभगं कुर्वन्ति येन तत्-सुभगङ्करणम्। वह साधन जिससे असुन्दर को सुन्दर बनाते हैं। (स्थूल) अस्थूलं स्थूलं कुर्वन्ति येन तत्-स्थूलङ्करणम्। वह साधन जिससे कृश को स्थूल बनाते हैं। (पलित) अपलितं पलितं कुर्वन्ति येन तत्-पलितङ्करणम्। वह साधन जिससे अपलित को पलित बनाते हैं। पलित=श्वेतकेशी। (नग्न) अनग्नं नग्नं कुर्वन्ति येन तत्-नग्नङ्करणम्। वह साधन जिससे अनग्न को नग्न बनाते हैं। नग्न=नंगा। (अन्ध) अनन्धमन्धं कुर्वन्ति येन तत्-अन्धङ्करणम्। वह साधन जिससे सुलक्ष को अन्धा बनाते हैं (अश्रु गैस)। (प्रिय) अप्रियं प्रियं कुर्वन्ति येन तत्-प्रियङ्करणम्। वह साधन जिससे अप्रिय को प्रिय बनाते हैं, मधुर भाषण।

सिद्धि-आढ्यङ्करणम्। यहां 'आढ्य' कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ख्युन्' प्रत्यय है। 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६५) से 'मुम्', आगम, 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' को गुण और 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-सुभगङ्करणम्, इत्यादि।

विशेष-च्वि-अर्थ- 'अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' (५।४।५०) से अभूत तद्भाव अर्थ में 'च्वि' प्रत्यय होता है। यहां 'च्वि-अर्थ' मात्र का ग्रहण किया गया और 'अच्वौ' कहकर च्वि-प्रत्यय का प्रतिषेध किया गया है।

खिष्णुच्+खुकञ्-

(१) कर्तरि भुवः खिष्णुच्-खुकञौ।५७।

प०वि०-कर्तरि ७।१ भुवः ५।१ खिष्णुच्-खुकञौ १।२।

स०-खिष्णुच् च खुकञ् च तौ खिष्णुच्खुकञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुपि, आढ्य०प्रियेषु, अच्वि-अर्थेषु, अच्वौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अच्विषु च्व्यर्थेषु आढ्य०प्रियेषु सुप्सूपपदेषु भुवः कर्तरि खिष्णुच्खुकञौ।

अर्थ:-च्वि-प्रत्ययवर्जितेषु च्वि-अर्थेषु आढ्यसुभगस्थूलपलित-नग्नान्धप्रियेषु सुबन्तेषु उपपदेषु भू-धातो: पर: कर्तरि कारके खिष्णुच्-खुकञौ प्रत्ययौ भवत:।

उदा०-(**आढ्य:**) अनाढ्य आढ्यो भवतीति आढ्यम्भविष्णु:, आढ्यम्भावुक:। (**सुभग:**) असुभग: सुभगो भवतीति सुभगम्भविष्णु:, सुभगम्भावुक:। (**स्थूल:**) अस्थूल: स्थूलो भवतीति स्थूलम्भविष्णु:, स्थूलम्भावुक:। (**पलित:**) अपलितो पलितो भवतीति पलितम्भविष्णु:, पलितम्भावुक:। (**नग्न:**) अनग्नो नग्नो भवतीति नग्नम्भविष्णु:, नग्नम्भावुक:। (**अन्ध:**) अनन्धोऽन्धो भवतीति अन्धम्भविष्णु:, अन्धम्भावुक:। (**प्रिय:**) अप्रियो प्रियो भवतीति प्रियम्भविष्णु:, प्रियम्भावुक:।

आर्यभाषा-अर्थ-(अच्वौ) च्वि-प्रत्यय से रहित किन्तु (च्वि-अर्थेषु) च्वि-प्रत्यय के अर्थ में वर्तमान (आढ्य०प्रियेषु) आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध, प्रिय (सुपि) इन सुबन्तों के उपपद होने पर (भुव:) भू (धातो:) धातु से परे (कर्तरि) कर्ता कारक में (खिष्णुच्खुकञौ) खिष्णुच् और खुकञ् प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-(आढ्य) **अनाढ्य आढ्यो भवतीति आढ्यम्भविष्णु:, आढ्यम्भावुक:।** जो धनवान् नहीं है वह धनवान् होता है। (सुभग) **असुभग: सुभगो भवतीति सुभगम्भविष्णु:, सुभगम्भावुक:।** जो सुन्दर नहीं है वह सुन्दर होता है। (स्थूल) **अस्थूल: स्थूलो भवतीति स्थूलम्भविष्णु:, स्थूलम्भावुक:।** जो स्थूल नहीं है वह स्थूल होता है। (पलित) **अपलित: पलितो भवतीति पलितम्भविष्णु:, पलितम्भावुक:।** जो पलित नहीं है वह पलित होता है। पलित=श्वेतकेशी। (नग्न) **अनग्नो नग्नो भवतीति नग्नम्भविष्णु:, नग्नम्भावुक:।** जो नंगा नहीं है वह नंगा होता है। (प्रिय) **अप्रिय: प्रियो भवतीति प्रियम्भविष्णु:, प्रियम्भावुक:।** जो प्रिय नहीं है वह प्रिय होता है।*

*सिद्धि-(१) **आढ्यम्भविष्णु:।** यहां 'आढ्य' सुबन्त उपपद होने पर 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'खिष्णुच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के खित् होने से **'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्'** (६।३।६५) से आढ्य उपपद को 'मुम्' आगम होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयो:'** (७।३।९४) से 'भू' धातु को गुण हो जाता है।*

*(२) **आढ्यम्भावुक:।** यहां 'आढ्य' सुबन्त उपपद होने पर पूर्वोक्त 'भू' धातु से इस सूत्र से 'खुकञ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'खित्' होने से पूर्ववत् 'मुम्' आगम होता है। प्रत्यय के 'ञित्' होने से **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'भू' धातु को वृद्धि होती है। ऐसे ही-**सुभगम्भविष्णु:, सुभगम्भावुक:** आदि।*

विशेष-कर्ता- 'कर्तरि कृत्' (३।४।६७) से समस्त 'कृत्' प्रत्यय 'कर्ता' अर्थ में होते हैं, फिर यहां 'कर्तरि' पद का ग्रहण इसलिये किया गया है कि पूर्व सूत्र से 'करणे' पद की अनुवृत्ति न हो सके।

क्विन्--

(१) स्पृशोऽनुदके क्विन्।५८।

प०वि०-स्पृशः ५।१ अनुदके ७।१ क्विन् १।१।

स०-न उदकमिति अनुदकम्, तस्मिन्-अनुदके (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-सुपि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुदके सुप्युपपदे स्पृशो धातोः क्विन्।

अर्थः-उदकवर्जिते सुबन्ते उपपदे स्पृश्-धातोः परः क्विन्प्रत्ययो भवति।

उदा०-(स्पृश्) घृतं स्पृशतीति घृतस्पृक्। मन्त्रेण स्पृशतीति मन्त्रस्पृक्। जलेन स्पृशतीति जलस्पृक्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुदके) उदक शब्द को छोड़कर (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (स्पृशः) स्पृश् (धातोः) धातु से परे (क्विन्) क्विन् प्रत्यय होता है।

उदा०-(स्पृश्) घृतं स्पृशतीति घृतस्पृक्। घृत का स्पर्शमात्र करनेवाला (अल्पमात्रा में सेवन करनेवाला)। मन्त्रेण स्पृशतीति मन्त्रस्पृक्। मन्त्रपूर्वक अङ्गस्पर्श करनेवाला-उपासक। जलेन स्पृशतीति जलस्पृक्। जल से अङ्गस्पर्श करनेवाला-उपासक।

सिद्धि-घृतस्पृक्। यहां 'घृत' कर्म उपपद होने पर 'स्पृश संस्पर्शने' (तुदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'क्विन्' प्रत्यय के कित् होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है। 'क्विन् प्रत्ययस्य कुः' (८।२।६२) से 'स्पृश्' के 'श्' को कुत्व 'ख्', 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'ख्' को 'ग्' और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'ग्' को 'क्' होता है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'वि' का लोप हो जाता है। ऐसे ही-मन्त्रस्पृक् और जलस्पृक्।

निपातनं क्विन् च--

(२) ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च।५९।

प०वि०-ऋत्विक्-दधृक्-स्रक्-दिक्-उष्णिक्-अञ्चु-युजि-क्रुञ्चाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

स०-ऋत्विक् च दधृक् च स्रक् च दिक् च उष्णिक् च अञ्चुश्च युजिश्च क्रुञ्च् च ते ऋत्विक्०क्रुञ्चः, तेषाम्-ऋत्विग्०क्रुञ्चाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुपि, क्विन् इति चानुवर्तते।

अर्थः-ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिजः शब्दाः क्विन्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते, अञ्चुयुजिक्रुञ्चिभ्यश्च धातुभ्यः परः क्विन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(ऋत्विक्)** ऋतौ ऋतौ यजतीति ऋत्विक्। **(दधृक्)** धृष्णोतीति दधृक्। **(स्रक्)** सृजन्ति यामिति स्रक्। **(दिक्)** दिशन्ति यामिति दिक्। **(उष्णिक्)** उत्स्निह्यतीति उष्णिक्। **(अञ्चुः)** प्राञ्चतीति प्राङ्। प्रत्यञ्चतीति प्रत्यङ्। उदञ्चतीति उदङ्। **(युजिः)** युनक्तीति युङ्। युङ्, युञ्जौ, युञ्जः। **(क्रुञ्च्)** क्रुञ्चतीति क्रुङ्। क्रुङ्, क्रञ्चौ, क्रुञ्चः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ऋत्विक्०क्रुञ्चाम्) ऋत्विक्, दधृक्, स्रक्, दिक्, उष्णिक् ये शब्द (क्विन्) क्विन्-प्रत्ययान्त निपातित हैं (च) और अञ्चु, युजि, क्रुञ्च धातुओं से (क्विन्) क्विन् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(ऋत्विक्) **ऋतौ ऋतौ यजतीति ऋत्विक्।** ऋतु-ऋतु में यज्ञ करनेवाला (विद्वान्/ईश्वर)। (दधृक्) **धृष्णोतीति दधृक्।** विद्यादि गुणों में प्रगल्भता (चातुर्य) प्राप्त करनेवाला (अध्यापक)। शत्रु का धर्षण करनेवाला (वीर योद्धा)। (स्रक्) **सृजन्ति यामिति स्रक्।** जिसे मालाकार विशिष्ट प्रकार से बनाते हैं (माला)। (दिश्) **दिशन्ति यामिति दिक्।** जिसका अतिसर्जन (दान) किया जाता है वह दिशा। (उष्णिक्) **उत्स्निह्यतीति उष्णिक्।** उत्कृष्ट कामना करनेवाला। (२८ अक्षरवाला एक वैदिक छन्द)। (अञ्चु) **प्राञ्चतीति प्राङ्।** पूर्व दिशा। **प्रत्यञ्चतीति प्रत्यङ्।** पश्चिम दिशा। **उदञ्चतीति उदङ्।** उत्तर दिशा। (युजि) **युनक्तीति युङ्।** जोड़नेवाला। (क्रुञ्च्) **क्रुञ्चतीति क्रुङ्।** पक्षिविशेष (क्रौंच)।*

*सिद्धि-(१) **ऋत्विक्।** यहां 'ऋतु' सुबन्त उपपद होने पर 'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से सम्प्रसारण होता है। 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' (६।२।६२) से 'ज्' को कुत्व 'ग्' और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'ग्' को चर्त्व 'क्' होता है।*

*(२) **दधृक्।** यहां 'ञिधृषा प्रागल्भ्ये' (स्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'धृष्' धातु को द्विर्वचन, 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास को अत्व, 'अभ्यासे चर्च'*

(८।४।५३) से अभ्यास को जशृत्व (द्) होता हैं 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' (६।२।६२) से 'ष्' को कुत्व 'ख्', 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'ख्' को 'ग्' और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'ग्' को 'क्' होता है। निपातन से अन्तोदात्त स्वर होता है।

(३) स्त्रक्। यहां 'सृज् विसर्गे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से कर्म में 'क्विन्' प्रत्यय है। निपातन से अम् आगम होता है। पूर्ववत् कुत्व 'ज्' को 'ग्' और चर्त्व 'ग्' को 'क्' होता है।

(४) दिक्। यहां 'दिश अतिसर्जने' (तु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'श्' को कुत्व 'ख्', 'ख्' को जशृत्व 'ग्', 'ग्' को चर्त्व 'क्' होता है।

(५) उष्णिक्। यहां उत् उपसर्गपूर्वक 'ष्णिह प्रीतौ' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। उत् उपसर्ग के 'त्' का लोप और स्निह के 'स्' को षत्व निपातित है। पूर्ववत् 'ह्' को कुत्व घ्, घ् को जश्त्व ग्, ग् को चर्त्व क् होता है।

(६) प्राङ्। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'अञ्चु गतिपूजनयोः' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से 'अञ्चु' धातु के 'न्' का लोप (प्र अच्)। 'उगिदचां सर्वनामस्थाने चाधातोः' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम (प्र अ नुम् च्+सु) 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप, (प्र अ न् च्+०) 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से 'च्' का लोप (प्र अन्) 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' (८।२।६२) से 'न्' को कुत्व (ङ्) होकर प्राङ् रूप सिद्ध होता है। ऐसे ही-प्रति और उत् उपसर्गपूर्वक अञ्चु धातु से-प्रत्यङ् और उदङ्।

(७) युङ्। यहां 'युजिर् योगे' (रुधा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' और पूर्ववत् उसका सर्वहारी लोप होता है। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम (यु नु म् ज्+सु)। पूर्ववत् 'सु' और 'ज्' का लोप होता है। (युन्) 'क्विन्प्रतयस्य कुः' (८।२।६२) से 'न्' को कुत्व (ङ्) होता है-युङ्।

(८) क्रुङ्। यहां 'क्रुञ्च गतिकौटिल्याल्पीभवयोः' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से प्राप्त उपधा-नकार का लोप इस निपातन को साहचर्य से नहीं होता है (क्रुन् च्+सु)। पूर्ववत् 'सु' और 'च्' का लोप होकर 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' (८।२।६२) से 'न्' को कुत्व (ङ्) होता है-क्रुङ्।

क्विन्+कञ्-

(३) त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च।६०।

प०वि०-त्यदादिषु ७।३ दृशः ५।१ अनालोचने ७।१ कञ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-त्यद् आदिर्येषां ते त्यदादयः, तेषु-त्यदादिषु (बहुव्रीहिः)। न आलोचनमिति अनालोचनम्, तस्मिन्-अनालोचने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-सुपि, क्विन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-त्यदादिषु सुप्सूपपदेषु, अनालोचने दृशो धातोः क्विन् कञ् च।

अर्थः-त्यदादिषु सुबन्तेषु उपपदेषु अनालोचनेऽर्थे वर्तमानाद् दृश्-धातोः परः क्विन् कञ् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(त्यद्)** त्यत् पश्यतीति त्यादृक्, त्यादृशश्च। **(तद्)** तत् पश्यतीति तादृक्, तादृशश्च। **(यद्)** यत् पश्यतीति यादृक् यादृशश्च। अत्र दृशधातुस्तुल्यभावेऽर्थे वर्तते नालोचने **"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति"** (महाभाष्यम्)।

त्यद्। तद्। यद्। एतद्। इदम्। अदस्। एक। द्वि। युष्मद्। अस्मद्। भवतु। किम् इति सर्वादिषु त्यदादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(त्यदादिषु) त्यद् आदि (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (अनालोचने) दर्शन अर्थ से रहित (दृशः) दृश् (धातोः) धातु से परे (क्विन्) क्विन् (च) और (कञ्) कञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(त्यद्) त्यत् पश्यतीति त्यादृक्, त्यादृशश्च। उसके तुल्य। (तद्) तत् पश्यतीति तादृक्, तादृशश्च। उसके तुल्य। (यद्) यत् पश्यतीति यादृक् यादृशश्च। जिसके तुल्य।

सिद्धि-*(१) त्यादृक्। यहां 'त्यद्' उपपद होने पर 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'आ सर्वनाम्नः' (६।३।८९) से 'त्यद्' को आत्व, 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' (८।२।६२) से 'दृश्' के 'श्' को कुत्व 'ख्', 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'ख्' को जश्त्व 'ग्' और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'ग्' को चर्त्व 'क्' होता है।*

(२) त्यादृशः। यहां 'त्यद्' उपपद होने पर 'दृश्' धातु से इस सूत्र से 'कञ्' प्रत्यय है। 'आ सर्वनाम्नः' (६।३।८९) से त्यद् को आत्व होता है। ऐसे ही-तादृक् तादृशः आदि।

विशेष-*ये त्यादृक् आदि रूढि शब्द हैं, प्रकृति प्रत्यय से व्युत्पन्न होने पर अपने अवयवार्थ को ग्रहण नहीं करते हैं, जैसे-व्याजिघ्रतीति व्याघ्रः।*

क्विप्–

(१) सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप्।६१।

प०वि०– सत्–सू–द्विष–द्रुह–दुह–युज–विद–भिद–छिद–जि–नी–राजाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे), उपसर्गे ७।१, अपि अव्ययपदम्, क्विप् १।१।

स०–सच्च सूश्च द्विषश्च द्रुहश्च दुहश्च युजश्च विदश्च भिदश्च छिदश्च जिश्च नीश्च राज् च ते–सत्०राजः, तेषाम्–सत्०राजाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–सुपि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–सुप्युपपदे उपसर्गेऽपि सत्०राजिभ्यो धातुभ्यः क्विप्।

अर्थः–सुबन्त उपपदे सोपसर्गेभ्यो निरुपसर्गेभ्यश्चाऽपि सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजिभ्यो धातुभ्यः क्विप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(सत्) शुचौ सीदतीति शुचिषत्। अन्तरिक्षे सीदतीति अन्तरिक्ष सत्। उपसीदतीति उपसत्। (सू) अण्डानि सूते इति अण्डसूः। शतं सूते इति शतसूः। प्रसूते इति प्रसूः। (द्विष्) मित्रं द्वेष्टीति मित्रद्विट्। प्रद्वेष्टीति प्रद्विट्। (द्रुह्) मित्रं द्रुह्यतीति मित्रध्रुक्। प्रद्रुह्यतीति प्रध्रुक्। (दुह्) गां दोग्धीति गोधुक्। प्रदोग्धीति प्रधुक्। (युज्) अश्वं युनक्तीति अश्वयुक्। प्रयुनक्तीति प्रयुक्। (विद्) वेदं वेत्तीति वेदवित्। प्रवेत्तीति प्रवित्। ब्रह्म वेत्तीति ब्रह्मवित्। (भिद्) काष्ठं भिनत्तीति काष्ठभित्। प्रभिनत्तीति प्रभित्। (छिद्) रज्जुं छिनत्तीति रज्जुछित्। प्रच्छिनत्तीति प्रच्छित्। (जि) शत्रुं जयतीति शत्रुजित्। प्रजयतीति प्रजित्। (नी) सेनां नयतीति सेनानीः। प्रणयतीति प्रणीः। ग्रामं नयतीति ग्रामणीः। अग्रं नयतीति अग्रणीः। (राज्) राजते इति राट्। विराजते इति विराट्। सम्राजते इति सम्राट्।

आर्यभाषा–अर्थ–(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (उपसर्गेऽपि) सोपसर्ग और निरुपसर्ग (सत्०राजाम्) सत्, सू, द्विष्, द्रुह, दुह, युज, विद, भिद, छिद, जि, नी, राज् (धातोः) धातुओं से परे (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(सत्) शुचौ सीदतीति शुचिषत्। शुद्ध देश में रहनेवाला। अन्तरिक्षे सीदतीति अन्तरिक्षसत्। अन्तरिक्ष में रहनेवाला। उपसीदतीति उपसत्। पास बैठनेवाला। (सू) अण्डानि सूते इति अण्डसूः। अण्डे पैदा करनेवाला प्राणी। शतं सूते इति शतसूः। सौ सन्तान उत्पन्न करनेवाला। प्रसूते इति प्रसूः। प्रसव करनेवाला। (द्विष्) मित्रं द्वेष्टीति मित्रद्विट्। मित्र से द्वेष करनेवाला। प्रद्वेष्टीति प्रद्विट्। अधिक द्वेष करनेवाला। (द्रुह) मित्रं द्रुह्यतीति मित्रध्रुक्। मित्र से द्रोह करनेवाला। प्रद्रुह्यतीति प्रध्रुक्। अति द्रोह करनेवाला। (दुह) गां दोग्धीति गोधुक्। गौ को दुहनेवाला। प्रदोग्धीति प्रधुक्। उत्तम दोग्धा। (युज्) अश्वं युनक्तीति अश्वयुक्। घोड़े को जोड़नेवाला। प्रयुनक्तीति प्रयुक्। प्रयोग करनेवाला। (विद्) वेदं वेत्तीति वेदवित्। वेद को जाननेवाला। प्रवेत्तीति प्रवित्। प्राज्ञ। ब्रह्म वेत्तीति ब्रह्मवित्। ब्रह्म को जाननेवाला। (भिद्) काष्ठं भिनत्तीति काष्ठभिद्। लकड़ी फाड़नेवाला। प्रभिनत्तीति प्रभित्। प्रभेद करनेवाला। (छिद्) रज्जुं छिनत्तीति रज्जुच्छित्। रस्सी को काटनेवाला। प्रछिनत्तीति प्रच्छित्। प्रच्छेद करनेवाला। (जि) शत्रुं जयतीति शत्रुजित्। शत्रु को जीतनेवाला। प्रजयतीति प्रजित्। प्रकर्ष से जीतनेवाला। (नी) सेनां नयतीति सेनानीः। सेना का नेता। प्रणयतीति प्रणीः। उत्तम नेता। ग्रामं नयतीति ग्रामणीः। ग्राम का नेता। अग्रं नयतीति अग्रणीः। आगे ले जानेवाला। (राज्) राजते इति राट्। राजा। विराजते इति विराट्। बड़ा। सम्राजते इति सम्राट्। बड़ा राजा।

सिद्धि-(१) शुचिषत्। यहां 'शुचि' सुबन्त उपपद होने पर 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप हो जाता है। 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' (८।४।३) से सद् को षत्व होता है। ऐसे ही-अन्तरिक्षसत् और उपसत्।

(२) अण्डसूः। यहां 'अण्ड' सुबन्त उपपद होने पर 'षुञ् प्राणिगर्भविमोचने' (अदा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। ऐसे ही-शतसूः और प्रसूः।

(३) मित्रद्विट्। यहां 'मित्र' सुबन्त उपपद होने पर 'द्विष अप्रीतौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय का लोप होता है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से द्विष् के 'ष्' को जश् ड् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'ड्' को चर् ट् होता है। ऐसे ही-प्रद्विट्।

(४) मित्रध्रुक्। यहां 'मित्र' सुबन्त उपपद होने पर 'द्रुह अभिजिघांसायाम्' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'वा द्रुहदुह०' (८।३।३३) से 'द्रुह' के ह् को घ्, झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से घ् को जश् ग्, 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ग् को चर् क् होता है। 'एकाचो बशो भष्०' (८।२।३७) से 'द्रुह' के द् को भष् ध् होता है। ऐसे ही-प्रध्रुक्।

(५) गोधुक्। यहां 'गो' सुबन्त उपपद होने पर 'दुह प्रपूरणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'मित्रध्रुक्' के समान है।

(६) अश्वयुक्। यहां 'अश्व' सुबन्त उपपद होने पर 'युजिर् योगे' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'युज्' के 'ज्' को कुत्व 'ग्' और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ग् को चर् क् होता है। ऐसे ही-प्रयुक्।

(७) वेदवित्। यहां वेद' सुबन्त उपपद होने पर 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'विद्' के द् को चर् त् होता है। ऐसे ही-प्रवित्।

(८) काष्ठभित्। यहां 'काष्ठ' सुबन्त उपपद होने पर 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य वेदवित्' के समान है।

(९) रज्जुच्छित्। यहां 'रज्जु' सुबन्त उपपद होने पर 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य वेदवित्' के समान है।

(१०) शत्रुजित्। यहां शत्रु सुबन्त उपपद होने पर 'जि जये' (भ्वा०प०) धातु से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'जि' धातु को 'तुक्' आगम होता है। ऐसे ही-प्रजित्।

(११) सेनानीः। यहां 'सेना' सुबन्त उपपद होने पर 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-प्रणीः, इत्यादि।

(१२) राट्। यहां 'राजृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से 'राज्' के ज् को षत्व, 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से ष् को जश् ड् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ड् को चर् ट् होता है। वि उपसर्ग होने पर-विराट्। सम् उपसर्ग होने पर-सम्राट्। यहां 'मो राजि समः क्वौ' (८।३।२५) से सम् के 'म्' को म् ही आदेश होता है। 'मोऽनुस्वारः' (८।४।२३) से अनुस्वार आदेश नहीं होता है।

ण्विः-

(१) भजो ण्विः।६२।

प०वि०-भजः ५।१ ण्विः १।१।

अनु०-सुपि, उपसर्गेऽपि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सुप्युपसर्गेऽपि भजो धातोर्ण्विः।

अर्थः-सुबन्ते उपपदे सोपसर्गान्निरुपसर्गादपि भज्-धातोः परो ण्विः प्रत्ययो भवति।

उदा०-अर्धं भजते इति अर्धभाक्। प्रभजते इति प्रभाक्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (उपसर्गेऽपि) सोपसर्ग और निरुपसर्ग (भजः) भज् (धातोः) धातु से परे (ण्विः) ण्वि-प्रत्यय होता है।

उदा०-अर्धं भजते इति अर्धभाक्। आधा भाग प्राप्त करनेवाला। प्रभजते इति प्रभाक्। अधिक भाग प्राप्त करनेवाला।

सिद्धि-अर्धभाक्। यहां अर्ध सुबन्त उपपद होने पर 'भज सेवायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से 'ण्वि' प्रत्यय होता है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'भज्' को उपधावृद्धि होती है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'भाज्' के ज् को कुत्व ग् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ग् को चर्त्व क् होता है। ऐसे ही-प्र उपसर्ग होने पर-प्रभाक्।

ण्विः-

(२) छन्दसि सहः।६३।

प०वि०-छन्दसि ७।१ सहः ५।१।

अनु०-सुपि, ण्विरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि सुप्युपपदे सहो धातोर्ण्विः।

अर्थः-छन्दसि विषये सुबन्त उपपदे सह्-धातोः परो ण्विः प्रत्ययो भवति।

उदा०-जलं सहते इति जलाषाट्। तुरान् सहते इति तुराषाट् (ऋक्० ३।४८।४)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (सहः) सह् (धातोः) धातु से परे (ण्विः) ण्वि-प्रत्यय होता है।

उदा०-जलं सहते इति जलाषाट्। जल=सुख-शान्ति का अनुभव करनेवाला। तुरान् सहते इति तुराषाट्। तुर=शीघ्रकारी शत्रुओं का विनाश करनेवाला-इन्द्र।

सिद्धि-जलाषाट्। यहां 'जल' सुबन्त उपपद होने पर 'सह मर्षणे' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्वि' प्रत्यय है। 'हो ढः' (८।२।३१) से सह् के ह् को ढत्व, 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से जश् ड्, और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ड् को चर्त्व ट् होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'सह्' को उपधावृद्धि होती है। 'सहेः साडः सः' (८।३।५६) से 'साट्' स् को षत्व होता है। 'अन्येषामपि दृश्यते' (६।३।१३५) से दीर्घ होता है।

ण्विः–

(३) वहश्च।६४।

प०वि०–वहः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–सुपि, ण्विः, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि सुप्युपपदे वहो धातोश्च ण्विः।

अर्थः–छन्दसि विषये सुबन्त उपपदे वह्-धातोः परो ण्विः प्रत्ययो भवति।

उदा०–प्रष्ठं वहतीति प्रष्ठवाट्। दित्यं वहतीति दित्यवाट्। (यजु० १४।१०)। दितिभिः-खण्डनैनिर्वृत्तान् यवादीन् वहति स दित्यवाट् (दयानन्दयजुर्वेदभाष्यम्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (वहः) वह् (धातोः) धातु से परे (ण्विः) ण्विप्रत्यय होता है।

उदा०-प्रष्ठं वहतीति प्रष्ठवाट्। प्रष्ठ=अग्रगामी पुरुष को वहन करनेवाला गज आदि। दित्यं वहतीति दित्यवाट्। (यजु० १४।१०) टूटे हुये यव आदि अन्न को प्राप्त करनेवाला।

सिद्धि-प्रष्ठवाट्। यहां 'प्रष्ठ' सुबन्त उपपद होने पर 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र 'ण्वि' प्रत्यय है। जलाषाट् के समान 'वह' के 'ह्' को ढत्व, जश्त्व और चर्त्व और उपधावृद्धि होती है।

ञ्युट्–

(१) कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट्।६५।

प०वि०–कव्य-पुरीष-पुरीष्येषु ७।३ ञ्युट् १।१।

स०–कव्यं च पुरीषं च पुरीष्यं च तानि कव्यपुरीषपुरीष्याणि, तेषु कव्यपुरीषपुरीष्येषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–सुपि, छन्दसि, वह इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि कव्यपुरीषपुरीष्येषूपपदेषु वहो धातोर्ञ्युट्।

अर्थः–छन्दसि विषये कव्यपुरीषपुरीष्येषूपपदेषु वह्-धातोः परो ञ्युट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**कव्यम्**) कव्यं वहतीति कव्यवाहनः (यजु० १९।६४)। (**पुरीषम्**) पुरीषं वहतीति पुरीषवाहनः। (**पुरीष्यम्**) पुरीष्यं वहतीति पुरीष्यवाहनः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कव्यपुरीषपुरुष्येषु) कव्य, पुरीष और पुरीष्य (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (वहः) वह् (धातोः) धातु से परे (ञ्युट्) ञ्युट् प्रत्यय होता है।

उदा०-(कव्य) कव्यं वहतीति कव्यवाहनः। कविजनों के प्रशस्त कर्मों को प्राप्त करानेवाला, विद्वान् (यजु० १९।६४) (पुरीष) पुरीषं वहतीति पुरीषवाहनः। पुरीष=पालन आदि कर्मों को प्राप्त करनेवाला पुत्र (यजु० ११।४४)। पुरीष=उदक (निघण्टु १।१२) उदक को प्राप्त करानेवाला। (पुरीष्य) पुरीष्यं वहतीति पुरीष्यवाहनः। पुरीष्य=पालन कार्यों में साधु विद्युत्-विद्या को प्राप्त करानेवाला विद्वान् (यजु० ११।४६) पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति (शत० २।१।१।७)।

सिद्धि-कव्यवाहनः। यहां 'कव्य' सुबन्त उपपद होने पर 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ञ्युट्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'वह्' को उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही-पुरीष और पुरीष्य उपपद होने पर-पुरीषवाहनः, पुरीष्यवाहनः।

ञ्युट्-

(२) हव्येऽनन्तःपादम्।६६।

प०वि०-हव्ये ७।१ अनन्तःपादम् १।१।

स०-अन्तः (मध्ये) पादस्येति अन्तःपादम्, न अन्तःपादमिति अनन्तःपादम् (अव्ययीभावगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-सुपि, छन्दसि, वहः, ञ्युट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि सुप्युपपदेऽनन्तःपादं वहो धातोर्ञ्युट्।

अर्थः-छन्दसि विषये हव्ये सुबन्तं उपपदेऽनन्तःपादं वर्तमानाद् वह्-धातोः परो ञ्युट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-हव्यं वहतीति हव्यवाहनः। अग्निश्च हव्यवाहनः। दूतश्च हव्यवाहनः (ऋ० ६।१६।२३)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (हव्ये) हव्य (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (अनन्तःपादम्) पाद के मध्य में अविद्यमान (वहः) वह् (धातोः) धातु से परे (ञ्युट्) प्रत्यय होता है।

उदा०-(हव्य) हव्यं वहतीति हव्यवादनः। हव्य=हुत द्रव्यों को वहन करनेवाला अग्नि। अग्निश्च हव्यवाहनः। दूतश्च हव्यवाहनः (ऋ० ६।१६।२३)।

विट्–

(१) जनसनखनक्रमगमो विट्।६७।

प०वि०-जन-सन-खन-क्रम-गमः ५।१ विट् १।१।

स०-जनश्च सनश्च खनश्च क्रमश्च गम् च एतेषां समाहारो जनसनखनक्रमगम्, तस्मात्-जनसनखनक्रमगमः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-सुपि, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि सुप्युपपदे जन०गमो धातोर्विट्।

अर्थः-छन्दसि विषये सुबन्ते उपपदे जन-सन-खन-क्रम-गमिभ्यो धातुभ्यः परो विट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(जनः) अप्सु जायते इति अब्जाः। गोषु जायते इति गोजाः। (सनः) गां सनोतीति गोषाः। नॄन् सनोतीति नृषाः। इन्द्रो नृषा असि। (खनः) विसं खनतीति विसखाः। कूपं खनतीति कूपखाः। (क्रमः) दधि क्रामतीति दधिक्राः (ऋ० ४।३८।९)। (गम्) अग्रे गच्छतीति अग्रेगाः (यजु० २७।३१)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (जन०गमः) जन, सन, खन, क्रम, गम् (धातोः) धातुओं से परे (विट्) विट् प्रत्यय है।

उदा०-(जन) अप्सु जायते इति अब्जाः। जल में उत्पन्न होनेवाला कमल। गोषु जायते इति गोजाः। गौओं में पैदा होनेवाला। (सन) गां सनोतीति गोषाः। गोदान करनेवाला। नॄन् सनोतीति नृषाः। नरों को दान करनेवाला। इन्द्रो नृषा असि। (खन) विसं खनतीति विसखाः। विस=कमलनाल को खोदनेवाला। कूपं खनतीति कूपखाः। कूआ खोदनेवाला। (क्रम) दधि क्रामतीति दधिक्राः (ऋ० ४।३८।९)। दधि=धारण करनेवाले को वहन करनेवाला अश्व। दधिक्राः=अश्वः (निघण्टु १।१४)। (गम्) अग्रे गच्छतीति अग्रेगाः (यजु० २७।३१) आगे चलनेवाला।

सिद्धि-(१) अब्जाः। यहां 'अप्' सुबन्त उपपद होने पर 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'विट्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'विट्' के 'वि' का लोप और 'विड्वनोरनुनासिकस्यात्' (६।१।४१) से 'जन्' के न् को आत्त्व होता है। ऐसे ही-गोजाः।

(२) गोषाः। यहां 'गो' सुबन्त उपपद होने पर 'षणु दाने' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'विट्' प्रत्यय होता है। 'सनोतेरनः' (८।३।१०८) से 'सन्' को षत्व होता है। शेष पूर्ववत् है। ऐसे ही-नृषा।

(३) विसखाः। यहां 'विस' सुबन्त उपपद होने पर 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र 'विट्' प्रत्यय है। ऐसे ही-कूपखाः।

(४) दधिक्राः। यहां 'दधि' सुबन्त होने पर 'क्रमु पादविक्षेपे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विट्' प्रत्यय है।

(५) अग्रेगाः। यहां 'अग्रे' सुबन्त उपपद होने पर 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विट्' प्रत्यय है। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' (६।३।१२) से सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है।

विट्–

(२) अदोऽनन्ने।६८।

प०वि०–अदः ५।१ अनन्ने ७।१।

स०–न अन्नमिति अनन्नम्, तस्मिन्–अनन्ने (नञ्तत्पूरुषः)।

अनु०–छन्दसि इति निवृत्तम्, सुपि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अनन्ने सुप्युपपदेऽदो धातोर्विट्।

अर्थः–अन्नवर्जिते सुबन्ते उपपदेऽद्–धातोः परो विट् प्रत्ययो भवति।

उदा०–आममत्तीति आमात्। सस्यमत्तीति सस्यात्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनन्ने) अन्न शब्द को छोड़कर (सुपि) कोई सुबन्त उपपद होने पर (अदः) अद् (धातोः) धातु से परे (विट्) विट् प्रत्यय होता है।

उदा०-आममत्तीति आमात्। कच्चे पदार्थ खानेवाला। सस्यमत्तीति सस्यात्। खेती को खानेवाला हरिण आदि।

सिद्धि-आमात्। यहां 'आम' सुबन्त उपपद होने पर 'अद भक्षणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विट्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'विट्' के वि का लोप हो जाता है। 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'अद्' के द् को चर् त् होता है। ऐसे ही-'सस्य' उपपद होने पर-सस्यात्।

विट्–

(३) क्रव्ये च।६६।

प०वि०–क्रव्ये ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–सुपि, विट्, अद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रव्ये सुप्युपपदेऽदो धातोर्विट्।

अर्थः-क्रव्ये सुबन्ते उपपदेऽपि अद्-धातोः परो विट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-क्रव्यमत्तीति क्रव्यात्।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रव्ये) क्रव्य (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (च) भी (अदः) अद् (धातोः) धातु से परे (विट्) विट्प्रत्यय होता है।

*उदा०-**क्रव्यमत्तीति क्रव्यात्।** कच्चा मांस खानेवाला पिशाच।*

*सिद्धि-**क्रव्यात्।** यहां 'क्रव्य' सुबन्त उपपद होने पर **'अद भक्षणे'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विट्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वि' का लोप और अद् के द् को चर्त्व होता है।*

कप्–

(१) दुहः कप् घश्च।७०।

प०वि०-दुहः ५।१ कप् १।१ घः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-सुपि इत्यनुवर्तति।

अन्वयः-सुप्युपपदे दुहो धातोः कप् घश्च।

अर्थः-सुबन्ते उपपदे दुह्-धातोः परः कप् प्रत्ययो भवति, घकारश्चान्तादेशो भवति।

उदा०-कामं दोग्धीति कामदुघा धेनुः। अर्घं दोग्धीति अर्घदुघा। अर्घः=मधुपर्कः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (दुहः) दुह् (धातोः) धातु से परे (कप्) कप् प्रत्यय होता है (च) और (घः) धातु के अन्त्य हकार को घकार आदेश होता है।

*उदा०-**कामं दोग्धीति कामदुघा धेनुः।** दूध, घी आदि की कामना को पूरा करनेवाली दुधारु गौ। **अर्घं दोग्धीति अर्घदुघा।** अर्घ प्रदान करनेवाली नारी। अर्घ=मधुपर्क। मधु+दधि=मधुपर्क।*

*सिद्धि-**कामदुघा।** यहां काम सुबन्त उपपद होने पर **'दुह प्रपूरणे'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'कप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से दुह् धातु के ह् को घ् आदेश होता है। कामदुघ+टाप्। कामदुघा। स्त्रीलिङ्ग में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

ण्विन्–

(१) मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन्।७१।

प०वि०–मन्त्रे ७।१ श्वेतवह-उक्थशस्-पुरोडाशः ५।१ ण्विन् १।१।

स०–श्वेतवहश्च उक्थशश्च पुरोडाशश्च एतेषां समाहारः-श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाश्, तस्मात्-श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–सुपि इत्यनुवर्तते।

अर्थः–मन्त्रे विषये श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाश्भ्यो धातुभ्यो ण्विन् प्रत्ययो भवति। अत्र उपपदैः सह धातुसमुदाया निपात्यन्ते।

उदा०–श्वेता एनं वहन्तीति श्वेतवाः (इन्द्रः)। उक्थानि शंसति, उक्थैर्वा शंसतीति उक्थशाः (यजमानः) (ऋ० ७।१९।६)। पुरा दाशन्त एनमिति पुरोडाः (ऋ० ३।२।७१)।

आर्यभाषा-अर्थ-(मन्त्रे) मन्त्र विषय में (श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशः) श्वेतवह, उक्थशस्, पुरोडाश् (धातोः) धातुओं से (ण्विन्) ण्विन् प्रत्यय होता है। यहां उपपद सहित धातु समुदाय निपातित हैं।

उदा०-श्वेता एनं वहन्तीति श्वेतवाः (इन्द्रः)। श्वेत घोड़े जिसके वाहन हैं, वह इन्द्र=राजा। उक्थानि शंसति, उक्थैर्वा शंसतीति उक्थशा यजमानः। उक्थ=प्रशंसनीय मन्त्रों के अर्थों का उपदेश करनेवाला विद्वान् अथवा प्रशंसनीय मन्त्रों से परमेश्वर की स्तुति करनेवाला यजमान। पुर एनं दाशन्त इति पुरोडाः। विधिपूर्वक संस्कृत अन्नविशेष जिसकी पहले अग्नि में आहुति दी जाती है पश्चात् उसका भक्षण (सेवन) किया जाता है।

सिद्धि-(१) श्वेतवाः। यहां 'श्वेत' कर्ता सुबन्त उपपद होने पर 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्विन्' प्रत्यय है। 'श्वेतवहादीनां डस् पदस्य च' (भा०वा० ३।२।७१) से 'ण्विन्' प्रत्यय के स्थान में डस् आदेश होता है। 'डस्' आदेश के डित् होने से 'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से वह् के टि-भाग का लोप होता है। श्वेत+व्+अस्=श्वेतवस्+सु। 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' (६।४।१४) से दीर्घ और 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप होता है।

(२) उक्थशाः। यहां 'उक्थ' कर्म वा करण सुबन्त उपपद होने पर 'शंसु स्तुतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्विन्' प्रत्यय है। निपातन से 'शंस्' के न् का लोप हो जाता है। 'ण्विन्' प्रत्यय के स्थान में पूर्ववत् डस् आदेश आदि कार्य होते हैं।

(३) पुरोडाः। यहां 'पुरस्' अव्यय उपपद होने पर 'दाशृ दाने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्विन्' प्रत्यय है। धातु के दकार को निपातन से डकरादेश होता है। 'ण्विन्' प्रत्यय के स्थान में पूर्ववत् डस् आदेश आदि कार्य होते हैं।

ण्विन्–

(२) अवे यजः ।७२।

प०वि०–अवे ७ ।१ यजः ५ ।१।

अनु०–मन्त्रे, ण्विन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–मन्त्रेऽवे उपपदे यजो धातोर्ण्विन्।

अर्थः–मन्त्रे विषयेऽवे उपपदे यज-धातोः परो ण्विन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अवयजतीति अवयाः (परमेश्वरः)। योऽवयजति विरुद्धं कर्म न संगच्छते स परमेश्वरः (दयानन्दवेदभाष्यम् १ ।१७३ ।२)।

आर्यभाषा-अर्थ-(मन्त्रे) मन्त्र विषय में (अवे) अव उपसर्ग उपपद होने पर (यजः) यज् (धातोः) धातु से परे (ण्विन्) ण्विन् प्रत्यय होता है।

उदा०–अवयजतीति अवयाः। विरुद्ध कर्म न करनेवाला परमेश्वर।

सिद्धि–अवयाः। यहां अव उपसर्ग पूर्वक 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से ण्विन् प्रत्यय है। शेष सिद्धि 'श्वेतवाः' (३ ।२ ।७१) के समान है।

विच्–

(१) विजुपे च्छन्दसि ।७३।

प०वि०–विच् १ ।१ उपे ७ ।१ छन्दसि ७ ।१।

अनु०–यज इत्यनुवर्तते।

अर्थः–छन्दसि विषये उप-उपपदे यज्-धातोः परो विच्प्रत्ययो भवति।

उदा०–उपयजतीति उपयट्। उपयड्भिरूर्ध्वं वहन्ति। अत्र मन्त्र इत्यनुवर्तमाने छन्दो ग्रहणं ब्राह्मणार्थम्। **उपयड्भ्यः** (शत० ३ ।८ ।३ ।१८)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) ब्राह्मणग्रन्थ विषय में (उपे) उप उपसर्ग उपपद होने पर (यजः) यज् (धातोः) धातु से (विच्) विच् प्रत्यय होता है।

उदा०–उपयजतीति उपयट्। उपासना करनेवाला। उपयड्भिरूर्ध्वं वहन्ति। यहां 'मन्त्रे' की अनुवृत्ति होने पर 'छन्दसि' पद का ग्रहण ब्राह्मणग्रन्थ के लिये किया गया है।

सिद्धि–उपयट्। यहां उप-उपसर्गपूर्वक 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'विच्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६ ।१ ।५५) से 'विच्' प्रत्यय के 'वि'

का सर्वहारी लोप हो जाता है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से 'यज्' के ज् को ष् और 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से ष् को जश् ड् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ड् को चर् ट् होता है।

मनिन्+क्वनिप्+वनिप्+विच्–

(२) आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च।७४।

प०वि०–आत: ५।१ मनिन्-क्वनिप्-वनिप: १।३ च अव्ययपदम्।

स०–मनिन् च क्वनिप् च वनिप् च ते–मनिन्क्वनिब्वनिप: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–सुपि, छन्दसि, विच् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–छन्दसि सुप्युपपदे आतो धातोर्मनिन्क्वनिब्वनिपो विच्च।

अर्थ:–छन्दसि विषये सुबन्ते उपपदे आकारान्तेभ्यो धातुभ्यो मनिन्-क्वनिप्-वनिपो विच्च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०–**(मनिन्)** शोभनं ददातीति सुदामा। अश्व इव तिष्ठतीति अश्वत्थामा। **(क्वनिप्)** शोभनं दधातीति सुधीवा। शोभनं पिबतीति सुपीवा। **(वनिप्)** भूरि ददातीति भूरिदावा। घृतं पिबतीति घृतपावा। **(विच्)** कीलालं पिबतीति कीलालपा:। शुभं यातीति शुभंया:।

***आर्यभाषा-अर्थ**–(छन्दसि) वेदविषय में (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (आत:) आकारान्त (धातो:) धातुओं से परे (मनिन्-क्वनिप्-वनिप:) मनिन्, क्वनिप्, वनिप् (च) और (विच्) विच्प्रत्यय होते हैं।*

***उदा०**–(मनिन्) **शोभनं ददातीति सुदामा।** सुन्दर दान करनेवाला। **अश्व इव तिष्ठतीति अश्वत्थामा।** अश्व के समान खड़ा रहनेवाला। (क्वनिप्) **शोभनं दधातीति सुधीवा।** सुन्दर धारण-पोषण करनेवाला। **शोभनं पिबतीति सुपीवा।** सुन्दर पान करनेवाला। (वनिप्) **भूरि ददातीति भूरिदावा।** बहुत दान करनेवाला। **घृतं पिबतीति घृतपावा।** घृत का पान करनेवाला। (विच्) **कीलालं पिबन्तीति कीललपा:।** कीलाल=उत्तम रस का पान करनेवाला (यजु० २।४९)। **शुभं यातीति शुभंया:।** शुभ=कल्याण को प्राप्त करनेवाला।*

***सिद्धि**–(१) **सुदामा।** यहां 'सु' उपपद होने पर 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'मनिन्' प्रत्यय है। सु+दा+मनिन्। सुदामन्+सु। 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' (६।४।८) से अङ्ग को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोप: प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।*

(२) अश्वत्थामा। यहां 'अश्व' उपपद होने पर 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'मनिन्' प्रत्यय है। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' (६।३।१०७) से 'स्था' के 'स्' को 'त्' आदेश होता है। शेष कार्य 'सुदामा' के समान है।

(३) सुधीवा। यहां 'सु' उपपद होने पर 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय है। सु+धा+क्वनिप्। 'घुमास्था०' (६।४।६६) से 'धा' को ईत्व होता है। शेष कार्य सुदामा के समान है। ऐसे ही- 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से-सुपीवा।

(४) भूरिदावा। यहां 'भूरि' उपपद होने पर 'डुदाञ् दाने' (जु०प०) धातु से इस सूत्र से 'वनिप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'सुदामा' के समान है। ऐसे ही 'पा' धातु से-घृतपावा।

(५) कीलालपाः। यहां 'कीलाल' उपपद होने पर 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विच्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।५५) से 'विच्' प्रत्यय के 'वि' का सर्वहारी लोप हो जाता है।

(६) शुभंयाः। यहां 'शुभ' कर्म उपपद होने पर 'या प्रापणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विच्' प्रत्यय है। 'वा च्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति' से द्वितीया-विभक्ति का अलुक् है।

मनिन्+क्वनिप्+वनिप्+विच्-

(३) अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते।७५।

प०वि०-अन्येभ्यः ५।३ अपि अव्ययपदम्, दृश्यन्ते क्रियापदम्।

अनु०-विच्, मनिन्क्वनिब्वनिप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अन्येभ्योऽपि धातुभ्यो मनिन्क्वनिब्वनिपो विच्च दृश्यन्ते।

अर्थः-अन्येभ्यः=आकारान्तभिन्नेभ्योऽपि धातुभ्यो मनिन्-क्वनिप्-वनिपो विच्च प्रत्यया दृश्यन्ते।

उदा०-(मनिन्) शोभनं शृणातीति सुशर्मा। **(वनिप्)** प्रातरेतीति प्रातरित्वा। **(वनिप्)** विजायते इति विजावा। अग्रे गच्छतीति अग्रेगावा। **(विच्)** रेषतीति रेट्। रेडसि पर्णं नयेः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्येभ्यः) आकारान्त से भिन्न (धातोः) धातुओं से (अपि) भी (मनिन्क्वनिब्वनिपः) मनिन्, क्वनिप्, वनिप् और (विच्) विच्-प्रत्यय (दृश्यन्ते) दिखाई देते हैं।

उदा०-(मनिन्) शोभनं शृणातीति सुशर्मा। भलीभांति अविद्या का नाश करनेवाला। (वनिप्) प्रातरेतीति प्रातरित्वा। प्रातःकाल प्राप्त होनेवाला सूर्य। (वनिप्) विजायते इति विजावा। विविध प्रकार की सृष्टि-रचना करनेवाला ईश्वर। अग्रे गच्छतीति अग्रेगावा। आगे चलनेवाला। (विच्) रेषतीति रेट्। हिंसा करनेवाला।

सिद्धि-(१) सुशर्मा। यहां 'सु' उपपद होने पर 'शॄ हिंसायाम्' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'मनिन्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'शॄ' धातु को गुण होता है। शेष कार्य 'सुदामा' के समान है।

(२) प्रातरित्वा। यहां प्रातः उपपद होने पर 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय है। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'तुक्' आगम होता है। प्रातर्+इ+तुक्+क्वनिप्। शेष कार्य 'सुदामा' के समान है।

(३) विजावा। यहां 'वि' उपपद होने पर 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'वनिप्' प्रत्यय है। 'विड्वनोरनुनासिकस्यात्' (६।४।४१) से 'जन्' के 'न्' को आकार आदेश होता है। शेष कार्य 'सुदामा' के समान है।

(४) रेट्। यहां 'रिष हिंसायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विच्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'विच्' के 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'रिष्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'ष्' को जश् ड् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ड् को चर् ट् होता है।

क्विप्–

(१) क्विप् च।७६।

प०वि०-क्विप् १।१ च अव्ययपदम् १।१।

अन्वयः-धातोः क्विप् च।

अर्थः-सोपपदेभ्यो निरुपपदेभ्यश्च सर्वेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि भाषायां च क्विप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-उखाया स्रंसते इति उखास्रत्। पर्णानि ध्वंसते इति पर्णध्वत्। वाहाद् भ्रश्यतीति वाहाभ्रट्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) सोमपद और निरुपपद सब धातुओं से छन्द और भाषा में (क्विप्) क्विप् प्रत्यय (च) भी होता है।

उदा०-उखायाः स्रंसते इति उखास्रत्। उखा (हण्डिया) से गिरनेवाला पदार्थ। पर्णानि ध्वंसते इति पर्णध्वत्। पत्तों को नष्ट करनेवाला। वाहाद् भ्रश्यतीति वाहाभ्रट्। वाह=अश्व आदि से गिरनेवाला।

सिद्धि-(१) उखास्रत्। यहां 'उखा' उपपद होने पर 'स्रंसु अवस्रंसने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से क्विप् प्रत्यय है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप और 'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः' (८।२।७२) से 'स्रस्' के 'स्' को 'द्' आदेश होता है। 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'द्' को चर् त् होता है।

(२) पर्णध्वत्। यहां पर्ण उपपद होने पर 'ध्वंसु अवस्रंसने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) वाहाभ्रट्। यहां 'वाह' उपपद होने पर 'भ्रंशु अधःपतने' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से 'भ्रंश्' के श् को ष्, 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से ष् को जश् ड् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ड् को चर् ट् होता है। 'अन्येषामपि दृश्यते' (६।३।१३५) से वाह को दीर्घ होता है।

कः+क्विप्–

(२) स्थः क च।७७।

प०वि०-स्थः ५।१ क १।१ (लुप्तविभक्तिको निर्देशः) च अव्ययपदम्।

अनु०-सुपि, क्विप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्थो धातोः कः क्विप् च।

अर्थः-सुबन्ते उपपदे सोपसर्गाद् निरुपसर्गाच्च स्था-धातोः परः कः क्विप् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(कः) शं तिष्ठतीति शंस्थः। **(क्विप्)** शं तिष्ठतीति शंस्थाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर सोपसर्ग और निरुपसर्ग (स्थः) स्था (धातोः) धातु से परे (क) क-प्रत्यय (च) और (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(क) शं तिष्ठतीति शंस्थः। (क्विप्) शं तिष्ठतीति शंस्थाः। शान्त रहनेवाला।

सिद्धि-(१) शंस्थः। यहां 'शम्' अव्यय उपपद होने पर 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'स्था' के आ का लोप हो जाता है।

(२) शंस्थाः। यहां 'शम्' अव्यय उपपद होने पर पूर्वोक्त 'स्था' धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) 'क्विप्' प्रत्यय के 'वि' का सर्वहारी लोप हो जाता है।

णिनिः–

(१) सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये।७८।

प०वि०–सुपि ७।१ अजातौ ७।१ णिनिः १।१ ताच्छील्ये ७।१।

स०–न जातिरिति अजातिः, तस्याम्-अजातौ (नञ्तत्पुरुषः)। तस्य शीलमिति तच्छीलम्, (षष्ठीतत्पुरुषः)। तच्छीलस्य भावस्ताच्छील्यम्, तस्मिन्-ताच्छील्ये (तद्धितवृत्तिः)।

अर्थः–अजातिवाचिनि सुबन्ते उपपदे धातोर्णिनिः प्रत्ययो भवति, ताच्छील्ये गम्यमाने।

उदा०–उष्णं भोक्तुं शीलं यस्य सः-उष्णभोजी। शीतं भोक्तुं शीलं यस्य सः-शीतभोजी।

आर्यभाषा-अर्थ-(अजातौ) जातिवाची से भिन्न (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (धातोः) धातु से (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है, (ताच्छील्ये) यदि वहां वह उसका शील=स्वभाव हो।

उदा०-उष्णं भोक्तुं शीलं यस्य सः-उष्णभोजी। उष्ण=गर्म खाने के स्वभाववाला। शीतं भोक्तुं शीलं यस्य सः-शीतभोजी। शीत=ठण्डा खाने के स्वभाववाला।

सिद्धि-उष्णभोजी। यहां गुणवाची 'उष्ण' सुबन्त उपपद होने पर 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है। उष्णभोजिन्+सु। 'सौ च' (६।४।१३) से नकारान्त की उपधा को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। ऐसे ही-शीतभोजी।

णिनिः–

(२) कर्तर्युपमाने।७६।

प०वि०–कर्तरि ७।१ उपमाने ७।१।

अनु०–सुपि, णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–उपमाने कर्तरि सुप्युपपदे धातोर्णिनिः।

अर्थः–उपमानवाचिनि कर्तरि सुबन्ते उपपदे धातोर्णिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-उष्ट्र इव क्रोशतीति उष्ट्रक्रोशी। ध्वाङ्क्ष इव रौतीति ध्वाङ्क्षरावी।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपमाने) उपमानवाची (कर्तरि) कर्ता (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (धातोः) धातु से (णिनिः) णिनि-प्रत्यय होता है।

उदा०-उष्ट्र इव क्रोशतीति उष्ट्रक्रोशी। उष्ट्र के समान रोनेवाला। ध्वाङ्क्ष इव रौतीति ध्वाङ्क्षरावी। ध्वाङ्क्ष=कौवे के समान शब्द करनेवाला।

सिद्धि-(१) उष्ट्रक्रोशी। यहां उपमानवाची कर्ता 'उष्ट्र' शब्द उपपद होने पर 'क्रुश आह्वाने रोदने च' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'क्रुश्' धातु को लघूपध गुण होता है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।

(२) ध्वाङ्क्षरावी। यहां उपमानवाची कर्ता 'ध्वाङ्क्ष' शब्द उपपद होने पर 'रु शब्दे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'रु' धातु को वृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।

णिनिः-

(३) व्रते।८०।

प०वि०-व्रते ७।१।

अनु०-सुपि, णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सुप्युपपदे धातोर्णिनिर्व्रते।

अर्थः-सुबन्ते उपपदे धातोर्णिनिः प्रत्ययो भवति, व्रते गम्यमाने।

उदा०-स्थण्डिले शयितुं व्रतं यस्य सः-स्थण्डिलशायी। अश्राद्धं भोक्तुं व्रतं यस्य सः-अश्राद्धभोजी। ब्रह्मणि चरितुं व्रतं यस्य सः-ब्रह्मचारी।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (धातोः) धातु से (णिनिः) णिनि-प्रत्यय होता है, यदि वहां (व्रते) व्रत अर्थ प्रकट होता हो।

उदा०-स्थण्डिले शयितुं व्रतं यस्य सः-स्थण्डिलशायी। स्थण्डिल=चबूतरे पर शयन का व्रत करनेवाला (तपस्वी)। अश्राद्धं भोक्तुं व्रतं यस्य सः-अश्राद्धभोजी। श्राद्ध का भोजन न करनेवाला। ब्रह्मणि चरितुं व्रतं यस्य सः-ब्रह्मचारी। ब्रह्म=वेद में विचरण का व्रत करनेवाला, ब्रह्मचारी।

सिद्धि-(१) स्थण्डिलशायी। यहां 'स्थण्डिल' सुबन्त उपपद होने पर 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'शीङ्' धातु को वृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।

(२) अश्राद्धभोजी। यहां 'अश्राद्ध' सुबन्त उपपद होने पर 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।

(३) ब्रह्मचारी। यहां 'ब्रह्म' सुबन्त उपपद होने पर 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'चर्' धातु को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।

णिनिः—

(४) बहुलमाभीक्ष्ण्ये।८१।

प०वि०—बहुलम् १।१ आभीक्ष्ण्ये ७।१।

अनु०—सुपि, णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः—सुप्युपपदे धातोर्बहुलं णिनिराभीक्ष्ण्ये।

अर्थः—सुबन्ते उपपदे धातोर्बहुलं णिनिः प्रत्ययो भवति, आभीक्ष्ण्ये गम्यमाने। आभीक्ष्ण्यम्, पौनःपुन्यम्, तत्परता, आसेवा इति पर्यायाः।

उदा०—कषायं पिबतीति कषायपायी। कषायपायिणो गान्धाराः। क्षीरं पिबतीति क्षीरपायी। क्षीरपायिण उशीनराः। सौवीरं पिबतीति सौवीरपायी। सौवीरपायिणो बाह्लीकाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (धातोः) धातु से (बहुलम्) प्रायः (णिनिः) णिनिप्रत्यय होता है, यदि वहां (आभीक्ष्ण्ये) क्रिया का बार-बार होना प्रकट हो।

*उदा०-**कषायं पिबतीति कषायपायी।** कषाय रस का पान करनेवाला। **कषायपायिणो गान्धाराः।** गान्धार देश के लोग कषाय रस के शौकीन हैं। **क्षीरं पिबतीति क्षीरपायी।** दूध पीनेवाला। **क्षीरपायिण उशीनराः।** उशीनर प्रदेश के लोग दुग्धपान के शौकीन हैं। **सौवीरं पिबतीति सौवीरपायी।** सौवीर=कांजी पीनेवाला। **सौवीरपायिणो बाह्लीकाः।** बाह्लीक प्रदेश के लोग सौवीर (कांजी विशेष) पीनेवाले हैं।*

*सिद्धि-**कषायपायी।** यहां 'कषाय' सुबन्त उपपद होने पर 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है। ऐसे ही-क्षीरपायी और सौवीरपायी।*

विशेष-(१) गन्धार। गन्धार महाजनपद कुनड़ (काश्कर) नदी से तक्षशिला तक फैला हुआ था। इसकी राजधानी पुष्कलावती थी।

(२) उशीनर। रावी और चनाब के बीच का निचला भूभाग उशीनर प्रदेश कहलाता था जिसकी राजधानी शिविपुर=शोरकोट (झंग जिले की एक तहसील) थी।

(३) बाह्लीक। कंबोज के पश्चिम, वंक्षु के दक्षिण और हिन्दूकुश के उत्तर-पश्चिम का प्रदेश बाह्लीक महाजनपद था। (पा०का० भारतवर्ष पृ० ६२, ६७)

णिनिः–

(५) मनः।८२।

प०वि०–मनः ५।१।

अनु०–सुपि णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–सुप्युपपदे मनो धातोर्णिनिः।

अर्थः–सुबन्ते उपपदे मन्–धातोः परो णिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०–दर्शनीयं मन्यते इति दर्शनीयमानी। शोभनं मन्यते इति शोभनमानी।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (मनः) मन् (धातोः) धातु से परे (णिनिः) णिनिप्रत्यय होता है।

*उदा०–**दर्शनीयं मन्यते इति दर्शनीयमानी।** किसी पदार्थ को दर्शनीय माननेवाला। **शोभनं मन्यते इति शोभनमानी।** किसी पदार्थ को शोभन (सुन्दर) माननेवाला।*

*सिद्धि-**दर्शनीयमानी।** यहां 'दर्शनीय' सुबन्त उपपद होने पर 'मन ज्ञाने' (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'मन्' धातु को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।*

खश्+णिनिः–

(६) आत्ममाने खश् च।८३।

प०वि०–आत्ममाने ७।१ खश् १।१ च अव्ययपदम्।

स०–आत्मनो मानः (मननम्) इति आत्ममानः, तस्मिन्–आत्ममाने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–सुपि, णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–सुप्युपपदे आत्ममाने मनो धातोः खश्, णिनिश्च।

अर्थः–सुबन्ते उपपदे आत्ममानेऽर्थे वर्तमानाद् मन्–धातोः परः खश् णिनिश्च प्रत्ययो भवति।

उदा०–दर्शनीयमात्मानं मन्यते इति दर्शनीयम्मन्यः (खश्) दर्शनीयमानी वा (णिनिः)। पण्डितमात्मानं मन्यते इति पण्डितम्मन्यः (खश्) पण्डितमानी वा (णिनिः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (आत्ममाने) स्वयं को मानने अर्थ में विद्यमान (मनः) मन् (धातोः) धातु से परे (खश्) खश् (च) और (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है।

उदा०-(खश्) दर्शनीयमात्मानं मन्यते इति दर्शनीयम्मन्यः *(णिनि)* दर्शनीयमानी वा। *स्वयं को दर्शनीय माननेवाला। (खश्)* पण्डितमात्मानं मन्यते इति दर्शनीयम्मन्यः *(णिनि)* पण्डितमानी वा। *स्वयं को पण्डित माननेवाला।*

सिद्धि-(१) दर्शनीयम्मन्यः। *यहां 'दर्शनीय' सुबन्त उपपद होने पर* **'मन ज्ञाने'** *(दि०आ०) धातु से इस सूत्र से खश् प्रत्यय है। खश् प्रत्यय के खित् होने से 'दर्शनीय' शब्द को* **'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्'** *(६।३।३५) से 'मुम्' आगम होता है। 'खश्' प्रत्यय के 'शित्' होने से* **'तिङ्शित् सार्वधातुकम्'** *(३।४।११३) से सार्वधातुक संज्ञा होती है और सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर* **'दिवादिभ्यः श्यन्'** *(३।१।६९) से 'श्यन्' प्रत्यय होता है। दर्शनीय+मुम्+मन्+श्यन्+खश्। दर्शनीयम्मन्यः।*

(२) दर्शनीयमानी। *यहां 'दर्शनीय' सुबन्त उपपद होने पर* **'मन ज्ञाने'** *(दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है।* **'अत उपधायाः'** *(७।२।११६) से 'मन्' धातु को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।*

(३) ऐसे ही पण्डितम्मन्यः *और* पण्डितमानी *पद सिद्ध करें।*

भूतकालप्रत्ययप्रकरणम्

भूते।८४।

प०वि०-भूते ७।१।

अर्थः-'भूते' इत्यधिकारोऽयम्, 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) इति यावत्। यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामो भूते काले तद् वेदितव्यम्।

उदा०-अग्रे द्रष्टव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(भूते) **'वर्तमाने लट्'** *(२।३।१२३) तक 'भूते' का अधिकार है। जो इससे आगे कहेंगे उसे भूतकाल में समझना चाहिये।*

उदा०-आगे देखें।

णिनिः-

(१) करणे यजः।८५।

प०वि०-करणे ७।१ यजः ५।१।

अनु०-सुपि, णिनिः, भूते इति चानुवर्तति।

अन्वयः-करणे सुप्युपपदे यजो धातोर्णिनिर्भूते।

अर्थः-करणे सुबन्ते उपपदे यज्-धातोः परो णिनिः प्रत्ययो भवति भूतकाले।

उदा०-अग्निष्टोमेन इष्टवानिति अग्निष्टोमयाजी।

आर्यभाषा-अर्थः-(करणे) करण (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (यजः) यज् (धातोः) धातु से परे (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-**अग्निष्टोमेन इष्टवानिति अग्निष्टोमयाजी।** अग्निष्टोम से यज्ञ करनेवाला।*

*सिद्धि-**अग्निष्टोमयाजी।** यहां 'अग्निष्टोम' करण सुबन्त उपपद होने पर 'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से यज् धातु को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।*

णिनिः-

(२) कर्मणि हनः।८६।

प०वि०-कर्मणि ७।१ हनः ५।१।

अनु०-णिनिः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे हनो धातोर्णिनिर्भूते।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे हन्-धातोः परो णिनिः प्रत्ययो भवति भूते काले।

उदा०-पितृव्यं हतवानिति पितृव्यघाती। मातुलं हतवानिति मातुलघाती।

आर्यभाषा-अर्थ-(ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु) ब्रह्म, भ्रूण, वृत्र (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-**पितृव्यं हतवानिति पितृव्यघाती।** पितृव्य=चाचा का हत्यारा। **मातुलं हतवानिति मातुलघाती।** मातुल=मामा का हत्यारा।*

*सिद्धि-**पितृव्यघाती।** यहां 'पितृव्य' कर्म उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (७।३।३२) से 'हन्' के 'न्' को 'त्' और हो 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।३।५४) से 'हन्' के 'ह्' को कुत्व 'घ्' होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'हन्' को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है। 'मातुल' उपपद होने पर-मातुलघाती।*

क्विप्–

(१) ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्।८७।

प०वि०–ब्रह्म-भ्रूण-वृत्रेषु ७।३ क्विप् १।१।

स०–ब्रह्म च भ्रूणश्च वृत्रश्च ते ब्रह्मभ्रूणवृत्राः, तेषु ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, हनः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु कर्मसूपपदेषु हनो धातोः क्विप् भूते।

अर्थः–ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु कर्मसु उपपदेषु हन्-धातोः परः क्विप् प्रत्ययो भवति भूते काले।

उदा०–(**ब्रह्म**) ब्रह्म हतवानिति ब्रह्महा। (**भ्रूणः**) भ्रूणं हतवानिति भ्रूणहा। (**वृत्रः**) वृत्रं हतवानिति वृत्रहा।

आर्यभाषा-अर्थः-(ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु) ब्रह्म, भ्रूण, वृत्र (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से (क्विप्) क्विप्प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-(ब्रह्म) ब्रह्म हतवानिति ब्रह्महा। ब्राह्मण का हत्यारा। (भ्रूण) भ्रूणं हतवानिति भ्रूणहा। भ्रूण=गर्भ का हत्यारा। (वृत्र) वृत्रं हतवानिति वृत्रहा। वृत्र (राक्षस) का हत्यारा=इन्द्र।

सिद्धि-ब्रह्महा। यहां 'ब्रह्म' कर्म उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'क्यप्' प्रत्यय के 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। वृत्रहन्+सु। 'सौ च' (६।४।१३) से हन् की उपधा को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से न् का लोप होता है। ऐसे ही-भ्रूणहा और वृत्रहा।

क्विप्–

(२) बहुलं छन्दसि।८८।

प०वि०–बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–कर्मणि, हनः, क्विप्, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि कर्मण्युपपदे हनो धातोर्बहुलं क्विप् भूते।

अर्थः–छन्दसि विषये कर्मणि कारके उपपदे हन्-धातोः परो बहुलं क्विप्-प्रत्ययो भवति भूते काले।

उदा०-मातरं हतवानिति मातृहा। मातृहा सप्तमं नरकं प्रविशेत्। पितरं हतवानिति पितृहा। न च भवति-मातरं हतवानिति मातृघातः। पितरं हतवानिति पितृघातः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (बहुलम्) प्रायः (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-मातरं हतवानिति मातृहा। माता का हत्यारा। मातृहा सप्तमं नरकं प्रविशेत्। माता का हत्यारा सप्तम नरक में जाता है। पितरं हतवानिति पितृहा। पिता का हत्यारा। जहां 'क्विप्' प्रत्यय नहीं होता वहां-मातरं हतवानिति मातृघातः। माता का हत्यारा। पितरं हतवानिति पितृघातः। पिता का हत्यारा।

सिद्धि-(१) मातृहा। यहां 'माता' कर्म उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'ब्रह्महा' के समान है। ऐसे ही-पितृहा।

(२) मातृघातः। यहां 'माता' कर्म उपपद होने पर विकल्प पक्ष में 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय होता है। 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (७।३।३२) से 'हन्' के 'न्' को 'त्' और 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।२।५४) से 'हन्' के 'ह्' को कुत्व 'घ्' होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'हन्' को उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही-पितृघातः।

क्विप्-

(३) सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः।८६।

प०वि०-सु-कर्म-पाप-मन्त्र-पुण्येषु ७।३ कृञः ५।१।

स०-सुश्च कर्म च पापं च मन्त्रश्च पुण्यं च तानि-सुकर्मपाप-मन्त्रपुण्यानि, तेषु-सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, क्विप्, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कर्मसूपपदेषु कृञो धातोः क्विप् भूते।

अर्थः-सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कर्मसु उपपदेषु कृञ्-धातोः परः क्विप् प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-**(सु)** सुष्ठु कृतवानिति सुकृत्। **(कर्म)** कर्म कृतवानिति कर्मकृत्। **(पापम्)** पापं कृतवानिति पापकृत्। **(मन्त्रः)** मन्त्रं कृतवानिति मन्त्रकृत्। **(पुण्यम्)** पुण्यं कृतवानिति पुण्यकृत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु) सु, कर्म, पाप, मन्त्र, पुण्य (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-(सु) सुष्ठु कृतवानिति सुकृत्। अच्छा बनानेवाला। (कर्म) कर्म कृतवानिति कर्मकृत्। कर्म करनेवाला। (पाप) पापं कृतवानिति पापकृत्। पाप करनेवाला। (मन्त्र) मन्त्रं कृतवानिति मन्त्रकृत्। मन्त्र बनानेवाला ईश्वर। (पुण्य) पुण्यं कृतवानिति पुण्यकृत्। शुभकर्म करनेवाला।

सिद्धि-(१) सुकृत्। यहां 'सु' अव्यय उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' प्रत्यय के 'वि' का 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से सर्वहारी लोप हो जाता है। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'कृ' धातु को 'तुक्' आगम होता है। सु+कृ+तुक्+०। सुकृत्+सु। 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप हो जाता है। ऐसे ही-कर्मकृत्, पापकृत्, मन्त्रकृत्, पुण्यकृत् शब्द सिद्ध करें।

क्विप्–

(४) सोमे सुञः।६०।

प०वि०-सोमे ७।१ सुञः ५।१।

अनु०-कर्मणि, क्विप्, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सोमे कर्मण्युपपदे सुञो धातोः क्विप् भूते।

अर्थः-सोमे कर्मण्युपपदे सुञ्-धातोः परः क्विप् प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-सोमं सुतवानिति सोमसुत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सोमे) सोम (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (सुञः) सुञ् (धातोः) धातु से परे (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-सोमं सुतवानिति सोमसुत्। सोम ओषधि का रस निचोड़नेवाला।

सिद्धि-सोमसुत्। यहां 'सोम' कर्म उपपद होने पर 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'सुकृत्' (३।२।८९) के समान है।

क्विप्–

(५) अग्नौ चेः।६१।

प०वि०-अग्नौ ७।१ चेः ५।१।

अनु०-कर्मणि, क्विप्, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अग्नौ कर्मण्युपपदे चेर्धातोः क्विप् भूते।

अर्थः-अग्नौ कर्मण्युपपदे चिञ्-धातोः परः क्विप्प्रत्ययो भवति, भूतकाले।

उदा०-अग्निं चितवानिति अग्निचित्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अग्नौ) अग्नि (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (चेः) चिञ् (धातोः) धातु से परे (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-अग्निं चितवानिति अग्निचित्। अग्नि का आधान करनेवाला, अग्निहोत्री।

सिद्धि-अग्निचित्। यहां 'अग्नि' कर्म उपपद होने पर 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'सुकृत्' (३।२।८९) के समान है।

क्विप्-

(६) कर्मण्यग्न्याख्यायाम्।६२।

प०वि०-कर्मणि ७।१ अग्नि-आख्यायाम् ७।१।

स०-अग्नेराख्या इति अग्न्याख्या, तस्याम्-अग्न्याख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-कर्मणि, क्विप्, चेः, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे चेर्धातोः क्विप् अग्न्याख्यायां भूते।

अर्थः-कर्मण्युपपदे चिञ्-धातोः परः कर्मण्येव कारके क्विप् प्रत्ययो भवति, अग्नि-आख्यायां गम्यमानायां भूते काले।

उदा०-श्येन इवाचीयत इति श्येनचित्। कङ्क इवाचीयत इति कङ्कचित्।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (चेः) चिञ् (धातोः) धातु से परे (कर्मणि) कर्मवाच्य में ही (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है यदि वहां (अग्न्याख्यायाम्) अग्नि का प्रकथन हो (भूते) भूतकाल में।

उदा०-श्येन इवाचीयत इति श्येनचित् (अग्निः)। वह अग्नि जिसका श्येन=बाज पक्षी की आकृति में यज्ञकुण्ड में आधान किया गया है। कङ्क इवाचीयत इति कङ्कचित् (अग्निः)। वह अग्नि जिसका कङ्क=चिमटे की आकृति में यज्ञकुण्ड में आधान किया गया है। यज्ञविशेष में श्येनाकृति आदि के यज्ञकुण्ड बनाये जाते हैं। उनमें अग्निचयन भी तदाकार का होता है।

सिद्धि-श्येनचित्। यहां 'श्येन' कर्म उपपद होने पर 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'सुकृत्' (३।२।८९) के समान है।

इनिः–

(१) कर्मणीनि विक्रियः।६३।

प०वि०-कर्मणि ७।१। इनि १।१ (लुप्तविभक्तिको निर्देशः) विक्रियः ५।१।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे विक्रियो धातोरिनिर्भूते।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे वि-पूर्वात् क्रीञ्-धातोः पर इनिः प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-सोमं विक्रीतवानिति सोमविक्रयी। रसं विक्रीतवानिति रसविक्रयी।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (विक्रियः) वि-उपसर्गपूर्वक क्रीञ् (धातोः) धातु से परे (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-**सोमं विक्रीतवानिति सोमविक्रयी।** सोम बेचनेवाला। **रसं विक्रीतवानिति रसविक्रयी।** रस=दूध बेचनेवाला।*

*सिद्धि-**सोमविक्रयी।** यहां 'सोम' कर्म उपपद होने पर वि-उपसर्गपूर्वक 'डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'क्री' धातु को गुण होता है। सोम+विक्रे+इन्। सोमविक्रयिन्+सु। 'सौ च' (६।४।१३) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। ऐसे ही-**रसविक्रयी।***

विशेष-अनुवृत्ति-कर्म की अनुवृत्ति होने पर फिर 'कर्मणि' पद का ग्रहण निन्दा अर्थ के लिये किया गया है। सोम और रस बेचना शास्त्र में निषिद्ध है। जो शास्त्रविरुद्ध आचरण करता है उसे निन्दा में सोमविक्रयी आदि कहा जाता है।

क्वनिप्–

(१) दृशेः क्वनिप्।६४।

प०वि०-दृशेः ५।१ क्वनिप् १।१।

अनु०-कर्मणि, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे दृशेर्धातोः क्वनिप् भूते।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे दृशिधातोः परः क्वनिप् प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-मेरुं दृष्टवानिति मेरुदृश्वा। परलोकं दृष्टवानिति परलोकदृश्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (दृशेः) दृश् (धातोः) धातु से परे (क्वनिप्) क्वनिप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-मेरुं दृष्टवानिति मेरुदृश्वा। मेरु पर्वत को देखनेवाला। परलोकं दृष्टवानिति परलोकदृश्वा। परलोक को जाननेवाला।

सिद्धि-मेरुदृश्वा। यहां 'मेरु' कर्म उपपद होने पर 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय है। मेरु+दृश्+क्वनिप्। मेरुदृश्वन्+सु। 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। ऐसे ही-परलोकदृश्वा।

क्वनिप्-

(२) राजनि युधिकृञः।६५।

प०वि०-राजनि ७।१ युधि-कृञः ५।१।

स०-युधिश्च कृञ् च एतयोः समाहारो युधिकृञ्, तस्मात्-युधिकृञः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, क्वनिप्, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-राजनि कर्मण्युपपदे युधिकृञो धातोः क्वनिप् भूते।

अर्थः-राजनि कर्मण्युपपदे युधिकृञ्भ्यां धातुभ्यां परः क्वनिप् प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-(युधि) राजानं योधितवानिति राजयुध्वा। (कृञ्) राजानं कृतवानिति राजकृत्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(राजनि) राजन् (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (युधिकृञः) युध् और कृञ् (धातोः) धातु से परे (क्वनिप्) क्वनिप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-राजानं योधितवानिति राजयुध्वा। राजा को लड़ानेवाला। राजानं कृतवानिति राजकृत्वा। राजा को बनानेवाला।

सिद्धि-(१) राजयुध्वा। यहां 'राजन्' कर्म उपपद होने पर 'युध सम्प्रहारे' (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'मेरुदृश्वा' (३।२।९४) के समान है। यहां णिच् प्रत्यय का अर्थ अन्तर्भावित है।

(२) राजकृत्वा। यहां 'राजन्' कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय है। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'कृ' को तुक् आगम होता है। राजन्+कृ+तुक्+क्वनिप्। राजकृत्वन्+सु। शेष कार्य 'मेरुदृश्वा' (३।२।९४) के समान है।

क्वनिप्–

(३) सहे च।९६।

प०वि०-सहे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-क्वनिप्, युधिकृञः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सहे उपपदे युधिकृञो धातोः क्वनिप् भूते।

अर्थः-सह-शब्दे उपपदे युधिकृञ्भ्यां धातुभ्यां परः क्वनिप् प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-(युधि) सह युद्धवानिति सहयुध्वा। (कृञ्) सह कृतवानिति सहकृत्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(सहे) सह शब्द उपपद होने पर (युधिकृञः) युध् और कृञ् (धातोः) धातु से परे (क्वनिप्) क्वनिप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-(युधि) सह युद्धवानिति सहकृत्वा। साथ लड़नेवाला। (कृञ्) सह कृतवानिति सहकृत्वा। साथ कार्य करनेवाला।

सिद्धि-सहयुध्वा। यहां 'सह' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त 'युध्' धातु से इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'मेरुदृश्वा' (३।२।९४) के समान है। ऐसे ही-सहकृत्वा।

डः–

(१) सप्तम्यां जनेर्डः।९७।

प०वि०-सप्तम्याम् ७।१ जनेः ५।१ डः १।१।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्यामुपपदे जनेर्धातोर्डो भूते।

अर्थः-सप्तम्यन्ते उपपदे जनि-धातोर्डः प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-उपसरे जात इति उपसरजः। मन्दुरायां जात इति मन्दुरजः।

आर्यभाषा-अर्थः-(सप्तम्याम्) सप्तमी-अन्त उपपद होने पर (जनेः) जन् (धातोः) धातु से (डः) ड-प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-उपसरे जात इति उपसरजः। प्रथम बार गर्भ ग्रहण होने पर उत्पन्न होनेवाला। मन्दुरायां जात इति मन्दुरजः। मन्दुरा=घुड़शाला में उत्पन्न होनेवाला।

सिद्धि-(१) उपसरजः। यहां सप्तम्यन्त 'उपसर' उपपद होने पर 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। उपसर+जन्+ड। 'ड' प्रत्यय के डित् होने से 'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से 'जन्' के टि-भाग (अन्) का लोप हो जाता है।

(२) मन्दुरजः। यहां सप्तम्यन्त 'मन्दुरा' उपपद होने पर पूर्वोक्त 'जन्' धातु से इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। 'ङ्यापोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्' (६।३।६१) से 'मन्दुरा' को ह्रस्व हो जाता है। शेष कार्य 'उपसरजः' के समान है।

डः-

(२) पञ्चम्यामजातौ।६८।

प०वि०-पञ्चम्याम् ७।१ अजातौ ७।१।

स०-न जातिरिति अजातिः, तस्याम्-अजातौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-जनेः, डः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आजातौ पञ्चाम्यामुपपदे जनेर्धातोर्डो भूते।

अर्थः-जातिवर्जिते पञ्चम्यन्ते सुबन्ते उपपदे जनि-धातोर्डः प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-बुद्धेर्जात इति बुद्धिजः। संस्काराज्जात इति संस्कारजः। दुःखाज्जात इति दुःखजः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अजातौ) जातिवाची से रहित (पञ्चम्याम्) पञ्चम्यन्त सुबन्त उपपद होने पर (जनेः) जन् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-बुद्धेर्जात इति बुद्धिजः। बुद्धि से उत्पन्न होनेवाला। संस्काराज्जात इति संस्कारजः। संस्कार से उत्पन्न होनेवाला। दुःखाज्जात इति दुःखजः। दुःख से उत्पन्न होनेवाला।

सिद्धि-बुद्धिजः। यहां गुणवाची पञ्चम्यन्त 'बुद्धि' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त 'जन्' धातु से इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। शेष कार्य 'उपसरजः' (३।२।९७) के समान है। ऐसे ही-संस्कारजः, दुःखजः।

डः-

(३) उपसर्गे च संज्ञायाम्।९९।

प०वि०-उपसर्गे ७।१ च अव्ययपदम्, संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-जनेः, डः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्गे उपपदे जनेर्धातोर्डः संज्ञायां भूते।

अर्थः-उपसर्गे चोपपदे जनि-धातोः परो डः-प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये, भूते काले।

उदा०-प्रकर्षेण जाता इति प्रजा। अथेमा मानवीः प्रजाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपसर्गे) उपसर्ग उपपद होने पर (च) भी (जनेः) जन् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-**प्रकर्षेण जाता इति प्रजा।** प्रधानता से उत्पन्न होनेवाली। **अथेमा मानवीः प्रजाः।** यह मानवी प्रजा है।*

सिद्धि-प्रजा। यहां 'प्र' उपसर्ग उपपद होने पर पूर्वोक्त 'जन्' धातु से इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। स्त्रीलिङ्ग में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। प्रज+टाप्+सु=प्रजा। शेष कार्य 'उपसरजः' (३।२।९७) के समान है।

डः-

(४) अनौ कर्मणि।१००।

प०वि०-अनौ ७।१ कर्मणि ७।१।

अनु०-जनेः, डः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदेऽनौ जनेर्धातोर्डो भूते।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदेऽनुपूर्वाज्जनिधातोः परो ड-प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-पुमांसमनुजात इति पुमनुजः। स्त्रियमनुजात इति स्त्र्यनुजः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (अनौ) अनु उपसर्गपूर्वक (जनेः) जन् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-पुमांसमनुजात इति पुमनुजः। पुमान् (पुत्र) के पश्चात् उत्पन्न होनेवाला। स्त्रियमनुजात इति स्त्र्यनुजः। स्त्री (कन्या) के पश्चात् उत्पन्न होनेवाला।

सिद्धि-पुमनुजः। यहां पुमान् कर्म उपपद होने पर अनुपूर्वक पूर्वोक्त जन् धातु से इस सूत्र से ड-प्रत्यय है। पुम्+अनु+जन्+ड। पुमनुजः। शेष कार्य 'उपसरजः' (३।२।९७) के समान है। ऐसे ही-स्त्र्यनुजः।

डः-

(५) अन्येष्वपि दृश्यते।१०१।

प०वि०-अन्येषु ७।३ अपि अव्ययपदम्, दृश्यते क्रियापदम्।

अनु०-जनेः डः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अन्येष्वप्युपपदेषु जनेर्धातोर्डो दृश्यते।

अर्थः-अन्येष्वपि कारकेषु उपपदेषु जनि-धातोर्डः प्रत्ययो दृश्यते।

उदा०-'सप्तम्यां जनेर्डः' (३।२।९७) इत्युक्तम्, असप्तम्यामपि दृश्यते-न जायत इति अजः। द्विर्जात इति द्विजः। **'पञ्चम्यामजातौ'** (३।२।९८) इत्युक्तम्, जातावपि दृश्यते-ब्राह्मणाज्जात इति ब्राह्मणजः। इति ब्राह्मणजो धर्मः। क्षत्रियाज्जातमिति क्षत्रियजं युद्धम्। **'उपसर्गे च संज्ञायाम्'** (३।२।९९) इत्युक्तम्, असंज्ञायामपि दृश्यते-अभितो जाता इति अभिजाः, परितो जाता इति परिजाः केशाः। **'अनौ कर्मणि'** (३।२।१००) इत्युक्तम्, अकर्मण्यपि दृश्यते-अनुजात इति अनुजः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्येषु) पूर्वोक्त से भिन्न कारक उपपद होने पर (अपि) भी (जनेः) जन् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय (दृश्यते) देखा जाता है।

उदा०-'सप्तम्यां जनेर्डः' (३।२।९७) कहा है। असप्तमी में भी देखा जाता है-न जायत इति अजः। न उत्पन्न होनेवाला (ईश्वर)। द्विर्जात इति द्विजः। दो बार जन्म लेनेवाला (ब्राह्मण आदि)। 'पञ्चम्यामजातौ' (३।२।९८) कहा है। जाति में भी देखा जाता है-ब्राह्मणाज्जात इति ब्राह्मणजो धर्मः। ब्राह्मण से उत्पन्न धर्म। क्षत्रियाज्जातमिति क्षत्रियजं युद्धम्। क्षत्रिय से उत्पन्न युद्ध। 'उपसर्गे च संज्ञायाम्' (३।२।९९) कहा है। असंज्ञा में भी देखा जाता है-अभितो जाता इति अभिजाः। सामने उत्पन्न होनेवाले (केश)। परितो जाता इति परिजाः। सब ओर उत्पन्न होनेवाले (केश)। 'अनौ कर्मणि' (३।२।१००) कहा है। अकर्म में भी देखा जाता है-अनुजात इत्यनुजः। पश्चात् उत्पन्न होनेवाला (छोटा भाई)।

विशेष-यदि 'जन्' धातु से 'ड' प्रत्यय का कोई शिष्ट प्रयोग दिखाई देता है उसे 'अन्येष्वपि दृश्यते' (३।२।१०१) से सिद्ध करें।

निष्ठा (क्तः+क्तवतुः)-

(१) निष्ठा।१०२।

प०वि०-निष्ठा १।१।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्निष्ठा भूते।

अर्थः-धातोः परौ निष्ठासंज्ञकौ क्त-क्तवतू प्रत्ययौ भूते काले भवतः।

उदा०-(क्तः) कृतम्, भुक्तम्। (क्तवतुः) कृतवान्, भुक्तवान्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (निष्ठा) निष्ठासंज्ञक क्त और क्तवतु प्रत्यय (भूते) भूतकाल में होते हैं।

उदा०-(क्त) कृतम्, भुक्तम्। (क्तवतु) कृतवान्, भुक्तवान्। उसने किया, उसने खाया।

सिद्धि-(१) कृतम्। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'निष्ठा' (क्त) प्रत्यय है। कृ+क्त। कृ+त+सु। कृतम्। ऐसे ही 'भुज्' धातु से भुक्तम्। यहां 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'भुज्' धातु के 'ज्' को कुत्व ग् और 'खरि च' (८।४।५४) से ग् को चर् क् होता है।

(२) कृतवान्। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'क्तवतु' प्रत्यय है। प्रत्यय के उगित् होने से 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम होता है। कृ+क्तवतु। कृ+क्तवनुम्त्+सु। कृ+क्तवान् त्+सु। कृतवान्। 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' (६।४।१४) से दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से 'त्' का लोप होता है।

ङ्वनिप्-

(१) सुयजोर्ङ्वनिप्।१०३।

प०वि०-सु-यजोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ङ्वनिप् १।१।

स०-सुश्च यज् च तौ सुयुजौ, तयोः सुयजोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सुयजिभ्यां धातुभ्यां ङ्वनिप् भूते।

अर्थः-सुयजिभ्यां धातुभ्यां परो भूते काले ङ्वनिप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सु) सुतवानिति सुत्वा। सुत्वानौ। सुत्वानः। इष्टवानिति यज्वा। यज्वानौ। यज्वानः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुयजोः) सु और यज् (धातोः) धातु से परे (भूते) भूतकाल में (ङ्वनिप्) ङ्वनिप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(सु) सुतवानिति सुत्वा। ओषधि का रस निचोड़नेवाला। (यज्) इष्टवानिति यज्वा। यज्ञ करनेवाला।

सिद्धि-(१) सुत्वा। यहां 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'ङ्वनिप्' प्रत्यय है। सु+ङ्वनिप्। सु+तुक्+वन्। सुत्वन्+सु। सुत्वान्+स्। सुत्वा। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'सु' धातु को 'तुक्' आगम, 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' (६।४।८) से नकारान्त की उपधा को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।

(२) यज्वा। यहां 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'ङ्वनिप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'सुत्वा' के समान है।

अतृन्-

(१) जीर्यतेरतृन्।१०४।

प०वि०-जीर्यतिः ६।१ अतृन् १।१।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-जीर्यतिर्धातोरतृन् भूते।

अर्थः-जीर्यतिर्धातोः परो भूते कालेऽतृन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-जीर्ण इति जरन्। जरन्तौ। जरन्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(जीर्यतिः) जॄ (धातोः) धातु से परे (भूते) भूतकाल में (अतृन्) अतृन् प्रत्यय होता है।

उदा०-जीर्ण इति जरन्। वह जो वृद्ध हो चुका है।

सिद्धि-जरन्। यहां 'जॄष् वयोहानौ' (दि०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अतृन्' प्रत्यय है। जॄ+अतृन्। जॄ+अ नुम् त्+सु। जर्+अन् त्+स्। जरन्। प्रत्यय के उगित् होने से 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से 'त्' का लोप होता है।

लिट्–

(१) छन्दसि लिट्।१०५।

प०वि०-छन्दसि ७।१ लिट् १।१।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि धातोर्लिट् भूते।

अर्थः-छन्दसि विषये धातोः परो भूते काले लिट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अहं सूर्यमुभयतो **ददर्श।** (यजु० ८।९) अहं द्यावापृथिवी **आततान।** (ऋ० १०।८८।३)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (धातोः) धातु से परे (भूते) भूतकाल में (लिट्) लिट् प्रत्यय होता है।

*उदा०-अहं सूर्यमुभयतो **ददर्श।** मैंने सूर्य को दोनों ओर से देखा है। अहं द्यावापृथिवी **आततान।** मैंने द्युलोक और पृथिवीप लोक को सब ओर विस्तृत किया है।*

*सिद्धि-(१) **ददर्श।** यहां 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'लिट्' प्रत्यय है। दृश्+लिट्। दृश्+मिप्। दृश्+णल्। दश्+दृश्+अ। दृ+दर्श्+अ। द+दर्श्+अ। ददर्श। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'लिट्' के स्थान में 'मिप्' आदेश, 'परस्मैपदानां णल०' (३।४।८२) से 'मिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) 'दृश्' धातु को द्वित्व, 'उरत्' (६।४।६६) से अभ्यास के 'ऋ' को 'अ' आदेश और 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'दृश्' को लघूपध होता है।*

*(२) **आततान।** यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'तनु विस्तारे' (तना०प०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'लिट्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'तन्' धातु को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'ददर्श' के समान है।*

वा कानच् (लिडादेशः)–

(२) लिटः कानज् वा।१०६।

प०वि०-लिटः ६।१ कानच् १।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि लिटो वा कानच् भूते।

अर्थः-छन्दसि विषये लिटः स्थाने विकल्पेन कानच्-आदेशो भवति भूते काले।

उदा०-'अग्निं चिक्यानः' (तै०सं० ५।२।३।६)। **'सोमं सुषुवाणः'** (मै०सं० ३।४।३) न च भवति-**अहं सूर्यमुभयतो ददर्श'** (यजु० ८।९)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (लिटः) लिट् के स्थान में (वा) विकल्प से (कानच्) कानच् आदेश होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-अग्निं चिक्यानः। अग्नि का चयन=आधान करनेवाला। सोमं सुषुवाणः। सोम का सवन (निचोड़ना) करनेवाला।

सिद्धि-(१) चिक्यानः। यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'कानच्' आदेश है। चि+लिट्। चि+कानच्। चि+चि+आन। चिक्यान+सु। चिक्यानः। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'चि' धातु को द्वित्व होता है। अभ्यास से उत्तर 'चि' धातु के चकार को 'विभाषा चेः' (७।२।५८) से कुत्व और 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' (६।४।८२) से 'यण्' आदेश होता है।

(२) सुषुवाणः। यहां 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'कानच्' आदेश होता है। सु+लिट्। सु+कानच्। सु+सु+आन। सु+स् उवङ्+आन। स+षुव्+आण। सुषुवाण+सु। सुषुवाणः। पूर्ववत् 'सु' धातु को द्वित्व, 'अचि श्नुधातुभ्रुवां०' (६।४।७७) से 'सु' को 'उवङ्' आदेश और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

(३) ददर्श। सिद्धि पूर्ववत् (३।२।१०५) है। यहां 'लिट्' के स्थान में 'कानच्' आदेश नहीं है।

वा क्वसुः (लिंडादेशः)–

(३) क्वसुश्च।१०७।

प०वि०-क्वसुः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि, लिटः, वा, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि लिटो वा क्वसुश्च भूते।

अर्थः-छन्दसि विषये लिटः स्थाने विकल्पेन क्वसु-आदेशोऽपि भवति, भूते काले।

उदा०-जक्षिवान्। पपिवान् (ऋ० १।६१।७)। न च भवति-**'अहं सूर्यमुभयतो ददर्श'** (यजु० ८।९)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (लिटः) लिट् के स्थान में (वा) विकल्प से (क्वसुः) क्वसु आदेश (च) भी होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-जक्षिवान्। खानेवाला। पपिवान् (१।६१।७) पीनेवाला।

सिद्धि-(१) जक्षिवान्। अद्+लिट्। अद्+क्वसु। घस्लृ+वस्। घस्+घस्+वस्। घ+घस्+इट्+वस्। घ+क्स्+इ+वस्। घ+क्ष्+इ+वस्। झ+क्ष्+इ+वस्। ज+क्ष्+इ+वस्। जक्षिवस्+सु। जक्षिवान्।

यहां 'अद् भक्षणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। 'लिट्यन्यतरस्याम्' (२।४।४०) से 'अद्' के स्थान में 'घस्लृ' आदेश, 'वस्वेकाजाद्घसाम्' (७।२।६७) से 'इट्' आगम, 'घसिभसोर्हलि च' (६।४।१००) से 'घस्' का उपधा-लोप, 'खरि च' (८।४।५४) से घ् को क्, 'शासिवसिघसीनां च' (८।३।६०) से षत्व होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास को घ् को चुत्व झ्, और 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से झ् को ज् होता है। शेष नुम् आदि कार्य 'कृतवान्' (३।२।१०२) के समान है।

(२) पपिवान्। यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। शेष कार्य 'जक्षिवान्' के समान है।

(३) ददर्श। सिद्धि पूर्ववत् (३।२।१०५) है। यहां 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश नहीं है।

वा क्वसुः (लिडादेशः)–

भाषायां सदवसश्रुवः।१०८।

प०वि०-भाषायाम् ७।१ सद-वस-श्रुवः ५।१।

स०-सदश्च वसश्च श्रुश्च एतेषां समाहारः सदवसश्रु, तस्मात्-सदवसश्रुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-लिटः, वा, क्वसुः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषायां सदवसश्रुवो धातोर्वा क्वसुर्भूते।

अर्थः-भाषायां विषये सदवसश्रुभ्यो धातुभ्यः परो विकल्पेन क्वसुरादेशो भवति भूते काले।

उदा०-**(सद)** उपसेदिवान् (क्वसुः)। उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्। उपससाद (लिट्)। **(वस)** अनूषिवान् (क्वसुः)। अनूषिवान् कौत्सः पाणिनिम्। अनूवास (लिट्)। **(श्रु)** उपशुश्रुवान् (क्वसुः)। उपशुश्रुवान् कौत्सः पाणिनिम्। उपशुश्राव (लिट्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(भाषायाम्) लौकिक भाषा में (सदवसश्रुवः) सद, वस, श्रु (धातोः) धातुओं से परे (वा) विकल्प से (क्वसुः) क्वसु आदेश होता है।

उदा०-(सद) उपसेदिवान् (क्वसु)। उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्। कौत्स पाणिनिमुनि के पास गया। उपससाद (लिट्)। (वस्) अनूषिवान्। अनूषिवान् कौत्सः पाणिनिम्। कौत्स पाणिनिमुनि के अनुशासन में रहा। अनूवास (लिट्)। (श्रु) उपशुश्रुवान्। उपशुश्रुवान् कौत्सः पाणिनिम्। कौत्स ने पाणिनिमुनि के सामीप्य में व्याकरणशास्त्र का श्रवण किया। उपशुश्राव (लिट्)।

सिद्धि-(१) उपसेदिवान्। उप+सद्+लिट्। उप+सद्+क्वसु। सद्+सद्+इट्+वस्। उप+०+सेद्+इ+वस्। उपसेदिवस्+सु। उपसेदिव नुम्स्+स्। उपसेदिवान् स्+स्। उपसेदिवान्।

यहां उप-उपसर्गपूर्वक 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। 'अत एकहल्मध्ये०' (६।४।१२०) से 'सद्' के 'अ' को 'ए' आदेश और अभ्यास का लोप, 'वस्वेकाजाद्घसाम्' (७।२।६७) से 'इट्' आगम, 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से नुम् आगम, 'सान्तमहतः संयोगस्य' (६।४।१०) से दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से सु-लोप और 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से संयोगान्त 'स्' का लोप होता है।

(२) उपससाद। यहां उप-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'सद्' धातु से इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'लिट्' प्रत्यय है। 'तिप्' के स्थान में 'परस्मैपदानां णल०' (३।४।८२) से 'णल्' आदेश, 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'सद्' धातु को द्वित्व और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

(३) अनूषिवान्। यहां अनु उपसर्गपूर्वक 'वस निवासे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। 'क्वसु' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'वचिस्वपि-यजादीनां किति' (६।१।१५) से 'वस्' धातु को सम्प्रसारण, 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' (६।१।१७) से 'वस्' धातु के अभ्यास को भी सम्प्रसारण होता है। 'शासिवसिघसीनां च' (८।३।६०) से षत्व होता है।

(४) अनूवास। यहां अनु उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'वस्' धातु से इस सूत्र से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'वस्' को द्वित्व, पूर्ववत् सम्प्रसारण और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'वस्' को उपधावृद्धि होती है।

(५) उपशुश्रुवान्। यहां उपसर्गपूर्वक 'श्रु श्रवणे' (स्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' प्रत्यय के स्थान में 'क्वसु' आदेश होता है। शेष कार्य 'उपसेदिवान्' के समान है।

(६) उपशुश्राव। यहां उप-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'श्रु' धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'श्रु' धातु को द्वित्व और 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'श्रु' धातु को वृद्धि होती है। शेष कार्य 'उपससाद' के समान है।

क्वसु+कानच् (निपातनम्)-

(५) उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च ।१०६।

प०वि०-उपेयिवान् १।१ अनाश्वान् १।१ अनूचानः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-वा, भूते इति चानुवर्तते।

अर्थः-उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान इत्येते शब्दा अपि विकल्पेन भूते काले निपात्यन्ते।

उदा०-उपेयिवान्, उपेयाय वा। अनाश्वान्, नाश वा। अनूचानः, अनूवाच वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपेयिवान्०) उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान शब्द (च) भी (वा) विकल्प से (भूते) भूतकाल में निपातित है।

उदा०-उपेयिवान्, उपेयाय वा। वह समीप गया। अनाश्वान्, नाश वा। उसने भोजन नहीं किया। अनूचानः, अनूवाच वा। उसने अनुकूल कहा।

सिद्धि-(१) उपेयिवान्। उप+इण्+लिट्। उप+इ+क्वसु। उप+इ+इ+वस्। अप+ई+इ+इट्+वस्। उप+ई+य्+इ+वस्। उपेयिवस्+सु। उपेयिवनुम्+स्+स्। उपेयिवन् स्+स्। उपेयिवान्स्+०। उपेयिवान्।

यहां उप-उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'इण्' धातु को द्वित्व, 'दीर्घ इणः किति' (७।४।६९) से अभ्यास को दीर्घ, अभ्यासदीर्घ विधान के सामर्थ्य से 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।९७) से 'सवर्णदीर्घ' का प्रतिषेध होता है। सवर्णदीर्घ का प्रतिषेध होने पर धातु के अनेकाच् होने से 'वस्वेकाजाद्घसाम्' (७।२।६७) से 'इट्' आगम प्राप्त नहीं होता है, वह निपातन से किया जाता है। अभ्यास का श्रवण और धातु रूप 'इ' को निपातन से 'इणो यण्' (४।१।८१) से 'यण्' आदेश होता है। शेष कार्य 'उपसेदिवान्' (३।२।१०८) के समान है।

(२) उपेयाय। उप+इण्+लिट्। उप+इ+तिप्। उप+इ+णल्। उप+ऐ+अ। उप+आय्+अ। उप+इ+इ+अ। उप+इयङ्+आय्+अ। उप+इय्+आय्+अ। उपेयाय।

यहां उप-उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से लिट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'लिट्' के स्थान में 'तिप्' आदेश, 'परस्मैपदानां णलतुस्०' (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। 'णल्' प्रत्यय के 'णित्' होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'इण्' धातु को वृद्धि और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से

'आय्' आदेश होता है। 'द्विर्वचनेऽचि' (१।१।५८) से 'आय्' आदेश को स्थानिवत् मानकर 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'इण्' को ही द्विर्वचन होता है। 'अभ्यासस्यासवर्णे' (६।४।७६) से अभ्यास के 'इ' को 'इयङ्' आदेश होता है।

(३) अनाश्वान्। अश्+लिट्। अश्+क्वसु। अश्+अश्+वस्। आ+अश्+वस्। आश्वस्+सु। आश्वनुम् स्+स्। आश्वन्स्+स्। आश्वान्स्+०। आश्वान्।

यहां 'अश् भोजने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' प्रत्यय के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'अश्' धातु को द्वित्व, अत आदेः' (७।४।७०) से अभ्यास को दीर्घ होता है। 'वस्वेकाजाद्घसाम्' (७।२।६७) से प्राप्त 'इट्' आगम निपातन से नहीं होता है।

न आश्वानिति अनाश्वान्। यहां 'नञ्' (२।२।६) से नञ्तत्पुरुष समास है। 'नलोपो नञः' (६।३।७१) से 'नञ्' के 'न्' का लोप और 'तस्मान्नुडचि' (६।३।७२) से 'नुट्' आगम होता है। न+आश्वान्। अ+नुट्+आश्वान्। अ+न्+आश्वान्। अनाश्वान्।

(४) नाश। यहां पूर्वोक्त 'अश्' धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'तिप्' और उसके स्थान में 'णल्' आदेश तथा 'अश्' धातु को द्विर्वचन होता है। 'अत आदेः' (७।४।७०) से अभ्यास को दीर्घ होता है। न+आश=नाश।

(५) अनूचानः। अनु+वच्+लिट्। अनु+वच्+कानच्। अनु+वच्+वच्+आन। अनु+व+उच्+आन। अनु+उ+उच्+आन। अनु+ऊच्+आन। अनूचान+सु। अनूचानः।

यहां अनु उपसर्गपूर्वक 'वच् परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से अथवा 'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि' (अदा०उ०) धातु के स्थान में 'ब्रुवो वचिः' (२।४।५३) से प्राप्त 'वच्' धातु से कर्तृवाच्य में 'लिट्' के स्थान में आत्मनेपद कानच् आदेश प्राप्त नहीं होता है, वह इस निपातन से किया जाता है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'वच्' धातु को द्वित्व, 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से 'वच्' धातु को सम्प्रसारण, 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' (६।१।१७) से अभ्यास को भी सम्प्रसारण और 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।९७) से सवर्ण दीर्घ होता है।

(६) अनूवाच। यहां अनु उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'वच्' धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिट्' के स्थान में पूर्ववत् 'तिप्' और उसके स्थान में 'णल्' आदेश तथा धातु को द्विर्वचन होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'वच्' को उपधावृद्धि होती है। पूर्ववत् अभ्यास को सम्प्रसारण तथा सवर्णदीर्घ होता है।

लुङ्—

(१) लुङ्।११०।

प०वि०-लुङ् १।१।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-भूते धातोर्लुङ्।

अर्थः-भूतेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लुङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सोऽकार्षीत्। सोऽहार्षीत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(भूते) भूतकाल में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लुङ्) लुङ्प्रत्यय होता है।

उदा०-सोऽकार्षीत्। उसने किया। सोऽहार्षीत्। उसने हरण (चोरी) किया।

सिद्धि-अकार्षीत्, अहार्षीत् की सिद्धि 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) की व्याख्या में देख लेवें। ऐसे ही-अहार्षीत्।

लङ्–

(१) अनद्यतने लङ्।१११।

प०वि०-अनद्यतने ७।१ लङ् १।१।

स०- न विद्यतेऽद्यतनो यस्मिन् सः-अनद्यतनः, तस्मिन्-अनद्यतने (बहुव्रीहिः)।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनद्यतने भूते धातोर्लङ्।

अर्थः-अनद्यतने=अविद्यमानाऽद्यतने भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सोऽकरोत्। सोऽहरत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनद्यतने) अनद्यतन=आज के भूतकाल अर्थ से रहित शेष (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लङ्) लङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-सोऽकरोत्। उसने किया (आज को छोड़कर)। सोऽहरत्। उसने हरण (चोरी) किया (आज को छोड़कर)।

सिद्धि-अकरोत्। कृ+लङ्। अट्+कृ+तिप्। अ+कृ+उ+त्। अ+कर्+ओ+त्। अकरोत्।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से अनद्यतन भूतकाल अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। 'लङ्लुङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से 'अट्' आगम, 'लङ्' के स्थान में 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'तिप्' आदेश, 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय है। 'इतश्च' (३।४।१००) से 'तिप्' के 'इ' का लोप होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु और 'उ' विकरण प्रत्यय को गुण होता है। ऐसे ही 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-अहरत्।

लृट्–

(१) अभिज्ञावचने लृट्।११२।

प०वि०-अभिज्ञावचने ७।१ लृट् १।१।

स०-अभिज्ञा=स्मृतिः। अभिज्ञाया वचनमिति अभिज्ञावचनम्, तस्मिन्-अभिज्ञावचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-भूतेऽनद्यतने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभिज्ञावचने उपपदेऽनद्यतने भूते धातोर्लृट्।

अर्थः-अभिज्ञावचने उपपदेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे धातोः परो लृट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि (स्मरसि) देवदत्त ! वयं कश्मीरेषु वत्स्यामः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अभिज्ञावचने) पूर्व स्मृति-कथन उपपद होने पर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में (धातोः) धातु से परे (लृट्) लृट् प्रत्यय होता है।

उदा०-यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि (स्मरसि) देवदत्त ! वयं कश्मीरेषु वत्स्यामः। यज्ञदत्त कहता है-हे देवदत्त ! याद है, हम कश्मीर में रहे थे।

सिद्धि-वत्स्यामः। वस्+लृट्। वस्+स्य+मस्। वत्+स्या+मस्। वत्स्यामः।

यहां अभिज्ञावचन उपपद होने पर 'वस निवासे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अनद्यतन भूतकाल में 'लृट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' प्रत्यय होता है। 'सः स्यार्धधातुके' (७।४।४९) से 'वस्' धातु के 'स्' को 'त्' आदेश और 'अतो दीर्घो यञि' (७।३।१०१) से 'स्य' को दीर्घ होता है।

लृट्-प्रतिषेधः–

(२) न यदि।११३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, यदि ७।१।

अनु०-भूते, अनद्यतने, अभिज्ञावचने, लृट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यदि शब्देऽभिज्ञावचने उपपदेऽनद्यतने भूते धातोर्लृट् न।

अर्थः-यत्-शब्दसहितेऽभिज्ञावचने उपपदेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे धातोः परो लृट् प्रत्ययो न भवति **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) इति लङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि (स्मरसि) देवदत्त! यत् कश्मीरेषु अवसाम।

आर्यभाषा-अर्थ-(यदि) 'यत्' शब्द सहित (अभिज्ञावचने) पूर्व स्मृति कथन उपपद होने पर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में (धातोः) धातु से परे (लृट्) लृट् प्रत्यय (न) नहीं होता है (अनद्यतने लङ् ३।२।१११) से लङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-अभिजानासि (स्मरसि) देवदत्त! यद् वयं कश्मीरेषु अवसाम। यज्ञदत्त कहता है-हे देवदत्त! याद है कि हम कश्मीर में रहते थे। यहां केवल निवासमात्र की स्मृति है, अन्य कुछ याद नहीं है।

सिद्धि-अवसाम। वस्+लङ्। अट्+वस्+शप्+मस्। अ+वस्+अ+मस्। अ+वस्+आ+मस्। अवसाम।

यहां यत् शब्द सहित अभिज्ञान वचन उपपद होने पर पूर्वोक्त वस् धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) से लङ् प्रत्यय है। 'लङ्लुङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से अट् आगम, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'लङ्' के स्थान में 'मस्' आदेश, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'अतो दीर्घो यञि' (७।३।१०१) से 'अ' को दीर्घ होता है।

लृट्-विकल्पः-

(३) विभाषा साकाङ्क्षे।११४।

प०वि०-विभाषा १।१ साकाङ्क्षे ७।१।

स०-आकाङ्क्षा=सम्बन्धज्ञानम्। आकाङ्क्षया सह वर्तते इति साकाङ्क्षः, तस्मिन्-साकाङ्क्षे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-भूते, अनद्यतने, अभिज्ञावचने, लट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभिज्ञावचने उपपदेऽनद्यतने भूते धातोर्विभाषा लृट् साकाङ्क्षे।

अर्थः-यत्-शब्दरहिते, यत्शब्दसहिते वाऽभिज्ञानवचने उपपदेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे धातोः परो विकल्पेन लृट् प्रत्ययो भवति, साकाङ्क्षश्चेत् तत्र प्रयोक्ता भवति।

उदा०-(यत्-शब्दरहिते)-यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्त! कश्मीरेषु वत्स्यामः, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे (लृट्)। **(यत्-शब्दसहिते)**-यज्ञदत्तः

प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! यत् कश्मीरेषु वत्स्यामः, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे (लृट्)। यत्-शब्दरहिते यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! कश्मीरेषु अवसाम, तत्रौदनमभुञ्जमहि (पक्षे लङ्)। यत्-शब्दसहिते-यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! यत् कश्मीरेषु अवसामः, तत्रौदनमभुञ्ज्महि (पक्षे लङ्)।

आर्यभाषा-अर्थ-यत्-शब्द से रहित अथवा यत्-शब्द सहित (अभिज्ञावचने) पूर्व स्मृति-कथन उपपद होने पर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (लृट्) लृट्-प्रत्यय होता है। पक्ष में लङ् होता है (साकाङ्क्षे) यदि प्रयोक्ता साकाङ्क्ष हो।

उदा०-(यत्-शब्दरहित)-यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्तः ! वयं कश्मीरेषु वत्स्यामः, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे (लृट्)। यज्ञदत्त कहता है-याद है देवदत्त ! हम कश्मीर में रहते थे और वहां ओदन (भात) खाते थे। यत्-शंब्द सहित। यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! यद् वयं कश्मीरेषु वत्स्यामः, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे (लृङ्)। यज्ञदत्त कहता है-याद है देवदत्त ! कि हम कश्मीर में रहते थे और वहां ओदन (भात) खाते थे। यत्-शब्दरहित। यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! वयं कश्मीरेषु अवसाम, तत्रौदनमभुञ्ज्महि (लङ्)। यज्ञदत्त कहता है कि याद है देवदत्त ! हम कश्मीर में रहते थे और वहां ओदन खाते थे। यत्-शब्दसहित-यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! यद् वयं कश्मीरेषु अवसाम, तत्रौदनम् अभुञ्ज्महि (लङ्)। यज्ञदत्त कहता है-याद है देवदत्त ! कि हम कश्मीर में रहते थे और वहां ओदन खाते थे।

सिद्धि-(१) भोक्ष्यामहे। भुज्+लृट्। भुज्+स्य+महिङ्। भोज्+स्य+महे। भोग्+स्य+महे। भोक्+ष्या+महे। भोक्ष्यामहे।

यहां अभिज्ञावचन उपपद होने पर 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से अनद्यतन भूतकाल में लृट् प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'लृट्' के स्थान में 'महिङ्' आदेश, 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' प्रत्यय, 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से 'महिङ्' के टि-भाग को एत्व, 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'भुज्' के 'ज्' को कुत्व ग्, 'खरि च' (८।४।५४) से ग् को क्, 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व और 'अतो दीर्घो यञि' (७।३।१०१) से 'स्य' को दीर्घ होता है।

(२) अभुञ्ज्महि। भुज्+लङ्। अट्+भुज्+महिङ्। अ+भु श्नम् ज्+महि। अ+भु न ज्+महि। अ+भुन्ज्+महि। अ+भु ं ज्+महि। अ+भुञ्ज्+महि। अभुञ्ज्महि।

यहां अभिज्ञावचन उपपद होने पर पूर्वोक्त भुज् धातु से इस सूत्र से विकल्प पक्ष में अनद्यतन भूतकाल में 'लङ्' प्रत्यय है। 'लङ्लुङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से 'अट्' आगम, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'लङ्' के स्थान में 'महिङ्' आदेश, 'श्नसोरल्लोपः'

श्नम्' (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय, 'श्नसोरल्लोपः' (६।४।१११) से 'श्नम्' के 'अ' का लोप, 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण 'ञ्' होता है।

विशेष-साकाङ्क्ष। लक्ष्य और लक्षण का सम्बन्ध होने पर प्रयोक्ता की आकाङ्क्षा होती है। यहां भोजन लक्ष्य और वास लक्षण है। दो क्रियाओं का लक्ष्य-लक्षणभाव सम्बन्ध होने पर प्रयोक्ता साकाङ्क्ष होता है। उसे केवल कश्मीर में वासमात्र स्मरण कराना ही अभिप्रेत नहीं है किन्तु वहां के ओदन-भोजन के स्मरण कराने की भी आकाङ्क्षा (इच्छा) है।

लिट्–

(१) परोक्षे लिट्।११५।

प०वि०-परोक्षे ७।१ लिट् १।१।

अनु०-भूतेऽनद्यतने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-परोक्षेऽनद्यतने भूते धातोर्लिट्।

अर्थः-परोक्षेऽनद्यतने भूतेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लिट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-स चकार। स जहार। रावणः सीतां जहार।

आर्यभाषा-अर्थः-(परोक्षे) इन्द्रियों के विषय से दूर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लिट्) लिट्-प्रत्यय होता है।

उदा०-स चकार। उसने किया। स जहार। उसने हरण किया। रावणः सीतां जहार। रावण ने सीता का अपहरण किया।

सिद्धि-चकार। कृ+लिट्। कृ+तिप्। कृ+णल्। कार्+अ। कृ+कार्+अ। क+कार्+अ। च+कार्+अ। चकार।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से परोक्ष, अनद्यतन, भूतकाल में 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिट्' के स्थान में 'तिप्तस्झि०' (३।४।७०) से 'तिप्' आदेश, 'परस्मैपदानां णल०' (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है। 'द्विवचनेऽचि' (१।१।५८) से, स्थानिवद्भाव से 'कृ' को लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से द्विर्वचन होता है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास के 'ऋ' को 'अ' आदेश होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के 'क्' को चवर्ग 'च्' होता है। ऐसे ही 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-जहार।

लङ्+लिट्–

(२) हशश्वतोर्लङ्।११६।

प०वि०–ह-शश्वतोः ७।२ लङ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०–हश्च शश्वच्च तौ-हशश्वतौ, तयोः-हशश्वतोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–भूतेऽनद्यतने, परोक्षे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–हशश्चतोरुपपदयोः परोक्षेऽनद्यतने भूते धातोर्लङ् लिट् च।

अर्थः–ह-शश्वतोरुपपदयोः परोक्षेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लङ् लिट् च प्रत्ययो भवति।

उदा०–(ह) स इति ह अकरोत् (लङ्)। स इति ह चकार (लिट्)। (शश्वत्) स शश्वद् अकरोत् (लङ्)। स शश्वच्चकार (लिट्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(ह-शश्वतोः) ह और शश्वत् शब्द उपपद होने पर (परोक्षे) इन्द्रियों के विषय से दूर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लङ्) लङ् (च) और (लिट्) लिट् प्रत्यय होता है।

उदा०-(ह) स इति ह अकरोत् (लङ्)। स इति ह चकार (लिट्)। उसने ऐसा निश्चय से किया। (शश्वत्) स शश्वद् अकरोत् (लङ्)। स शश्वच्चकार। उसने सदा किया।

सिद्धि-अकरोत् की सिद्धि ३।२।१११ में और चकार की सिद्धि ३।२।११५ में देख लेवें।

लङ्+लिट्–

(३) प्रश्ने चासन्नकाले।११७।

प०वि०–प्रश्ने ७।१ च अव्ययपदम्, आसन्नकाले ७।१।

स०–आसन्नः=समीपम्। आसन्नः कालो यस्य स आसन्नकालः, तस्मिन्-आसन्नकाले (बहुव्रीहिः)।

अनु०ः–भूतेऽनद्यतने, परोक्षे लिट् लङ् चेत्यनुवर्तते।

अन्वयः–आसन्नकाले प्रश्ने परोक्षेऽनद्यतने भूते धातोर्लङ् लिट् च।

अर्थः–आसन्नकाले प्रश्ने=पृच्छ्यमाने परोक्षेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लङ् लिट् च प्रत्ययो भवति।

उदा०–कश्चित् कञ्चित् पृच्छति–किम् अगच्छद् देवदत्तः (लङ्) ? किं जगाम देवदत्तः (लिट्) ? किम् अयजद् देवदत्तः (लङ्) ? किम् इयाज देवदत्तः (लिट्) ?

आर्यभाषा-अर्थ-(आसन्नकाले) समीप-काल विषयक (प्रश्ने) पूछने पर (परोक्षे) इन्द्रियों के विषय से दूर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लङ्) लङ् (च) और (लिट्) लिट् प्रत्यय होता है।

उदा०–कोई किसी से पूछता है–किम् अगच्छद् देवदत्तः (लङ्) ? किं जगाम देवदत्तः (लिट्) ? क्या देवदत्त चला गया ? किम् अयजद् देवदत्तः (लङ्) ? किम् इयाज देवदत्तः (लिट्) ? क्या देवदत्त ने यज्ञ किया ?

सिद्धि-(१) अगच्छत्। गम्+लङ्। अट्+गम्+तिप्। अट्+गम्+शप्+ति। अ+गच्छ्+अ+त्। अगच्छत्।

यहां आसन्नकाल विषयक प्रश्न करने पर परोक्ष अनद्यतन भूतकाल अर्थ में 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लङ्' प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय और 'इषुगमियमां छः' (७।३।७७) से 'गम्' के म् को छ् आदेश होता है। शेष कार्य 'अकरोत्' (३।२।१११) के समान है।

(२) जगाम। यहां पूर्वोक्त अर्थ में पूर्वोक्त 'गम्' धातु से इस सूत्र से 'लिट्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'गम्' को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'चकार' (३।२।११५) के समान है।

लट्–

(१) लट् स्मे।११८।

प०वि०–लट् १।१ स्मे ७।१।

अनु०–भूते, अनद्यतने, परोक्षे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स्मे उपपदे परोक्षेऽनद्यतने भूते धातोर्लट्।

अर्थः–स्म-शब्दे उपपदे परोक्षेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लट् प्रत्ययो भवति। लिटोऽपवादः।

उदा०–नडेन स्म पुरा अधीयते। ऊर्णया स्म पुरा अधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्मे) स्म शब्द उपपद होने पर (परोक्षे) इन्द्रियों के विषय से दूर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लट्) लट् प्रत्यय होता है। यह 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) का अपवाद है।

उदा०-नडेन स्म पुरा अधीयते। प्राचीनकाल में नड ऋषि ने अध्ययन किया। ऊर्णया स्म पुरा अधीयते। प्राचीनकाल में ऊर्णा ऋषिका ने अध्ययन किया।

सिद्धि-अधीयते। अधि+इङ्+लट्। अधि+इ+त। अधि+इ+यक्+त। अधीयते।

यहां 'स्म' शब्द उपपद होने पर परोक्ष अनद्यतन भूतकाल अर्थ में अधि-उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से कर्मवाच्य में इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से कर्मवाच्य में 'यक्' विकरण-प्रत्यय और 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से 'त' के टि-भाग को 'ए' आदेश होता है।

लट्–

(२) अपरोक्षे च।११६।

प०वि०-अपरोक्षे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-न परोक्षमिति अपरोक्षम्, तस्मिन्-अपरोक्षे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-भूते, अनद्यतने, लट् स्मे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्मे उपपदेऽपरोक्षेऽनद्यतने भूते धातोर्लङ्।

अर्थः-स्म-शब्दे उपपदेऽपरोक्षे चानद्यतने भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-एवं स्म पिता ब्रवीति। इति स्मोपाध्यायः कथयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्मे) स्म शब्द उपपद होने पर (अपरोक्षे) प्रत्यक्ष विषय होने पर (च) भी (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लट्) लट् प्रत्यय होता है।

उदा०-एवं स्म पिता ब्रवीति। पिताजी ऐसा कहते थे। इति स्मोपाध्यायः कथयति। उपाध्याय जी ऐसा कहते थे।

सिद्धि-(१) ब्रवीति। ब्रू+लट्। ब्रू+तिप्। ब्रू+शप्+इट्+ति। ब्रू+०+ई+ति। ब्रो+ई+ति। ब्रव्+ई+ति। ब्रवीति।

यहां 'स्म' शब्द उपपद होने पर प्रत्यक्ष विषय में, अनद्यतन भूतकाल अर्थ में 'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि' (अदा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है। 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक्, 'ब्रुव ईट्' (७।२।९३) से 'ईट्' आगम, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'ब्रू' को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से अव् आदेश होता है।

(२) कथयति। 'कथ वाक्यप्रबन्धे' (चु०प०)।

(३) ननौ पृष्टप्रतिवचने।१२०।

प०वि०-ननौ ७।१ पृष्ट-प्रतिवचने ७।१।

स०-पृष्टस्य प्रतिवचनमिति पृष्टप्रतिवचनम्, तस्मिन्-पृष्टप्रतिवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-भूते, लट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ननावुपपदे पृष्टप्रतिवचने भूते धातोर्लट्।

अर्थः-ननु-शब्दे उपपदे पृष्टप्रतिवचने सति भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लट् प्रत्ययो भवति। लुङोऽपवादः।

उदा०-यज्ञदत्तो देवदत्तमप्राक्षीत्-अकार्षीः कटं देवदत्त ? ननु करोमि भोः। अवोचस्तत्र किञ्चिद् देवदत्त ? ननु ब्रवीमि भोः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ननौ) *ननु शब्द उपपद होने पर तथा (पृष्टप्रतिवचने) प्रश्न का उत्तर देने में (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लट्) लट्-प्रत्यय होता है। यह लुङ् लकार का अपवाद है।*

उदा०-*यज्ञदत्त ने देवदत्त से पूछा-**अकार्षीः कटं देवदत्त ?** हे देवदत्त ! क्या तूने चटाई बना ली है ? देवदत्त ने उत्तर दिया-**ननु करोमि भोः !** हां भाई ! मैंने चटाई बना ली है। **अवोचस्तत्र किञ्चिद् देवदत्त !** हे देवदत्त ! क्या तूने वहां कुछ कहा था ? देवदत्त ने उत्तर दिया-**ननु ब्रवीमि भोः।** हां भाई ! कहा था।*

सिद्धि-(१) करोमि। *यहां 'ननु' शब्द उपपद होने पर प्रश्न का उत्तर देने में भूतकाल अर्थ में विद्यमान 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है। 'लट्' प्रत्यय के स्थान में 'मिप्' आदेश है। 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७९) से विकरण 'उ' प्रत्यय और 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से अङ्ग को गुण होता है।*

(२) ब्रवीमि। *यहां 'ननु' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त अर्थ में 'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि' (अदा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है। 'लट्' के स्थान में 'मिप्' आदेश है। शेष कार्य 'ब्रवीति' (३।२।११९) के समान है।*

लट्-विकल्पः-

(४) नन्वोर्विभाषा।१२१।

प०वि०-न-न्वोः ७।२ विभाषा १।१।

स०-नश्च नुश्च तौ-ननू, तयोः-नन्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-भूते, लट्, पृष्टप्रतिवचने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नन्वोरुपपदयोः पृष्टप्रतिवचने भूते धातोर्विभाषा लट्।

अर्थः-न-नुशब्दयोरुपपदयोः पृष्टप्रतिवचने सति भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति। पक्षे लुङ् भवति।

उदा०-यज्ञदत्तो देवदत्तमप्राक्षीत्-अकार्षीः कटं देवदत्त ? (न) न करोमि भोः। न अकार्षं भोः। (नु) नु करोमि भोः। नु अकार्षं भोः।

आर्यभाषा-अर्थ-(न-न्वोः) न और नु शब्द उपपद होने पर (पृष्टप्रतिवचने) प्रश्न का उत्तर देने में (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से लट् प्रत्यय होता है। पक्ष में लुङ् होता है।

उदा०-यज्ञदत्त ने देवदत्त से पूछा-अकार्षीः कटं देवदत्त ? हे देवदत्त! क्या तूने चटाई बना ली है। देवदत्त ने उत्तर दिया-(न) न करोमि भोः। न अकार्षं भोः। भाई नहीं बनाई है। (नु) नु करोमि भोः, नु अकार्षं भोः। हां भाई! बना ली है।

सिद्धि-(१) करोमि। यहां न/नु शब्द उपपद होने पर पृष्टप्रतिवचन में भूतकाल अर्थ में 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से लट् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् (३।२।१२०) है।

(२) अकार्षम्। कृ+लुङ्। अट्+कृ+च्लि+लुङ्। अ+कृ+सिच्+मिप्। अ+कार्+स्+अम्। अ+कार्+ष्+अम्। अकार्षम्।

यहां न/नु शब्द उपपद होने पर पृष्टप्रतिवचन में भूतकाल अर्थ में पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से इस सूत्र से विकल्प पक्ष में लुङ् प्रत्यय है। 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, 'तस्थस्थमिपां०' (३।४।१०१) से 'मिप्' के स्थान में 'अम्' आदेश, 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' (७।२।१) से 'कृ' को वृद्धि और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

लुङ्-लट्-

(३) पुरि लुङ् चास्मे।१२२।

प०वि०-पुरि ७।१ लुङ् १।१ च अव्ययपदम्, अस्मे ७।१।

स०-न स्म इति अस्मः, तस्मिन्-अस्मे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-भूते, अनद्यतने (मण्डूकप्लुत्या) इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्मे पुरि-उपपदेऽनद्यतने भूते धातोर्विभाषा लुङ् लट् च।

अर्थः-स्म-शब्दरहिते पुरा-शब्दे उपपदेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन लुङ् लट् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-वसन्तीह पुरा छात्राः (लट्)। अवात्सुरिह पुरा छात्राः (लुङ्)। एताभ्यां मुक्ते यथाविषयमन्येऽपि प्रत्यया भवन्ति-अवसन्निह पुरा छात्राः (लङ्)। ऊषुरिहपुरा छात्राः (लिट्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अस्मे) स्म-शब्द से रहित (पुरि) पुरा शब्द उपपद होने पर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लुङ्) लुङ् (च) और (लट्) लट् प्रत्यय होता है।

उदा०-वसन्तीह पुरा छात्राः (लट्) अवात्सुरिह पुरा छात्राः (लुङ्)। पहले यहां छात्र रहते थे। लुङ् और लट् से मुक्त होने पर धातु से यथाविषय प्रत्यय होते हैं-अवसन्निह पुरा छात्राः (लङ्)। ऊषुरिह पुरा छात्राः (लिट्)। पहले यहां छात्र रहते थे।

सिद्धि-(१) वसन्ति। यहां 'पुरा' शब्द उपपद होने पर अनद्यतन भूतकाल अर्थ में 'वस निवासे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है। 'लट्' के स्थान में 'झि' आदेश 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'झ्' के स्थान में 'अन्त' आदेश और 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है।

(२) अवात्सुः। वस्+लुङ्। अट्+वस्+च्लि+लुङ्। अ+वस्+सिच्+झि। अ+वस्+स्+जुस्। अ+वास्+स+उस्। अ+वात्+स्+उस्। अवात्सुः।

यहां 'पुरा' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त अर्थ में पूर्वोक्त 'वस्' धातु से इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' (३।४।१०९) से 'झि' के स्थान में 'जुस्' आदेश, 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) से 'वस्' धातु के 'अच्' को वृद्धि और 'सस्यार्धधातुके' (७।४।४९) से 'वस्' के 'स्' को 'द्' और 'खरि च' (८।४।५४) से 'द्' को 'त्' आदेश होता है।

(३) अवसन्। वस्+लङ्। अट्+वस्+झि। अ+वस्+शप्+अन्ति। अ+वस्+अ+अन्त्। अवसन्।

यहां 'पुरा' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त अर्थ में पूर्वोक्त 'वस्' धातु से यथाविषय 'लङ्' प्रत्यय है। 'लङ्' के स्थान में 'झि' आदेश 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'झ्' के स्थान में 'अन्त' आदेश, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय, 'इतश्च' (३।४।१००) के 'अन्ति' के 'इ' का लोप और 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से 'त्' का लोप होता है।

(४) ऊषुः। वस्+लिट्। वस्+झि। वस्+उस्। वस्+वस्+उस्। व+वस्+उस्। उ+उस्+उस्। ऊस्+उस्। ऊषुः।

यहां 'पुरा' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त अर्थ में पूर्वोक्त 'वस्' धातु से यथाविषय 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिट्' के स्थान में 'झि' आदेश, 'परस्मैपदानां णलतुसुस्०' (३।४।८२) से 'झि' के स्थान में 'उस्' आदेश, 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'वस्' को द्वित्व, 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से 'वस्' को सम्प्रसारण, 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' (६।१।१७) से अभ्यास को भी सम्प्रसारण और 'शासिवसिघसीनां च' (८।३।६०) से षत्व होता है।

इति भूतकालप्रत्ययप्रकरणम्।

वर्तमानकालप्रत्ययप्रकरणम्

लट्–

(१) वर्तमाने लट्।१२३।

प०वि०–वर्तमाने ७।१ लट् १।१ प्रारब्धोऽपरिसमाप्तश्च वर्तमानः कालः, तस्मिन्-वर्तमाने।

अन्वयः–वर्तमाने धातोर्लट्।

अर्थः–वर्तमाने कालेऽर्थे विद्यमानाद् धातोः परो लट् प्रत्ययो भवति।

उदा०–स पचति। स पठति।

आर्यभाषा-अर्थ-(वर्तमाने) वर्तमानकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लट्) लट् प्रत्यय होता है।

उदा०–स पचति। वह पकाता है। स पठति। वह पढ़ता है।

सिद्धि–पचति। यहां वर्तमानकाल अर्थ में 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७) से 'लट्' के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। ऐसे ही–'पठ व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से पठति।

शतृ+शानच् (लडादेशः)–

(२) लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे।१२४।

प०वि०–लटः ६।१ शतृ-शानचौ १।२ अप्रथमासमानाधिकरणे ७।१।

स०-शतृश्च शानच् च तौ-शतृशानचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न प्रथमा इति अप्रथमा, समानमधिकरणं यस्य तत् समानाधिकरणम्। अप्रथमया समानाधिकरणमिति अप्रथमासमानाधिकरणम्, तस्मिन्-अप्रथमासमानाधिकरणे (नञ्बहुव्रीहिगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-वर्तमाने धातोः परस्य लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे।

अर्थः-वर्तमाने कालेऽर्थे विद्यमानस्य धातोः परस्य लटः स्थाने शतृ-शानचावादेशौ भवतः, अप्रथमान्तेन चेत् तस्य समानाधिकरणं भवति।

उदा०-(शतृ) पचन्तं देवदत्तं पश्य। पचता कृतम्। (शानच्) पचमानं देवदत्तं पश्य। पचमानेन कृतम्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(वर्तमाने) वर्तमानकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लटः) लट् प्रत्यय के स्थान में (शतृशानचौ) शतृ और शानच् आदेश होते हैं, यदि उस लट् प्रत्यय का (अप्रथमासमानाधिकरणे) प्रथमा विभक्ति के साथ समानाधिकरण न हो।*

उदा०-(शतृ) ***पचन्तं देवदत्तं पश्य।*** *तू पकाते हुये देवदत्त को देख।* ***पचता कृतम्।*** *पकाते हुये के द्वारा किया गया। (शानच्)* ***पचमानं देवदत्तं पश्य।*** *तू पकाते हुये देवदत्त को देख।* ***पचमानेन कृतम्।*** *पकाते हुये के द्वारा किया गया।*

सिद्धि-*(१)* ***पचन्तम्।*** *पच्+लट्। पच्+शतृ। पच्+शप्+अत्। पच्+अ+अत्। पचत्+अम्। पच नुम् त्+अम्। पचन्त्+अम्। पचन्तम्।*

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय के स्थान में द्वितीया विभक्ति के समानाधिकरण में 'शतृ' आदेश है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। 'शतृ' प्रत्यय के 'उगित्' होने से 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम होता है। टा-विभक्ति में- ***पचता।***

(२) ***पचमानम्।*** *पच्+लट्। पच्+शानच्। पच्+शप्+आन। पच्+अ+मुक्+आन। पच्+अ+म्+आन। पचमान+अम्। पचमानम्।*

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय के स्थान में द्वितीया विभक्ति के समानाधिकरण 'शानच्' आदेश है। पूर्ववत् 'शप्' प्रत्यय और 'आने मुक्' (७।२।८२) से 'मुक्' आगम होता है। टा-विभक्ति में- ***पचमानेन।***

शतृ+शानच् (लडादेशः)-

(३) सम्बोधने च।१२५।

प०वि०-सम्बोधने ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-वर्तमाने लटः शतृशानचाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-सम्बोधने च वर्तमाने धातोः परस्य लटः शतृशानचौ।

अर्थः-सम्बोधने च विषये वर्तमाने कालेऽर्थे विद्यमानाद् धातोः परस्य लटः स्थाने शतृशानचावादेशौ भवतः।

उदा०-(शतृ) हे पचन्! (शानच्) हे पचमान!

आर्यभाषा-अर्थ-(सम्बोधने) सम्बोधन विषय में (च) भी (वर्तमाने) वर्तमानकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लटः) लट् के स्थान में (शतृशानचौ) शतृ और शानच् आदेश होते हैं।

उदा०-(शतृ) हे पचन्! हे पकाते हुये (देवदत्त)! (शानच्) हे पचमान! हे पकाते हुये (देवदत्त)।

सिद्धि-(१) पचन्। पच्+लट्। पच्+शतृ। पच्+शप्+अत्। पच्+अ+अत्। पचत्+सु। पचनुमत्+सु। पचन्त्+सु। पचन्।

यहां सम्बोधन विषय में पूर्वोक्त 'पच्' धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय के स्थान में 'शतृ' आदेश है। यहां पूर्ववत् (३।२।१२४) 'शप्' विकरण-प्रत्यय और नुम् आगम है। 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से संयोगान्त 'त्' का लोप होता है।

(२) पचमान। यहां सम्बोधन विषय में पूर्वोक्त 'पच्' धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय के स्थान में शानच् आदेश है। 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' (६।१।६७) से सम्बुद्धि 'सु' प्रत्यय का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् (३।२।१२४) है।

शतृ+शानच् (लडादेशः)-

(४) लक्षणहेत्वोः क्रियायाः।१२६।

प०वि०-लक्षण-हेत्वोः ७।२ क्रियायाः ६।१।

स०-लक्षणं च हेतुश्च तौ-लक्षणहेतू, तयोः-लक्षणहेत्वोः इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने, लटः शतृशानचाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रियायालक्षणहेत्वोर्वर्तमाने धातोः परस्य लटः शतृशानचौ।

अर्थः-क्रियाया लक्षणे हेतौ च विषये वर्तमाने कालेऽर्थे विद्यमानाद् धातोः परस्य लटः स्थाने शतृशानचावादेशौ भवतः।

उदा०-(लक्षणे) तिष्ठन्तोऽनुशासति गणकाः (शतृ)। शयाना भुञ्जते यवनाः (शानच्)। (हेतौ) अर्जयन् वसति (शतृ)। अधीयानो वसति (शानच्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियायाः) क्रिया के (लक्षणहेत्वोः) लक्षण और हेतु विषय में (वर्तमाने) वर्तमानकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लटः) लट् के स्थान में (शतृशानचौ) शतृ और शानच् आदेश होते हैं।

*उदा०-(लक्षण) **तिष्ठन्तोऽनुशासति गणकाः** (शतृ)। गणक लोग खड़े-खड़े शिक्षा करते हैं। खड़े-खड़े शिक्षा करना गणक लोगों का लक्षण (चिह्न) है। **शयाना भुञ्जते यवनाः** (शानच्)। यवन लोग लेटे-लेटे खाते हैं। लेटे-लेटे खाना यवन लोगों का लक्षण है। (हेतु) **अर्जयन् वसति** (शतृ)। वह यहां अर्जन (कमाई) के हेतु से रहता है। **अधीयानो वसति**। वह यहां अध्ययन के हेतु से रहता है।*

सिद्धि-(१) तिष्ठन्तः। स्था+शतृ। स्था+शप्+अत्। तिष्ठ+अ+अत्। तिष्ठत्+जस्। तिष्ठ नुम् त्+अस्। तिष्ठ+न् त्+अस्। तिष्ठन्तः।

यहां लक्षणविषय में 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय है। यहां 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय, 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'स्था' के स्थान में 'तिष्ठ' आदेश है। 'शतृ' प्रत्यय के उगित् होने से 'सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम होता है।

(२) शयानाः। शीङ्+शानच्। शी+शप्+आन। शी+आन। शे+आन। शयान+जस्। शयानाः।

यहां लक्षणविषय में 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से शानच् प्रत्यय है। यहां 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और उसका 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से लुक् होता है। 'शीङः सार्वधातुके गुणः' (७।४।२१) से 'शीङ्' धातु को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'अय्' आदेश होता है।

(३) अर्जयन्। अर्ज्+णिच्। अर्ज्+इ। अर्जि+शतृ। अर्जि+शप्+अत्। अर्जि+अ+अत्। अर्जे+अ+अत्। अर्जयत्+सु। अर्जयनुम्त्+सु। अर्जयन्त्+सु। अर्जयन्त्+०। अर्जयन्।

यहां हेतु विषय में 'अर्ज प्रतियत्ने' (चु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय है। यहां चौरादिक 'अर्ज्' धातु से 'सत्यापपाश०' (३।१।२५) से 'णिच्' प्रत्यय होता है। णिजन्त 'अर्जि' धातु से 'शतृ' प्रत्यय परे होने पर 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से अङ्ग को गुण होता है। शेष कार्य 'पचन्' (३।२।१२५) के समान है।

(४) अधीयानः। अधि+इङ्+शानच्। अधि+इ+शप्+आन। अधि+इ+०+आन। अधि+इयङ्+आन। अधि+इय्+आन। अधीयान+सु। अधीयानः।

यहां हेतु विषय में नित्य अधि उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से शानच् प्रत्यय है। यहां 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। 'अचि श्नुधातुभ्रुवां०' (६।४।७७) से 'इङ्' धातु को 'इयङ्' आदेश होता है।

सत्-संज्ञा–

(५) तौ सत्।१२७।

प०वि०-तौ १।२ सत् १।१।

अन्वयः-तौ शतृशानचौ सत्।

अर्थः-तौ=वर्तमाने भविष्यति च काले विहितौ शतृ-शानचौ प्रत्ययौ सत्-संज्ञकौ भवतः।

उदा०-(वर्तमाने) ब्राह्मणस्य कुर्वन् (शतृ)। ब्राह्मणस्य कुर्वाणः (शानच्)। **(भविष्यति)** ब्राह्मणस्य करिष्यन् (शतृ)। ब्राह्मणस्य करिष्यामाणः (शानच्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(तौ) उन वर्तमान और भविष्यत्काल में विहित (शतृशानचौ) शतृ और शानच् प्रत्ययों की (सत्) सत्-संज्ञा होती है।

उदा०-(वर्तमान) ब्राह्मणस्य कुर्वन् (शतृ) ब्राह्मणस्य कुर्वाणः (शानच्)। ब्राह्मण का कर्म करता हुआ। (भविष्यत्) ब्राह्मणस्य करिष्यत् (शतृ)। ब्राह्मणस्य करिष्यमाणः। भविष्य में ब्राह्मण का कर्म करता हुआ।

सिद्धि-(१) कुर्वन्। कृ+लट्। कृ+शतृ। कृ+उ+अत्। कर्+उ+अत्। कुर्+उ+अत्। कुर्वत्+सु। कुर्वनुम्त्+सु। कुर्वन्त्+सु। कुर्वन्।

यहां वर्तमान काल में 'लट्' के स्थान में विहित 'शतृ' प्रत्यय की इस सूत्र से सत् संज्ञा होने से 'पूरणगुणसुहितार्थ०' (२।२।११) से षष्ठी-समास का प्रतिषेध होता है। यहां 'डुकृञ् करणे' (तु०उ०) धातु से 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ' आदेश, 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण-प्रत्यय और 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है। 'अत उत् सार्वधातुके' (६।४।१००) से कर् के अ को उ-आदेश होता है। शेष कार्य 'पचन्' (३।२।१२५) के समान है।

(२) ब्राह्मणस्य कुर्वाणः। कृ+लट्। कृ+शानच्। कृ+उ+आन। कर्+उ+आन। कुर्+व्+आन। कुर्वाण+सु। कुर्वाणः।

यहां वर्तमानकाल में विहित 'लट्' प्रत्यय के स्थान में विहित शानच् प्रत्यय की इस सूत्र से सत्-संज्ञा होने से पूर्ववत् षष्ठीसमास का प्रतिषेध है। 'इको यणचि' (६।१।७४) से 'उ' के स्थान में 'व्' आदेश और 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।४।२) से णत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) **ब्राह्मणस्य करिष्यन्।** कृ+लृट्। कृ+शतृ। कृ+स्य+अत्। कृ+इट्+स्य+अत्। कर्+इ+ष्य+अत्। करिष्यत्+सु। करिष्यनुम्त्+सु। करिष्यन्त्+सु। करिष्यन्।

यहां भविष्यत्काल में 'लृटः सद् वा' (३।३।१४) से लृट् के स्थान में विहित 'शतृ' प्रत्यय की सत्-संज्ञा होने से पूर्ववत् षष्ठीसमास का प्रतिषेध होता है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय, **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'स्य' को 'इट्' आगम, **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'कृ' को गुण और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है। शेष कार्य 'पचन्' (३।२।१२५) के समान है।

(४) **ब्राह्मणस्य करिष्यमाणः।** कृ+लृट्। कृ+शानच्। कृ+स्य+आन। कृ+इट्+स्य+आन। कर्+इ+ष्य+मुक्+आन। करिष्यमाण+सु। करिष्यमाणः।

यहां भविष्यत्काल में 'लृटः सद् वा' (३।३।१४) से 'लृट्' के स्थान में विहित शानच् प्रत्यय की सत्-संज्ञा होने से पूर्ववत् षष्ठीसमास का प्रतिषेध होता है। यहां **'आने मुक्'** (७।२।८२) से 'मुक्' आगम और 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।४।२) से णत्व होता है। शेष कार्य 'करिष्यन्' के समान है।

शानन्–

(१) पूङ्यजोः शानन्।१२८।

प०वि०–पूङ्-यजोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) शानन् १।१।

स०–पूङ् च यज् च तौ पूङ्यजौ, तयोः–पूङ्यजोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–पूङ्यजिभ्यां धातुभ्यां वर्तमाने शानन्।

अर्थः–पूङ्-यजिभ्यां धातुभ्यां परो वर्तमाने काले शानन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**पूङ्**) पवमानः। (**यज्**) यजमानः।

आर्यभाषा-अर्थ–(पूङ्यजोः) पूङ् और यज् (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (शानन्) शानन् प्रत्यय होता है।

उदा०–(**पूङ्**) **पवमानः।** पवित्र करनेवाला। (**यज्**) **यजमानः।** यज्ञ करनेवाला।

सिद्धि-(१) पवमानः। पूङ्+शानन्। पू+शप्+आन। पू+अ+मुक् आन। पो+अ+म् आन। पव्+अ+मान। पवमान+सु। पवमानः।

यहां 'पूञ् पवने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में शानन् प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'आने मुक्' (७।२।८२) से 'मुक्' आगम होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'पूङ्' धातु को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है।

(२) यहां 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'शानन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

चानश्-

(१) ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्।१२६।

प०वि०-ताच्छील्य-वयोवचन-शक्तिषु ७।३ चानश् १।१।

स०-तस्य शीलमिति तच्छीलम्, तच्छीलस्य भावः-ताच्छील्यम्। ताच्छील्यं च वयोवचनं च शक्तिश्च ताः-ताच्छील्यवयोवचनशक्तयः, तासु-ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु धातोर्वर्तमाने चानश्।

अर्थः-ताच्छील्यवयोवचनशक्तिष्वर्थेषु धातोः परो वर्तमाने काले चानश् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ताच्छील्यम्) कति इह मुण्डयमानाः। कति इह भूषयमाणाः। (वयोवयनम्) कति इह कवचं पर्यस्यमानाः.। कति इह शिखण्डं वहमानाः। (शक्तिः) कति इह निघ्नानाः। कति इह पचमानाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु) ताच्छील्य=तत्स्वभावता, वयोवचन=आयु का कथन और शक्ति=सामर्थ्य अर्थ में (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (चानश्) चानश् प्रत्यय होता है।

उदा०-(ताच्छील्य) कति इह मुण्डयमानाः। यहां कितने मुण्डन करने के स्वभाववाले हैं। कति इह भूषयमाणाः। यहां कितने श्रृंगार करने के स्वभाववाले हैं। (वयोवचन) कति इह कवचं पर्यस्यमानाः। यहां कितने कवच को धारण करनेवाले युवा हैं। कति इह शिखण्डं वहमानाः। यहां कितने शिखण्ड=शिखा को धारण करने की आयुवाले हैं। (शक्ति) कति इह निघ्नानाः। यहां कितने हनन शक्तिवाले हैं। कति इह पचमानाः। यहां कितने पकाने की योग्यतावाले हैं।

सिद्धि-मुण्डयमानाः। मु नुम् ड्। मुण्ड्+णिच्। मुण्ड्+इ। मुण्डि+चानश्। मुण्डि+शप्+आन। मुण्डि+अ+मुक्+आन। मुण्डे+अ+म्+आन। मुण्डयमान+जस्। मण्डयमानाः।

यहां ताच्छील्य अर्थ में वर्तमानकाल में 'मुडि मार्जने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'चानश्' प्रत्यय है। यहां प्रथम 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम और 'सत्यापपाश०' (३।१।२५) से 'णिच्' प्रत्यय होता है। णिजन्त 'मुण्डि' धातु से 'चानश्' प्रत्यय करने पर 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'आने मुक्' (७।२।८२) से 'मुक्' आगम होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'मुण्डि' धातु को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'अय्' आदेश होता है।

(२) भूषयमाणाः। 'भूष अलङ्कारे' (चु०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) पर्यस्यमानाः। यहां परि उपसर्गपूर्वक 'असु क्षेपणे' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से चानश् प्रत्यय है। 'दिवादिभ्यः श्यन्' (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) वहमानाः। यहां 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'चानश्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) निघ्नानाः। यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'हन् हिंसागत्योः' (अ०प०) से इस सूत्र से चानश् प्रत्यय है। 'गमहनजन०' (६।४।९८) से हन् धातु की उपधा का लोप और 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।३।५७) से ह् को कुत्व घ् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(६) पचमानाः। यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'चानश्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

शतृ–

(१) इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि।१३०।

प०वि०-इङ्-धार्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) शतृ १।१ (लुप्तविभक्तिकं पदम्) अकृच्छ्रिणि ७।१।

स०-इङ् च धारिश्च तौ-इङ्धारी, तयोः-इङ्धार्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कृच्छ्रम्=दुःखम्। न कृच्छ्रमिति अकृच्छ्रम्, अकृच्छ्रं विद्यते यस्य सः-अकृच्छ्री। 'अत इनिठनौ' (५।२।११५) इति तद्धित इनिः प्रत्ययः।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवतति।

अन्वयः-इङ्धारिभ्यां धातुभ्यां वर्तमाने शतृ, अकृच्छ्रिणि कर्तरि।

अर्थः-इङ्धारिभ्यां धातुभ्यां परो वर्तमाने काले शतृ प्रत्ययो भवति, यदि तयोः कर्ताऽकृच्छ्री (सुखी) भवति।

उदा०-(इङ्) अधीयन् पारायणम्। **(धारि)** धारयन् उपनिषदम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(इङ्धार्योः) इङ् और धारि (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (शतृ) शतृ प्रत्यय होता है, यदि उन धातुओं का कर्ता (अकृच्छ्री) सुखी हो, सुखपूर्वक उक्त क्रियाओं का करनेवाला हो।

*उदा०-(इङ्) **अधीयन् पारायणम्।** पारायण नामक ग्रन्थ का सुखपूर्वक अध्ययन करनेवाला। (धारि) **धारयन् उपनिषदम्।** उपनिषद् (रहस्य) का सुखपूर्वक धारण=अवस्थित रखनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **अधीयन्।** अधि+इङ्+शतृ। अधि+इ+अत्। अधि+इ+०+अत्। अधि+इयङ्+अत्। अधीयत्+सु। अधीय नुम् त्+सु। अधीयन्त्+सु। अधीयन्।*

*यहां नित्य 'अधि' उपसर्ग पूर्वक **'इङ् अध्ययने'** (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय है। यहां 'शतृ' प्रत्यय परे होने पर **'कर्तरि शप्'** (३।१।६२) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से 'इङ्' को 'इयङ्' आदेश होता है। 'शतृ' प्रत्यय के 'उगित्' होने से **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से 'संयोगान्त' त् का लोप होता है।*

*(२) **धारयन्।** यहां **'धृङ् अवस्थाने'** (तु०आ०) धातु से प्रथम स्वार्थ में 'णिच्' प्रत्यय और पश्चात् णिजन्त 'धारि' धातु से इस सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय है। शेष कार्य 'अधीयन्' के समान है।*

शतृ-

(२) द्विषोऽमित्रे।१३१।

प०वि०-द्विषः ५।१ अमित्रे ७।१।

स०-न मित्रमिति अमित्रम्, तस्मिन्-अमित्रे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-वर्तमाने, शतृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्विषो धातोर्वर्तमाने शतृ, अमित्रे कर्तरि।

अर्थः-द्विषो धातोः परो वर्तमाने काले शतृ प्रत्ययो भवति, यदि तस्यामित्रं कर्ता भवति।

उदा०-द्विषन्। द्विषन्तौ। द्विषन्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्विषः) द्विष् (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (शतृ) शतृ प्रत्यय होता है, यदि द्विष धातु का कर्ता (अमित्रे) अमित्र=शत्रु हो।

उदा०-द्वेष्टीति द्विषन्। द्वेष करनेवाला शत्रु।

सिद्धि-द्विषन्। यहां 'द्विष अप्रीतौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय है। शेष कार्य 'अधीयन्' (३।२।१३०) के समान है।

शतृ–

(३) सुञो यज्ञसंयोगे।१३२।

प०वि०-सुञः ५।१ यज्ञ-संयोगे ७।१।

स०-यज्ञेन संयोग इति यज्ञसंयोगः, तस्मिन्-यज्ञसंयोगे (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-वर्तमाने, शतृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यज्ञसंयोगे सुञो धातोर्वर्तमाने शतृ।

अर्थः-यज्ञसंयोगे=यज्ञसंयुक्तेऽभिषवेऽर्थे विद्यमानात् सुञ्-धातोः परो वर्तमाने काले शतृ प्रत्ययो भवति।

उदा०-सुन्वन्तो यजमानाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(यज्ञसंयोगे) यज्ञ से संयुक्त अभिषव (रस निचोड़ना) अर्थ में विद्यमान (सुञः) सुञ् (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (शतृ) शतृ प्रत्यय होता है।

उदा०-सुन्वन्तो यजमानाः। सोम का सवन करनेवाले मुख्य यजमान लोग।

सिद्धि-सुन्वन्तः। यहां 'सुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय है। 'शतृ' प्रत्यय परे होने पर 'स्वादिभ्यः श्नुः' (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय होता है। शेष कार्य 'अधीयन्' (३।२।१३०) के समान है।

शतृ–

(४) अर्हः प्रशंसायाम्।१३३।

प०वि०-अर्हः ५।१ प्रशंसायाम् ७।१।

अनु०-वर्तमाने, शतृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्हो धातोर्वर्तमाने शतृ प्रशंसायाम्।

अर्थः-अर्ह-धातोः परो वर्तमाने काले शतृ प्रत्ययो भवति, प्रशंसायां गम्यमानायाम्।

उदा०-अर्हन् भवान् विद्याम्। अर्हन् भवान् पूजाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अर्हः) अर्ह (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (शतृ) शतृ प्रत्यय होता है, यदि वहां (प्रशंसायाम्) प्रशंसा अर्थ प्रकट हो।*

*उदा०-**अर्हन् भवान् विद्याम्।** आप विद्या प्राप्त करने योग्य हो। **अर्हन् भवान् पूजाम्।** आप पूजा के योग्य हो।*

सिद्धि-अर्हन्। *यहां **'अर्ह पूजायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से प्रशंसा की अभिव्यक्ति में 'शतृ' प्रत्यय है। शेष कार्य **'अधीयन्'** (३।२।१३०) के समान है।*

तच्छीलादिकर्तृप्रकरणम्

आ क्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु।१३४।

प०वि०-आ अव्ययपदम्, क्वेः ५।१ तच्छील-तद्धर्म-तत्साधुकारिषु ७।३।

स०-सः (धात्वर्थः) शीलं यस्य स तच्छीलः। सः (धात्वर्थः) धर्मो यस्य स तद्धर्मा, साधु करोतीति साधुकारी। तस्य (धात्वर्थस्य) साधुकारीति तत्साधुकारी। तच्छीलश्च तद्धर्मा च तत्साधुकारी च ते-तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिणः, तेषु-तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (बहुव्रीह्यादिगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आ क्वेर्धातोस्तच्छीलादिषु वर्तमाने प्रत्ययाः।

अर्थः-**'भ्राजभास०'** (३।२।१७७) इति क्विप्-पर्यन्तं ये प्रत्ययास्ते धातोस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिष्वर्थेषु वर्तमाने काले भवन्तीत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-अग्रे यथास्थानमुदाहरिष्यामः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(क्वेः) **'भ्राजभास०'** (३।२।१७७) से इस सूत्र के 'क्विप्' प्रत्यय (आ) तक (धातोः) धातु से (तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी अर्थों में (वर्तमाने) वर्तमानकाल में होते हैं। यह अधिकार सूत्र है।*

उदा०-आगे यथास्थान उदाहरण दिये जायेंगे।

विशेष-(१) तच्छील। फल की अनपेक्षा से स्वभाव से उस क्रिया में प्रवृत्त होनेवाला। (२) तद्धर्मा। जो स्वभाव के विना भी मेरा यह धर्म है इस भावना से क्रिया में प्रवृत्त होनेवाला। (३) तत्साधुकारी। उस-उस क्रिया को कुशलता से करनेवाला।

तृन्-

(१) तृन्।१३५।

प०वि०-तृन् १।१।

अनु०-वर्तमाने, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्वर्तमाने तृन् तच्छीलादिषु।

अर्थः-सर्वेभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने काले तृन् प्रत्ययो भवति, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु कर्तृषु।

उदा०-(तच्छीलः) कर्ता कटान् देवदत्तः। वदिता जनापवादान् यज्ञदत्तः। **(तद्धर्मा)** मुण्डयितारः श्राविष्ठायना भवन्ति वधूमूढाम्। अन्नमपहर्तार आह्वरका भवन्ति श्राद्धे सिद्धे। **(तत्साधुकारी)** कर्ता कटं देवदत्तः। गन्ता खेटम् यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातुमात्र से (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (तृन्) तृन् प्रत्यय होता है, यदि उस धातु का कर्ता (तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु) तच्छील=उस स्वभाववाला, तद्धर्मा=उसे धर्म माननेवाला और तत्साधुकारी=उसे कुशलतापूर्वक करनेवाला हो।

उदा०-(तच्छील) कर्ता कटान् देवदत्तः। देवदत्त स्वभाव से चटाई बनानेवाला है। वदिता जनापवादान् यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त स्वभाव से लोगों की निन्दा करनेवाला है। (तद्धर्मा) मुण्डयितारः श्राविष्ठायना भवन्ति वधूमूढाम्। श्राविष्ठायन गोत्र के लोग विवाहित वधू का मुण्डन करना अपना कुलधर्म मानते हैं। अन्नमपहर्तार आह्वरका भवन्ति श्राद्धे सिद्धे। आह्वरक देश के लोग श्राद्ध तैयार होने पर अन्न-अपहरण करना अपना धर्म समझते हैं। (तत्साधुकारी) कर्ता कटं देवदत्तः। देवदत्त चटाई को कुशलतापूर्वक बनानेवाला है। गन्ता खेटं यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त शिकार को कुशलतापूर्वक प्राप्त करनेवाला है।

सिद्धि-(१) कर्ता। कृ+तृन्। कर्+तृ। कर्तृ+सु। कर्त् अनङ्+सु। कर्तन्+सु। कर्तान्+सु। कर्तान्+० । कर्ता+० । कर्ता।

यहां तच्छील के कर्तृत्व में, वर्तमानकाल में, 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से तृन् प्रत्यय है। यहां 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' को गुण,

'ऋदुशनस्०' (७।१।९४) से कर्तृ के 'ऋ' को 'अनङ्' आदेश, 'अप्तृन्तृच्०' (६।४।११) से तृन्नन्त नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।

(२) वदिता। यहां 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'तृन्' प्रत्यय है। 'आर्धधातुकस्येवलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) मुण्डयितारः। मुण्डि+तृन्। मुण्डि+इट्+तृ। मुण्डे+इ+तृ। मुण्डयितृ+जस्। मुण्डयितार्+अस्। मुण्डयितारः।

यहां प्रथम 'मुण्ड' शब्द से 'मुण्डमिश्रश्लक्षण०' (३।१।२१) से णिच् प्रत्यय होता है। णिजन्त 'मुण्डि' धातु से इस सूत्र से 'तृन्' प्रत्यय है। यहां 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः' (७।३।११०) से गुण और 'अप्तृन्तृच्०' (६।४।११) से उपधा को दीर्घ होता है।

(४) अपहर्तारः। यहां 'अप' उपसर्गपूर्वक 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'तृन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) गन्ता। यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'तृन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'कर्ता कटान् देवदत्तः' इत्यादि प्रयोगों में 'कर्तृकर्मणोः कृति' (२।३।६५) से कर्म में षष्ठीविभक्ति प्राप्त होती है उसका 'न लोकाव्यय०' (२।३।६९) से प्रतिषेध होकर 'कर्मणि द्वितीया' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है।

विशेष-अनुवृत्ति- 'वर्तमाने' पद की अनुवृत्ति 'उणादयो बहुलम्' (३।३।१) तक है। और 'तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु' पद की अनुवृत्ति 'भ्राजभास०' (३।२।१७७) तक है। अतः अनुवृत्ति सन्दर्भ में इनकी अनुवृत्ति पुनः-पुनः नहीं दिखाई जायेगी।

इष्णुच्-

(१) अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रप-वृतुवृधुसहचर इष्णुच्।१३६।

प०वि०-अलङ्कृञ्-निराकृञ्-प्रजन-उत्पच-उत्पत-उन्मद-रुचि-अपत्रप-वृतु-वृधु-सह-चरः ५।१ इष्णुच् १।१।

स०-अलङ्कृञ् च निराकृञ् च प्रजनश्च उत्पचश्च उत्पतश्च उन्मदश्च रुचिश्च अपत्रपश्च वृतुश्च वृधुश्च सहश्च चर् च एतेषां समाहारः-अलङ्कृञ्०चर, तस्मात्-अलङ्कृञ्०चरः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अलङ्कृञादिभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने इष्णुच्, तच्छीलादिषु।

अर्थः-अलङ्कृञादिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले इष्णुच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(अलङ्कृञ्) अलङ्करिष्णुः। (निराकृञ्) निराकरिष्णुः। (प्रजनः) प्रजनिष्णुः। (उत्पचः) उत्पचिष्णुः। (उत्पतः) उत्पतिष्णुः। (उन्मदः) उन्मदिष्णुः। (रुचिः) रोचिष्णुः। (अपत्रपः) अपत्रपिष्णुः। (वृतुः) वर्तिष्णुः। (वृधुः) वर्धिष्णु। (सहः) सहिष्णुः। (चर्) चरिष्णुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अलङ्कृञ्०चरः) अलङ्कृञ्, निराकृञ्, प्रजन, उत्पच, उत्पत, उन्मद, रुचि, अपत्रप, वृतु, वृधु, सह, चर् (धातोः) धातुओं से परे (इष्णुच्) इष्णुच् प्रत्यय होता है यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(अलङ्कृञ्) अलङ्करिष्णुः। मण्डन करनेवाला। (निराकृञ्) निराकरिष्णुः। निराकरण करनेवाला। (प्रजन) प्रजनिष्णुः। प्रादुर्भाव=प्रकट होनेवाला। (उत्पच) उत्पचिष्णुः। उत्कृष्ट पकानेवाला। (उत्पत) उत्पतिष्णुः। उड़नेवाला। (उन्मद) उन्मदिष्णुः। हर्षित होनेवाला। (रुचि) रोचिष्णुः। प्रदीप्त होनेवाला। (अपत्रप) अपत्रपिष्णुः। लज्जा करनेवाला। (वृतु) वर्तिष्णुः। वर्ताव करनेवाला। (वृधु) वर्धिष्णुः। बढ़नेवाला। (सह) सहिष्णुः। सहन करनेवाला। (चर्) चरिष्णुः। विचरण करनेवाला।

सिद्धि-(१) अलङ्करिष्णुः। यहां 'अलम्' शब्द पूर्वक 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'इष्णुच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है।

(२) निराकरिष्णुः। यहां 'निर्' और 'आङ्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से इस सूत्र से 'इष्णुच्' प्रत्यय है।

(३) प्रजनिष्णुः। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०)।

(४) उत्पचिष्णुः। 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०)।

(५) उत्पतिष्णुः। 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'पतॢ गतौ' (भ्वा०प०)।

(६) उन्मदिष्णुः। 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'मदी हर्षे' (भ्वा०प०)।

(७) रोचिष्णुः। 'रुच् दीप्तौ' (भ्वा०आ०)।

(८) अपत्रपिष्णुः। 'अप' उपसर्गपूर्वक 'त्रपूष् लज्जायाम्' (भ्वा०आ०)।

(९) वर्तिष्णुः। 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०)।

(१०) वर्धिष्णुः। 'वृधु वृद्धौ' (भ्वा०आ०)।

(११) सहिष्णुः। 'षह मर्षणे' (भ्वा०आ०)।

(१२) चरिष्णुः। 'चर गतौ' (भ्वा०प०)।

इष्णुच्–

(२) णेश्छन्दसि।१३७।

प०वि०–णेः ५।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–इष्णुच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि णेर्धातोर्वर्तमाने इष्णुच् तच्छीलादिषु।

अर्थः–छन्दसि विषये णि-अन्ताद् धातोः परो वर्तमाने काले इष्णुच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–दृषदं धारयिष्णवः। वीरुधः पारयिष्णवः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (णेः) णिजन्त (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इष्णुच्) इष्णुच् प्रत्यय होता है, यदि उस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०–दृषदं धारयिष्णवः। पाषाण को धारण=अवस्थित करानेवाले। वीरुधः पारयिष्णवः। झाड़ियों को पार करानेवाले।

सिद्धि-(१) धारयिष्णवः। धृङ्+णिच्। धार्+इ। धारि+इष्णुच्। धार्+अय्+इष्णु। धारयिष्णु+जस्। धारयिष्णवः।

यहां 'धृङ् अवस्थाने' (तु०आ०) धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में णिच् प्रत्यय और णिजन्त 'धारि' धातु से इस सूत्र से 'इष्णुच्' प्रत्यय है। 'अयामन्त०' (६।४।५५) से 'णिच्' को 'अय्' आदेश होता है।

(२) पारयिष्णवः। यहां 'पॄ पालनपूरणयोः' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और णिजन्त 'पारि' धातु से इस सूत्र से 'इष्णुच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

इष्णुच्–

(३) भुवश्च।१३८।

प०वि०–भुवः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–इष्णुच्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि भुवो धातोश्च वर्तमाने इष्णुच् तच्छीलादिषु।

अर्थः–छन्दसि विषये भुवो धातोरपि परो वर्तमाने काले इष्णुच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–भविष्णुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (च) भी (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इष्णुच्) इष्णुच् प्रत्यय होता है, यदि भू धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-भविष्णुः। सत्तावाला।

सिद्धि-भविष्णुः। यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'इष्णुच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'भू' को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है।

क्स्नुः (ग्स्नुः)-

(१) ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः।१३६।

प०वि०-ग्ला-जि-स्थः ५।१ च अव्ययपदम्, क्स्नुः १।१।

स०-ग्लाश्च जिश्च स्थाश्च एतेषां समाहारो ग्लाजिस्थम्, तस्मात्-ग्लाजिस्थः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि इति निवृत्तम्। भुव इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ग्लाजिस्थो भुवश्च धातोर्वर्तमाने क्स्नुः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-ग्लाजिस्थाभ्यो भुवश्च धातोः परो वर्तमाने काले क्स्नुः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(**ग्लाः**) ग्लास्नुः। (**जिः**) जिष्णुः। (**स्था**) स्थास्नुः। (**भूः**) भूष्णुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ग्लाजिस्थः) ग्ला, जि, स्था (च) और (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्स्नुः) क्स्नु-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(ग्ला) ग्लास्नुः। ग्लानि करनेवाला। (जि) जिष्णुः। जीतनेवाला। (स्था) स्थास्नुः। ठहरनेवाला। (भू) भूष्णुः। सत्तावाला।

सिद्धि-(१) ग्लास्नुः। यहां 'ग्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ग्स्नु' प्रत्यय है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से 'ग्लै' धातु को 'आत्त्व' होता है।

(२) स्थास्नुः। यहां 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्स्नु' प्रत्यय है। यह प्रत्यय वस्तुतः 'ग्स्नु' है। 'खरि च' (८।३।५४) से ग् को चर् क् होगया है, अतः ग् का श्रवण नहीं होता है। 'ग्स्नु' प्रत्यय के 'गित्' होने से यहां 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि' (६।४।६६) से स्था धातु को ईत्व नहीं होता है।

(३) जिष्णुः। यहां 'जि जये' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ग्स्नु' प्रत्यय है। 'क्ङिति च' (१।१।५) में ग् का चर्त्वभूत निर्देश मानकर गित् प्रत्यय परे होने पर गुण-वृद्धि का प्रतिषेध मानने से यहां 'जि' धातु को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का प्रतिषेध होता है।

(४) भूष्णुः। यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ग्स्नु' प्रत्यय है। पूर्ववत् प्राप्त गुण का प्रतिषेध होता है।

क्नुः–

(२) त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः।१४०।

प०वि०–त्रसि-गृधि-धृषि-क्षिपेः ५।१ क्नुः १।१।

स०–त्रसिश्च गृधिश्च धृषिश्च क्षिपिश्च एतेषां समाहारः-त्रसिगृधिधृषिक्षिपि, तस्मात्-त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः–त्रसिगृधिधृषिक्षिपेर्धातोर्वर्तमाने क्नुः, तच्छीलादिषु।

अर्थः–त्रसिगृधिधृषिक्षिपिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले क्नुः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(त्रसिः) त्रस्नुः। **(गृधिः)** गृध्नुः। **(धृषि)** धृष्णुः। **(क्षिपिः)** क्षिप्नुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(त्रसि०क्षिपेः) त्रसि, गृधि, धृषि, क्षिपि (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्नुः) क्नु प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(त्रसि) त्रस्नुः। उद्‌विग्न (व्याकुल) रहनेवाला। (गृधि) गृध्नुः। लालच करनेवाला (लालची)। (धृषि) धृष्णुः। धृष्टता करनेवाला (ढीठ)। (क्षिपि) क्षिप्नुः। प्रेरणा करनेवाला।

सिद्धि-(१) त्रस्नुः। यहां 'त्रसी उद्‌वेगे' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्नु' प्रत्यय है। 'नेड्वशि कृति' (७।२।८) से इट् आगम का प्रतिषेध होता है।

(२) गृध्नुः। यहां 'गृधु अभिकाङ्क्षायाम्' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्नु' प्रत्यय है। 'क्नु' प्रत्यय के कित् होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है।

(३) धृष्णुः। यहां 'ञिधृषा प्रागल्भ्ये' (स्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्नु' प्रत्यय है। पूर्ववत् प्राप्त गुण का प्रतिषेध होता है। 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (८।४।१) णत्व होता है।

(४) क्षिप्नुः। यहां 'क्षिप प्रेरणे' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्नु' प्रत्यय है। पूर्ववत् लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

घिनुण्–

(१) शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्।१४१।

प०वि०–शमिति अव्ययपदम्, अष्टाभ्यः ५।३ घिनुण् १।१। अत्र निपातानादतनेकार्थत्वाद् इतिशब्द आद्यर्थे वर्तते। शम् इति येषामिति शमिति। इति शब्दस्याव्ययत्वाद् **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) इति सुपो लुग् भवति।

अन्वयः–शमिति-अष्टाभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने घिनुण्, तच्छीलादिषु।

अर्थः–शमिति=शमादिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–**(शम्)** शमी। **(तम्)** तमी। **(दम्)** दमी। **(श्रम्)** श्रमी। **(भ्रम)** भ्रमी। **(क्षम्)** क्षमी। **(क्लम्)** क्लमी। **(मद्)** प्रमादी, उन्मादी।

आर्यभाषा-अर्थ-(शमिति) शम् आदि (अष्टाभ्यः) आठ (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (घिनुण्) घिनुण् प्रत्यय होता है, यदि इनका कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(शम्) शमी। शान्त रहनेवाला। (तम्) तमी। चाहनेवाला। (दम्) दमी। उपरत रहनेवाला। (श्रम्) श्रमी। तप करनेवाला। (भ्रम्) भ्रमी। घूमनेवाला। (क्षप्) क्षमी। सहन करनेवाला। (क्लम्) क्लमी। ग्लानि करनेवाला। (मद्) प्रमादी। प्रमाद करनेवाला। उन्मादी। उन्मादवाला (पागल)।

सिद्धि-(१) शमी। शम्+घिनुण्। शम्+इन्। शमिन्+सु। शमीन्+सु। शमी।

*यहां 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'घिनुण्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से प्राप्त उपधावृद्धि का **'नोदात्तोपदेश०'** (७।३।३४) से प्रतिषेध होता है। 'सौ च' (६।४।१३) से 'शमिन्' की उपधा को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।*

(२) तमी। 'तमु काङ्क्षायाम्' (दि०प०)।

(३) दमी। 'दमु उपशमे' (दि०प०)।

(४) श्रमी। 'श्रमु तपसि खेदे च' (दि०प०)।

(५) भ्रमी। 'भ्रमु अनवस्थाने' (दि०प०)।

(६) क्षमी। 'क्षमु सहने' (दि०प०)।

(७) क्लमी। 'क्लमु ग्लानौ' (दि०प०)।

(८) प्रमादी। प्र-उपसर्गपूर्वक 'मदी हर्षे' धातु से इस सूत्र से घिनुण् प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही-उन्मादी।

विशेष-ये शम् आदि आठ धातु पाणिनीय धातुपाठ के दिवादिगण में पठित हैं।

घिनुण्-

(२) सम्पृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वर-परिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीड-विविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च।१४२।

प०वि०- सम्पृच-अनुरुध-आङ्यम-आङ्यस-परिसृ-संसृज-परिदेवि-संज्वर-परिक्षिप-परिरट-परिवद-परिदह-परिमुह-दुष-द्विष-द्रुह-दुह-युज-आक्रीड-विविच-त्यज-रज-भज-अतिचर-अपचर-आमुष-अभ्याहनः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-सम्पृचश्च अनुरधश्च आङ्यमश्च आङ्यसश्च परिसृश्च संसृजश्च परिदेविश्च संज्वरश्च परिक्षिपश्च परिरटश्च परिवदश्च परिदहश्च परिमुहश्च दुषश्च द्विषश्च द्रुहश्च दुहश्च युजश्च आक्रीडश्च विविचश्च त्यजश्च रजश्च भजश्च अतिचरश्च अपचरश्च आमुषश्च अभ्याहन् च एतेषां समाहारः-सम्पृच०अभ्याहन्, तस्मात्-सम्पृच०अभ्याहनः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-घिनुण् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सम्पृच०अभ्याहनश्च धातोर्वर्तमाने घिनुण् तच्छीदिषु।

अर्थः-सम्पृचादिभ्यो धातुभ्योऽपि परो वर्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(सम्पृचः) सम्पर्की। **(अनुरुधः)** अनुरोधी। **(आङ्यमः)** आयामी। **(आङ्यसः)** आयासी। **(परिसृः)** परिसारी। **(संसृजः)** संसर्गी। **(परिदेविः)** परिदेवी। **(संज्वरः)** संज्वारी। **(परिक्षिपः)** परिक्षेपी। **(परिरटः)** परिराटी। **(परिदहः)** परिदाही। **(परिमुहः)** परिमोही। **(दुषः)**

दोषी। (द्विषः) द्वेषी। (द्रुहः) द्रोही। (दुहः) दोही। (युजः) योगी। (आक्रीडः) आक्रीडी। (विविचः) विवेकी। (त्यजः) त्यागी। (रजः) रागी। (भजः) भागी। (अतिचरः) अतिचारी। (अपचरः) अपचारी। (आमुषः) आमोषी। (अभ्याहन्) अभ्याघाती।

आर्यभाषा-अर्थ-(सम्पृच०अभ्याहनः) सम्पृच आदि (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (घिनुण्) घिनुण् प्रत्यय होता है यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(सम्पृच) सम्पर्की। सम्पर्कशील। (अनुरुध) अनुरोधी। अनुरोध करने में कुशल। (आङ्यम) आयामी। विस्तारशील। (आङ्यस) आयासी। प्रयत्नशील। (संसृ) संसारी। संसरणशील। (संसृज) संसर्गी। संसर्ग करने में कुशल। (परिदेवि) परिदेवी। व्याकुलधर्मा। (संज्वर) संज्वारी। रुग्णधर्मा। (परिक्षिप) परिक्षेपी। प्रेरणा में कुशल। (परिरट) परिराटी। रटने में कुशल। (परिवद) परिवादी। बोलने में कुशल। (परिदह) परिदाही। ज्वलनशील। (परिमुह) परिमोही। मोहनधर्मा। (दुष) दोषी। विकृतधर्मा। (द्विष) द्वेषी। अप्रीतिधर्मा। (द्रुह) द्रोही। द्रोहधर्मा। (दुह) दोही। दोहन में कुशल। (युज) योगी। समाधिधर्मा। (आक्रीड) आक्रीडी। खेल में कुशल। (विविच) विवेकी। विवेकशील। (त्यज) त्यागी। त्यागशील। (रज) रागी। रागशील। (भज) भागी। सेवा में कुशल। (अतिचर) अतिचारी। अतिगतिशील। (अपचर) अपचारी। दुर्गतिधर्मा। (आमुष) आमोषी। चोरी में कुशल। (अभ्याहन्) अभ्याघाती। आघात=चोट करने में कुशल।

सिद्धि-(१) सम्पर्की। यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'पृची सम्पर्चने' (अदा०आ०) धातु से 'घिनुण्' प्रत्यय है। 'घिनुण्' प्रत्यय के घित् होने से 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व और 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'पृच्' को लघूपध गुण होता है।

(२) अनुरोधी। अनु उपसर्गपूर्वक 'रुधिर् आवरणे' (रुधा०प०)।

(३) आयामी। आङ् उपसर्गपूर्वक 'यम उपरमे' (भ्वा०प०)।

(४) आयासी। आङ् उपसर्गपूर्वक 'यसु प्रयत्ने' (दि०प०)।

(५) परिसारी। परि उपसर्गपूर्वक 'सृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(६) संसर्गी। सम् उपसर्गपूर्वक 'सृज विसर्गे' (तु०प०)।

(७) परिदेवी। परि उपसर्गपूर्वक 'देवृ देवने' (भ्वा०आ०)।

(८) संज्वारी। सम् उपसर्गपूर्वक 'ज्वर रोगे' (भ्वा०प०)।

(९) परिक्षेपी। परि उपसर्गपूर्वक 'क्षिप प्रेरणे' (दि०प०)।

(१०) परिराटी। परि उपसर्गपूर्वक 'रट परिभाषणे' (भ्वा०प०)।

(११) परिदाही। परि उपसर्गपूर्वक 'दह भस्मीकरणे' (भ्वा०प०)।

(१२) परिवादी। परि उपसर्गपूर्वक 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०)।

(१३) परिमोही। परि उपसर्गपूर्वक 'मुह वैचित्ये' (दि०प०)।

(१४) दोषी। 'दुष वैकृत्ये' (दि०प०)।

(१५) द्वेषी। 'द्विष अप्रीतौ' (अदा०प०)।

(१६) द्रोही। 'द्रुह अभिजिघांसायाम्' (दि०प०)।

(१७) दोही। 'दुह प्रपूरणे' (अदा०प०)।

(१८) योगी। 'युज् समाधौ' (दि०आ०)।

(१९) आक्रीडी। आङ् उपसर्गपूर्वक 'क्रीड़ृ विहारे' (भ्वा०प०)।

(२०) विवेकी। वि उपसर्गपूर्वक 'विच्लृ पृथग्भावे' (रुधा०प०)।

(२१) त्यागी। 'त्यज हानौ' (भ्वा०प०)।

(२२) रागी। 'रञ्ज रागे' (भ्वा०उ०)।

(२३) भागी। 'भज सेवायाम्' (भ्वा०उ०)।

(२४) अतिचारी। अति उपसर्गपूर्वक 'चर गतौ' (भ्वा०प०)।

(२५) अपचारी। अप उपसर्गपूर्वक 'चर गतौ' (भ्वा०प०)।

(२६) आमोषी। आङ् उपसर्गपूर्वक 'मुष स्तेये' (क्र्या०प०)।

(२७) अभ्याघाती। अभि और आङ् उपसर्गपूर्वक 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) से घिनुण् प्रत्यय करने पर 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।३।५४) से 'हन्' के 'ह्' को कुत्व घ् और 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (७।३।३२) से 'हन्' के 'न्' को 'त्' आदेश होता है।

घिनुण्–

(३) वौ कषलसकत्थस्रम्भः।१४३।

प०वि०–वौ ७।१ कष-लस-कत्थ-स्रम्भः ५।१।

स०–कषश्च लषश्च कत्थश्च स्रम्भ् च एतेषां समाहारः–कषलषकत्थस्रम्भ्, तस्मात्–कषलसकत्थस्रम्भः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–घिनुण् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–वौ कषलसकत्थस्रम्भो धातोर्वर्तमाने घिनुण् तच्छीलादिषु।

अर्थः–वि-उपसर्गे उपपदे कषलसकत्थस्रम्भिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(कष) विकाषी। (लस) विलासी। (कत्थ) विकत्थी। (स्रम्भ) विस्रम्भी।

आर्यभाषा-अर्थ-(वौ) वि-उपसर्ग उपपद होने पर (कष०स्रम्भ:) कष, लस, कत्थ, स्रम्भ (धातो:) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (घिनुण्) घिनुण् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(कष) विकाषी। हिंसा को धर्म माननेवाला (कसाई)। (लस) विलासी। कामक्रीडा में कुशल। (कत्थ) विकत्थी। श्लाघा=प्रशंसा करने में कुशल। (स्रम्भ) विस्रम्भी। विश्वासशील।

सिद्धि-(१) विकाषी। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'कष हिंसायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से घिनुण् प्रत्यय है। 'अत उपधाया:' (७।२।११६) से कष् धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) विलासी। 'लस श्लेषणक्रीडनयो:' (भ्वा०प०)।

(३) विकत्थी। 'कत्थ श्लाघायाम्' (भ्वा०आ०)।

(४) विस्रम्भी। 'स्रम्भु विश्वासे' (भ्वा०आ०)।

घिनुण्-

(४) अपे च लष:।१४४।

प०वि०-अपे ७।१ च अव्ययपदम्, लष: ५।१।

अनु०-घिनुण्, वौ इति चानुवर्तते।

अन्वय:-अपे वौ च लषो धातोर्वर्तमाने घिनुण् तच्छीलादिषु।

अर्थ:-अप-उपसर्गे वि-उपसर्गे चोपपदे लष्-धातो: परो वर्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(अप) अपलाषी। **(वि)** विलाषी।

आर्यभाषा-अर्थ-(अपे) अप-उपसर्ग पूर्वक (च) और (वौ) वि-उपसर्ग उपपद होने पर (लष:) लष् (धातो:) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (घिनुण्) प्रत्यय होता है, यदि इस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(अप) अपलाषी। दुरिच्छाशील। (वि) विलाषी। सदइच्छाशील।

सिद्धि-(१) अपलाषी। यहां अप-उपसर्गपूर्वक 'लष कान्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'घिनुण्' प्रत्यय है। 'अत उपधाया:' (७।२।११६) से 'लष्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) विलाषी। वि-उपसर्गपूर्वक 'लष कान्तौ' (भ्वा०प०)।

घिनुण्–

(५) प्रे लपसृद्रुमथवदवसः ।१४५।

प०वि०–प्रे ७ ।१ लप-सृ-द्रु-मथ-वद-वसः ५ ।१ ।

स०–लपश्च सृश्च द्रुश्च मथश्च वदश्च वस् च एतेषां समाहारः- लपसृद्रुमथवदवस्, तस्मात्-लपसृद्रुमथवदवसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–घिनुण् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–प्रे लपसृद्रुमथवदवसो धातोर्वर्तमाने घिनुण्, तच्छीलादिषु।

अर्थः–प्र-उपसर्गे उपपदे लपसृद्रुमथवदवसिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(लपः) प्रलापी। (सृः) प्रसारी। (द्रुः) प्रद्रावी। (मथः) प्रमाथी। (वदः) प्रवादी। (वसः) प्रवासी।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रे) प्र-उपसर्ग उपपद होने पर (लप०वसः) लप, सृ, द्रु, मथ, वद, वस (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (घिनुण्) घिनुण् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(लप) प्रलापी। प्रलापशील (बैंडनेवाला)। (सृ) प्रसारी। प्रसरणशील (फैलनेवाला)। (द्रु) प्रदावी। द्रवणशील (पिंघलनेवाला)। (मथ) प्रमाथी। मन्थन में कुशल। (वद) प्रवादी। निन्दाशील। (वस) प्रवासी। प्रवासधर्मा।

सिद्धि-(१) प्रलापी। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'लप व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'घिनुण्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'लप्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) प्रसारी। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'सृ गतौ' (भ्वा०प०)। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि होती है।

(३) प्रद्रावी। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'द्रु गतौ' (भ्वा०प०)। पूर्ववत् वृद्धि होती है।

(४) प्रमाथी। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'मथ विलोडने' (भ्वा०प०)।

(५) प्रवादी। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०)।

(६) प्रवासी। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'वस निवासे' (भ्वा०प०)।

वुञ्–

(१) निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरट-परिवादिव्याभाषासूयो वुञ्।१४६।

प०वि०– निन्द-हिंस-क्लिश-खाद-विनाश-परिक्षिप-परिरट-परिवादि-व्याभाष-असूयः १।१ (पञ्चम्यर्थे) वुञ् १।१।

स०–निन्दश्च हिंसश्च क्लिशश्च खादश्च विनाशश्च परिक्षिपश्च परिरटश्च परिवादिश्च व्याभाषश्च असूय च एतेषां समाहारः-निन्द०असूयः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-निन्दादिभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने वुञ् तच्छीलादिषु।

अर्थः-निन्दादिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले वुञ् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-**(निन्दः)** निन्दकः। **(हिंसः)** हिंसकः। **(क्लिशः)** क्लेशकः। **(खादः)** खादकः। **(विनाशः)** विनाशकः। **(परिक्षिपः)** परिक्षेपकः। **(परिरटः)** परिराटकः। **(परिवादि)** परिवादकः। **(व्याभाषः)** व्याभाषकः। **(असुयः)** असूयकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(निन्द०असूयः) निन्द, हिंस, क्लिश, खाद, विनाश, परिक्षिप, परिरट, परिवादि, व्याभाष, असूय (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है, यदि इनका कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(निन्द) निन्दकः। निन्दाशील। (हिंस) हिंसकः। हिंसाशील। (क्लिश) क्लेशकः। बाधा डालने में कुशल। (खाद) खादकः। भक्षणशील। (विनाश) विनाशकः। विनाशधर्मा। (परिक्षिप) परिक्षेपकः। प्रेरणा में कुशल। (परिरट) परिराटकः। रटने में कुशल। (परिवादि) परिवादकः। निन्दा में कुशल। (व्याभाष) व्याभाषकः। विविध भाषण में कुशल। (असु) असूयकः। निन्दा में कुशल।

सिद्धि-(१) निन्दकः। यहां 'णिदि कुत्सायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'णो नः' (६।१।६३) से धातु के 'ण्' को 'न्' और 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।[illegible]) से धातु को 'नुम्' आगम होता है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है।

(२) हिंसकः। 'हिसि हिंसायाम्' (रुधा०प०)।

(३) क्लेशकः। 'क्लिश उपतापे' (दि०आ०)। 'क्लिशू विबाधने' (क्र्या०प०)।

(४) खादकः। 'खादृ भक्षणे' (भ्वा०प०)।

(५) विनाशकः। वि उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'णश अदर्शने' (दि०प०)।

(६) परिक्षेपकः। परि उपसर्गपूर्वक 'क्षिप प्रेरणे' (तु०प०)।

(७) परिराटकः। परि उपसर्गपूर्वक 'रट परिभाषणे' (भ्वा०प०)।

(८) परिवादकः। परि उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०)।

(९) व्याभाषकः। वि और आङ् उपसर्गपूर्वक 'भाष व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०)।

(१०) असूयकः। 'असु उपतापे' (कवण्ड्वादि)। 'कण्ड्वादिभ्यो यक्' (३।१।२७) से यक् प्रत्यय और 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' (७।४।२५) से असु धातु को दीर्घ होता है।

वुञ्–

(२) देविक्रुशोश्चोपसर्गे।१४७।

प०वि०–देवि-क्रुशोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्, उपसर्गे ७।१।

स०–देविश्च क्रुश् च तौ देविक्रुशौ, तयोः–देविक्रुशोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वुञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–उपसर्गे देविक्रुशिभ्यां धातुभ्यां वर्तमाने वुञ् तच्छीलादिषु।

अर्थः–उपसर्ग उपपदे देवि-क्रुशिभ्यां धातुभ्यां परो वर्तमाने काले वुञ् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(**देविः**) आदेवकः। परिदेवकः। (**क्रुशिः**) आक्रोशकः। परिक्रोशकः।

आर्यभाषा-अर्थ–(उपसर्गे) उपसर्ग उपपद होने पर (देविक्रुशोः) देवि और क्रुश् (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान् तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०–(देवि) आदेवकः। परिदेवकः। क्रीडा आदि कराने में कुशल। (क्रुश) आक्रोशकः। परिक्रोशकः। आह्वान में कुशल।

सिद्धि–(१) आदेवकः। यहां आङ् उपसर्ग उपपद होने पर णिजन्त 'दिवु क्रीडाविगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से

'वुञ्' प्रत्यय होता है। 'णेरनिटि' (६।१।५१) से णिच् का लोप हो जाता है। ऐसे ही-परिदेवकः।

(२) आक्रोशकः। आङ् उपसर्गपूर्वक 'क्रुश आह्वाने, रोदने च' (भ्वा०प०)। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'क्रुश्' धातु को लघूपध गुण होता है। ऐसे ही-परिक्रोशकः।

युच्-

(१) चलनशब्दार्थादकर्मकाद् युच्।१४८।

प०वि०-चलन-शब्दार्थात् ५।१ अकर्मकात् ५।१ युच् १।१।

स०-चलनं च शब्दश्च तौ चलनशब्दौ, अर्थश्च अर्थश्च तौ अर्थौ, चलनशब्दावर्थौ यस्य सः-चलनशब्दार्थः, तस्मात्-चलनशब्दार्थात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। न विद्यते कर्म यस्य सः-अकर्मकः, तस्मात्-अकर्मकात् (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-अकर्मकाच्चलनशब्दार्थाद् धातोर्वर्तमाने युच् तच्छीलादिषु।

अर्थः-अकर्मकेभ्यश्चलनार्थेभ्यः शब्दार्थेभ्यश्च धातुभ्यः परो वर्तमाने काले युच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(चलनार्थः) चलनः। चोपनः। **(शब्दार्थः)** शब्दनः। रवणः।

आर्यभाषा-अर्थ- *(अकर्मकात्) अकर्मक (चलनशब्दार्थात्) चलनार्थक और शब्दार्थक (धातोः) धातुओं से परें (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (युच्) युच् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान् तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।*

उदा०-(चलनार्थ) चलनः। गतिशील। चोपनः। मन्द-गतिशील। (शब्दार्थः) शब्दनः। शब्दशील। रवणः। शब्दशील।

सिद्धि-(१) चलनः। यहां अकर्मक 'चल गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है।

(२) चोपनः। 'चुप मन्दायां गतौ' (भ्वा०प०)।

(३) शब्दनः। 'शब्द शब्दने' (चु०प०)। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से चुरादि णिच् प्रत्यय का लोप होता है।

(४) रवणः। 'रु शब्दे' (अदा०आ०)। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'रु' धातु को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है।

युच्-

(२) अनुदात्तेतश्च हलादेः।१४६।

प०वि०-अनुदात्ततः ५।१ च अव्ययपदम्, हलादेः ५।१।

स०-अनुदात्त इत् यस्य सः-अनुदात्तेत्, तस्मात्-अनुदात्तेतः (बहुव्रीहिः)। हल् आदिर्यस्य सः-हलादिः, तस्मात्-हलादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अकर्मकात् युच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्मकाद् हलादेरनुदात्तेतश्च धातोर्वर्तमाने युच् तच्छीलादिषु।

अर्थः-अकर्मकाद् हलादेरनुदात्तेतश्च धातोः परो वर्तमाने काले युच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-वर्तनः। वर्धनः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्मकात्) अकर्मक (हलादेः) हलादि (अनुदात्तेत्) आत्मनेपद (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (युच्) युच् प्रत्यय होता है, यदि उस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-वर्तनः। व्यवहारकुशल। वर्धनः। वृद्धिशील।

सिद्धि-(१) वर्तनः। यहां अकर्मक, हलादि, अनुदात्तेत् 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'वृतु' धातु को लघूपध गुण होता है।

(२) वर्धनः। 'वृधु वर्धने' (भ्वा०आ०)।

युच्-

(३) जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः।१५०।

प०वि०- जु-चङ्क्रम्य-दन्द्रम्य-सृ-गृधि-ज्वल-शुच-लष-पत-पदः ५।१।

स०-जुश्च चङ्क्रम्यश्च दन्द्रम्यश्च सृश्च गृधिश्च ज्वलश्च शुचश्च लषश्च पतश्च पद् च एतेषां समाहारः-जु०पद्, तस्मात्-जु०पदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-युच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-जु०पदो धातोर्वर्तमाने युच् तच्छीलादिषु।

अर्थः-जु-प्रभृतिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले युच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(जुः) जवनः। (चङ्क्रम्यः) चङ्क्रमणः। (दन्द्रम्यः) दन्द्रमणः। (सृः) सरणः। (गृधि) गर्धनः। (ज्वलः) ज्वलनः। (शुचः) शोचनः। (लषः) लषणः। (पतः) पतनः। (पदः) पदनः।

आर्यभाषा-अर्थ-(जु०पदः) जु, चङ्क्रम्य, दन्द्रम्य, सृ, गृधि, ज्वल, शुच, लष, पत, पद (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (युच्) युच् प्रत्यय होता है, यदि इनका कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(जु) जवनः। वेगशील। (चङ्क्रम्य) चङ्क्रमणः। कुटिल चलनशील। (दन्द्रम्य) दन्द्रमणः। कुटिल गतिशील। (सृ) सरणः। संसरणशील। (ज्वल) ज्वलनः। दीप्तिधर्मा। (शुच) शोचनः। शोकधर्मा। (लष) लषणः। कान्तिधर्मा। (पत) पतनः। पतनशील। (पद) पदनः। गतिशील।

सिद्धि-(१) जवनः। यहां 'जु वेगे' इस सौत्र धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय होता है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश और 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।२।८४) से 'जु' धातु को गुण होता है।

(२) चङ्क्रमणः। क्रम्+यङ्। क्रम्+क्रम्+य। क+क्रम्+य। क नुक्+क्रम्+य। च न्+क्रम्+य। च ं क्रम्+य। चङ्+क्रम्+य। चङ्क्रम्य+युच्। चङ्क्रम्य्+अन। चङ्क्रम्+अण। चङ्क्रमण+सु। चङ्क्रमणः।

यहां प्रथम 'क्रमु पादविक्षेपे' (दि०प०) धातु से 'नित्यं कौटिल्ये गतौ' (३।१।२३) से यङ् प्रत्यय होता है। यङन्त 'चङ्क्रम्य' धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय है। 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर 'सन्यङोः' (६।१।९) से 'क्रम्' धातु को द्वित्व, 'नुगतोऽनुनासिकान्तस्य' (७।४।७५) से अभ्यास को 'नुक्' आगम, 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण ङ् होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के 'क्' को 'च्' आदेश होता है। 'चङ्क्रम्य' से 'युच्' प्रत्यय करने पर 'अतो लोपः' (६।४।४८) से 'अ' का लोप और 'यस्य हलः' (६।४।४९) से 'य्' का लोप होता है। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।४।२) से 'णत्व' हो जाता है।

(३) दन्द्रमणः। 'द्रम गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(४) सरणः। 'सृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(५) गर्धनः। 'गृधु अभिकाङ्क्षायाम्' (दि०प०)।

(६) ज्वलनः। 'ज्वल दीप्तौ' (भ्वा०प०)।

(७) शोचनः। 'शुच शोके' (भ्वा०प०)।

(८) लषणः। 'लष कान्तौ' (भ्वा०प०)।

(९) पतनः। 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(१०) पदनः। 'पद गतौ' (दि०आ०)।

युच्–

(४) क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च।१५१।

प०वि०–क्रुध-मण्डार्थेभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–क्रुधश्च मण्डश्च तौ क्रुधमण्डौ, अर्थश्च अर्थश्च तौ अर्थौ, क्रुधमण्डावर्थौ, येषां ते क्रुधमण्डार्थाः, तेभ्यः-क्रुधमण्डार्थेभ्यः (इतरेतर-योगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–युच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–क्रुधमण्डार्थेभ्यो धातुभ्यश्च वर्तमाने युच्, तच्छीलादिषु।

अर्थः–क्रुधार्थेभ्यो मण्डार्थेभ्यश्च धातुभ्यः परो वर्तमाने काले युच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(क्रुधार्थः) क्रोधनः। रोषणः। **(मण्डार्थः)** मण्डनः। भूषणः।

आर्यभाषा-अर्थ–(क्रुधमण्डार्थेभ्यः) क्रुधार्थक और मण्डार्थक (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमान काल में (युच्) युच् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०–(क्रुधार्थक) क्रोधनः। रोषणः। क्रोधशील (क्रोधी)। (मण्डार्थक) मण्डनः। भूषणः। मण्डनशील (शृङ्गारी)।

सिद्धि-(१) क्रोधनः। यहां 'क्रुध क्रोधे' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'क्रुध्' धातु को लघूपध गुण होता है।

(२) रोषणः। 'रुष रोषे' (चु०प०)। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' प्रत्यय का लोप होता है।

(३) मण्डनः। 'मडि भूषायाम्' (भ्वा०प०) 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) धातु से 'नुम्' आगम और उसे पूर्ववत् अनुस्वार तथा परसवर्ण होता है।

(४) भूषणः। 'भूष अलङ्कारे' (भ्वा०प०) 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।४।२) से णत्व होता है।

युच्-प्रतिषेधः--

(५) न यः।१५२।

प०वि०-न अव्ययपदम्, यः ५।१।

अनु०-युच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यो धातोर्वर्तमाने युच् न तच्छीलादिषु।

अर्थः-यकारान्ताद् धातोः परो वर्तमाने काले युच् प्रत्ययो न भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-क्नूयिता। क्ष्मायिता।

आर्यभाषा-अर्थ-(यः) यकारान्त (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (युच्) युच्-प्रत्यय (न) नहीं होता है, यदि इस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-क्नूयिता। शब्दशील/क्लेदनशील। क्ष्मायिता। कम्पनशील।

सिद्धि-(१) क्नूयिता। यहां यकारान्त 'क्नूयी शब्द उन्दे च' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' (३।२।१४९) से 'युच्' प्रत्यय प्राप्त था, अतः 'तृन्' (३।२।१३५) से उत्सर्ग 'तृन्' प्रत्यय होता है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है। शेष कार्य 'कर्ता' (३।२।१३५) के समान है।

(२) क्ष्मायिता। 'क्ष्मायी विधूनने' (भ्वा०आ०)।

युच्-प्रतिषेधः--

(६) सूददीपदीक्षश्च।१५३।

प०वि०-सूद-दीप-दीक्षः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-सूदश्च दीपश्च दीक्ष् च एतेषां समाहारः-सूददीपदीक्ष्, तस्मात्-सददीपदीक्षः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-युच्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सूददीपदीक्षो धातोश्च वर्तमाने युच् न तच्छीलादिषु।

अर्थः-सूददीपदीक्षिभ्यो धातुभ्योऽपि परो वर्तमाने काले युच् प्रत्ययो न भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(सूदः) सूदिता। (दीपः) दीपिता। (दीक्ष्) दीक्षिता।

आर्यभाषा-अर्थ-(सूददीपदीक्षः) सूद, दीप, दीक्ष् (धातोः) धातुओं से (च) भी परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (युच्) युच् प्रत्यय (न) नहीं होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(सूद) सूदिता। क्षरणशील (विनाशी)। (दीप) दीपिता। दीप्तिशील (चमकीला)। (दीक्ष) दीक्षिता। मुण्डनधर्मा, यज्ञधर्मा, उपनयनधर्मा, नियमधर्मा, व्रतधर्मा, आदेशधर्मा।

सिद्धि-(१) सूदिता। यहां 'षूद क्षरणे' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' (३।२।१४९) से 'युच्' प्रत्यय प्राप्त था। अतः 'तृन्' (३।२।१३५) से उत्सर्ग 'तृन्' प्रत्यय होता है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'तृन्' को 'इट्' आगम होता है। शेष कार्य 'कर्ता' (३।२।१३५) के समान है।

(२) दीपिता। 'दीपी दीप्तौ' (दि०आ०)।

(३) दीक्षिता। 'दीक्ष मौण्ड्य-इज्या-उपनयन-नियम-व्रताऽऽदेशेषु' (भ्वा०आ०)।

उकञ्-

(१) लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ्।१५४।

प०वि०- लष-पत-पद-स्था-भू-वृष-हन-कम-गम-शॄभ्यः ५।३ उकञ् १।१।

स०-लषश्च पतश्च पदश्च स्थाश्च भूश्च वृषश्च हनश्च कमश्च गमश्च शॄश्च ते-लष०शरः, तेभ्यः-लष०शॄभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-लष०शॄभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने उकञ् तच्छीलादिषु।

अर्थः-लषादिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले उकञ् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(लषः) अपलाषुकं वृषलसङ्गतम्। **(पतः)** प्रपातुका गर्भा भवन्ति। **(पदः)** उपपादुकं सत्त्वम्। **(स्था)** उपस्थायुका पशवो भवन्ति। **(भूः)** प्रभावुकमन्नं भवति। **(वृषः)** प्रवर्षुकाः पर्जन्याः। **(हनः)** आघातुकं पाकलिकस्य मूत्रम्। **(कमः)** कामुका एनं स्त्रियो भवन्ति। **(गमः)** आगामुकं वाराणसीं रक्ष आहुः। **(शॄ)** किंशारुकं तीक्ष्णमाहुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(लष०शॄभ्यः) लष, पत, पद, स्था, भू, वृष, हन, कम, गम, शॄ (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (उकञ्)

उकञ् प्रत्यय होता है, यदि इनका कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(लष) अपलाषुकं वृषलसङ्गतम्। वृषल=नीच की संगति कामना के योग्य नहीं होती है। (पत) प्रपातुका गर्भा भवन्ति। गर्भ पतनशील होते हैं। (पद) उपपादुकं सत्त्वम्। द्रव्य उपपतिशील होता है। (स्था) उपस्थायुका एनं पशवो भवन्ति। पशु इसके प्रति उपस्थितिशील हैं। (भू) प्रभावुकमन्नं भवति। अन्न सामर्थ्यशील होता है। (वृष) प्रवर्षुकाः पर्जन्याः। बादल वर्षणशील हैं। (हनः) आघातुकं पाकलिकस्य मूत्रम्। ज्वर रोग से पीडित हाथी का मूत्र घातक होता है। पाकलः=हाथी का ज्वर (आप्टेकोश)। (कम) कामुका एनं स्त्रियो भवन्ति। स्त्रियां इसके प्रति कामनाशील हैं। (गम) आगामुकं वाराणसीं रक्ष आहुः। वाराणसी के प्रति आगमनशील को राक्षस कहते हैं। (पापी लोग पाप से मुक्ति के लिये वाराणसी जाते हैं, वे पापी होने से राक्षस के तुल्य हैं)। (शॄ) किंशारुकं तीक्ष्णमाहुः। किंशारु=यव धान आदि की बाल का अग्रभाग तीक्ष्ण होता है। 'किंशारुः सस्यशूकं स्या'दित्यमरः।

सिद्धि-(१) अपलाषुकः। यहां अप उपसर्गपूर्वक 'लष कान्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'उकञ्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'लष्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) प्रपातुकः। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(३) उपपादुकः। 'उप' उपसर्गपूर्वक 'पद गतौ' (दि०आ०)।

(४) उपस्थायुकः। 'उप' उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०)। 'आतो युक् चिण् कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।

(५) प्रभावुकः। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०)। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११६) से 'भू' को वृद्धि और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'आव्' आदेश होता है।

(६) प्रवर्षुकः। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'वृष सेचने' (भ्वा०प०)। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७.।३।८६) से 'वृष्' को लघूपध गुण होता है।

(७) आघातुकः। आङ् उपसर्गपूर्वक 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।३।५४) से 'हन्' धातु के 'ह्' को कुत्व 'घ्' और 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (७।३।३२) से 'हन्' धातु के 'न्' को 'त्' आदेश होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

(८) आगामुकः। आङ् उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(९) किंशारुकः। किम् उपपद होने पर 'शॄ हिंसायाम्' (क्र्या०प०)। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'शॄ' धातु को वृद्धि होती है।

षाकन्–

(१) जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्।१५५।

प०वि०–जल्प-भिक्ष-कुट्ट-लुण्ट-वृङः ५।१ षाकन् १।१।

स०–जल्पश्च भिक्षश्च कुट्टश्च लुण्टश्च वृङ् च एतेषां समाहारः-जल्प०वृङ्, तस्मात्-जल्प०वृङः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः–जल्प०वृङो धातोर्वर्तमाने षाकन् तच्छीलादिषु।

अर्थः–जल्पादिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले षाकन् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(जल्पः) जल्पाकः। जल्पाकी। (भिक्षः) भिक्षाकः। भिक्षाकी। (कुट्टः) कुट्टाकः। कुट्टाकी। (लुण्टः) लुण्टाकः। लुण्टाकी। (वृङ्) वराकः। वराकी।

आर्यभाषा-अर्थ-(जल्प०वृङः) जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट, वृङ् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (षाकन्) षाकन् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(जल्प) जल्पाकः। जल्पनशील बकवादी। जल्पाकी (स्त्री)। (भिक्ष) भिक्षाकः। भिक्षाधर्मा। भिक्षाकी (स्त्री)। (कुट्ट) कुट्टाकः। छेदन में कुशल। कुट्टाकी (स्त्री। (लुण्ट) लुण्टाकः। चोरी करने में कुशल (लुटेरा)। लुण्टाकी (स्त्री)। (वृङ्) वराकः। सम्भक्तिशील (बिचारा)। वराकी (स्त्री)।

सिद्धि-(१) जल्पाकः। यहां 'जल्प व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'षाकन्' प्रत्यय है। 'षाकन्' प्रत्यय के 'षित्' होने से स्त्रीलिङ्ग में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-जल्पाकी।

(२) भिक्षाकः। 'भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च' (भ्वा०आ०)।

(३) कुट्टाकः। 'कुट्ट छेदनभर्त्सनयोः' (चु०प०)।

(४) लुण्टाकः। 'लुटि स्तेये' (भ्वा०प०)। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से धातु को 'नुम्' आगम होता है।

(५) वराकः। 'वृङ् सम्भक्तौ' (क्र्या०प०)।

इनिः–

(१) प्रजोरिनिः।१५६।

प०वि०–प्रजोः ५।१ इनिः १।१।

अन्वयः–प्रजोर्धातोर्वर्तमाने इनिः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-प्र-उपसर्गपूर्वाद् जु-धातोः परो वर्तमाने काले इनिः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-प्रजवी। प्रजविनौ। प्रजविनः।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रजोः) प्र-उपसर्गपूर्वक जु (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इनिः) इनि-प्रत्यय होता है, यदि इस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(प्र+जु) प्रजवी। प्रकृष्ट वेगशील (तकाजा करनेवाला)।

सिद्धि-प्रजवी। प्र+जु+इनि। प्र+जो इन्। प्रजविन्+सु। प्रजवीन्+सु। प्रजवी।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'जु वेगे' इस सौत्र धातु से इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'जु' धातु को गुण, 'सौ च' (६।४।१३) से दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।

इनिः-

(२) जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च।१५७।

प०वि०- जि-दृ-क्षि-विश्रि-इण्-वम-अव्यथ-अभ्यम-परिभू-प्रसूभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-जिश्च दृश्च विश्रिश्च इण् च वमश्च अव्यथश्च अभ्यमश्च परिभूश्च प्रसूश्च ते जि०प्रसुवः, तेभ्यः-जि०प्रसूभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-इनिरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-जि०प्रसूभ्यो धातुभ्यश्च वर्तमाने इनिः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-जि-प्रभृतिभ्यो धातुभ्योऽपि परो वर्तमाने काले इनिः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(**जिः**) जयी। (**दृः**) दरी। (**क्षिः**) क्षयी। (**वि+श्रिः**) विश्रयी। (**इण्**) अत्ययी। (**वमः**) वमी। (**अव्यथः**) अव्यथी। (**अभ्यमः**) अभ्यमी। (**परिभूः**) परिभवी। (**प्रसूः**) प्रसवी।

आर्यभाषा-अर्थ-(जि०प्रसूभ्यः) जि, दृ, क्षि, वि+श्रि, इण्, वम, अव्यथ, अभ्यम, परिभू, प्रसू (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (इनिः) इनि-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(जि) जयी। जयशील। (दृ) दरी। आदर करने में कुशल। (क्षि) क्षयी। क्षयशील (विनाशी)। (वि-श्रि) विश्रयी। विशेष सेवा में कुशल। (इण्) अत्ययी। अतिक्रमणधर्मा। (वम) वमी। वमनशील। (अव्यथ) अव्यथी। भयशील से रहित (निर्भय)। (अभ्यम्) अभ्यमी। प्रत्यक्ष रोगधर्मा। (परिभू) परिभवी। सब ओर सत्ताशील (ईश्वर)। (प्रसू) प्रसवी। प्रकृष्ट प्रेरणा में कुशल।

सिद्धि-(१) जयी। यहां 'जि जये' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'जि' धातु को गुण होता है।

(२) दरी। 'दृङ् आदरे' (दि०आ०)।

(३) विश्रयी। वि-उपसर्गपूर्वक 'श्रिञ् सेवायाम्' (भ्वा०उ०)।

(४) अत्ययी। अति उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०)।

(५) वमी। 'टुवम् उद्गिरणे' (भ्वा०प०)।

(६) अव्यथी। नञ्पूर्वक 'व्यथ भयसंचलनयोः' (भ्वा०आ०)।

(७) अभ्यमी। अभि उपसर्गपूर्वक 'अम रोगे' (भ्वा०प०)।

(८) अभ्यमी। परि उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०)।

(९) प्रसवी। प्र उपसर्गपूर्वक 'षू प्रेरणे' (तु०प०)।

आलुच्-

(१) स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच्।१५८।

प०वि०-स्पृहि-गृहि-पति-दयि-निद्रा-तन्द्रा-श्रद्धाभ्यः ५।३ आलुच् १।१।

स०-स्पृहिश्च गृहिश्च पतिश्च दयिश्च निद्राश्च तन्द्राश्च श्रद्धाश्च ते स्पृहि०श्रद्धाः, तेभ्यः-स्पृहि०श्रद्धाभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-स्पृहि०श्रद्धाभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने आलुच्, तच्छीलादिषु।

अर्थः-स्पृहिप्रभृतिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले आलुच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(स्पृहिः) स्पृहयालुः। **(गृहिः)** गृहयालुः। **(पतिः)** पतयालुः। **(दयिः)** दयालुः। **(नि-द्रा)** निद्रालुः। **(तन्-द्रा)** तन्द्रालुः। **(श्रद्-धा)** श्रद्धालुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्पृहि०श्रद्धाभ्यः) स्पृहि, गृहि, पति, दयि, नि-द्रा, तन्-द्रा, श्रद्-धा (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (आलुच्) आलुच् प्रत्यय होता है, यदि इनका कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(स्पृहि) स्पृहयालुः । ईप्साशील । (गृहि) गृहयालुः । ग्रहणशील । (पति) पतयालुः । गतिशील । (दयि) दयालुः । दानशील । (नि-द्रा) निद्रालुः । शयनशील । (तन्-द्रा) तन्द्रालुः । तन्द्राशील (आलसी) । (श्रद्धा) श्रद्धालुः । श्रद्धाशील ।

सिद्धि-(१) स्पृहयालुः । स्पृहि+आलुच् । स्पृह अय्+आलु । स्पृहयालु+सु । स्पृहयालुः ।

यहां 'स्पृह ईप्सायाम्' (चु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'आलुच्' प्रत्यय है। 'स्पृह' धातु चुरादिगण में अदन्त पठित है। प्रथम 'स्पृह' धातु से चुरादि 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'अतो लोपः' (६।४।४८) से 'स्पृह' के 'अ' का लोप होता है, 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' (१।१।५६) से अ-लोप को स्थानिवत् मानकर 'स्पृह्' धातु को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त गुण नहीं होता है। 'स्पृह' धातु से आलुच् प्रत्यय परे होने पर 'णेरनिटि' (६।४।५१) से णिच् का लोप न होकर उसे 'अयामन्ता०' (६।४।५५) से 'अय्' आदेश होता है।

(२) गृहयालुः । 'गृह ग्रहणे' (चु०आ०)।

(३) पतयालुः ।, 'पत गतौ' (चु०उ०)।

(४) दयालुः । 'दय दानगतिरक्षणहिंसाऽऽदानेषु' (भ्वा०आ०)। यहां 'दयि' में इकार धातुनिर्देशार्थ है, णिच् नहीं है।

(५) निद्रालुः । नि-उपसर्गपूर्वक 'द्रा कुत्सायाम्' (अदा०प०)।

(६) तन्द्रालुः । तत् उपपद होने पर पूर्वोक्त 'द्रा' धातु, 'तत्' के 'त्' को निपातन से 'न्' आदेश होता है।

(७) श्रद्धालुः । श्रत् उपपद होने पर 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०)।

रुः-

(१) दाधेट्सिशदसदो रुः ।१५६।

प०वि०-दा-धेट्-सि-शद-सदः ५।१ रुः १।१।

स०-दाश्च धेट् च सिश्च शदश्च सद् च एतेषां समाहारः-दाधेट्सिशदसद्, तस्मात्-दाधेट्सिशदसदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-दाधेट्सिशदसदो वर्तमाने रुः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-दाधेट्सिशदसद्भ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले रुः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(दाः) दारुः । (धेट्) धारुः । (सिः) सेरुः । (शदः) शद्रुः । (सद्) सद्रुः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(दा०सदः) दा, धेट्, सि, शद, सद् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (रुः) रु-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(दा) दारुः। दानधर्मा। (धेट्) धारुः। पानशील। (सि) सेरुः बन्धनशील/बन्धन में कुशल। (शद) शद्रुः। तीक्ष्ण करने में कुशल। (सद्) सद्रुः। अवसादशील, अवसाद=शोक।

सिद्धि-(१) दारुः। यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'रु' प्रत्यय है।

(२) धारुः। 'धेट् पाने' (भ्वा०प०)। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से धातु को आत्त्व होता है।

(३) सेरुः। 'षिञ् बन्धने' (स्वा०उ०)। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'सि' धातु को गुण होता है।

(४) शद्रुः। 'शद्लृ शातने' (भ्वा०प०) {तीक्ष्ण करना}।

(५) सद्रुः। 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०)।

क्मरच्–

(१) सृघस्यदः क्मरच्।१६०।

प०वि०–सृ-घसि-अदः ५।१ क्मरच् १।१।

स०–सृश्च घसिश्च अद् च एतेषां समाहारः-सृघस्यद्, तस्मात्-सृघस्यदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः–सृघस्यदो धातोर्वर्तमाने क्मरच्, तच्छीलादिषु।

अर्थः–सृघस्यद्भ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले क्मरच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(सृः) सृमरः। (घसिः) घस्मरः। (अद्) अद्मरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सृघस्यदः) सृ, घसि, अद् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्मरच्) क्मरच् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(सृ) सृमरः। गतिशील (मृगविशेष)। (घसि) घस्मरः। भक्षणशील (खाऊ)। (अद्) अद्मरः। भक्षणशील (खाऊ)।

सिद्धि-(१) सृमरः। यहां 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्मरच्' प्रत्यय है। 'क्मरच्' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८५) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है।

(२) घस्मरः। 'घस्लृ अदने' (भ्वा०प०)।

(३) अद्मरः। 'अद् भक्षणे' (अदा०प०)।

घुरच्–

(१) भञ्जभासमिदो घुरच्।१६१।

प०वि०–भञ्ज-भास-मिदः ५।१ घुरच् १।१।

स०–भञ्जश्च भासश्च मिद् च एतेषां समाहारः–भञ्जभासमिद्, तस्मात्–भञ्जभासमिदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः–भञ्जभासमिदो धातोर्वर्तमाने घुरच्, तच्छीलादिषु।

अर्थः–भञ्जभासमिद्भ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले घुरच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(भञ्जः) भङ्गुरं काष्ठम्। **(भासः)** भासुरं ज्योतिः। **(मिद्)** मेदुरः पशुः।

आर्यभाषा-अर्थ–(भञ्जभासमिदः) भञ्ज, भास, मिद् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (घुरच्) घुरच् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०–(भञ्ज) भङ्गुरं काष्ठम्। भग्नशील लकड़ी। (भास) भासुरं ज्योतिः। दीप्तिशील ज्योति। (मिद्) मेदुरः पशुः। मेदशील पशु। मेद=चर्बी।

सिद्धि–(१) भङ्गुरम्। यहां 'भञ्जो आमर्दने' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'घुरच्' प्रत्यय है। 'घुरच्' प्रत्यय के घित् होने से 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से 'भञ्ज्' धातु के 'ज्' को कुत्व 'ग्' होता है। 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण 'ङ्' हो जाता है।

(२) भास्वरम्। 'भासृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०)।

(३) मेदुरः। 'ञिमिदा स्नेहने' (भ्वा०आ०)। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'मिद्' धातु को लघूपध गुण होता है।

कुरच्–

(१) विदिभिदिच्छिदेः कुरच्।१६२।

प०वि०–विदि-भिदि-च्छिदेः ५।१ कुरच् १।१।

स०–विदिश्च भिदिश्च छिदिश्च एतेषां समाहारः–विदिभिदिच्छिदि, तस्मात्–विदिभिदिच्छिदेः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-विदिभिदिच्छिदेर्धातोर्वर्तमाने कुरच् तच्छीलादिषु।

अर्थः-विदिभिदिच्छिदिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले कुरच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(**विदिः**) विदुरः पण्डितः। (**भिदिः**) भिदुरं काष्ठम्। (**छिदिः**) छिदुरा रज्जुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(विदिभिदिच्छिदेः) विदि, भिदि, छिदि (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (कुरच्) कुरच् प्रत्यय होता है, यदि धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(विदि) विदुरः पण्डितः। ज्ञानशील पण्डित। (भिदि) भिदुरं काष्ठम्। भेदनशील (फटनेवाला) काठ। (छिदि) छिदुरा रज्जुः। छेदनशील (टूटनेवाली) रस्सी।

सिद्धि-(१) विदुरः। यहां 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'कुरच्' प्रत्यय है। 'कुरच्' प्रत्यय के कित् होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है।

(२) भिदुरम्। 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०)।

(३) छिदुरा। 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०)। स्त्रीत्व विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।

क्वरप्-

(१) इण्नश्जिसर्तिभ्यः क्वरप्।१६३।

प०वि०-इण्-नश्-जि-सर्तिभ्यः ५।३ क्वरप् १।१।

स०-इण् च नश् च जिश्च सर्तिश्च ते-इण्नश्जिसर्तयः, तेभ्यः-इण्नश्जिसर्तिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-इण्नश्जिसर्तिभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने क्वरप्, तच्छीलादिषु।

अर्थः-इण्नश्जिसर्तिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले क्वरप् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(**इण्**) **इत्वरः**। इत्वरी (स्त्री)। (**नश्**) **नश्वरः**। नश्वरी (स्त्री)। (**जि**) **जित्वरः**। जित्वरी (स्त्री)। (**सर्तिः**) **सृत्वरः**। सृत्वरी (स्त्री)।

आर्यभाषा-अर्थ-(इण्नश्जिसर्तिभ्यः) इण्, नश्, जि, सर्ति (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्वरप्) क्वरप् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(इण्) इत्वरः। गमनशील। इत्वरी (स्त्री)। (नश्) नश्वरः। विनाशशील। नश्वरी (स्त्री)। (जिः) जित्वरः। जीतने में कुशल। जित्वरी (स्त्री)। (सर्ति) सृत्वरः। गतिशील। सृत्वरी (स्त्री)।

सिद्धि-(१) इत्वरः। यहां 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्वरप्' प्रत्यय है। 'क्वरप् प्रत्यय के कित् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्राप्त गुण का प्रतिषेध होता है और प्रत्यय के पित् होने से 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'इण्' धातु को 'तुक्' आगम होता है। यहां सर्वत्र स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-इत्वरी।

(२) नश्वरः। 'णश अदर्शने' (दि०प०)।

(३) जित्वरः। 'जि जये' (भ्वा०प०) पूर्ववत् तुक् आगम होता है।

(४) सृत्वरः। 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) पर्वूवत् तुक् आगम होता है।

क्वरप् (निपातनम्)-

(२) गत्वरश्च।१६४।

प०वि०-गत्वरः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-क्वरप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-गत्वर इति च क्वरप्-प्रत्ययान्तो वर्तमाने काले निपात्यते, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-गत्वरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(गत्वरः) गत्वर शब्द (च) भी (क्वरप्) क्वरप् प्रत्ययान्त (वर्तमाने) वर्तमानकाल में निपातित किया है, यदि इस की धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-गत्वरः। गमनशील।

सिद्धि-गत्वरः। यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्वरप्' प्रत्यय है। 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति' (६।४।१५) से अप्राप्त अनुनासिक-लोप, इस निपातन से किया जाता है। अनुनासिक-लोप के पश्चात् 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से धातु को 'तुक्' आगम होता है।

ऊकः–

(१) जागुरूकः।१६५।

प०वि०–जागुः ५।१ ऊकः १।१।

अन्वयः–जागुर्धातोर्वर्तमाने ऊकः, तच्छीलादिषु।

अर्थः–जागृ-धतोः परो वर्तमाने काले ऊकः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–जागरूकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(जागुः) जागृ (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (ऊकः) ऊक प्रत्यय होता है, यदि इस धातु का कर्ता (तच्दील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०–जागरूकः। जागरणशील (जागू)।

सिद्धि-जागरूकः। यहां 'जागृ निद्राक्षये' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ऊक' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'जागृ' धातु को गुण होता है।

ऊकः–

(२) यजजपदशां यङः।१६६।

प०वि०–यज-जप-दशाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) यङः ५।१।

स०–यजश्च जपश्च दश् च ते-यंजजपदशः, तेषाम्-यजजपदशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ऊक इत्यनुवर्तति।

अन्वयः–यङ्भ्यो यजजपदशिभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने ऊकः, तच्छीलादिषु।

अर्थः–यङ्प्रत्ययान्तेभ्यो यजजपदशिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले ऊकः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(यजः) यायजूकः। (जपः) जञ्जपूकः। (दश्) दन्दशूकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(यङः) यङ् प्रत्ययान्त (यजजपदशाम्) यज, जप, दश् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (ऊकः) ऊक-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(यज) यायजूकः। अति यज्ञधर्मा। (अप) जञ्जपूकः। गर्हित जपधर्मा। (दश्) दन्दशूकः। गर्हित दशनशील (डसनेवाला)।

सिद्धि-(१) यायजूकः। यज्+यङ्। यज्+यज्+य। य+यज्+य। यायज्य+ऊक। यायज्य्+ऊक। यायाज्+ऊक। यायजूक+सु। यायजूकः।

यहां प्रथम 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय होता है। 'यङ्' प्रत्यय होने पर 'सन्यङोः' (६।१।९) से 'यज्' धातु को द्वित्व और 'दीर्घोऽकितः' (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होता है। यङन्त 'यायज्य' धातु से इस सूत्र से 'ऊक' प्रत्यय करने पर 'अतो लोपः' (६।४।४८) से 'अ' का लोप और 'यस्य हलः' (६।४।४९) से 'य्' का लोप होता है।

(२) जञ्जपूकः। 'जप व्यक्तायां वाचि, मानसे च' (भ्वा०प०) धातु से प्रथम 'लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम्' (३।१।२४) से 'यङ्' प्रत्यय होता है। 'जपजभदहदशभञ्जपशां च' (७।४।८६) से 'जप' के अभ्यास को 'नुक्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) दन्दशूकः। यहां 'दशि दंशनदर्शनयोः' (चु०आ०) धातु से प्रथम 'लुपसदचर०' (३।१।२४) से 'यङ्' प्रत्यय होता है। 'जपजभ०' (७।४।८६) से 'दश' के अभ्यास को नुक् आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

रः–

(१) नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः।१६७।

प०वि०–नमि-कम्पि-स्मि-अजस-कम-हिंस-दीपः ५।१ रः १।१।

स०–नमिश्च कम्पिश्च स्मिश्च अजसश्च कमश्च हिंसश्च दीप् च एतेषां समाहारः–नमि०दीप्, तस्मात्–नमि०दीपः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः–नमि०दीपो धातोर्वर्तमाने रः, तच्छीलादिषु।

अर्थः–नमिप्रभृतिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले रः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–**(नमिः)** नम्रं काष्ठम्। **(कम्पिः)** कम्प्रा शाखा। **(स्मिः)** स्मेरं मुखम्। **(अजसः)** अजस्रं जुहोति यज्ञदत्तः। **(कमः)** कम्रा युवतिः। **(हिंसः)** हिंस्रं रक्षः। **(दीप्)** दीप्रं काष्ठम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(नमि०दीपः) नमि, कम्पि, स्मि, अजस, कम, हिंस, दीप् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (रः) र-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(नमि) नम्रं काष्ठम्। नमनशील काठ। (कम्पि) कम्प्रा शाखा। कम्पनशील शाखा। (स्मि) स्मेरं मुखम्। ईषद्-हसनशील मुख। (अजस) अजस्रं जुहोति यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त निरन्तर यज्ञ करता है। (कम) कम्रा युवतिः। कामनाशील युवति। (हिंस) हिंस्रं रक्षः। हिंसाशील राक्षस। (दीप्) दीप्रं काष्ठम्। ज्वलनशील काठ।

सिद्धि-(१) नम्रः। यहां 'णम प्रह्वत्वे शब्दे च' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'र' प्रत्यय है।

(२) कम्प्रः। 'कपि चलने' (भ्वा०आ०) 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है।

(३) स्मेरः। 'ष्मिङ् ईषद्हसने' (भ्वा०आ०) 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से धातु को गुण होता है।

(४) अजस्रः। नञ्पूर्वक 'जसु मोक्षणे' (दि०प०)।

(५) कम्रः। 'कमु कान्तौ' (भ्वा०आ०)। 'कमेर्णिङ्' (३।१।३०) से 'णिङ्' और उसका 'णेरनिटि' (६।४।५१) से लोप होता है।

(६) हिंस्रः। 'हिसि हिंसायाम्' (रुधा०प०) 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है।

(७) दीप्रः। 'दीपी दीप्तौ' (दि०आ०)।

उः-

(१) सनाशंसभिक्ष उः।१६८।

प०वि०-सन्-आशंस-भिक्षः ५।१ उः १।१।

स०-सन् च आशंसश्च भिक्ष् च एतेषां समाहारः-सनाशंसभिक्ष् तस्मात्-सनाशंसभिक्षः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-सनाशंसभिक्षो धातोर्वर्तमाने उः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-सन्नन्तेभ्यो आशंस-भिक्षिभ्यां च धातुभ्यां परो वर्तमाने काले उः-प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(सन्नन्तः) चिकीर्षुः। जिहीर्षुः। **(आशंसः)** आशंसुः। **(भिक्ष्)** भिक्षुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सनाशंसभिक्षः) सन्नत धातु और आशंस तथा भिक्ष् (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (उः) उ-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(सन्नन्तः) चिकीर्षुः। करने का इच्छुक। जिहीर्षुः। हरने का इच्छुक। (आशंस) आशंसुः। इच्छुक। (भिक्ष्) भिक्षुः। भिक्षाधर्मा।

सिद्धि-(१) चिकीर्षुः। यहां प्रथम 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय होता है। सन्नन्त 'चिकीर्ष' धातु से इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय होता है। 'चिकीर्ष' की सिद्धि 'धातोः कर्मणः०' (३।१।७) में देख लेवें।

(२) जिहीर्षुः। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

(३) आशंसुः। 'आङः शसि इच्छायाम्' (भ्वा०आ०)। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है।

(४) भिक्षुः। 'भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च' (भ्वा०आ०)।

उः (निपातनम्)–

(२) विन्दुरिच्छुः।१६६।

प०वि०-विन्दुः १।१ इच्छुः १।१।

अनु०-उरित्यनुवर्तति।

अर्थः-विन्दुः, इच्छुः-इत्येतौ शब्दौ उ-प्रत्ययान्तौ वर्तमाने काले निपात्येते, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-विन्दुः, वेदनशीलः। इच्छुः, एषणशीलः।

आर्यभाषा-अर्थ-(विन्दुरिच्छुः) विन्दु और इच्छु शब्द (उः) उ-प्रत्ययान्त (वर्तमाने) वर्तमानकाल में निपातित किये हैं, यदि इनकी धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-विन्दुः। ज्ञानशील। इच्छुः। इच्छाशील।

सिद्धि-(१) विन्दुः। यहां 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय है और 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से अप्राप्त 'नुम्' आगम इस निपातन से किया जाता है।

(२) इच्छुः। यहां 'इषु इच्छायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय है। 'इषुगमियमां छः' (७।३।७७) से अप्राप्त 'छ्' आदेश इस निपातन से किया जाता है।

उः-

(३) क्याच्छन्दसि।१७०।

प०वि०-क्यात् ५।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-उरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि क्याद् धातोर्वर्तमाने उः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-छन्दसि विषये क्य-प्रत्ययान्ताद् धातोः परो वर्तमाने काले उः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु। 'क्यात्' इत्यत्र-क्यच्-क्यष्-क्यङ्प्रत्ययानां सामान्येन ग्रहणं क्रियते।

उदा०-(क्यच्) मित्रयुः। देवयुः (ऋ० ४।१।७)। **(क्यष्)** संस्वेदयुः। **(क्यङ्)** सुम्नयुः (ऋ० ७।१।१०)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (क्यात्) क्य-प्रत्ययान्त (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (उः) उ-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो। यहां 'क्यात्' से क्यच्, क्यष्, क्यङ् प्रत्ययो का समानता से ग्रहण किया जाता है।

उदा०-(क्यच्) मित्रयुः। अपने मित्र का इच्छुक। देवयुः' (ऋ० ४।१।७) अपने देवता का इच्छुक। (क्यष्) संस्वेदयुः। संस्वेदनशील (पसीजनेवाला)। (क्यङ्) सुम्नयुः (ऋ० ७।१।१०)। सुम्न=उत्तम अभ्यासी के समान आचरणधर्मा।

सिद्धि-(१) मित्रयुः। यहां प्रथम 'मित्र' शब्द से 'सुप आत्मनः क्यच्' (३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय होता है। 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर 'क्यचि च' (७।४।३३) से प्राप्त ईत्व का 'न च्छन्दस्यपुत्रस्य' (७।४।३५) से प्रतिषेध होता है। क्यजन्त 'मित्रय' धातु से इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय है। मित्रय+उ। मित्रयु+सु। मित्रयुः। 'अतो लोपः' (६।४।४८) से 'अ' लोप होता है। देव शब्द से-देवयुः।

(२) संस्वेदयुः। यहां प्रथम 'संस्वेद' शब्द से 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' (३।१।१३) से 'क्यष् प्रत्यय होता है। क्यषन्त 'संस्वेदय' धातु से इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय है।

(३) सुम्नयुः। यहां प्रथम 'सुम्न' शब्द से 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' (३।१।११) से 'क्यङ्' प्रत्यय होता है। क्यङन्त 'सुम्नय' धातु से इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय है।

किः+किन्-

(१) आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च।१७१।

प०वि०-आत्-ऋ-गम-हन-जनः ५।१ कि-किनौ १।२ लिट् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-आच्च ऋश्च गमश्च हनश्च जन् च एतेषां समाहार:-आदृगमहनजन् तस्मात्-आदृगमहनजन: (समाहारद्वन्द्व:)।

अन्वय:-छन्दसि आदृगमहनजनो धातोर्वर्तमाने किकिनौ लिट् च तच्छीलादिषु।

अर्थ:-छन्दसि विषये आकारान्तेभ्य ऋकारान्तेभ्यो गमहनजनिभ्यश्च धातुभ्य: परो वर्तमाने काले कि-किनौ प्रत्ययौ भवत:, लिड्वच्च कार्यं भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(आत्) पपि: सोमम्, ददिर्गा: (ऋ० ६।२३।२४)। (ऋकारान्त:) मित्रावरुणौ ततुरि:। दूरे ह्यध्वा जगुरि: (ऋ० १०।१०८।१)। (गम:) जग्मिर्युवा (ऋ० ७।२०।१)। (हन:) जघ्निर्वृत्रम्। (जन:) जज्ञिर्बीजम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (आद्०जन:) आकारान्त, ऋकारान्त और गम, हन, जन् (धातो:) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (किकिनौ) कि और किन् प्रत्यय होते हैं (च) और इनको (लिट्) लिट् लकार के समान द्विर्वचन रूप कार्य होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(आकारान्त) पपि: सोमम्, ददिर्गा: (ऋ० ६।२३।२४)। सोमपानशील। गोदानधर्मा। (ऋकारान्त) मित्रावरुणौ ततुरि:। ततुरि=तरणशील। (गम) दूरे ह्यध्वा जगुरि:। जगुरि=निगरणशील। (गम) जग्मियुर्वा (ऋ० ७।२०।१)। गमनशील युवक। (हन) जघ्निर्वृत्रम्। वृत्र के हनन में कुशल। (जन्) जज्ञिर्बीजम्। बीज के उत्पादन में साधु।

सिद्धि-(१) पपि:। यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'कि' प्रत्यय है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'पा' धातु के आ का लोप होता है। 'द्विर्वचनेऽचि' (१।१।५८) से आ-लोप को स्थानिवत् मानकर 'पा' धातु को द्वित्व होता है।

(२) ददि:। 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) पूर्ववत्।

(३) ततुरि:। 'तॄ प्लवनसन्तरणयो:' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र कि प्रत्यय है। 'बहुलं छन्दसि' (७।१।१०३) से उत्व और 'उरण् रपर:' (१।१।५०) से रपरत्व होता है। 'द्विर्वचनेऽचि' (१।१।५८) से पूर्ववत् स्थानिवद्भाव मानकर 'तॄ' शब्द को द्वित्व होता है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास के ऋ को 'अ' आदेश होता है।

(४) जगुरि:। 'गॄ निगरणे' (तु०प०)।

(५) जग्मि:। 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) 'गमहनजन०' (६।४।९८) से 'गम्' धातु का उपधा-लोप होता है।

(६) जज्ञिः। 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) 'गमहनजन०' (६।४।९८) से 'जन' धातु का उपधा-लोप तथा 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) से 'जन्' के 'न्' को चवर्ग ञ् होता है।

विशेष-'कि' और 'किन्' प्रत्यय के शब्दरूप समान होते हैं। 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से 'कि' प्रत्यय आद्युदात्त है और 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से किन्-प्रत्ययान्त शब्द आद्युदात्त होता है। यह स्वरविधान में भिन्नता है।

नजिङ्—

स्वपितृषोर्नजिङ्।१७२।

प०वि०-स्वपितृषोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) नजिङ् १।१।

स०-स्वपिश्च तष् च तौ स्वपितृषौ, तयोः-स्वपितृषोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसीति निवृत्तम्।

अन्वयः-स्वपितृषिभ्यां धातुभ्यां वर्तमाने नजिङ्, तच्छीलादिषु।

अर्थः-स्वपितृषिभ्यां धातुभ्यां परो वर्तमाने काले नजिङ् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(स्वपिः) स्वप्नक्। (तृष्) तृष्णक्।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वपितृषोः) स्वपि और तृष् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (नजिङ्) नजिङ् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(स्वपि) स्वप्नक्। शयनशील। (तृष्) तृष्णक्। पिपासु।

सिद्धि-(१) स्वप्नक्। स्वप्+नज्। स्वप्नज्+सु। स्वप्नग्, स्वप्नक्।

यहां 'ञिष्वप् शये' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'नजिङ्' प्रत्यय है। स्वप्+नजिङ् 'सु' का लोप, 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'ज्' को कवर्ग 'ग्' और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'ग्' को चर् क् होता है।

(२) तृष्णक्। 'ञितृष पिपासायाम्' (दि०प०) 'वा०-ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्' (७।४।१) से णत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

आरुः—

(१) शृवन्द्योरारुः।१७३।

प०वि०-शृ-वन्द्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) आरुः १।१।

स०-शृश्च वन्दिश्च तौ शृवन्दी तयोः-शृवन्द्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-शृवन्दिभ्यां धातुभ्यां वर्तमाने आरुः, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

अर्थः-शृवन्दिभ्यां धातुभ्यां परो वर्तमाने काले आरुः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(शृः) शरारुः। (वन्दिः) वन्दारुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(शृवन्द्योः) शृ और वन्दि (धातोः) धातुओं से पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (आरुः) आरु प्रत्यय होता है, यदि न धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(शृ) शरारुः। हिंसाशील। (वन्दि) वन्दारुः। अभिवादन/स्तुति धर्मा।

सिद्धि-(१) शरारुः। यहां 'शॄ हिंसायाम्' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'आरु' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'शॄ' धातु को गुण होता है।

(२) वन्दारुः। यहां 'वदि अभिवादनस्तुत्योः' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'आरु' प्रत्यय है। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है।

क्रुक्+क्लुकन्–

(१) भियः क्रुक्क्लुकनौ।१७४।

प०वि०-भियः ५।१ क्रुक्-क्लुकनौ १।२।

स०-क्रुश्च क्लुकन् च तौ-क्रुक्क्लकनौ, (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-भियोर्धातोर्वर्तमाने क्रुक्-क्लुकनौ, तच्छीलादिषु।

अर्थः-भी-धातोः परो वर्तमाने काले क्रुक्लुकनौ प्रत्ययौ भवतः, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(क्रुक्) भीरुः (क्लुकन्) भीलुकः।

आर्यभाषा-अर्थः-(भियः) भी (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्रुक्लुकनौ) क्रु और क्लुकन् प्रत्यय होते है, यदि इस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(क्रुक) भीरुः। (क्लुकन्) भीलुकः। भयशील (डरपोक)।

सिद्धि-भीरुः। यहां 'ञिभी भये' (जु०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-भीलुकः।

वरच्–

(१) स्थेशभासपिसकसो वरच्।१७५।

प०वि०–स्था–ईश–भास–पिस–कसः ५।१ वरच् १।१।

स०–स्थाश्च ईशश्च भासश्च पिसश्च कस् च एतेषां समाहारः–स्थेशभासपिसकस्, तस्मात्–स्थेशभासपिसकसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः–स्थेशभासपिसकसो धातोर्वर्तमाने वरच् तच्छीलादिषु।

अर्थः–स्थेशभासपिसकसिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले वरच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(स्थाः) स्थावरः। (ईशः) ईश्वरः। (भास्) भास्वरः। (पिसः) पेस्वरः। (कस्) विकस्वरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्थेशभासपिसकसः) स्था, ईश, भास, पिस, कस् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (वरच्) वरच् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(स्था) स्थावरः। स्थितिशील। (ईश) ईश्वरः। ऐश्वर्यशील। (भास) भास्वरः। दीप्तिशील। (पिस) पेस्वरः। गतिशील। (कस्) विकस्वरः। विकासशील।

सिद्धि-(१) स्थावरः। यहां 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'वरच्' प्रत्यय है।

(२) ईश्वरः। 'ईश ऐश्वर्ये' (अदा०आ०)।

(३) भास्वरः। 'भासृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०)।

(४) पेस्वरः। 'पिसृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(५) विकस्वरः। वि उपसर्गपूर्वक 'कस गतौ' (भ्वा०प०)।

वरच्–

(२) यश्च यङः।१७६।

प०वि०–यः ५।१ च अव्ययपदम्, यङः ५।१।

अनु०–वरच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यङो यश्च धातोर्वर्तमाने वरच् तच्छीलादिषु।

अर्थः–यङन्ताद् या-धातोरपि परो वर्तमाने काले वरच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–यायावरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(यङः)-यङ् प्रत्ययान्त (यः) या धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (वरच्) वरच् प्रत्यय होता है, यदि इस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-यायावरः। अति प्राप्तिशील (घुमक्कड़)।

सिद्धि-यायावरः। यहां प्रथम 'या प्रापणे' (अदा०प०) धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय होता है। यङन्त 'यायाय' धातु से इस सूत्र से 'वरच्' प्रत्यय है। 'अतो लोपः' (६।४।४८) से 'अ' का लोप और 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'य्' का लोप होता है।

क्विप्–

(१) भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप्।१७७।

प०वि०- भ्राज-भास-धुर्वि-द्युत-ऊर्जि-पॄ-जु-ग्रावस्तुवः ५।१ क्विप् १।१।

स०-भ्राजश्च भासश्च धुर्विश्च द्युतश्च ऊर्जिश्च पॄश्च जुश्च ग्रावस्तुश्च एतेषां समाहारः-भ्राज०ग्रावस्तु, तस्मात्-भ्राज०ग्रावस्तुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-भ्राज०स्तुवो धातोर्वर्तमाने क्विप्, तच्छीलादिषु।

अर्थः-भ्राजादिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले क्विप् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(भ्राजः) विभ्राट्। (भासः) भाः। (धुर्वि) धूः। (द्युतः) विद्युत्। (ऊर्जिः) ऊर्क्। (पॄः) पूः। (जुः) जूः। (ग्रावस्तुः) ग्रावस्तुत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(भ्राज०ग्रावस्तुत्) भ्राज, भास, धुर्वि, द्युत, ऊर्जि, पॄ, जु, ग्रावस्तु (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(भ्राज) विभ्राट्। दीप्तिशील। (भास) भाः। दीप्तिशील। (धुर्वि) धूः। हिंसाशील। (ऊर्जि) ऊर्क्। बल एवं प्राणशील। (पॄ) पूः। पालन-पूरणशील। (जु) जूः। वेगशील। (ग्रावस्तु) ग्रावस्तुत्। पाषाण स्तुतिधर्मा (मूर्तिपूजक)।

सिद्धि-(१) विभ्राट्। यहां 'भ्राजृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय। वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से 'भ्राज्' के 'ज्' को 'ष्' और 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'ष्' को जश् ड् तथा 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ड् को चर् ट् होता है।

(२) भाः। 'भासृ दीप्तौ' 'क्विप्' प्रत्यय का पूर्ववत् सर्वहारी लोप होकर 'भास्' के 'स्' को 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से रुत्व और रु को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से विसर्जनीय आदेश होता है।

(३) धूः। 'धुर्वी हिंसार्थः' (भ्वा०प०) यहां 'राल्लोपः' (६।४।२१) से धातु के व् का लोप और 'र्वोरुपधाया: दीर्घ इकः' (८।२।७६) से इक् (उ) को दीर्घ होता है।

(४) विद्युत्। वि-उपसर्गपूर्वक 'द्युत दीप्तौ' (भ्वा०आ०)।

(५) ऊर्क्। 'ऊर्ज बलप्राणनयोः' (चु०प०) 'चोः कुः' (८।२।३०) से ज् को कुत्व ग् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ग् को चर् क् होता है।

(६) पूः। 'पॄ पालनपूरणयोः' (क्र्या०प०) 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से ॠ के स्थान में उ-आदेश, 'उरण् रपरः' (१।१।५०) से रपरत्व और 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' (८।२।७६) से दीर्घ होता है।

(७) जूः। 'जु वेगे' सौत्र धातु को निपातन से दीर्घ होता है।

(८) ग्रावस्तुत्। यहां 'ग्राव' शब्द उपपद होने पर 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'तुक्' आगम होता है।

क्विप्—

(२) अन्येभ्योऽपि दृश्यते।१७८।

प०वि०—अन्येभ्यः ५।३ अपि अव्ययपदम्, दृश्यते क्रियापदम्।

अनु०—क्विप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः—अन्येभ्योऽपि धातुभ्यो वर्तमाने क्विप् दृश्यते तच्छीलादिषु।

अर्थः—अन्येभ्योऽपि धातुभ्यः परो वर्तमाने काले क्विप् प्रत्ययो दृश्यते, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०—(भिद्) भित्। (छिद्) छित्। (युज्) युक् इत्यादिकम्।

आर्यभाषा-अर्थ—(अन्येभ्यः) अन्य=पूर्वोक्त से भिन्न (धातोः) धातुओं से (अपि) भी परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्विप्) क्विप् प्रत्यय (दृश्यते) देखा जाता है।

उदा०—(भिद्) भित्। भेदन में कुशल। (छिद्) छित्। छेदन में कुशल। (युज्) युक्। योगधर्मा।

सिद्धि—(१) भित्। यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' का 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से सर्वहारी लोप होता है। भिद्+सु। 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप होता है। 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'भिद्' के 'द्' को चर् 'त्' होता है।

(२) छित्। 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०) पूर्ववत्।

(३) युक्। 'युज समाधौ' (दि०आ०)। 'चो: कु:' (८।२।३०) से युज् के ज् को कुत्व ग् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ग् को चर् क् होता है।

इति तच्छीलादिकर्तृप्रकरणम्।

क्विप्–

(१) भुवः संज्ञान्तरयोः।१७६।

प०वि०–भुव: ५।१ संज्ञा-अन्तरयो: ७।२।

स०–संज्ञा च अन्तरश्च तौ संज्ञान्तरौ, तयो:-संज्ञाऽन्तरयो: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–क्विप् इत्यनुवतति। तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु इति निवृत्तम्।

अन्वय:–भुवो धातोर्वर्तमाने क्विप् संज्ञान्तरयो:।

अर्थ:–भू-धातो: परो वर्तमाने काले क्विप् प्रत्ययो भवति, संज्ञायाम् अन्तरे च गम्यमाने।

उदा०–(संज्ञा) विभूर्नाम कश्चित्। (अन्तर:) प्रतिभू:। धनिक-अधमर्णयोरन्तरे यस्तिष्ठति स प्रतिभूरित्युच्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(भुव:) भू (धातो:) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है, यदि वहां (संज्ञान्तरयो:) संज्ञा और अन्तर=मध्यस्थ अर्थ प्रकट हो।

उदा०-(संज्ञा) विभूर्नाम कश्चित्। विभू नामक कोई पुरुष। (अन्तर) प्रतिभू:। धनिक और कर्जदार का मध्यस्थ पुरुष (ज़ामिन/गारंटर)।

सिद्धि-(१) विभू:। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र क्विप्-प्रत्यय है। वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है।

(२) प्रतिभू:। प्रति उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०)।

डु:–

(१) विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम्।१८०।

प०वि०–वि-प्र-संभ्य: ५।३ डु १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देश:) असंज्ञायाम् ७।१।

स०–विश्च प्रश्च सम् च ते-विप्रसम:, तेभ्य:-विप्रसंभ्य: (इतरेतर-योगद्वन्द्व:)। न संज्ञा इति असंज्ञा, तस्याम्-असंज्ञायाम्, (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०-भुव इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-विप्रसम्भ्यो भुवो धातोर्वर्तमाने डुः, असंज्ञायाम्।

अर्थ-वि-प्र-सम्-उपसर्गपूर्वाद् भू-धातोः परो वर्तमाने काले डुः प्रत्ययो भवति, असंज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(**वि**) विभुः। (**प्र**) प्रभुः। (**सम्**) सम्भुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(विप्रसंभ्यः) वि, प्र, सम् उपसर्गपूर्वक (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (डु) डु प्रत्यय होता है, (असंज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ प्रकट न हो।

उदा०-(वि) विभुः। सर्वव्यापक। (प्र) प्रभुः। स्वामी। (सम्) सम्भुः। जनक।

सिद्धि-(१) विभुः। वि+भू+डु। वि+भ्+उ। विभु+सु। विभुः।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'डु' प्रत्यय है। 'डित्यभ्यासस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से 'भू' धातु के टि-भाग (ऊ) का लोप होता है।

(२) प्रभुः। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'भू' धातु से पूर्ववत्।

(३) सम्भुः। 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'भू' धातु से पूर्ववत्।

ष्ट्रन्-

(१) धः कर्मणि ष्ट्रन्।१८१।

प०वि०-धः ५।१ कर्मणि ७।१ ष्ट्रन् १।१।

अन्वयः-कर्मणि धो धातोर्वर्तमाने ष्ट्रन्।

अर्थः-कर्मणि कारके विद्यमानाद् धा-धातोः परो वर्तमाने काले ष्ट्रन् प्रत्ययो भवति। अत्र 'धा' इत्यनेन **'धेट् पाने'** (भ्वा०प०) **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) इति द्वयोरपि ग्रहणं क्रियते।

उदा०-(**धेट्**) धयन्ति तामिति धात्री स्तनदायिनी। (**डुधाञ्**) दधति तां भैषज्यार्थमिति धात्री, आमलकी।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक में विद्यमान (धः) धा (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (ष्ट्रन्) ष्ट्रन् प्रत्यय होता है। यहां 'धा' कहने से 'धेट् पाने' (भ्वा०प०) और 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) दोनों धातुओं का समानता से ग्रहण किया जाता है।

उदा०-(धेट्) धयन्ति तामिति धात्री। स्तनदायिनी (धाई)। (डुधाञ्) दधति तामिति धात्री। आमलकी (आंवला)।

सिद्धि-(१) धात्री। धा+ष्ट्रन्। धा+त्र। धात्र+ङीष्। धात्र+ई। धात्री+सु। धात्री। यहां 'धेट् पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ष् का लोप होने पर प्रत्यय का टुत्व भी नहीं रहता है। प्रत्यय के षित् होने से 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय होता है।

(२) धात्री। 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) पूर्ववत्।

ष्ट्रन्–

(२) दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे।१८२।

प०वि०– दाप्-नी-शस-यु-युज-स्तु-तुद-सि-सिच-मिह-पत-दश-नहः ५।१ करणे ७।१।

स०–दाप् च नीश्च शसश्च युश्च युजश्च स्तुश्च तुदश्च सिश्च सिचश्च मिहश्च पतश्च दशश्च नह् च एतेषां समाहारः-दाम्०नह्, तस्मात्-दाम्०नहः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–ष्ट्रन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–दाम्०नहो धातोर्वर्तमाने ष्ट्रन्।

अर्थः–करणे कारके विद्यमानेभ्यो दाबादिभ्यो धातुभ्यो परो वर्तमाने काले ष्ट्रन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(दाप्) दाति येनेति दात्रम्। **(नी)** नयति येनेति नेत्रम्। **(शस)** शसति येनेति शस्त्रम्। **(यु)** यौति येनेति योत्रम्। **(युज)** युनक्ति येनेति योक्त्रम्। **(स्तु)** स्तौति येनेति स्तोत्रम्। **(तुद)** तुदति येनेति तोत्रम्। **(सि)** सिनाति येनेति सेत्रम्। **(सिच)** सिञ्चति येनेति सेक्त्रम्। **(मिह)** मेहति येनेति मेढ्रम्। **(पत)** पतति येनेति पत्त्रम्। **(दश)** दंशति ययेति दंष्ट्रा। **(नह)** नह्यति ययेति नद्ध्री।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण कारक में विद्यमान (दाम्०नहः) दाप्, नी, शस, यु, युज, स्तु, तुद, सि, सिच, मिह, पत, दश, नह् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (ष्ट्रन्) ष्ट्रन् प्रत्यय होता है।

उदा०-(दाप्) दाति येनेति दात्रम्। काटने का साधन (दाती)। (नी) नयति येनेति नेत्रम्। देशान्तर में ले जाने का साधन ([illegible])। (शस) शसति येनेति शस्त्रम्।

शत्रु की हिंसा का साधन (शस्त्र)। (यु) यौति येनेति योत्रम्। द्रव्य को मिश्रित करने का साधन (पलटा आदि)। (युज) युनक्ति येनेति योक्त्रम्। बैल आदि को जोड़ने का साधन (जोत)। 'आबन्धो योत्रं योक्त्र'मित्यमरः। (स्तु) स्तौति येनेति स्तोत्रम्। देवता आदि की स्तुति का साधन (शिवस्तोत्र आदि)। (तुद) तुदति येनेति तोत्रम्। व्यथा का साधन (बैल आदि के ताड़नादि का साधन सांटा पैनी आदि)। 'प्राजनं तोदनं तोत्र'मित्यमरः। (सि) सिनाति येनेति सेत्रम्। बन्धन का साधन (रस्सी आदि)। (सिच) सिञ्चति येनेति सेक्त्रम्। भूमि आदि को सींचने का साधन (मशक आदि)। (मिह) मेहति येनेति मेढ्रम्। गर्भ में वीर्य-सेचन का साधन (पुरुष का लिङ्ग)। (पत) पतति येनेति पत्रम्। देशान्तर में गमन का साधन (वाहनमात्र)। (दश) दंशति ययेति दंष्ट्रा। खाद्यपदार्थ को काटने का साधन (दाढ)। (नह) नह्यति ययेति नद्ध्री। बन्धन का साधन (चमड़े की रस्सी)। जनभाषा में 'बादी' अथवा 'जोत' कहते हैं। त्रीणि चर्मरज्जोः- 'नध्री वध्री वरत्रा स्या'दित्यमरः।

सिद्धि-(१) दात्रम्। यहां 'दाप् लवने' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है।

(२) नेत्रम्। 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०)। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'नी' धातु को गुण होता है।

(३) 'शस हिंसायाम्' (भ्वा०प०)।

(४) योत्रम्। 'यु मिश्रणे' (अदा०प०) पूर्ववत् गुण होता है।

(५) योक्त्रम्। 'युजिर् योगे' (रुधा०प०) 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८५) से 'युज्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से युज् के 'ज्' को कुत्व ग् और 'खरि च' (८।४।५४) से ग् को चर् क् होता है।

(६) स्तोत्रम्। 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) पूर्ववत् गुण होता हैं।

(७) तोत्रम्। 'तुद व्यथने' (तु०प०) पूर्ववत् गुण होता है।

(८) सेत्रम्। 'षिञ् बन्धने' (क्र्या०उ०)।

(९) सेक्त्रम्। 'षिचिर् क्षरणे' (रुधा०उ०)।

(१०) मेढ्रम्। 'मिह सेचने' (भ्वा०प०)। मिह्+ष्ट्रन्। मिह+त्र। मेढ्+ढ्र। मे०+ढ्र। मेढ्र+सु। मेढ्रम्। 'हो ढः' (८।२।३१) से धातु के ह् को ढ् आदेश, 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से 'त्र' के त् को ध् आदेश, 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) प्रत्यय के ध् को टुत्व ढ् होता है। 'ढो ढे लोपः' (८।३।१३) से पूर्व ढ् का लोप होता है।

(११) पत्रम्। 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(१२) दंष्ट्रा। 'दंश दशने' (भ्वा०प०)। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से दंश् के श् को ष् और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से 'त्र' प्रत्यय के त् को ट् होता है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में टाप् प्रत्यय होता है।

(१३) नद्धी। 'णह बन्धने' (दि०उ०) 'नहो धः' (८।२।३४) 'नह्' धातु के ह् को ध् आदेश, 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से 'त्र' प्रत्यय के त् को 'ध्' आदेश और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से पूर्व ध् को जश् द् आदेश होता है। स्त्रीलिङ्ग में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय है।

ष्ट्रन्–

(३) हलसूकरयोः पुवः।१८३।

प०वि०–हल-सूकरयोः ७।२ पुवः ५।१।

स०–हलश्च सूकरश्च तौ–हलसूकरौ, तयोः–हलसूकरयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ष्ट्रन्, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–करणे पुवो धातोर्वर्तमाने ष्ट्रन् हलसूकरयोः।

अर्थः–करणे कारके विद्यमानात् पू-धातोः परो वर्तमाने काले ष्ट्रन् प्रत्ययो भवति, तच्च करणं हलसूकरयोरवयवो भवति।

उदा०–पवते/पुनाति वा येन तत्–पोत्रम्। हलस्य पोत्रम्। सूकरस्य पोत्रम्। मुखमित्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण कारक में विद्यमान (पुवः) पू (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (ष्ट्रन्) ष्ट्रन् प्रत्यय होता है, यदि वह करण (हलसूकरयोः) हल और सूअर का अङ्ग हो।

उदा०–पवते/पुनाति वा येन तत् पोत्रम्। हलस्य पोत्रम्। भूमि को शुद्ध करने का साधन, हल का मुख=फाल। सूकरस्य पोत्रम्। मल को शुद्ध करने का साधन सूअर के मुख का अग्रभाग। 'मुखाग्रे क्रोडहलयोः पोत्र'मित्यमरः।

सिद्धि-पोत्रम्। यहां 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) और 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'पू' धातु को गुण होता है। यहां 'पू' कहने से उपर्युक्त दोनों धातुओं का समानता से ग्रहण किया जाता है।

इत्रः–

(१) अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः।१८४।

प०वि०–अर्ति-लू-धू-सू-खन-सह-चरः ५।१ इत्रः १।१।

स०–अर्तिश्च लूश्च धूश्च सूश्च खनश्च सहश्च चर् च एतेषां समाहारः–अर्ति०चर, तस्मात्–अर्ति०चरः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-करण इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-करणेऽर्ति०चरो धातोर्वर्तमाने इत्रः।

अर्थः-करणे कारके विद्यमानेभ्योऽर्तिप्रभृतिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले इत्रः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**अर्तिः**) अरित्रम्। (**लूः**) लवित्रम्। (**धूः**) धवित्रम्। (**सूः**) सवित्रम्। (**खनः**) खनित्रम्। (**सहः**) सहित्रम्। (**चर्**) चरित्रम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण कारक में विद्यमान (अर्ति०चरः) अर्ति=ऋ, लू, धू, सू, खन, सह, चर् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इत्रः) इत्र प्रत्यय होता है।

उदा०-(अर्ति=ऋ) इयर्ति येनेति अरित्रम्। देशान्तर प्राप्ति का साधन, नौका का चप्पू। (लू) लुनाति येनेति लवित्रम्। काटने का साधन, चाकू। (धू) धुवति येनेति धवित्रम्। विकम्पन का साधन, पंखा। (सू) सुवति येनेति सवित्रम्। प्रगति का साधन, वाहन आदि। (खन) खनति येनेति खनित्रम्। खोदने का साधन, कुदाल आदि। 'खनित्रमवदारणे' इत्यमरः। (सह) सहते येन तत् सहित्रम्। लोष्ठ आदि के मर्षण का साधन, सुहागा आदि। (चर्) चरति येनेति चरित्रम्। चलने का साधन, चरण।

सिद्धि-(१) अरित्रम्। यहां 'ऋ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'इत्र' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'ऋ' धातु को गुण होता है।

(२) लवित्रम्। 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०)।

(३) धवित्रम्। 'धू विधूनने' (तु०प०)।

(४) सवित्रम्। 'षू प्रेरणे' (तु०प०)।

(५) खनित्रम्। 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०)।

(६) सहित्रम्। 'षह मर्षणे' (भ्वा०आ०)।

(७) चरित्रम्। 'चर गतौ' (भ्वा०प०)।

इत्रः-

(२) पुवः संज्ञायाम।१८५।

प०वि०-पुवः ५।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-करणे, इत्र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पुवो धातोर्वर्तमाने इत्रः संज्ञायाम्।

अर्थः-करणे कारके विद्यमानात् पू-धातोः परो वर्तमाने काले इत्रः प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-पवित्रं दर्भः। पवित्रं बर्हिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण कारक में विद्यमान (पुवः) पू (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इत्रः) इत्र प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ प्रकट हो।

उदा०-पवित्रं दर्भः। यज्ञीय विशेष दर्भ (कुशा) जो अंगूठे में पहना जाता है। पवित्रं बर्हिः। यज्ञीय कुशासन।

सिद्धि-पवित्रम्। यहां 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) और 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से संज्ञाविशेष में 'इत्र' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'पू' धातु को गुण होता है।

इत्रः-

(३) कर्तरि चर्षिदेवतयोः।१८६।

प०वि०-कर्तरि ७।१ च अव्ययपदम्, ऋषि-देवतयोः ७।२।

स०-ऋषिश्च देवता च ते-ऋषिदेवते, तयोः-ऋषिदेवतयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-करणे, इत्रः, पुव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणे कर्तरि च पुवो धातोर्वर्तमाने इत्रः, ऋषिदेवतयोः।

अर्थः-करणे कर्तरि च कारके विद्यमानात् पू-धातोः परो वर्तमाने काले इत्रः प्रत्ययो भवति, यथासंख्यमृषौ देवतायां चाभिधेयायाम्। ऋषौ करणे देवतायां च कर्तरि प्रत्ययो विधीयते।

उदा०-(ऋषिः) पूयते येनेति पवित्रः। **पवित्रोऽयमृषिः। (देवता)** पुनातीति पवित्रः। **अग्निः पवित्रं स मा पुनातु।**

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण (च) और (कर्तरि) कर्ता कारक में विद्यमान (पुवः) पू (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इत्रः) इत्र प्रत्यय होता है, (ऋषिदेवतयोः) यदि यथासंख्य ऋषि और देवता अर्थ वाच्य हो। ऋषि अर्थ में करण में और देवता अर्थ में कर्ता में प्रत्यय किया जाता है।

उदा०-(ऋषि) पूयते येनेति पवित्रः। पवित्रोऽयमृषिः। यह ऋषि=मन्त्र चित्त को पवित्र करने का साधन है। (देवता) पुनातीति पवित्रः। अग्निः पवित्रं स मा पुनातु। अग्नि देवता पवित्र है, वह मुझे पवित्र करे। अग्नि=सर्वपूज्य परमेश्वर।

सिद्धि-पवित्रः। पूर्ववत्।

क्तः-

(१) ञीतः क्तः।१८७।

प०वि०-ञीत: ५।१ क्तः १।१।

स०-ञि इद् यस्य स:-ञीत्, तस्मात्-ञीत: (बहुव्रीहि:)।

अन्वय:-ञीतो धातोर्वर्तमाने क्तः।

अर्थ:-ञि-इतो धातोः परो वर्तमाने काले क्तः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ञिमिदा) मिन्नः। (ञिक्ष्विदा) क्ष्विण्ण:। (ञिधृषा) धृष्टः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ञीत:) ञि इत् वाले (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्तः) क्त प्रत्यय होता है।

उदा०-(ञिमिदा) मिन्नः। स्नेह करनेवाला। (ञिक्ष्विदा) क्ष्विण्णः। स्नेह अथवा मुक्त करनेवाला। (ञिधृष्टः) धृष्टः। प्रगल्भ=चतुर।

सिद्धि-(१) मिन्नः। मिद्+क्त। मिद्+त। मिन्+न। मिन्न+सु। मिन्नः।

यहां 'ञिमिदा स्नेहने' (भ्वा०आ०) इस 'ञीत्' धातु से 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' (८।२।४२) से 'क्त' के 'त्' को 'न्' आदेश और पूर्ववर्ती 'मिद्' धातु के 'द्' को भी 'न्' आदेश होता है।

(२) क्ष्विण्णः। 'ञिक्ष्विदा स्नेहनमोचनयोः' (भ्वा०आ०)। पूर्ववत् 'त्' और 'द्' को 'द्' आदेश तथा 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।४।२) से 'णत्व' होता है।

(३) धृष्टः। 'ञिधृषा प्रागल्भ्ये' (स्वा०प०)। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से 'क्त' प्रत्यय को टुत्व होता है।

क्तः-

(२) मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च।१८८।

प०वि०-मति-बुद्धि-पूजार्थेभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-मतिश्च बुद्धिश्च पूजा च ता:-मतिबुद्धिपूजा:, अर्थश्च अर्थश्च अर्थश्च ते-अर्था:, मतिबुद्धिपूजा अर्था येषां ते-मतिबुद्धिपूजार्था:, तेभ्यः-मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः।

अनु०-क्त इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यो धातुभ्यश्च वर्तमाने क्तः।

अर्थः-मत्यर्थेभ्यो बुद्ध्यर्थेभ्यः पूजार्थेभ्यश्च धातुभ्यः परो वर्तमाने काले क्तः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(मतिः=इच्छा) राज्ञां मतो देवदत्तः। राज्ञामिष्टो देवदत्तः। (बुद्धिः=ज्ञानम्) राज्ञां बुद्धो यज्ञदत्तः। राज्ञां ज्ञातो यज्ञदत्तः। (पूजा=सत्कारः) राज्ञां पूजितो ब्रह्मदत्तः। राज्ञामर्चितो ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः) मति=इच्छा, बुद्धि=ज्ञान और पूजा=सत्कार अर्थवाली (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्तः) क्त प्रत्यय होता है।

उदा०-(मति) राज्ञां मतो देवदत्तः। राज्ञामिष्टो देवदत्तः। देवदत्त राजाओं के द्वारा अभिमत/अभीष्ट है। (बुद्धि) राज्ञां बुद्धो यज्ञदत्तः। राज्ञां ज्ञातो यज्ञदत्तः। राजा यज्ञदत्त को जानते हैं। (पूजा) राज्ञां पूजितो ब्रह्मदत्तः। राज्ञामर्चितो ब्रह्मदत्तः। ब्रह्मदत्त राजाओं के द्वारा पूजित है।

सिद्धि-(१) मतः। यहां 'मनु अवबोधने' (तु०आ०) धातु से इस सूत्र से क्त प्रत्यय है। 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से 'अनुनासिक' का लोप होता है।

(२) इष्टः। 'इषु इच्छायाम्' (भ्वा०प०)। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से 'क्त' प्रत्यय को टुत्व होता है।

(३) बुद्धः। 'बुध अवगमने' (भ्वा०प०)। 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से 'क्त' प्रत्यय को 'ध' आदेश और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से बुध् के ध् जश् द् होता है।

(४) ज्ञातः। 'ज्ञा अवबोधने' (क्र्या०प०)।

(५) पूजितः। 'पूज पूजायाम्' (चु०प०)।

(६) अर्चितः। 'अर्च पूजायाम्' (भ्वा०प०)।

विशेष-(१) 'राज्ञां मतः' इत्यादि प्रयोगों में 'क्तस्य च वर्तमाने' (२।३।६७) से कर्ता में षष्ठी विभक्ति होती है। 'क्तेन च पूजायाम्' (२।२।१२) से षष्ठी समास का प्रतिषेध होता है।

(२) 'वर्तमाने' पद की अनुवृत्ति 'उणादयो बहुलम्' (३।३।१) तक है।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।

तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः

वर्तमानकालप्रत्ययप्रकरणम्

उणादयः प्रत्ययाः–

(१) उणादयो बहुलम्।१।

प०वि०–उणादयः १।३ बहुलम् १।१।

स०–उण् आदिर्येषां ते–उणादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–पुवः संज्ञायाम् (३।२।१८५) इत्यतः संज्ञायामिति मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तति। 'वर्तमाने' इति चानुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्वर्तमाने बहुलम् उणादयः संज्ञायाम्।

अर्थः–धातुभ्यो वर्तमाने काले उणादयः प्रत्यया बहुलं भवन्ति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–कारुः। वायुः। पायुः। जायुः। मायुः स्वादुः। साधुः। आशुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (उणादयः) उण् आदि प्रत्यय (बहुलम्) अधिकांश होते हैं (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।

उदा०-कारुः। कर्ता वा शिल्पी। वायुः। पवन। पायुः। गुदा। जायुः। शूर। मायुः। पित्त। स्वादुः। भोज्य अन्न। साधुः। सज्जन। आशुः। अश्व।

सिद्धि-(१) कारुः। कृ+उण्। कार्+उ। कारु+सु। कारुः।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्' (उणादि० १।१) से 'उण्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है।

(२) वायुः। वा+उण्। वा+युक्+उ। वायु+सु। वायुः।

यहां 'वा गतिगन्धनयोः' (अदा०प०)। 'आतो युक् चिण् कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।

(३) पायुः। 'पा रक्षणे' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(४) जायुः। जि+उण्। जै+उ। जायु+सु। जायुः।

यहां 'जि जये' (भ्वा०प०) पूर्ववत् वृद्धि होती है।

(५) मायुः। 'डुमिञ् प्रक्षेपणे' (स्वा०उ०) पूर्ववत् वृद्धि होती है।

(६) स्वादुः। 'स्वद आस्वादने' (भ्वा०आ०) 'अत उपधायाः' से स्वद् धातु को उपधावृद्धि होती है।

(७) साधुः। 'साध संसिद्धौ' (स्वा०प०)।

(८) आशुः। 'अशूङ् व्याप्तौ' (स्वा०आ०)।

विशेष-उणादि-उणादि प्रत्ययों की विस्तृत व्याख्या के लिये पाणिनीय 'उणादिकोष' का अध्ययन करें।

भूतेऽपि दर्शनम्–

(२) भूतेऽपि दृश्यन्ते।२।

प०वि०-भूते ७।१ अपि अव्ययपदम्, दृश्यन्ते क्रियापदम्।

अनु०-उणादय इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उणादयो भूतेऽपि दृश्यन्ते।

अर्थः-उणादयः प्रत्यया भूते कालेऽपि दृश्यन्ते।

उदा०-वृत्तमिति वर्त्म। चरितं तदिति चर्म। भसितं तदिति भस्म।

आर्यभाषा-अर्थ-(उणादयः) उण् आदि प्रत्यय (भूते) भूतकाल में (अपि) भी (दृश्यन्ते) देखे जाते हैं।

उदा०-वृत्तमिति वर्त्म। जिसे बनाया गया है, मार्ग। चरितं तदिति चर्म। जिसे पशु आदि के शरीर से उतारा गया है, चमड़ा। भसितं तदिति भस्म। जिसे जलाया गया है, राख।

सिद्धि-(१) वर्त्म। वृत्+मनिन्। वर्त्+मन्। वर्त्मन्+सु। वर्त्म।

यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से भूतकाल में 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' (३।२।७५) से उणादि 'मनिन्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'वृत्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।

(२) चर्म। 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(३) भस्म। 'भस भर्त्सनदीप्त्योः' (जु०प०) पूर्ववत्।

इति वर्तमानकालप्रत्ययप्रकरणम्।

भविष्यत्कालप्रत्ययप्रकरणम्

गमी-आदयः—

(१) भविष्यति गम्यादयः।३।

प०वि०-भविष्यति ७।१ गमी-आदयः १।३।

स०-गमी आदिर्येषां ते गम्यादयः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-गम्यादयः शब्दा भविष्यति काले।

अर्थः-गम्यादयः शब्दा भविष्यति काले साधवो भवन्ति।

उदा०-ग्रामं गमी। आगामी। प्रस्थायी। प्रतिरोधी। प्रतिबोधी। प्रतियोधी। प्रतियोगी। प्रतियायी। आयायी। भावी।

आर्यभाषा-अर्थ-(गम्यादयः) गमी आदि शब्दों को (भविष्यति) भविष्यत्काल अर्थ में साधु=ठीक समझना चाहिये।

उदा०-ग्रामं गमी। गांव जानेवाला। आयामी। आनेवाला। प्रस्थायी। प्रस्थान करनेवाला। प्रतिरोधी। रोकनेवाला। प्रतिबोधी। समझनेवाला। प्रतियोधी। मुकाबले में लड़नेवाला। प्रतियोगी। मुकाबला करनेवाला। प्रतियायी। वापिस जानेवाला। आयायी। आनेवाला। भावी। भविष्यत् में होनेवाला।

सिद्धि-(१) गमी। गम्+इनि। गम्+इन्। गमिन्+सु। गमीन्+सु। गमीन्+०। गमी।

यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से भविष्यत्काल में 'गमेरिनिः' (उ० ४।६) से इनि प्रत्यय है। 'सौ च' (६।४।१३) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।

(२) आगामी। यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'इनि' प्रत्यय है। 'आङि णित्' (उ० ४।७) से 'इनि' प्रत्यय णिद्वत् होता है। अतः 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से गम् धातु को उपधावृद्धि होती है।

(३) प्रस्थायी। यहां प्र उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' (३।२।७८) से णिनि प्रत्यय है। 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।

(४) प्रतिरोधी। प्रति उपसर्गपूर्वक 'रुधिर् आवरणे' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(५) प्रतिबोधी। प्रति उपसर्गपूर्वक 'बुध अवगमने' (भ्वा०प०)।

(६) प्रतियोधी। प्रति उपसर्गपूर्वक 'युध सम्प्रहारे' (दि०आ०)।

(७) प्रतियोगी। प्रति उपसर्गपूर्वक 'युजिर् योगे' (रुधा०प०)।

(८) प्रतियामी। प्रति उपसर्गपूर्वक 'या प्रापणे' (अदा०प०)।

(९) आयामी। आङ् उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'या' धातु।

(१०) भावी। 'भू सत्तायाम्' धातु से 'भुवश्च' (उ० ४।८) 'इनि' प्रत्यय और 'इनि' प्रत्यय के णिद्वत् होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'भू' धातु को वृद्धि होती है।

लट्–

(२) यावत्पुरानिपातयोर्लट्।४।

प०वि०-यावत्-पुरानिपातयोः ७।२ लट् १।१।

स०-यावच्च पुरा च तौ यावत्पुरौ, यावत्पुरौ च तौ निपाताविति-यावत्पुरानिपातौ, तयोः-यावत्पुरानिपातयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-कर्मधारयः)।

अनु०-भविष्यति इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यावत्पुरानिपातयोर्धातोर्भविष्यति लट्।

अर्थः-यावत्पुरानिपातयोरुपपदयोर्धातोः परो भविष्यति काले लट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(यावत्) यावद् भुङ्क्ते देवदत्तः। (पुरा) पुरा भुङ्क्ते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(यावत्पुरानिपातयोः) यावत् और पुरा निपात शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में (लट्) लट् प्रत्यय होता है।

उदा०-(यावत्) यावद् भुङ्क्ते देवदत्तः। देवदत्त जब तक खायेगा। (पुरा) पुरा भुङ्क्ते यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त पहले खायेगा।

सिद्धि-(१) भुङ्क्ते। भुज्+लट्। भुज्+त्। भु श्नम् ज्+ते। भुनज्+ते। भु ं ज्+ते। भ ं ग्+ते। भु ं क्+ते। भुङ्क्+ते। भुङ्क्ते।

यहां भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल में लट् प्रत्यय है। 'भुजोऽनवने' (१।१।६६) से 'भुज्' धातु से खाने अर्थ में आत्मनेपद होता है। 'रुधादिभ्यः श्नम्' (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण प्रत्यय, 'नश्चापदान्तस्य झलि'

(८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण 'ङ्' होता है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'भुज्' के 'ज्' को कुत्व 'ग्' और 'खरि च' (८।४।५४) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है।

लट्+लृट्+लुट्–

(३) विभाषा कदाकर्ह्योः।५।

प०वि०–विभाषा १।१ कदा-कर्ह्योः ७।२।

स०–कदाश्च कर्हिश्च तौ कदाकर्ही, तयोः-कदाकर्ह्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–भविष्यति, लट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कदाकर्ह्योर्धातोर्भविष्यति विभाषा लट्।

अर्थः–कदा-कर्हिशब्दयोरुपपदयोर्धातोर्भविष्यति काले विकलपेन लट् प्रत्ययो भवति, पक्षे च लृट्-लुटौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–(कदा) कदा **भुङ्क्ते** देवदत्तः (लट्)। कदा **भोक्ष्यते** देवदत्तः (लृट्)। कदा **भोक्ता** देवदत्तः (लुट्)। (कर्हि) कर्हि **भुङ्क्ते** यज्ञदत्तः (लट्)। कर्हि **भोक्ष्यते** यज्ञदत्तः (लृट्)। कर्हि **भोक्ता** यज्ञदत्तः (लुट्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(कदाकर्ह्योः) कदा और कर्हि शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से (भविष्यति) भविष्यत्काल में (विभाषा) विकल्प से (लट्) लट् प्रत्यय होता है, विकल्प पक्ष में लृट् और लुट् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(कदा) कदा भुङ्क्ते देवदत्तः (लट्)। देवदत्त कब भोजन करेगा। कदा भोक्ष्यते देवदत्तः (लृट्)। कदा भोक्ता देवदत्तः (लुट्)। अर्थ पूर्ववत् है। (कर्हि) कर्हि भुङ्क्ते यज्ञदत्तः (लट्)। यज्ञदत्त कब भोजन करेगा। कर्हि भुङ्क्ते यज्ञदत्तः (लृट्)। कर्हि भोक्ता यज्ञदत्तः (लुट्)। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) भुङ्क्ते। सिद्धि पूर्ववत् (३।३।४) है।

(२) भोक्ष्यते। भुज्+लृट्। भुज्+स्य+त। भोज्+स्य+ते। भोग्+स्य+ते। भोक्+ष्य+ते। भोक्ष्यते।

यहां पूर्वोक्त 'भुज' धातु से भविष्यत्काल में 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'चोः कुः'

(८।२।३०) से 'भुज्' धातु को कुत्व 'ग्' और 'खरि च' (८।४।५४) से 'ग्' को 'क्' होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

(३) भोक्ता। भुज्+लुट्। भुज्+तास्+त। भुज्+तास्+डा। भुज्+त्+आ। भोज्+त्+आ। भोग्+त्+आ। भोक्+त्+आ। भोक्ता।

यहां पूर्वोक्त 'भुज्' धातु से भविष्यत्काल में 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय होता है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'तास्' विकरण-प्रत्यय है। 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' (२।४।८५) से त-प्रत्यय के स्थान में डा-आदेश होता है। 'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३)) से 'तास्' के टि-भाग (आस्) का लोप होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है।

लट्+लृट्+लुट्–

(४) किंवृत्ते लिप्सायाम्।६।

प०वि०-किंवृत्ते ७।१ लिप्सायाम् ७।१।

स०-किमो वृत्तमिति किंवृत्तम्, तस्मिन्-किंवृत्ते (षष्ठीतत्पुरुषः)। लब्धुमिच्छा लिप्सा, तस्याम्-लिप्सायाम्।

अनु०-भविष्यति, लट्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-किंवृत्ते धातोर्भविष्यति विभाषा लट् लिप्सायाम्।

अर्थः-किंवृत्ते=किंवृत्ते शब्दे उपपदे धातोः परो भविष्यति काले विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति, लिप्सायां गम्यमानायाम्, पक्षे लृट्लुटौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-कं भवन्तो **भोजयन्ति** (लट्)। कं भवन्तो **भोजयिष्यन्ति** (लृट्)। कं भवन्तो **भोजयितारः** (लुट्)। लब्धुकामः कश्चित् पृच्छति-कतरो भिक्षां **ददाति** (लट्)। कतरो भिक्षां **दास्यति** (लृट्)। कतरो भिक्षां **दाता** (लुट्)। कतमो भिक्षां **ददाति** (लट्)। कतमो भिक्षां **दास्यति** (लृट्)। कतमो भिक्षां **दाता** (लुट्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(किंवृत्ते) किम् से बना हुआ कोई शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में (विभाषा) विकल्प से (लट्) लट्) प्रत्यय होता है, यदि वहां (लिप्सायाम्) लिप्सा अर्थ प्रकट हो। लिप्सा=प्राप्ति की इच्छा।

उदा०-कं भवन्तो भोजयन्ति (लट्)। कं भवन्तो भोजयिष्यन्ति (लृट्)। कं भवन्तो भोजयितारः (लुट्)। आप किसे भोजन करायेंगे। कोई भोजनप्राप्ति का इच्छुक

पूछता है-कतरो भिक्षां ददाति (लट्)। कतरो भिक्षां दास्यति (लृट्)। कतरो भिक्षां दाता (लुट्)। तुम दोनों में से कौन भिक्षा देगा ? कतमो भिक्षां ददाति (लट्)। कतमो भिक्षां दास्यति (लृट्)। कतमो भिक्षां दाता। तुम सब में से कौन भिक्षा देगा।

सिद्धि-(१) भोजयन्ति। यहां णिजन्त 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रु०धा०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है।

(२) भोजयिष्यन्ति। पूर्वोक्त 'भुज्' धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) विकल्प पक्ष में 'लृट्' प्रत्यय है।

(३) भोजयितारः। पूर्वोक्त 'भुज्' धातु से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से विकल्प पक्ष में 'लुट्' प्रत्यय है।

(४) 'डुदाञ् दाने' (जु०प०) धातु से ददाति, दास्यति, दाता रूप सिद्ध करें।

विशेष-किंवृत्त-किं से बने हुये अथवा किं शब्द जिसमें वर्तमान रहता है उसे किंवृत्त कहते हैं। 'कतरः' यहां किं शब्द से 'किं यत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्' (५।३।९२) से 'डतरच्' प्रत्यय है। 'कतमः' यहां किं शब्द से 'वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्' (२।३।९३) से 'डतमच्' प्रत्यय है।

लट्+लृट्+लुट्–

(५) लिप्स्यमानसिद्धौ च।७।

प०वि०-लिप्स्यमान-सिद्धौ ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-लिप्स्यते=प्राप्तुमिष्यते तत्-लिप्स्यमानम्=भक्तादिकम् (कर्मणि शानच् प्रत्ययः)। लिप्स्यमानात् सिद्धिरिति लिप्यमानसिद्धिः, तस्याम्-लिप्स्यमानसिद्धौ (पञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-भविष्यति, लट्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लिप्स्यमानसिद्धौ धातोर्भविष्यति विभाषा लट्।

अर्थः-लिप्स्यमानात्=अभीप्सिताद् भक्तादिपदार्थात् सिद्धौ=स्वर्गादिसिद्धौ गम्यमानायां धातोः परो भविष्यति काले विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति, पक्षे लृट्लुटौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(लट्) यो भक्तं **ददाति** स स्वर्गं **गच्छति**। (लृट्) यो भक्तं **दास्यति** स स्वर्गं **गमिष्यति**। (लुट्) यो भक्तं **दाता** स स्वर्गं **गन्ता**।

आर्यभाषा-अर्थ-(लिप्स्यमानसिद्धौ) अभीष्ट भक्त (भात) आदि पदार्थ की प्राप्ति से स्वर्ग आदि सिद्धि अर्थ प्रकट करने पर (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में (विभाषा) विकल्प से (लट्) लट् प्रत्यय होता है, विकल्प पक्ष में लृट् और लुट् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(लट्) यो भक्तं ददाति स स्वर्गं गच्छति। (लृट्) यो भक्तं दास्यति स स्वर्गं गमिष्यति। (लुट्) यो भक्तं दाता स स्वर्गं गन्ता। जो भक्त=भात (चावल) देगा वह स्वर्ग में जायेगा। यहां याचक अपने लिप्स्यमान भात से स्वर्ग-सिद्धि का कथन करता हुआ है दाता जन को प्रोत्साहित करता है।

सिद्धि-(१) ददाति/गच्छति। यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) तथा 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लट्' प्रत्यय है।

(२) दास्यति/गमिष्यति। यहां पूर्वोक्त धातुओं से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से विकल्प पक्ष में 'लट्' प्रत्यय है।

(३) दाता/गन्ता। यहां पूर्वोक्त धातुओं से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से विकल्प पक्ष में 'लुट्' प्रत्यय है।

लट्+लृट्+लुट्–

(६) लोडर्थलक्षणे च।८।

प०वि०-लोट्-अर्थलक्षणे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-लोटोऽर्थ इति लोडर्थः। लोडर्थस्य लक्षणमिति लोडर्थलक्षणम्, तस्मिन्-लोडर्थलक्षणे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-भविष्यति, लट्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लोडर्थलक्षणे च धातोर्भविष्यति विभाषा लट्।

अर्थः-लोडर्थस्य=प्रैषादिकस्य लक्षणेऽर्थेऽपि धातोः परो भविष्यति काले विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति, पक्षे-लृट्लुटौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(लट्) उपाध्यायश्चेदागच्छति-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। (लृट्) उपाध्यायश्चेदागमिष्यति-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। (लुट्) उपाध्यायश्चेदागन्ता-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व।

आर्यभाषा-अर्थ-(लोडर्थलक्षणे) लोट् लकार के प्रैष=आज्ञा आदि अर्थ को लक्षित करने अर्थ में (च) भी (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में (विभाषा) विकल्प से (लट्) लट् प्रत्यय होता है, विकल्प पक्ष में लृट् और लुट् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(लट्) उपाध्यायश्चेदागच्छति-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। (लृट्) उपाध्यायश्चेदागमिष्यति-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। (लुट्) उपाध्यायश्चेदागन्ता-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। यदि उपाध्याय जी आ जायें तो तू उनसे व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करना।

सिद्धि-(१) आगच्छति। यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लट्' प्रत्यय है।

(२) आगमिष्यति। यहां पूर्वोक्त 'गम्' धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।

(३) आगन्ता। यहां पूर्वोक्त 'गम्' धातु से पूर्ववत् लुट् प्रत्यय है।

लिङ्+लट्–

(७) लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके।६।

प०वि०-लिङ् १।१ च अव्ययपदम्, ऊर्ध्वमौहूर्तिके ७।१।

स०-ऊर्ध्वं मुहूर्तादिति-ऊर्ध्वमुहूर्तम् (अस्मादेव निपातनात्पञ्चमी-तत्पुरुषः)। ऊर्ध्वमुहूर्ते भवम् ऊर्ध्वमौहूर्तिकम् **'बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्'** (४।३।६७) इति ठञ् प्रत्ययः। अस्मादेव निपातनाद् उत्तरपदवृद्धिः।

अनु०-भविष्यति, लट्, विभाषा, लोडर्थलक्षणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लोडर्थलक्षणे धातोरूर्ध्वमौहूर्तिके भविष्यति विभाषा लिङ् लट् च।

अर्थः-लोडर्थस्य=प्रैषादिकस्य लक्षणेऽर्थे विद्यमानाद् धातोः पर ऊर्ध्वमौहूर्तिके भविष्यति काले विकल्पेन लिङ् लट् च प्रत्ययो भवति, पक्षे लृट्लुटौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(लिङ्) ऊर्ध्वं मुहूर्ताद्=उपरि मुहूर्तस्य उपाध्यायश्चेद् आगच्छेत्-अथ त्वं व्याकरणधीष्व। (लट्) ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् उपाध्यायश्चेदागच्छति-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। (लृट्) ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् उपाध्यायश्चेदागमिष्यति-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। (लुट्) ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् उपाध्यायश्चेदागन्ता-अथ त्वं व्याकरंणमधीष्व।

आर्यभाषा-अर्थ-*(लोडर्थलक्षणे) लोट् लकार के प्रैष=आज्ञादि अर्थ को लक्षित करने अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (ऊर्ध्वमौहूर्तिके) एक मुहूर्त से ऊपर के*

(भविष्यति) भविष्यत्काल में (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (लिङ्) लिङ् (च) और (लट्) लट् प्रत्यय होता है, विकल्प पक्ष में लृट् और लुट् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् उपाध्यायश्चेद् आगच्छेत् (लिङ्) आगच्छति (लट्) आगमिष्यति (लृट्) आगन्ता (लुट्)-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। एक मुहूर्त के पश्चात् यदि उपाध्याय जी आ जायें तो तू उनसे व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करना।

सिद्धि-(१) आगच्छेत्। यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लिङ्' प्रत्यय है।

(२) आगच्छति। पूर्वोक्त धातु से 'लट्' प्रत्यय है।

(३) आगमिष्यति। पूर्वोक्त धातु से 'लृट्' प्रत्यय है।

(४) आगन्ता। पूर्वोक्त धातु से 'लुट्' प्रत्यय है।

विशेष-'मुहूर्त' काल का एक परिमाण है जो कि ४८ मिनट का होता है। यह दिन-रात का ३० तीसवां भाग होता है।

तुमुन्+ण्वुल्-

(८) तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्।१०।

प०वि०-तुमुन्-ण्वुलौ १।२ क्रियायाम् ७।१ क्रियार्थायाम् ७।१।

स०-तुमुन् च ण्वुल् च तौ तुमुन्ण्वुलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। क्रियायै इयमिति क्रियार्था, तस्याम्-क्रियार्थायाम् (चतुर्थीतत्पुरुषः)।

अनु०-भविष्यति इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-क्रियार्थायां क्रियायां धातोर्भवति तुमुन्ण्वुलौ।

अर्थः-क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे धातोः परो भविष्यति काले तुमुन्-ण्वुलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(तुमुन्) भोक्तुं व्रजति देवदत्तः। (ण्वुल्) भोजको व्रजति यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियार्थायाम्) किसी क्रिया के लिये (क्रियायाम्) कोई क्रिया उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में (तुमुन्-ण्वुलौ) तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(तुमुन्) भोक्तुं व्रजति देवदत्तः। देवदत्त भोजन के लिये जाता है। (ण्वुल्) भोजको व्रजति यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त भोजन के लिये जाता है।

सिद्धि-(१) भोक्तुम्। यहां भुजि क्रिया के लिये व्रजि क्रिया उपपद होने पर 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'तुमुन्' प्रत्यय है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'भुज्' धातु के 'ज्' को कुत्व 'ग्' और 'खरि च' (८।४।५४) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपध गुण है।

(२) भोजकः। यहां पूर्वोक्त 'भुज्' धातु से इस सूत्र से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'वु' के स्थान में 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'अक' आदेश होता है। पूर्ववत् लघूपध गुण है।

घञादयः-

(६) भाववचनाश्च।११।

प०वि०-भाववचनाः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-ब्रुवन्तीति वचनाः **'कृत्यल्युटो बहुलम्'** (३।३।११३) इति बहुलवचनात् कर्तरि **'ल्युट्'** प्रत्ययः। भावस्य वचना इति भाववचनाः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-भविष्यति क्रियायां क्रियार्थायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रियार्थायां क्रियायां धातोर्भविष्यति भाववचनाश्च प्रत्ययाः।

अर्थः-क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे धातोः परे भविष्यति कालेऽग्रे वक्ष्यमाणा भाववचना घञादयो प्रत्यया अपि भवन्ति।

उदा०-(घञ्) पाकाय व्रजति देवदत्तः। **(क्तिन्) भूतये** व्रजति ब्रह्मदत्तः। **पुष्टये** व्रजति यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियार्थायाम्) किसी क्रिया के लिये (क्रियायाम्) कोई क्रिया उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में आगे कहे जानेवाले (भाववचनाः) भाववाची घञ् आदि प्रत्यय (च) भी होते हैं।

उदा०-(घञ्) पाकाय व्रजति देवदत्तः। देवदत्त पकाने के लिये जाता है। (क्तिन्) भूतये व्रजति ब्रह्मदत्तः। ब्रह्मदत्त भूति=ऐश्वर्य के लिये जाता है। पुष्टये व्रजति यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त पुष्टि के लिये जाता है।

सिद्धि-(१) पाकः। पच्+घञ्। पच्+अ। पक्+अ। पाक्+अ। पाक+सु। पाकः।

यहां 'पचि' क्रिया के लिये 'व्रजि' क्रिया उपपद होने पर 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'भावे' (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। 'चजोः कु घिण्यतोः' (७।३।५२) से पच् के 'च्' को कुत्व 'क्' होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से

'पच्' को उपधावृद्धि होती है। इस सूत्र से भाववचन घञ् प्रत्यय भविष्यत्काल में विधान किया गया है।

(२) भूतिः। भू+क्तिन्। भू+ति। भूति+सु। भूतिः।

'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०)। 'स्त्रियां क्तिन्' (३।३।९४) से भाव अर्थ में 'क्तिन्' प्रत्यय है।

(३) पुष्टिः। पुष्+क्तिन्। पुष्+टि। पुष्टि+सु। पुष्टिः।

'पुष पुष्टौ' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् क्तिन् प्रत्यय है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४२) से ष्टुत्व होता है।

अण्–

(१०) अण् कर्मणि च।१२।

प०वि०-अण् १।१ कर्मणि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-भविष्यति, क्रियायां क्रियार्थायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रियार्थायां क्रियायां कर्मणि च धातोर्भविष्यति अण्।

अर्थः-क्रियार्थायां क्रियायां कर्मणि चोपपदे धातोः परो भविष्यति कालेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-काण्डलावो व्रजति। **गोदायो** व्रजति। **अश्वदायो** व्रजति। **कम्बलदायो** व्रजति।

आर्यभाषा-अर्थ-*(क्रियार्थायाम्) किसी क्रिया के लिये (क्रियायाम्) कोई क्रिया (च) और (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-काण्डलावो व्रजति। काण्ड (पेड़) को काटनेवाला जाता है। गोदायो व्रजति। गौ देनेवाला जाता है। अश्वदायो व्रजति। घोड़ा देनेवाला जाता है। कम्बलदायो व्रजति। कम्बल देनेवाला जाता है।

सिद्धि-(१) काण्डलावः। यहां 'लवि' क्रिया के लिये 'व्रजि' क्रिया उपपद होने पर काण्ड कर्म उपपदवाले 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'अचोञ्णिति' (७।२।११५) से 'लू' धातु को वृद्धि होती है।

(२) गोदायः। यहां ददाति क्रिया के लिये व्रजि क्रिया उपपद होने पर 'गौ' कर्म उपपदवाले 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से दा धातु को 'युक्' आगम होता है। ऐसे ही-'अश्वदायः'।

लृट् (शेषे भविष्यति)–

(११) लृट् शेषे च।१३।

प०वि०–लृट् १।१ शेषे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–भविष्यति, क्रियायां क्रियार्थायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्रियार्थायां क्रियायां शेषे च भविष्यति धातोर्लृट्।

अर्थः–क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे शेषे=शुद्धे च भविष्यति काले धातोः परो लृट् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**क्रियार्थायां क्रियायाम्**) करिष्यामीति व्रजति देवदत्तः। हरिष्यामीति व्रजति ब्रह्मदत्तः। (**शेषे**) करिष्यति देवदत्तः। हरिष्यति ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियार्थायां क्रियायाम्) क्रिया के लिये क्रिया उपपद होने पर (च) और (शेषे) शुद्ध भविष्यत्काल में (धातोः) धातु से परे (लृट्) लृट् प्रत्यय होता है।

उदा०-(क्रियार्थ क्रिया) करिष्यामीति व्रजति देवदत्तः। मैं अमुक कार्य करूंगा इसलिये देवदत्त जाता है। हरिष्यामीति व्रजति ब्रह्मदत्तः। मैं कष्ट हरण करूंगा इसलिये ब्रह्मदत्त जाता है। (शेष) करिष्यति देवदत्तः। देवदत्त करेगा। हरिष्यति ब्रह्मदत्तः। ब्रह्मदत्त हरण करेगा।

सिद्धि-(१) करिष्यामि। कृ+लृट्। कृ+स्य+मिप्। कृ+इट्+स्य+मि। कर्+इष्य+मि। करिष्यामि।

यहां करोति क्रिया के लिये व्रजि क्रिया उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय और उसे 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से इट् आगम होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है।

(२) करिष्यति। यहां शुद्ध भविष्यत्काल में पूर्वोक्त 'कृ' धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

सत्-आदेशः (शतृ+शानच्)–

(१२) लृटः सद् वा।१४।

प०वि०–लृटः ६।१ सत् १।१ वा अव्ययपदम्।

अन्वयः–लृटः स्थाने भविष्यति वा सत्।

अर्थः-लृटः स्थाने भविष्यतिकाले विकल्पेन सत्-संज्ञकौ=शतृशानचौ प्रत्ययौ भवतः, पक्षे लृडपि भवति।

उदा०-(शतृ) करिष्यन्तं देवदत्तं पश्य। (शानच्) करिष्यमाणं देवदत्तं पश्य। (लृट्) करिष्यति देवदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(लृटः) लृट् प्रत्यय के स्थान में (भविष्यति) भविष्यत्काल में (वा) विकल्प से (सत्) सत्-संज्ञक=शतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(शतृ) करिष्यन्तं देवदत्तं पश्य। तू कार्य करनेवाले देवदत्त को देख। (शानच्) करिष्यन्तं देवदत्तं पश्य। अर्थ पूर्ववत् है। (लृट्) करिष्यति देवदत्तः। देवदत्त कार्य करेगा।

सिद्धि-(१) करिष्यन्। कृ+लृट्। कृ+शतृ। कृ+स्य+अत्। कृ+इट्+स्य+अत्। कर्+इष्य+अनुम्त्। करिष्य+अन्त्। करिष्यन्+सु। करिष्यन्+०। करिष्यन्।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय के स्थान में 'शतृ' आदेश है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय, 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है। 'शतृ' प्रत्यय के उगित् होने से 'उगिदचां सर्वनास्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से नुम् आगम होता है।

(२) करिष्यमाणः। कृ+लट्। कृ+शानच्। कृ+स्य+आन। कृ+इट्+स्य+मुक्+आन। कर्+इष्य+म्+आण। करिष्यमाण+सु। करिष्यमाणः।

यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय के स्थान में 'शानच्' आदेश है। 'आने मुक्' (७।३।८२) से मुक् आगम और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व तथा 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।

(३) करिष्यति। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से विकल्प पक्ष में लृट् के स्थान में सत्=शतृ, शानच् आदेश नहीं है, अपितु 'लृट्' प्रत्यय ही है। सिद्धि पूर्ववत् है।

लुट् (अनद्यतने)–

(१३) अनद्यतने लुट्। १५।

प०वि०-अद्यतने ७।१ लुट् १।१।

स०-न विद्यतेऽद्यतनो यस्मिन् सः-अनद्यतनः, तस्मिन्-अनद्यतने (बहुव्रीहिः)।

अनु०-भविष्यति इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोरनद्यतने भविष्यति लुट्।

अर्थः-धातोः परोऽनद्यतने भविष्यति काले लुट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-श्वः कर्ता देवदत्तः। श्वो भोक्ता ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भविष्यति) शेष भविष्यत्काल में (लुट्) लुट् प्रत्यय होता है।

उदा०-श्वः कर्ता देवदत्तः। देवदत्त कल कार्य करेगा। श्वो भोक्ता ब्रह्मदत्तः। ब्रह्मदत्त कल भोजन करेगा।

सिद्धि-(१) कर्ता। कृ+लुट्। कृ+तास्+तिप्। कृ+तास्+डा। कृ+त्+आ। कर्+त्+आ। कर्ता।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'तास्' विकरण-प्रत्यय, 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' (२।४।८५) से 'तिप्' के स्थान में डा-आदेश 'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से 'तास्' के टि-भाग (आस्) का लोप होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है।

(२) भोक्ता। भुज्+लुट्। भुज्+तास्+त। भुज्+तास्+डा। भुज्+त्+आ। भुग्+ता। भुक्+ता। भोक्+ता। भोक्ता।

यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लुट्' प्रत्यय है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से भुज् के ज् को कुत्व ग् और 'खरि च' (८।४।५४) से ग् को चर् क् होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है।

इति भविष्यत्कालप्रत्ययप्रकरणम्।

त्रिकालप्रत्ययप्रकरणम्

घञ्-

(१) पदरुजविशस्पृशो घञ्।१६।

प०वि०-पद-रुज-विश-स्पृशः ५।१ घञ् १।१।

स०-पदश्च रुजश्च विशश्च स्पृश् च एतेषां समाहारः-पदरुजविशस्पृश्, तस्मात्-पदरुजविशस्पृशः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-भविष्यति इति निवृत्तम्। इत उत्तरं त्रिषु कालेषु प्रत्यया भवन्ति।

अन्वय:-पद०स्पशो धातोर्घञ्।

अर्थ:-पदादिभ्यो धातुभ्य: परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पद:) पद्यतेऽसौ पाद:। (रुज:) रुजत्यसौ रोग:। (विश:) विशत्यसौ वेश:। (स्पृश्) स्पृशत्यसौ स्पर्श:।

आर्यभाषा-अर्थ-(पद०स्पृश:) पद, रुज, विश, स्पृश् (धातो:) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(पद) पद्यतेऽसौ पाद:। चलनेवाला चरण (पांव)। (रुज) रुजत्यसौ रोग:। शरीर को भग्न करनेवाला रोग। (विश) विशत्यसौ वेश:। शरीर में प्रविष्ट होनेवाला वेश। (स्पृश्) स्पृशत्यसौ स्पर्श:। शरीर को स्पर्श करनेवाला उपताप (पीड़ा)।

सिद्धि-(१) पाद:। पद्+घञ्। पाद्+अ। पाद+सु। पाद:।

यहां 'पद गतौ' (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अत उपधाया:' (७।२।११६) से पद् धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) रोग:। रुज्+घञ्। रुग्+अ। रोग्+अ। रोग्+सु। रोग:।

'रुजो भङ्गे' (तु०प०)। 'रुज्' धातु के 'ज्' को 'चजो: कु घिण्ण्यतो:' (७।३।५२) से कुत्व 'ग्' और 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपध गुण होता है।

(३) वेश:। 'विश प्रवेशने' (तु०प०)। पूर्ववत् लघूपध गुण है।

(४) स्पर्श:। 'स्पृश संस्पर्शने' (तु०प०)। पूर्ववत् लघूपध गुण होता है। यहां 'वा०-स्पृश उपताप इति वक्तव्यम्' (३।३।१६) से 'स्पृश' धातु उपताप अर्थ में है, संस्पर्शन अर्थ में नहीं।

घञ्-

(२) सृ स्थिरे।१७।

प०वि०-सृ ५।१ (लुप्तपञ्चमीकं पदम्) स्थिरे ७।१।

अनु०-घञ् इत्यनुवतति।

अन्वय:-सृ धातोर्घञ् स्थिरे।

अर्थ:-सृ-धातो: परो घञ् प्रत्ययो भवति स्थिरे=कालान्तरस्थायिनि कर्तरि सति।

उदा०-सरतीति सारः। कालान्तरस्थायीत्यर्थः। चन्दनस्य सार इति चन्दनसारः। खदिरस्य सार इति खदिरसारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सृ) सृ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, यदि इस धातु का कर्ता (स्थिरे) कालान्तर स्थायी हो।

उदा०-सरतीति सारः। कालान्तर में अवस्थित रहनेवाला-सार। चन्दनस्य सार इति चन्दनसारः। चन्दन का सार। खदिरस्य सार इति खदिरसारः। खैर का सार।

सिद्धि-सारः। सृ+घञ्। सार्+अ। सार+सु। सारः।

यहां 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'सृ' धातु को वृद्धि होती है।

घञ् (भावे)-

(३) भावे।१८।

प०वि०-भावे ७।१।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-भावे धातोर्घञ्।

अर्थः-भावे=धात्वर्थमात्रे वाच्ये धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पचनं पाकः। त्यजनं त्यागः। रञ्जनं रागः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भावे) धात्वर्थमात्र के कथन में (धातोः) धातुमात्र से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-पचनं पाकः। पकाना। त्यजनं त्यागः। छोड़ना। रञ्जनं रागः। रञ्जन करना (रंगना)।

सिद्धि-(१) पाकः। पच्+घञ्। पक्+अ। पाक्+अ। पाक+सु। पाकः।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से पच् के 'च्' के कुत्व 'क्' होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'पच्' को उपधावृद्धि होती है।

(२) त्यागः। 'त्यज हानौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(३) रागः। रञ्ज्+घञ्। रज्+अ। रग्+अ। राग्+अ। राग+सु। रागः।

यहां 'रञ्ज रागे' (भ्वा०उ०)। 'घञि च भावकरणयोः' (६।४।२७) से 'रञ्ज्' के अनुनासिक लोप और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

अकर्तृकारकभावप्रकरणम्

घञ्–

(१) अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्।१६।

प०वि०-अकर्तरि ७।१ च अव्ययपदम्, कारके ७।१ संज्ञायाम्।

स०-न कर्ता इति अकर्ता, तस्मिन्-अकर्तरि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-भावे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि च कारके धातोर्घञ् संज्ञायाम्।

अर्थः-अकर्तरि=कर्तृभिन्ने कारकेऽपि वर्तमानाद् धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये।

उदा०-प्रास्यन्ति यमिति प्रासः। प्रसीव्यन्ति यमिति प्रसेवः। आहरन्ति यस्माद् रसमिति आहारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता के भिन्न (कारके) कारक में (च) भी (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा विषय हो।

उदा०-प्रास्यन्ति यमिति प्रासः। जिसको फैंकते हैं (भाला)। प्रसिव्यन्ति यमिति प्रसेवः। जिसको सीमते हैं (थैला)। आहरन्ति यस्माद् रसमिति आहारः। जिससे रस ग्रहण करते हैं (भोजन)।

सिद्धि-(१) प्रासः। प्र+अस्+घञ्। प्र+आस्+अ। प्रास+सु। प्रासः।

यहां 'असु क्षेपणे' (दि०प०) धातु से कर्म कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'अस्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) प्रसेवः। प्र+सिव्+घञ्। प्र+सेव्+अ। प्रसेव+सु। प्रसेवः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'षिवु तन्तुसन्ताने' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से कर्म कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'सिव्' धातु को लघूपध गुण होता है।

(३) आहारः। आङ्+हृ+घञ्। आ+हार्+अ। आहार+सु। आहारः।

यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से अपादान कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'हृ' धातु को वृद्धि होती है।

विशेष-अनुवृत्तिः-यहां से आगे 'भावे' और 'अकर्तरि च कारके' की अनुवृत्ति 'आक्रोशे नञ्यनिः' (३।३।११२) तक है। प्रत्येक अनुवृत्ति सन्दर्भ में इनकी अनुवृत्ति नहीं लिखी जायेगी।

घञ् (परिमाणाख्यायाम्)–

(२) परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः।२०।

प०वि०–परिमाण-आख्यायाम् ७।१ सर्वेभ्यः ५।३।

स०–परिमाणस्य आख्या इति परिमाणाख्या, तस्याम्-परिमाणाख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः सर्वेभ्यो धातुभ्यः परो घञ् प्रत्ययो भवति, परिमाणाख्यायां गम्यमानायाम्।

उदा०–एकस्तण्डुलनिश्चायः। द्वौ शूर्पनिष्पावौ। द्वौ कारौ। त्रयः काराः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (सर्वेभ्यः) सब धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, यदि वहां (परिमाणाख्यायाम्) परिमाण=संख्या का कथन हो।

उदा०-एकस्तण्डुलनिश्चायः। एक तण्डुल-राशि। द्वौ शूर्पनिष्पावौ। दो छाज शुद्ध किये हुये तण्डुल। द्वौ कारौ। धान्य आदि के दो विक्षेप (बरसाना)। त्रयः काराः। धान्य आदि के तीन विक्षेप (बरसाना)।

सिद्धि-(१) निश्चायः। निस्+चि+घञ्। निस्+चै+अ। निश्चाय+सु। निश्चायः।

यहां 'निस्' उपसर्गपूर्वक 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'प्रहवृद्‌निश्चिगमश्च' (३।३।५८) से 'अप्' प्रत्यय प्राप्त था। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'चि' धातु को वृद्धि होती है। निश्चीयते=राशीक्रियते इति निश्चायः=राशिः। यहां कर्मकारक में 'घञ्' प्रत्यय है।

(२) निष्पावः। निस्+पू+घञ्। निस्+पौ+अ। निः+पाव्+अ। निष्+पाव। निष्पाव+सु। निष्पावः।

यहां 'निस्' उपसर्गपूर्वक 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय। 'ऋदोरप्' (३।३।५७) से 'अप्' प्रत्यय प्राप्त था। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'पू' धातु को वृद्धि होती है। 'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य' (८।३।४१) से विसर्जनीय को षत्व होता है। निष्पूयते यः सः-निष्पावः=तण्डुलादिः। यहां कर्म कारक में 'घञ्' प्रत्यय है।

(३) कारः। यहां 'कॄ विक्षेपे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'ऋदोरप्' (३।३।५७) से 'अप्' प्रत्यय प्राप्त था। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कॄ'

धातु को वृद्धि होती है। कीर्यते=विविधं क्षिप्यते यः सः-कारः=तण्डुलादिः। यहां कर्म कारक में 'घञ्' प्रत्यय है।

विशेष-परिमाण-यहां परिमाण से संख्या का ग्रहण किया जाता है, प्रस्थ (सेर) आदि का नहीं। संख्या भी एक परिमाण है।

घञ्-

(३) इङश्च।२१।

प०वि०-इङः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् इङ्-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अधीयते यः सः-अध्यायः। उपेत्याधीते यस्मात् सः-उपाध्यायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (इङः) इङ् धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-अधीयते यः सः-अध्यायः। जो पढ़ा जाता है वह-अध्याय। उपेत्याधीते यस्मात् सः-उपाध्यायः। शिष्य जिसके समीप जाकर पढ़ता है वह-उपाध्याय।

सिद्धि-(१) अध्यायः। अधि+इङ्+घञ्। अधि+ऐ+अ। अधि+आय्+अ। अध्य्+आय। अध्याय+सु। अध्यायः।

यहां नित्य अधि उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अ०दा०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'एरच्' (३।३।५६) से 'अच्' प्रत्यय प्राप्त था। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'इ' धातु को वृद्धि होती है। 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'आय्' आदेश होता है। 'इको यणचि' (६।१।७४) से 'यण्' आदेश होता है।

(२) उपाध्यायः। उप और अधि उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'इङ्' धातु से पूर्ववत्। उप+अध्यायः=उपाध्यायः।

घञ्-

(४) उपसर्गे रुवः।२२।

प०वि०-उपसर्गे ७।१ रुवः ५।१।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उपसर्गे रुवो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् सोपसर्गाद् रु-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-संरावः। उपरावः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उपसर्गे) सोपसर्ग (रुवः) रु-धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-संरूयते यः सः-संरावः। मिलकर किया जानेवाला शब्द (शोर)। उपरूयते यः सः-उपरावः। पास में आकर किया जानेवाला शब्द (कलह)।

सिद्धि-(१) संरावः। सम्+रु+घञ्। सम्+रौ+अ। सम्+राव्+अ। संराव+सु। संरावः।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'रु शब्दे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'ऋदोरप्' (३।३।२७) से 'अप्' प्रत्यय प्राप्त था। 'रु' धातु को पूर्ववत् वृद्धि और 'आव्' आदेश होता है।

(२) उपरावः। उप उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'रु' धातु से पूर्ववत्।

घञ्-

(५) समि युद्रुदुवः।२३।

प०वि०-समि ७।१ यु-दु-द्रुवः ५।१।

स०-युश्च दुश्च द्रुश्च एतेषां समाहारः-युदुद्रु, तस्मात्-युदुद्रुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च समि युदुद्रुवो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः सम्-पूर्वेभ्यो युदुद्रुभ्यो धातुभ्यः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(युः) संयूयते=मिश्रीक्रियते यः सः-संयावः। (दुः) संदावः। (द्रुः) संद्रावः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और भाव अर्थ में विद्यमान (समि) सम् उपसर्गपूर्वक (युदुद्रुवः) यु, दु, द्रु (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(यु) संयूयते=मिश्रीक्रियते यः स संयावः। हलवा। (दु) संदावः। मिलकर दौड़ना। (द्रु) संद्रावः। मिलकर दौड़ना।

सिद्धि-(१) संयावः। सम्+यु+घञ्। सम्+यौ+अ। सम्+याव्+अ। संयाव+सु। संयावः।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'यु' धातु को वृद्धि होती है।

(२) संदावः। 'दु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(३) संद्रावः। 'द्रु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

घञ्–

(६) श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे।२४।

प०वि०–श्रि–णी–भुवः ५।१ अनुपसर्गे ७।१।

स०–श्रिश्च णीश्च भूश्च एतेषां समाहारः–श्रिणीभु, तस्मात्–श्रिणीभुवः (समाहारद्वन्द्वः)। न विद्यते उपसर्गो यस्य सः–अनुपसर्गः, तस्मिन् अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे चानुपसर्गे श्रिणीभुवो धातोर्घञ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्योऽनुपसर्गेभ्यः श्रिणीभूभ्यो धातुभ्यः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(श्रिः) श्रायः। (नीः) नायः। (भूः) भावः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे भाव अर्थ में विद्यमान (अनुपसर्गे) उपसर्ग से रहित (श्रिणीभुवः) श्रि, णी, भू (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(श्रि) श्रायः। सेवा करना। (नी) नायः। देशान्तर में पहुंचना। (भू) भावः। सत्ता होना।

सिद्धि-(१) श्रायः। श्रि+घञ्। श्रै+अ। श्राय्+अ। श्राय+सु। श्रायः।

यहां उपसर्गरहित 'श्रिञ् सेवायाम्' (भ्वा०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'श्रि' धातु को वृद्धि होती है।

(२) नायः। 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

(३) भावः। 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

घञ्–

(७) वौ क्षुश्रुवः ।२५।

प०वि०-वौ ७ ।१ क्षुश्रुवः ५ ।१ ।

स०-क्षुश्च श्रुश्च एतयोः समाहारः-क्षुश्रु, तस्मात्-क्षुश्रुवः (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च वि-पूर्वाभ्यां क्षुश्रुभ्यां धातुभ्यां घञ् ।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाभ्यां वि-पूर्वाभ्यां क्षुश्रुभ्यां धातुभ्यां परो घञ् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-(क्षुः) विक्षावः । **(श्रुः)** विश्रावः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (वौ) वि उपसर्गपूर्वक (क्षुश्रुवः) क्षु, श्रु (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(क्षु) विक्षावः । खांसना । (श्रु) विश्रावः । प्रसिद्ध होना ।

सिद्धि-(१) विक्षावः । वि+क्षु+घञ् । वि+क्षौ+अ । वि+क्षाव्+अ । विक्षाव+सु । विक्षावः ।

यहां वि उपसर्गपूर्वक 'टुक्षु शब्दे' (अदा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७ ।२ ।११५) से 'क्षु' धातु को वृद्धि होती है।

(२) विश्रावः । 'श्रु श्रवणे' (भ्वा०प०) पूर्ववत् ।

घञ्–

(८) अवोदोर्नियः ।२६।

प०वि०-अव-उदोः ७ ।२ नियः ५ ।१ ।

स०-अवश्च उच्च तौ-अवोदौ, तयोः-अवोदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च अवोदोर्नियो धातोर्घञ् ।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् अव-उत्पूर्वाद् नी-धातोः परो घञ् भवति ।

उदा०-(अवः) अवनायः । **(उत्)** उन्नायः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और भाव अर्थ में विद्यमान (अवोदोः) अव और उत् उपसर्गपूर्वक (नियः) नी (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(अव) अवनायः। अवनति करना। (उत्) उन्नायः। उन्नति करना।

सिद्धि-(१) अवनायः। अव+नी+घञ्। अव+नै+अ। अव+वाय्+अ। अवनाय+सु। अवनायः।

यहां अव उपसर्गपूर्वक 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'नी' धातु को वृद्धि होती है।

(२) उन्नायः। उत् उपसर्गपूर्वक 'नी' धातु से पूर्ववत्।

घञ्-

(६) प्रे द्रुस्तुस्रुवः।२७।

प०वि०-प्रे ७।१ द्रु-स्तु-स्रुवः ५।१।

स०-द्रुश्च स्तुश्च स्रुश्च एतेषां समाहारः-द्रुस्तुस्रु, तस्मात्-द्रुस्तुस्रुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रे द्रुस्तुस्रुवो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः प्र-पूर्वेभ्यो द्रुस्तुस्रुभ्यो धातुभ्यः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(द्रुः) प्रद्रावः। (स्तुः) प्रस्तावः। (स्रुः) प्रस्रावः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (प्रे) प्र-उपसर्गपूर्वक (द्रुस्तुस्रुवः) द्रु, स्तु, स्रु (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(द्रु) प्रद्रावः। पिघलना। (स्तु) प्रस्तावः। पेश करना। (स्रु) प्रस्रावः। झरना।

सिद्धि-(१) प्रद्रावः। प्र+द्रु+घञ्। प्र+द्रौ+अ। प्र+द्राव्+अ। प्रद्राव+सु। प्रद्रावः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'द्रु गतौ' (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'द्रु' धातु को वृद्धि होती है।

(२) प्रस्तावः। 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) पूर्ववत्।

(३) प्रस्रावः। 'स्रु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

घञ्–

(१०) निरभ्योः पूल्वोः ।२८।

प०वि०–निर्-अभ्योः ७।२। पू-ल्वोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०–निस् च अभिश्च तौ-निरभी, तयोः-निरभ्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। पूश्च लूश्च तौ-पूल्वौ, तयोः-पूल्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च निरभ्योः पूलूभ्यां धातुभ्यां घञ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाभ्यां यथासंख्यं निर्-अभि पूर्वाभ्यां पू-लूभ्यां धातुभ्यां परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(निस्+पूः) निष्पूयते शूर्पादिभिरिति निष्पावः=कोशी धान्यविशेषः। (अभि+लूः) अभिलावः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान यथासंख्य (निरभ्योः) निस् और अभि उपसर्गपूर्वक (पूल्वोः) पू, लू (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०–(निस्+पू) निष्पूयते शूर्पादिभिरिति निष्पावः=कोशी धान्यविशेषः। जो शूर्प=छाज आदि से निश्चिततः शुद्ध किया जाता है वह निष्पाव=कोशी नामक धान्यविशेष। (अभि+लू) अभिलावः। अभिमुख काटा जानेवाला सस्य आदि।

सिद्धि-(१) निष्पावः। निस्+पू+घञ्। निस्+पौ+अ। निः+पाव। निष्पाव+सु। निष्पावः।

यहां 'निस्' उपसर्गपूर्वक 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) तथा 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से कर्म कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'पू' धातु को वृद्धि होती है। 'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य' (८।३।४१) से षत्व होता है।

(२) अभिलावः। अभि उपसर्गपूर्वक 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) पूर्ववत्।

घञ्–

(११) उन्न्योर्ग्रः ।२६।

प०वि०–उत्-न्योः ७।२ ग्रः ५।१।

स०–उच्च निश्च तौ-उन्नी, तयोः-उन्नयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उन्न्योर्ग्रो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् उत्-नी पूर्वाद् गृ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(उत्) उद्गारः समुद्रस्य। (नि) निगारो देवदत्तस्य।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उन्न्योः) 'उत्' और 'नि' उपसर्गपूर्वक (ग्रः) गृ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(उत्) उद्गारः समुद्रस्य। समुद्र का अति प्रवृद्ध शब्द। (नि) निगारो देवदत्तस्य। देवदत्त का भक्षण करना (निगलना)।

सिद्धि-(१) उद्गारः। उत्+गृ+घञ्। उत्+गार्+अ। उद्गार+सु। उद्गारः।

यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'गॄ शब्दे' (क्र्या०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'गृ' धातु को वृद्धि होती है।

(२) निगारः। 'नि' उपसर्गपूर्वक 'गॄ निगरणे' (तु०प०) पूर्ववत्।

घञ्–

(१२) कॄ धान्ये।३०।

प०वि०-कॄ ५।१ (लुप्तपञ्चमीनिर्देशः) धान्ये ७।१।

अनु०-घञ्, उन्न्योरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च धान्ये उन्न्योः कॄ-धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे धान्ये च विषये वर्तमानाद् उत्-नीपूर्वात् कॄ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(उत्) उत्कारो धान्यस्य। (नि) निकारो धान्यस्य।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (धान्ये) धान्य विषय में विद्यमान (उन्न्योः) उत् और नि उपसर्गपूर्वक (कॄ) कॄ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(उत्) उत्कारो धान्यस्य। धान्य का ऊपर को फैंकना। (नि) निकारो धान्यस्य। धान्य का नीचे फैकना (बरसाना)।

सिद्धि-(१) उत्कारः। उत्+कॄ+घञ्। उत्+कार्+अ। उत्कार+सु। उत्कारः।

यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'कॄ विक्षेपे' (तु०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कॄ' धातु को वृद्धि होती है।

(२) निकारः। 'नि' उपसर्गपूर्वक 'कॄ' धातु से पूर्ववत्।

घञ्–

(१३) यज्ञे समि स्तुवः।३१।

प०वि०-यज्ञे ७।१ समि ७।१ स्तुवः ५।१।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च यज्ञे समि स्तुवो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे यज्ञे च विषये सम्-पूर्वात् स्तु-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-संस्तावश्छन्दोगानाम्। समेत्य स्तुवन्ति यस्मिन् देशे छन्दोगाः स देशः संस्ताव इत्युच्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (यज्ञे) यज्ञविषय में विद्यमान (समि) सम् उपसर्गपूर्वक (स्तुवः) स्तु (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-संस्तावश्छन्दोगानाम्। जहां सामगान करनेवाले ऋत्विग् लोग मिलकर स्तुतिगान करते हैं वह स्थान 'संस्ताव' कहाता है।

सिद्धि-(१) संस्तावः। सम्+स्तु+घञ्। सम्+स्तौ+अ। संस्ताव+सु। संस्तावः।

यहां सम् उपसर्गपूर्वक 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से अधिकरण कारक में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'स्तु' धातु को वृद्धि होती है।

घञ्–

(१४) प्रे स्त्रोऽयज्ञे।३२।

प०वि०-प्रे ७।१ स्त्रः ५।१ अयज्ञे ७।१।

स०-न यज्ञ इति अयज्ञः, तस्मिन्-अयज्ञे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे चायज्ञे प्रे स्त्रो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे यज्ञवर्जिते विषये वर्तमानात् प्र-पूर्वात् स्तृ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शङ्खप्रस्तारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अयज्ञे) यज्ञ विषय से रहित (प्रे) 'प्र' उपसर्गपूर्वक (स्त्रः) स्तृ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-शङ्खप्रस्तारः। शङ्खध्वनि का विस्तार।

सिद्धि-(१) प्रस्तारः। प्र+स्तृ+घञ्। प्र+स्तार्+अ। प्रस्तार+सु। प्रस्तारः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'स्तृञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'स्तृ' धातु को वृद्धि होती है।

घञ्–

(१५) प्रथने वावशब्दे।३३।

प०वि०-प्रथने ७।१ वौ ७।१ अशब्दे ७।१।

स०-न शब्द इति अशब्दः, तस्मिन् अशब्दे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-घञ्, स्त्र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे चाशब्दे प्रथने वौ स्त्रो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे शब्दवर्जिते प्रथने च विषये वि-पूर्वात् स्तृ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पटस्य विस्तारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अशब्दे) शब्द को छोड़कर (प्रथने) विस्तार विषय में (वौ) वि-उपसर्गपूर्वक (स्त्रः) स्तृ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-पटस्य विस्तारः। कपड़े का फैलाव।

सिद्धि-(१) विस्तारः। वि+स्तृ+घञ्। वि+स्तार्+अ। विस्तार+सु। विस्तारः।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'स्तृञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'स्तृ' धातु को वृद्धि होती है।

घञ्–

(१६) छन्दोनाम्नि च।३४।

प०वि०-छन्दोनाम्नि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-छन्दसो नाम इति छन्दोनाम, तस्मिन्-छन्दोनाम्नि (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-घञ्, स्त्रः, वौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च छन्दोनाम्नि वौ स्त्रो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि च कारके भावे चार्थे छन्दोनाम्नि च विषये वर्तमानाद् वि-पूर्वात् स्तृ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः। विष्टारबृहती छन्दः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में (च) तथा (छन्दोनाम्नि) छन्दोनाम विषय में विद्यमान (वौ) वि-उपसर्गपूर्वक (स्त्रः) स्तृ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः। विष्टारपङ्क्ति नामक एक वैदिक छन्द है। विष्टारबृहती छन्दः। विष्टारबृहती नामक एक वैदिक छन्द है।

सिद्धि-विष्टारः। वि+स्तृ+घञ्। वि+स्तार्+अ। वि+ष्टार्+अ। विष्टार+सु। विष्टारः।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'स्तृञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से छन्दोनाम विषय में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'स्तृ' धातु को वृद्धि होती है। 'छन्दोनाम्नि च' (८।३।९४) से षत्व और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से टुत्व होता है।

विशेष-छन्द- 'विष्टारपङ्क्तिरन्तः' (छन्दशास्त्र ३।४२) के प्रमाण से जिस छन्द के मध्य में दो पाद जगती छन्द के और आदि तथा अन्त के दो पाद गायत्री छन्द के होते हैं, उसे विष्टारपङ्क्ति छन्द कहते हैं। जैसे :-

अग्ने तव श्रवो यवो, महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।
बृहद् भानो शवसा वाजमुक्थ्यं, दधासि दाशुषे कवे।। (ऋ० १०।१४०।१)

विष्टारबृहती छन्द का पिंगलच्छन्दशास्त्र में उल्लेख नहीं है।

घञ्-

(१७) उदि ग्रहः।३५।

प०वि०-उदि ७।१ ग्रहः ५।१।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उदि ग्रहो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् उत्पूर्वाद् ग्रह-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-उद्ग्राहः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उदि) उत् उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-उद्ग्राहः। उत्कृष्ट विद्यादि गुण ग्रहण करना।

सिद्धि-उद्ग्राहः। उत्+ग्रह्+घञ्। उत्+ग्राह्+अ। उद्ग्राह+सु। उद्ग्राहः।

यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से ग्रह् धातु को उपधावृद्धि होती है।

घञ्-

(१८) समि मुष्टौ।३६।

प०वि०-समि ७।१ मुष्टौ ७।१।

अनु०-घञ्, ग्रह इति चानुवर्तते।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे मुष्टौ च विषये सम्-पूर्वाद् ग्रह्-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अहो मल्लस्य संग्राहः। अहो मुष्टिकस्य संग्राहः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान तथा (मुष्टौ) मुट्ठी विषय में (समि) सम् उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-अहो मल्लस्य संग्राहः। पहलवान की मुट्ठी की पकड़ कमाल की है। अहो मुष्टिकस्य संग्राहः। मुक्केबाज की पकड़ आश्चर्यजनक है।

सिद्धि-संग्राहः। सम्+ग्रह्+घञ्। सम्+ग्राह्+अ। संग्राह+सु। संग्राहः।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ग्रह्' धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् उपधावृद्धि होती है।

घञ्-

(१९) परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः।३७।

प०वि०-परि-न्योः ७।२ नी-इणोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) द्यूत-अभ्रेषयोः ७।२।

स०-परिश्च निश्च तौ परिनी, तयोः-परिन्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्व)। नीश्च इण् च तौ नीणौ, तयोः-नीणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। द्यूतं चाभ्रेषश्च तौ द्यूताभेषौ, तयोः-द्यूताभ्रेषयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च द्यूताभ्रेषयोः परिन्योर्नीण्भ्यां धातुभ्यां घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे यथासंख्यं द्यूताभ्रेषयोविषययोर्यथासंख्यं च परि-निपूर्वाभ्यां नी-इण्भ्यां धातुभ्यां परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**द्यूतम्**) परिणायेन शारान् हन्ति शकुनिः। (**अभ्रेषः**) एषोऽत्र न्यायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान, यथासंख्य (द्यूताभ्रेषयोः) द्यूत और अभ्रेष=यथाप्राप्त करने विषय में यथासंख्य (परिन्योः) 'परि' और 'नी' उपसर्गपूर्वक (नीणोः) 'नी' और 'इण्' धातु से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(द्यूत) **परिणायेन** शारान् हन्ति शकुनिः। शकुनि सब ओर प्राप्ति से द्यूत-क्रीडा के पासों को रोकता है। (अभ्रेष) एषोऽत्र **न्यायः**। यहां यह यथाप्राप्त (ठीक) है। अभ्रेष=प्रशस्त आचरण, यथाप्राप्तकरण।*

सिद्धि-(१) परिणायः। परि+नी+घञ्। परि+नै+अ। परि+नाय्+अ। परिणाय+सु। परिणायः।

*यहां 'परि' उपसर्गपूर्वक **'णीञ् प्रापणे'** धातु से द्यूतक्रीडा विषय में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'नी' धातु को वृद्धि होती है। **'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य'** (८।४।१४) से णत्व होता है।*

(२) न्यायः। नि+इण्+घञ्। नि+ऐ+अ। नि+आय्+अ। न्याय+सु। न्यायः।

*यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक **'इण् गतौ'** (अदा०प०) धातु से अभ्रेष=उचित आचरण विषय में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'इ' धातु को वृद्धि होती है।*

घञ्-

(२०) परावनुपात्यय इणः।३८।

प०वि०- परौ ७।१ अनुपात्यये ७।१ इणः ५।१। क्रमप्राप्तस्यानतिपातोऽनुपात्ययः, तस्मिन् अनुपात्यये। परिपाटीत्यर्थः।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे चानुपात्यये पराविणो धातोर्घञ्।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे अनुपात्यये च विषये वर्तमानात् परि-पूर्वादिण्-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-तव पर्यायः। मम पर्यायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान तथा (अनुपात्यये) परिपाटी विषय में (परौ) परि-उपसर्गपूर्वक (इणः) इण् धातु से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-तव पर्यायः। तेरी परिपाटी=बारी है। मम पर्यायः। मेरी परिपाटी=बारी है।

सिद्धि-पर्यायः। परि+इण्+घञ्। परि+ऐ+अ। परि+आय्+अ। पर्याय+सु। पर्यायः।

यहां 'परि' उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से अनुपात्यय=परिपाटी विषय में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'इ' धातु को वृद्धि होती है।

घञ्-

(२१) व्युपयोः शेतेः पर्याये।३६।

प०वि०-वि-उपयोः ७।२ शेतेः ५।१ पर्याये ७।१।

स०-विश्च उपश्च तौ-व्युपौ, तयोः-व्युपयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च पर्याये व्युपयोः शेतेर्धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे पर्याये च विषये वर्तमानाद् वि-उपपूर्वात् शीङ्-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(विः) तव विशायः। मम विशायः। (उपः) तव राजोपशायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (पर्याये) पर्याय=परिपाटी विषय में विद्यमान (व्युपयोः) 'वि' और 'उप' उपसर्गपूर्वक (शेतेः) शीङ् (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(वि) तव विशायः। तेरा शयन का पर्याय है। मम विशायः। मेरा शयन का पर्याय है। (उप) तव राजोपशायः। तेरा राजा के समीप शयन का पर्याय है। पर्याय=बारी।

घञ्–

(२२) हस्तादाने चेरस्तेये।४०।

प०वि०–हस्त-आदाने ७।१ चे: ५।१ अस्तेये ७।१।

स०–हस्तेनाऽऽदानमिति हस्तादानम्, तस्मिन्-हस्तादाने (तृतीयातत्पुरुषः)। न स्तेयमिति अस्तेयम्, तस्मिन्-अस्तेये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे चास्तेये हस्तादाने चेर्धातोर्घञ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे स्तेयवर्जिते हस्तादाने च विषये वर्तमानात् चि-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–पुष्पप्रचायः। फलप्रचायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (अस्तेये) चोरी को छोड़कर (हस्तादाने) हाथ से ग्रहण करना विषय में (चेः) चि (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-पुष्पप्रचायः। हाथ से फूल ग्रहण करना। फलप्रचायः। हाथ से फल ग्रहण करना।

सिद्धि-प्रचायः। प्र+चि+घञ्। प्र+चै+अ। प्र+चाय्+अ। प्रचाय+सु। प्रचायः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से परे हस्तादान विषय में 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'चि' धातु को वृद्धि होती है।

घञ्–

(२३) निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः।४१।

प०वि०–निवास-चिति-शरीर-उपसमाधानेषु ७।३ आदेः ६।१ च अव्ययपदम्, कः १।१।

स०–निवासश्च चितिश्च शरीरं च उपसमाधानं च तानि-निवास०उपसमाधानानि, तेषु-निवास०उपसमाधानेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–घञ्, चे:, इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च निवासचितिशरीरोपसमाधानेषु चेर्धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे निवासचितिशरीरोपसमाधानेषु चार्थेषु वर्तमानात् चि-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति, चिधातोरादेश्चकारस्य स्थाने च ककारादेशो भवति।

उदा०-(निवासः) चिखल्लिनिकायः। **(चितिः)**आकायमग्निं चिन्वीत। **(शरीरम्)** अनित्यकायः। **(उपसमाधानम्)** महागोमयनिकायः। चितिः=चयनम्। उपसमाधानम्=राशीकरणम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (निवास०उपसमाधानेषु) निवास, चिति, शरीर, उपसमाधान अर्थों में विद्यमान (चेः) चि (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है (च)और (आदेः) 'चि' धातु के आदि चकार के स्थान में (कः) ककार आदेश होता है।

उदा०-(निवास) चिखल्लिनिकायः। यह चिखल्लि जनपद का निवास=ग्राम है। (चिति) आकायमग्निं चिन्वीत। जिसमें अग्नि का चयन किया जाता है, उस यज्ञकुण्ड में अग्नि का आधान करे। (शरीर) अनित्यकायः। कायः=शरीर अनित्य है। (उपसमाधान) महागोमयनिकायः। बिखरे हुये गोमयों (गोबर) का एकत्र राशीकरण।

सिद्धि-(१) निकायः। नि+चि+घञ्। नि+चै+अ। नि+काय्+अ। निकाय+सु। निकायः।

यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से अधिकरण कारक में तथा अर्थ में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'चि' धातु को वृद्धि होती है। इसी सूत्र से 'चि' धातु के 'च' के स्थान में 'क' आदेश होता है।

(२) आकायः। यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'चि' धातु से अधिकरण कारक में तथा चिति=इष्टका-चयन अर्थ में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। आचीयन्ते इष्टका यस्मिन् सः-आकायः (यज्ञकुण्डम्)। इष्टका=ईंट।

(३) कायः। यहां पूर्वोक्त 'चि' धातु से अधिकरण कारक में तथा शरीर अर्थ में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। चीयन्तेऽस्थ्यादीनि यस्मिन् सः-कायः (शरीरम्)।

(४) निकायः। यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'चि' धातु से भाव में उपसमाधान=राशीकरण अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। निकायः=राशीकरणम्।

घञ्-

(२४) संघे चानौत्तराधर्ये।४२।

प०वि०-संघे ७।१ च अव्ययपदम्, अनौत्तराधर्ये ७।१।

स०-उत्तरे च अधरे च ते उत्तराधरा:, उत्तराधराणां भाव औत्तराधर्यम्, न औत्तराधर्यमिति अनौत्तराधर्यम्, तस्मिन्-अनौत्तराधर्ये (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुष:)।

अनु०-घञ्, चे:, आदेश्च क इति चानुवर्तते।

अन्वय:-अकर्तरि कारके भावे चानौत्तराधर्ये संघे चेर्धातोर्घञ्, आदेश्च क:।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे, औत्तराधर्यवर्जिते संघे च वाच्ये वर्तमानात् चि-धातो: परो घञ् प्रत्ययो भवति, चिधातोरादेश्चकारस्य स्थाने च ककारादेशो भवति।

उदा०-भिक्षुकनिकाय:। ब्राह्मणनिकाय:। वैयाकरणनिकाय:।

प्राणिनां समुदाय: सङ्घ इत्युच्यते। स च द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां भवति। समानधर्मनिवेशेन, औत्तराधर्येण च। अत्रौत्तराधर्यनिषेधात् समानधर्मनिवेशेन निष्पन्न: सङ्घो गृह्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा औत्तराधर्य से रहित संघ वाच्यार्थ में विद्यमान (चे:) चि (धातो:) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता (च) और (आदे:) 'चि' धातु के आदि चकार के स्थान में (क:) ककार आदेश होता है।*

उदा०-***भिक्षुकनिकाय:***। *भिक्षुकों का संघ।* ***ब्राह्मणनिकाय:***। *ब्राह्मणों का संघ।* ***वैयाकरणनिकाय:***। *वैयाकरणों के संघ।*

सिद्धि-निकाय:। *यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'चि' धातु से औत्तराधर्य से रहित संघ अर्थ में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेष-संघ-*प्राणियों का समुदाय संघ कहाता है। वह दो प्रकार से बनता है। पहला समानधर्म में प्रवेश करने से तथा दूसरा सूअर आदि के समान ऊपर नीचे पड़ने से। इसे औत्तराधर्य कहते हैं। यहां औत्तराधर्य से संघ का निषेध किया गया है तथा समानधर्म में प्रवेश से निष्पन्न संघ का ग्रहण किया गया है।*

णच्-

(२५) कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्।४३।

प०वि०-कर्म-व्यतिहारे ७।१ णच् १।१ स्त्रियाम् ७।१।

स०-कर्म=क्रिया। व्यतिहार:=परस्परं करणम्। कर्मणो व्यतिहार इति कर्मव्यतिहार:, तस्मिन्-कर्मव्यतिहारे (षष्ठीतत्पुरुष:)।

अन्वय:-अकर्तरि च कारके भावे च कर्मव्यतिहारे धातोर्णच् स्त्रियाम्।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे कर्मव्यतिहारे वर्तमानाद् धातो: परो णच् प्रत्ययो भवति, स्त्रियामभिधेयायाम्।

उदा०-व्यावक्रोशी वर्तते। व्यावलेखी वर्तते। व्यावहासी वर्तते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (कर्मव्यतिहारे) क्रिया के परस्पर करने में विद्यमान (धातो:) धातु से परे (णच्) णच् प्रत्यय होता है (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में।

उदा०-व्यावक्रोशी वर्तते। परस्पर आह्वान हो रहा है। व्यावलेखी वर्तते। परस्पर लेखन-कार्य चल रहा है। व्यावहासी वर्तते। परस्पर हास्य चल रहा है।

सिद्धि-(१) व्यावक्रोशी। वि+अव+क्रुश्+णच्। वि+अव+क्रोश्+अ। व्यवक्रोश+अञ्। व्यावक्रोश+ङीप्। व्यावक्रोशी+सु। व्यावक्रोशी।

यहां वि-अव उपसर्गपूर्वक 'क्रुश् आह्वाने' (भ्वा०प०) धातु से भाव में तथा कर्मव्यतिहार में इस सूत्र से 'णच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'णच: स्त्रियामञ्' (५।४।१४) से स्वार्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है। स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

(२) व्यावलेखी। 'लिख अक्षरविन्यासे' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(३) व्यावहासी। 'हसे हसने' (भ्वा०प०)। पूर्ववत्। 'न कर्मव्यतिहारे' (८।३।६) से 'ऐच्' आदेश का निषेध होने से 'तद्धितष्वचमादे:' (८।२।११७) से आदिवृद्धि होती है।

इनुण्-

(२६) अभिविधौ भाव इनुण्।४४।

प०वि०-अभिविधौ ७।१ भावे ७।१ इनुण् १।१।

स०-अभिविधि:=अभिव्याप्ति:, तस्मिन्-अभिविधौ।

अन्वय:-भावे धातोरिनुण् अभिविधौ।

अर्थ:-भावेऽर्थे वर्तमानाद् धातो: परो इनुण् प्रत्ययो भवति, अभिविधौ गम्यमाने।

उदा०-सांकूटिनं वर्तते। सांराविणं वर्तते। सांद्राविणं वर्तते।

आर्यभाषा-अर्थ-(भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (इनुण्) इनुण् प्रत्यय होता है, यदि वहां (अभिविधौ) अभिव्याप्ति अर्थ प्रकट हो।

उदा०-सांकूटिनं वर्तते। सब ओर दहन हो रहा है (आग लगी हुई है)। सांराविणं वर्तते। सब ओर शोर हो रहा है। सांद्राविणं वर्तते। सब ओर भगदड़ मच रही है।

सिद्धि-(१) सांकूटिनम्। सम्+कूट्+इनुण्। सम्+कूट+इन्। सांकूटिन्+अण्। सांकूटिन्+अ। सांकूटिन्+सु। सांकूटिनम्।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कूट परितापे, परिदाह इत्येके' (चु०आ०) धातु से भाव में तथा अभिविधि=अभिव्याप्ति की प्रतीति में इस सूत्र से 'इनुण्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'अणिनुणः' (५।४।१५) से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। 'इनण्यनपत्ये' (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव होने से 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से टि-लोप का अभाव है। यहां 'सम्' उपसर्ग अभिविधि=अभिव्याप्ति का द्योतक है।

(२) सांराविणम्। 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'रु शब्दे' (अदा०प०)।

(३) सांद्राविणम्। 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'द्रु गतौ' (भ्वा०प०)।

घञ्—

(२७) आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः।४५।

प०वि०-आक्रोशे ७।१ अव-न्योः ७।२ ग्रहः ५।१।

स०-अवश्च निश्च तौ-अवनी, तयोः-अवन्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अत्र दृष्टानुवृत्तिसामर्थ्याद् घञ् इत्यनुवर्तते, नाऽनन्तर इनुण् प्रत्ययः।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च अवन्योर्ग्रहो धातोर्घञ् आक्रोशे।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे, अव-निपूर्वाद् ग्रह्-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति, आक्रोशे गम्यमाने। आक्रोशः=शपनम्, अनिष्टाशंसनमित्यर्थः।

उदा०-**(अवः)** अवग्राहो हन्त ते वृषल! भूयात्। **(निः)** निग्राहो हन्त ते वृषल! भूयात्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अव-न्योः) अव और नि उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, यदि वहां (आक्रोशे) अनिष्ट की इच्छा प्रकट हो।

उदा०-(अव) अवग्राहो हन्त ते वृषल ! भूयात्। कोई वृषल (नीच) को कोप में कहता है-हे नीच ! तेरा अवग्राह=अभिभव (अवमान) हो। (नि) निग्राहो हन्त ते वृषल! भूयात्। हे नीच ! तुझे निग्राह=बाध (दु:ख) हो। यहां हन्त शब्द कोप का द्योतक है।

सिद्धि-(१) अवग्राहः। अव+ग्रह्+घञ्। अव+ग्राह्+अ। अवग्राह+सु। अवग्राहः।

यहां 'अव' उपसर्गपूर्वक 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से भाव में तथा आक्रोश की प्रतीति में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'ग्रह्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) निग्राहः। 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ग्रह्' धातु से पूर्ववत्।

घञ्-

(२८) प्रे लिप्सायाम्।४६।

प०वि०-प्रे ७।१ लिप्सायाम् ७।१। लब्धुमिच्छा=लिप्सा, तस्याम्-लिप्सायाम्।

अनु०-घञ्, ग्रह इति चानुवर्तते।

अर्थ:-कर्तरि कारके भावे चार्थे प्र-पूर्वाद् ग्रह-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति, लिप्सायां गम्यमानायाम्।

उदा०-पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षुः पिण्डार्थी। स्रुवप्रग्राहेण चरति द्विजो दक्षिणार्थी।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (प्रे) प्र-उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।, यदि वहां (लिप्सायाम्) किसी पदार्थ को प्राप्त करने की इच्छा प्रकट हो।

उदा०-पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षुः पिण्डार्थी। पिण्ड=चूर्मा आदि अन्न का इच्छुक भिक्षु भिक्षापात्र लेकर घूम रहा है। स्रुवप्रग्राहेण चरति द्विजो दक्षिणार्थी। दक्षिणा का इच्छुक ब्राह्मण स्रुव (चमस) लेकर घूम रहा है कि कोई यज्ञ करा ले और उसे दक्षिणा मिल जाये।

सिद्धि-पात्रप्रग्राहम्। प्र+ग्रह्+घञ्। प्र+ग्राह्+अ। प्रग्राह+सु। प्रग्राहम्। पात्र+प्रग्राहम्=पात्रप्रग्राहम्।

यहां पात्र उपपद तथा 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से भाव में तथा लिप्सा की प्रतीति में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'ग्रह्' धातु को उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही-स्रुवप्रग्राहम्।

घञ्–

(२९) परौ यज्ञे ।४७।

प०वि०–परौ ७।१ यज्ञे ७।१।

अनु०–घञ्, ग्रह इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च यज्ञे परौ ग्रहो धातोर्घञ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे यज्ञविषये च वर्तमानात् परि-पूर्वाद् ग्रह्-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–यज्ञवेद्या उत्तरः परिग्राहः। यज्ञवेद्या अधरः परिग्राहः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (यज्ञे) यज्ञविषय में विद्यमान (परौ) परि उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-यज्ञवेद्या उत्तरः परिग्राहः। स्फ्य (तलवार के आकार का यज्ञीयपात्र) से यज्ञवेदी के उत्तर भाग को ग्रहण करना। यज्ञवेद्या अधरः परिग्राहः। स्फ्य से यज्ञवेदी के अधोभाग को ग्रहण करना।

सिद्धि-परिग्राहः। यहां 'परि' उपसर्गपूर्वक 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से भाव में तथा यज्ञ विषय में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से ग्रह् धातु की उपधावृद्धि होती है।

घञ्–

(३०) नौ वृ धान्ये ।४८।

प०वि०–नौ ७।१ वृ ५।१ (लुप्तपञ्चमीनिर्देशः) धान्ये ७।१।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च नौ वृ-धातोर्घञ्, धान्ये।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् नि-पूर्वाद् वृ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति, धान्यविशेषेऽभिधेये।

उदा०–नीवारा नाम व्रीहयो भवन्ति। निव्रियन्त इति नीवाराः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (नौ) नि-उपसर्गपूर्वक (वृ) वृ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, यदि वहां (धान्ये) धान्यविशेष का कथन हो।

उदा०-नीवारा नाम व्रीहयो भवन्ति। नीवार तण्डुल को कहते हैं।

सिद्धि-नीवारः। नि+वृ+घञ्। नि+वार्+अ। नीवार+सु। नीवारः।

यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०) 'वृङ् सम्भक्तौ' (क्र्या०आ०) धातु से कर्म कारक में धान्यविशेष अर्थ में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'वृ' धातु को वृद्धि होती है। 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' (६।३।१२२) से 'नि' उपसर्ग को दीर्घ होता है।

घञ्-

(३१) उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः।४६।

प०वि०-उदि ७।१ श्रयति-यौति-पू-द्रुवः ५।१।

स०-श्रयतिश्च यौतिश्च पूश्च द्रुश्च एतेषां समाहारः-श्रयतियौतिपूद्रु, तस्यात्-श्रयतियौतिपूद्रुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उदि श्रयतियौतिपूद्रुवो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः उत्-पूर्वेभ्यः श्रयतियौतिपूद्रुभ्यो धातुभ्यः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(श्रयतिः) उच्छ्रायः। (यौतिः) उद्यावः। (पूः) उत्पावः। (द्रुः) उद्द्रावः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उदि) उत् उपसर्गपूर्वक (श्रयति०द्रुवः) श्रि, यु, पू, द्रु (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(श्रयति) उच्छ्रायः। ऊंचाई (यौति)। उद्यावः। मिश्रण करना। (पू) उत्पावः। यज्ञीय पात्रों को पवित्र करना। (द्रु) उद्द्रावः। उच्छलना।

सिद्धि-(१) उच्छ्रायः। उत्+श्रि+घञ्। उत्+श्रै+अ। उत्+श्राय। उत्+छ्राय। उच्छ्राय+सु। उच्छ्रायः।

यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'श्रिञ् सेवायाम्' (भ्वा०उ०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'श्रि' धातु को वृद्धि होती है। 'शश्छोऽटि' (८।४।६३) से 'श्' को 'छ्' और 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) से 'त्' को 'च्' आदेश होता है।

(२) उद्यावः। 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(३) उत्पावः। 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) तथा 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) पूर्ववत्।

(४) उद्द्रावः। 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'द्रु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

घञ्–

(३२) विभाषाऽऽङि रुप्लुवोः।५०।

प०वि०–विभाषा १।१ आङि ७।१ रु-प्लुवोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०–रुश्च प्लुश्च तौ-रुप्लुवौ, तयोः-रुप्लुवोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे चाऽऽङि रुप्लुभ्यां धातुभ्यां विभाषा घञ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाभ्याम् आङ्-पूर्वाभ्यां रु-प्लुभ्यां धातुभ्यां परो विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति। पक्षेऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(रुः) आरावः (घञ्)। आरवः (अप्)। (प्लुः) आप्लावः (घञ्)। आप्लवः (अप्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (आङि) आङ् उपसर्गपूर्वक (रुप्लुवोः) रु, प्लु (धातोः) धातुओं से परे (विभाषा) विकल्प से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है। विकल्प पक्ष में 'अप्' प्रत्यय होता है।

उदा०-(रु) आरावः (घञ्)। आरवः (अप्)। आवाज। (प्लु) आप्लावः (घञ्)। आप्लवः। उच्छलना-कूदना। डुबकी लगाना।

सिद्धि-(१) आरावः। आङ्+रु+घञ्। आ+रौ+अ। आ+आव्+अ। आराव+सु। आरावः।

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'रु शब्दे' (अदा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'रु' धातु को वृद्धि होती है।

(२) आरवः। आङ्+रु+अप्। आ+रो+अ। आ+रव्+अ। आरव+सु। आरवः।

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'रु' धातु से विकल्प पक्ष में 'ऋदोरप्' (३।३।५७) से 'अप्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (८।३।८४) से 'रु' धातु को गुण होता है।

(३) आप्लावः। 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'प्लुङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है।

(४) आप्लवः। 'आङ्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'प्लु' धातु से विकल्प पक्ष में पूर्ववत् 'अप्' प्रत्यय है।

घञ्–

(३३) अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ।५१।

प०वि०-अवे ७।१ ग्रहः ५।१ वर्ष-प्रतिबन्धे ७।१।

स०-वर्षस्य प्रतिबन्ध इति वर्षप्रतिबन्धः, तस्मिन्-वर्षप्रतिबन्धे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-घञ्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे ग्रहो धातोर्विभाषा घञ्, वर्षप्रतिबन्धे।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् अव-पूर्वाद् ग्रह्-धातोः परो विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति, वर्षप्रतिबन्धेऽभिधेये। पक्षेऽप् प्रत्ययो भवति। प्राप्तकालस्य वर्षस्य कुतश्चिन्निमित्तादभावो वर्षप्रतिबन्ध इत्युच्यते।

उदा०-अवग्राहो देवस्य (घञ्)। अवग्रहो देवस्य (अप्)।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अवे) अव-उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है। (वर्षप्रतिबन्धे) यदि वहां वर्षा के अभाव का कथन हो। विकल्प पक्ष में 'अप्' प्रत्यय होता है। वर्षाकाल में किसी कारण से वर्षा का अभाव होना वर्षप्रतिबन्ध कहाता है।*

उदा०-*अवग्राहो देवस्य (घञ्)। अवग्रहो देवस्य (अप्)। पर्जन्य देवता का न बरसना।*

सिद्धि-*(१) अवग्राहः। अव+ग्रह्+घञ्। अव+ग्राह्+अ। अवग्राह+सु। अवग्राहः।*

यहां 'अप' उपसर्गपूर्वक 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से भाव में तथा वर्षप्रतिबन्ध अर्थ में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से ग्रह धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) अवग्रहः। अव+ग्रह्+अप्। अव+ग्रह्+अ। अवग्रह+सु। अवग्रहः।

यहां 'अव' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ग्रह्' धातु से 'ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च' (३।३।५८) से 'अप्' प्रत्यय है।

घञ्–

(३४) प्रे वणिजाम्।५२।

प०वि०-प्रे ७।१ वणिजाम् ६।३।

अनु०-घञ्, विभाषा, ग्रह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रे ग्रहो धातोर्विभाषा घञ्, वणिजाम्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् प्र-पूर्वाद् ग्रह्-धातोः परो विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति, यदि प्रत्ययान्तं पदं वणिजां सम्बन्धि भवेत्। पक्षेऽप् प्रत्ययो भवति। अत्र वणिजां सम्बन्धेन तुलासूत्रं लक्ष्यते।

उदा०-तुलाप्रग्राहेण चरति वणिक् (घञ्)। तुलाप्रग्रहेण चरति वणिक् (अप्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान, (प्रे) प्र-उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है। यदि प्रत्ययान्त पद (वणिजाम्) बणियों से सम्बन्धित हो। यहां वणिक्-सम्बन्ध से तुला सूत्र का ग्रहण किया जाता है।

उदा०-तुलाप्रग्राहेण चरति वणिक् (घञ्)। बणिया तुला सूत्र को ग्रहण करके घूमता है। तुलाप्रग्रहेण चरति वणिक् (अप्)। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) प्रग्राहः। प्र+ग्रह्+घञ्। प्र+ग्राह्+अ। प्रग्राह+सु। प्रग्राहः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से वणिक्-सम्बन्धी तुला-सूत्र वाच्य में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से ग्रह् धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) प्रग्रहः। प्र+ग्रह्+अप्। प्र+ग्रह्+अ। प्रग्रह+सु। प्रग्रहः।

प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ग्रह्' धातु से 'ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च' (३।३।५२) से 'अप्' प्रत्यय है।

घञ्–

(३५) रश्मौ च।५३।

प०वि०-रश्मौ ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-घञ्, विभाषा, ग्रहः, प्र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रे ग्रहो धातोर्विभाषा घञ् रश्मौ च।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् प्र-पूर्वाद् ग्रह्-धातोः परो विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति, यदि प्रत्ययान्तं पदं रश्मिवाचकं भवेत्। पक्षेऽप् प्रत्ययो भवति। अत्र रथादियुक्तानामश्वादीनां संयमनार्था या रज्जुः सा रश्मिरिति गृह्यते।

उदा०-प्रग्राहोऽश्वस्य (घञ्)। प्रग्रहोऽश्वस्य (अप्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (प्रे) प्र-उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, (च) यदि प्रत्ययान्त पद (रश्मौ) रश्मि-वाचक हो।

यहां रथ आदि में जुड़े हुये घोड़े आदि को नियन्त्रित करने के लिये जो रस्सी होती है उसका रश्मि पद से ग्रहण किया जाता है, किरणवाची रश्मि पद का नहीं।

उदा०-प्रग्राहोऽश्वस्य। (घञ्)। प्रग्रहोऽश्वस्य (अप्)। घोड़े की लगाम।

सिद्धि-प्रग्राहः/प्रग्रहः। पूर्ववत्।

घञ्-

(३६) वृणोतेराच्छादने।५४।

प०वि०-वृणोतेः ५।१ आच्छादने ७।१।

अनु०-घञ्, विभाषा, प्र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रे वृणोतेर्विभाषा घञ्, आच्छादने।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् प्र-पूर्वाद् वृ-धातोः परो विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति, यदि प्रत्ययान्तं पदमाच्छादनविशेषवाचकं भवेत्। पक्षेऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रवारो देवदत्तस्य (घञ्)। प्रवरो देवदत्तस्य (अप्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (प्रे) प्र-उपसर्गपूर्वक (वृणोतेः) वृ (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, यदि प्रत्ययान्त पद (आच्छादने) आच्छादनविशेष=चादर का वाचक हो। विकल्प पक्ष में अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-प्रवारो देवदत्तस्य (घञ्)। प्रवरो देवदत्तस्य (अप्)। देवदत्त की चादर।

सिद्धि-(१) प्रवारः। प्र+वृ+घञ्। प्र+वार्+अ। प्रावार+सु। प्रावारः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०) धातु से आच्छादन विशेष अर्थ में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि होती है।

(२) प्रवरः। प्र+वृ+अप्। प्र+वर्+अ। प्रवर+सु। प्रवरः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'वृ' धातु से पूर्वोक्त अर्थ में विकल्प पक्ष में 'ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च' (३।३।५८) से 'अप्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'वृ' धातु को गुण होता है।

घञ्–

(३७) परौ भुवोऽवज्ञाने।५५।

प०वि०–परौ ७।१ भुवः ५।१ अवज्ञाने ७।१।

अनु०–विभाषा इत्येवानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च परौ भुवो धातोर्विभाषा घञ् अवज्ञाने।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् परि-पूर्वाद् भू-धातोः परो विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति, अवज्ञाने गम्यमाने। पक्षेऽप् प्रत्ययो भवति। अवज्ञानम्=असत्कारः।

उदा०–परिभावो देवदत्तस्य (घञ्)। परिभवो देवदत्तस्य (अप्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (परौ) परि-उपसर्गपूर्वक (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, यदि वहां (अवज्ञाने) असत्कार अर्थ प्रकट हो। विकल्प पक्ष में अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-परिभावो देवदत्तस्य (घञ्)। देवदत्त का असत्कार (अपमान)। परिभवो देवदत्तस्य (अप्)। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) परिभावः। परि+भू+घञ्। परि+भौ+अ। परि+भाव्+अ। परिभाव+सु। परिभावः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से अवज्ञान अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से भू-धातु को वृद्धि होती है।

(२) परिभवः। परि+भू+अप्। परि+भो+अ। परि+भव्+अ। परिभव+सु। परिभवः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'भू' धातु से पूर्वोक्त अर्थ में विकल्प पक्ष में 'ऋदोरप्' (३।३।५६) से 'अप्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'भू' धातु को गुण होता है।

अच्–

(३८) एरच्।५६।

प०वि०–एः ५।१ अच् १।१।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च एर्धातोरच्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् इकारान्ताद् धातोः परोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–चयः। जयः। अयः। क्षयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (एः) इकारान्त (धातोः) धातु से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है।

उदा०-चयः। चुनना। जयः। जीतना। अयः। चलना। क्षयः। नष्ट होना।

सिद्धि-(१) चयः। चि+अच्। चे+अ। चय्+अ। चय+सु। चयः।

यहां इकारान्त 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से परे इस सूत्र से भाव में 'अच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'चि' धातु को गुण होता है।

(२) जयः। 'जि जये' (भ्वा०प०)।

(३) अयः। 'इण् गतौ' (अदा०प०)।

(४) क्षयः। 'क्षि क्षये' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

अप्–

(३९) ॠदोरप्।५७।

प०वि०–ॠद्-ओः ५।१ अप् १।१। अत्र दकारो मुखसुखार्थः।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च ॠदोर्धातोरप्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्य ॠकारान्तेभ्य उकारान्तेभ्यश्च धातुभ्यः परोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(ॠः) करः। गरः। शरः। (उः) यवः। स्तवः। लवः। पवः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (ॠदोः) ॠकारान्त और उकारान्त (धातोः) धातुओं से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(ॠ) करः। करना। जिससे कार्य किया जाता है वह-कर (हाथ)। गरः। निगलना। जो निगला जाता है वह-गर (विष)। शरः। हिंसा करना। जिससे हिंसा की

जाती है वह-शर (बाण)। (उ) यवः। मिश्रण वा अमिश्रण करना। जिससे टूटा हुआ अंग जोड़ा जाता है वह-यव (जौ)। स्तवः। स्तुति करना। लवः। काटना। पवः। पवित्र करना।

सिद्धि-(१) करः। कृ+अप्। कर्+अ। कर+सु। करः।

यहां ऋकारान्त 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से जाने में तथा करण कारक में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है।

(२) गरः। 'गॄ निगरणे' (तु०प०)।

(३) शरः। 'शॄ हिंसायाम्' (क्र्या०प०)।

(४) यवः। 'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च' (अदा०प०)।

(५) स्तवः। 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०)।

(६) लवः। 'लूञ् छेदने' (स्वा०उ०)।

(७) पवः। 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०)।

अप्–

(४०) ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च।५८।

प०वि०-ग्रह-वृ-दृ-निश्चि-गमः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-ग्रहश्च वृश्च दृश्च निश्चिश्च गम् च एतेषां समाहारः-ग्रह०गम्, तस्मात्-ग्रह०गमः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च धातोरप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यो ग्रहादिभ्यो धातुभ्यश्च परोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ग्रहः) ग्रहः। (वृः) वरः। (दृः) दरः। (निश्चिः) निश्चयः। (गम्) गमः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (ग्रह०गमः) ग्रह, वृ, दृ, निश्चि, गम् (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(ग्रह) ग्रहः। ग्रहण करना। (वृ) वरः। वरण करना/जो वरण किया जाता है वह-वर (श्रेष्ठ)। (दृ) दरः। विदारण करना/जो विदीर्ण किया जाता है वह-दर (गड्ढा)। (निश्चि) निश्चयः। निश्चय करना। (गम्) गमः। गति करना/जिस पर चलते हैं वह-गम (मार्ग)।

सिद्धि-(१) ग्रहः। यहां 'ग्रह उपदाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है।

(२) वरः। 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०)।

(३) दरः। 'दृ विदारणे' (क्र्या०प०)।

(४) निश्चयः। 'निस्' उपसर्गपूर्वक 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०)।

अप्–

(४१) उपसर्गेऽदः।५९।

प०वि०–उपसर्गे ७।१ अदः ५।१।

अनु०–अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च उपसर्गेऽदो धातोरप्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् सोपसर्गाद् अदो धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–विघसः। प्रघसः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उपसर्गे) उपसर्गसहित (अदः) अद् (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

उदा०–विघसः। विशेष भोजन। प्रघसः। उत्तम भोजन।

सिद्धि-(१) विघसः। वि+अद्+अप्। वि+घस्लृ+अ। वि+घस्+अ। विघस+सु। विघसः।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'अद् भक्षणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। 'घञपोश्च' (२।४।३८) से 'अद्' धातु के स्थान में 'घस्लृ' आदेश होता है।

(२) 'प्र' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'अद्' धातु से पूर्ववत्।

णः+अप्–

(४२) नौ ण च।६०।

प०वि०–नौ ७।१ ण १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) च अव्ययपदम्।

अनु०–अप्, अद इति चानुवर्तते।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् नि-पूर्वाद् अद्-धातोः परोऽणोऽप् च प्रत्ययो भवति।

उदा०–(णः) न्यादः। (अप्) निघसः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (नौ) 'नि' उपसर्गपूर्वक (अदः) अद् (धातोः) धातु से परे (णः) ण (च) और (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(ण) न्यादः। निकृष्ट भोजन। (अप्) निघसः। घटिया भोजन।

सिद्धि-(१) न्यादः। नि+अद्+ण। नि+आद्+अ। न्याद+सु। न्यादः।

यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक 'अद् भक्षणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'अद्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) निघसः। नि+अद्+अप्। नि+घस्लृ+अ। नि+घस्+अ। निघस+सु। निघसः।

यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'अद्' धातु से इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। 'घञपोश्च' (२।४।३८) से 'अद्' धातु के स्थान में 'घस्लृ' आदेश होता है।

अप्–

(४३) व्यधजपोरनुपसर्गे।६१।

प०वि०-व्यध-जपोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) अनुपसर्गे ७।१।

स०-व्यधश्च जप् च तौ व्यधजपौ, तयोः-व्यधजपोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गः, तस्मिन्-अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे चानुपसर्गे व्यधजपिभ्यां धातुभ्याम् अप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाभ्याम् अनुपसर्गाभ्यां व्यधजपिभ्यां धातुभ्यां परोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(व्यधः) व्यधः। (जप्) जपः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अनुपसर्गे) उपसर्ग से रहित, (व्यधजपोः) व्यध, जप (धातोः) धातुओं से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(व्यध) व्यधः। शिकार करना। (जप्) जपः। प्रणव=ओ३म् का जप करना।

सिद्धि-(१) व्यधः। व्यध्+अप्। व्यध+सु। व्यधः।

यहां उपसर्गरहित 'व्यध ताडने' (दि०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है।

(२) जपः। 'जप मानसे च' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

अप्+घञ्–

(४४) स्वनहसोर्वा।६२।

प०वि०-स्वन-हसो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) वा अव्ययपदम्।

स०-स्वनश्च हस् च तौ स्वनहसौ, तयो:-स्वनहसो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-अप्, अनुपसर्गे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-अकर्तरि कारके भावे चानुपसर्गे स्वनहसिभ्यां धातुभ्याम् अप्।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाभ्याम् अनुपसर्गाभ्यां स्वनहसिभ्यां धातुभ्यां परोऽप् प्रत्ययो भवति। पक्षे घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(स्वन:) स्वन: (अप्)। स्वान: (घञ्)। (हस्) हस: (अप्)। हास: (घञ्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अनुपसर्गे) उपसर्ग से रहित (स्वनहसो:) स्वन, हस् (धातो:) धातुओं से परे (वा) विकल्प से (अप्) प्रत्यय होता है। विकल्प पक्ष में घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(स्वन:) स्वन: (अप्)। स्वान: (घञ्)। अलङ्कृत करना। (हस्) हस: (अप्)। हास: (घञ्)। हंसना।

सिद्धि-(१) स्वन:। यहां उपसर्गरहित 'स्वन अवतंसने' (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है।

(२) स्वान:। पूर्वोक्त 'स्वन' धातु से विकल्प पक्ष में 'भावे' (३।३।१८) से 'घञ्' प्रतयय है। 'अत उपधाया:' (७।२।११६) से 'स्वन्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(३) हस:। 'हसे हसने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्वोक्त 'अप्' प्रत्यय है।

(४) हास:। पूर्वोक्त 'हस्' धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है।

अप्+घञ्–

(४५) यमः समुपनिविषु च।६३।

प०वि०-यम: ५।१ सम्-उप-नि-विषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-सम् च उपश्च निश्च विश्च ते समुपनिवय:, तेषु-समुपनिविषु (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-अप्, अनुपसर्गे वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च समुपनिविषु अनुपसर्गे च यमो धातोर्वाऽप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् सम्-उप-नि-पूर्वाद् अनुपसर्गाच्च यम्-धातोः परो विकल्पेन अप्-प्रत्ययो भवति, पक्षे च घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(सम्)** संयमः (अप्)। संयामः (घञ्)। **(उपः)** उपयमः (अप्)। उपयामः (घञ्)। **(निः)** नियमः (अप्)। नियामः (घञ्)। **(विः)** वियमः (अप्)। वियामः (घञ्)। **(अनुपसर्गः)** यमः। यामः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (समुपनिविषु) सम्, उप, नि, वि उपसर्गपूर्वक और (अनुपसर्गे) उपसर्ग से रहित (यमः) यम् (धातोः) धातु से परे (वा) विकल्प से (अप्) अप् प्रत्यय होता है और विकल्प पक्ष में घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(सम्) संयमः (अप्)। संयामः (घञ्)। संयम करना/धारणा-ध्यान-समाधि का एकत्र भाव। (उप) उपयमः (अप्)। उपयामः (घञ्)। विवाह करना। (नि) नियमः (अप्)। नियामः (घञ्)। नियन्त्रण करना। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान। (वि) वियमः (अप्)। वियामः (घञ्)। विस्तार करना। (अनुपसर्ग) यमः। यामः। उपराम होना। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

सिद्धि-(१) संयमः। सम्+यम्+अप्। सम्+यम्+अ। संयम+सु। संयमः।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'यम उपरमे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'अप्' प्रतयय है।

(२) संयामः। सम्+यम्+घञ्। सम्+याम्+अ। संयाम+सु। संयामः।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'यम्' धातु से विकल्प पक्ष में 'भावे' (३।३।१८) से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) यम् धातु को उपधावृद्धि होती है।

(३) ऐसे ही शेष प्रयोग सिद्ध करें।

अप्+घञ्-

(४६) नौ गदनदपठस्वनः।६४।

प०वि०-नौ ७।१ गद-नद-पठ-स्वनः ५।१।

स०-गदश्च नदश्च पठश्च स्वन् च एतेषां समाहारः-गदनदपठस्वन्, तस्मात्-गदनदपठस्वनः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अप्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वय:-अकर्तरि कारके भावे च नौ गदनदपठस्वनो धातोर्वाऽप्।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यो नि-पूर्वेभ्यो गदनदपठस्वनिभ्यो धातुभ्य: परो विकल्पेन अप् प्रत्ययो भवति, पक्षे च घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(गद:) निगद: (अप्)। निगाद: (घञ्)। (नद:) निनद:। निनाद:। (पठ:) निपठ:। निपाठ:। (स्वन्) निस्वन:। निस्वान:।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (नौ) नि-उपसर्गपूर्वक (गदनदपठस्वन:) गद, नद, पठ, स्वन (धातो:) धातुओं से परे (वा) विकल्प से (अप्) अप् प्रत्यय होता है और विकल्प पक्ष में घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(गद) निगद: (अप्)। निगाद: (घञ्)। नीचे स्वर में बोलना। (नद) निनद:। निनाद:। नीचे स्वर में अव्यक्त ध्वनि। (पठ) निपठ: निपाठ:। नीचे स्वर में पढ़ना। (स्वन) निस्वन:। निस्वान:। मन्द शब्द।

सिद्धि-(१) निगद:। नि+गद्+अप्। नि+गद्+अ। निगद+सु। निगद:।

यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक 'गद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है।

(२) निगाद:। नि+गद्+घञ्। नि+गाद्+अ। निगाद+सु। निगाद:।

यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'गद्' धातु से विकल्प पक्ष में 'भावे' (३।३।१८) से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अत उपधाया:' (७।२।११६) से 'गद्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(३) निनद:/निनाद:। 'णद अव्यक्ते शब्दे' (भ्वा०प०)।

(४) निपठ:/निपाठ:। 'पठ व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०)।

(५) निस्वन:/निस्वान:। 'स्वन शब्दे' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

अप्+घञ्-

(४७) क्वणो वीणायां च।६५।

प०वि०-क्वण: ५।१ वीणायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अप्, अनुपसर्गे, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च नौ अनुपसर्गे च वीणायां क्वणो धातोर्वाऽप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् नि-पूर्वाद् अनुपसर्गाद् वीणायां च विषये क्वण्-धातोः परो विकल्पेन अप्-प्रत्ययो भवति, पक्षे च घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(निः) निक्वणः (अप्)। निक्वाणः (घञ्)। **(अनुपसर्गः)** क्वणः। क्वाणः। **(वीणायाम्)** कल्याणप्रक्वणा वीणा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (नौ) नि-उपसर्गपूर्वक और (अनुपसर्गे) उपसर्ग से रहित और (वीणायाम्) वीणविषय में (च) भी (क्वणः) क्वण् (धातोः) धातु से परे (वा) विकल्प से (अप्) अप् प्रत्यय होता है, विकल्प पक्ष में घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(नि) निक्वणः (अप्)। निक्वाणः (घञ्)। नुपूर-ध्वनि। (अनुपसर्गः) क्वणः। क्वाणः। शब्द करना। (वीणा) कल्याणप्रक्वणा वीणा। उत्तम स्वरवाली वीणा।

सिद्धि-(१) निक्वणः। नि+क्वण्+अप्। नि+क्वण्+अ। निक्वण+सु। निक्वणः।

यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक 'क्वण् शब्दार्थः' (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है।

(२) निक्वाणः। नि+क्वण+घञ्। नि+क्वाण्+अ। निक्वाण+सु। निक्वाणः।

यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'क्वण्' धातु से विकल्प पक्ष में 'भावे' (३।३।१८) से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'क्वण्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(३) कल्याणप्रक्वणा। 'कल्याणः प्रक्वणो यस्याः सा कल्याणप्रक्वणा (बहुव्रीहिः)। यहां 'अप्' प्रत्यय है।

अप्-

(४८) नित्यं पणः परिमाणे।६६।

प०वि०-नित्यम् १।१ पणः ५।१ परिमाणे ७।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तति।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च पणो धातोर्नित्यम् अप् परिमाणे।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् पण्-धातोः परो नित्यम् अप् प्रत्ययो भवति, परिमाणे गम्यमाने। नित्यग्रहणं विकल्प-निवृत्त्यर्थम्।

उदा०-मूलकपणः। शाकपणः। संव्यवहाराय मूलकादीनां यः परिमितो मुष्टिर्बध्यते तस्येदमभिधानम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (पणः) पण् (धातोः) धातु से परे (नित्यम्) सदा (अप्) अप् प्रत्यय होता है, (परिमाणे) यदि वहां परिमाण अर्थ प्रकट हो।

उदा०-मूलकपणः। बेचने के लिये बांधकर रखा गया मूलियों का गट्ठा। शाकपणः। बेचने के लिये बांधकर रखा गया पालक आदि शाक की मुष्टि (जुट्टी)।

सिद्धि-मूलकपणः। पण्+अप्। पण्+अ। पण+सु। पणः। मूलक+पणः=मूलकपणः। यहां मूलक उपपद 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-शाकपणः।

अप्-

(४६) मदोऽनुपसर्गे।६७।

प०वि०-मदः ५।१ अनुपसर्गे ७।१।

स०-न विद्यते उपसर्गो यस्य सः-अनुपसर्गः, तस्मिन्-अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च अनुपसर्गे मदो धातोरप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् अनुपसर्गाद् मद्-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-विद्यामदः। कुलमदः। धनमदः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अनुपसर्गे) उपसर्ग से रहित (मदः) मद् (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-विद्यामदः। विद्या के कारण अभिमान। कुलमदः। उच्च कुल के कारण अभिमान। धनमदः। धन के कारण अभिमान।

सिद्धि-(१) विद्यामदः। मद्+अप्। मद्+अ। मद+सु। मदः। विद्या+मदः= विद्यामदः।

यहां उपसर्ग रहित 'मदी हर्षग्लेपनयोः' (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। विद्यया मद इति विद्यामदः। 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' (२।१।३१) से तृतीया तत्पुरुष समास होता है। ऐसे ही-कुलमदः। धनमदः।

अप् (निपातनम्)-

(५०) प्रमदसम्मदौ हर्षे।७१।

प०वि०-प्रमद-सम्मदौ १।२ हर्षे ७।१।

स०-प्रमदश्च सम्मदश्च तौ प्रमदसम्मदौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रमदसम्मदावप् हर्षे।

अर्थः-अकर्तरि कारके भवे चार्थे हर्षेऽभिधेये प्रमदसम्मदौ शब्दौ अप्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते।

उदा०-कन्यानां प्रमदः। कोकिलानां सम्मदः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान और (हर्षे) हर्ष वाच्य होने पर (प्रमद-सम्मदौ) प्रमद और सम्मद शब्द (अप्) अप्=प्रत्ययान्त निपातित हैं।

उदा०-कन्यानां प्रमदः। कन्याओं की खुशी। कोकिलानां सम्मदः। कोयलों की खुशी। प्रमद शब्द कन्याओं के हर्ष में और सम्मद शब्द कोयलों के हर्ष अर्थ में रूढ़ हैं।

सिद्धि-(१) प्रमदः। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'मदी हर्षलेपनयोः' (भ्वा०प०) धातु से हर्षविशेष अर्थ में इस सूत्र से अप् प्रत्यय निपातित है। 'मदोऽनुपसर्गे' (३।३।६७) से उपसर्गरहित 'मद्' धातु से 'अप्' प्रत्यय प्राप्त था, किन्तु यहां हर्ष अर्थ में सोपसर्ग 'मद्' धातु से 'अप्' प्रत्यय का निपातन किया गया है। ऐसे ही-सम्मदः।

अप्-

(५१) समुदोरजः पशुषु।६६।

प०वि०-सम्-उदोः ७।२ अजः ५।१ पशुषु ७।३।

स०-सम् च उच्च तौ-समुदौ, तयोः-समुदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च पशुषु समुदोरजो धातोरप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे पशुविषये च वर्तमानात् सम्-उत्पूर्वाद् अजः-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सम्) समजः पशूनाम्। (उत्) उदजः पशूनाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (पशुषु) पशु-विषय में विद्यमान (समुदोः) सम् और उत् उपसर्गपूर्वक (अजः) अज् (धातोः) धातु से परे (अप्) प्रत्यय होता है।

उदा०-(सम्) समजः पशूनाम्। पशुओं का समूह। (उत्) उदजः पशूनाम्। पशुओं को प्रेरित करने का साधन कोड़ा (सांटा) आदि।

सिद्धि-(१) समजः। सम्+अज्+अप्। सम्+अज्+अ। समज+सु। समजः।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'अज गतिक्षेपणयोः' (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है।

(२) उदजः। 'उत्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'अज्' धातु से क्षेपण अर्थ में करण कारक में 'अप्' प्रत्यय है।

अप् (निपातनम्)-

(५२) अक्षेषु ग्लहः।७०।

प०वि०-अक्षेषु ७।३ ग्लहः १।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे अक्षे च विषये वर्तमानो ग्लहः शब्दोऽप् प्रत्ययान्तो निपात्यते।

उदा०-अक्षस्य ग्लहः।

"अक्षशब्देनात्र तत्साधनं देवनं (क्रीडा) लक्ष्यते। अक्षकर्मणि देवनविषये यत् पणरूपेण ग्राह्यं तद् ग्लहशब्देनोच्यते" इति पदमञ्जर्यां हरदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (अक्षेषु) अक्ष-विषय में विद्यमान (ग्लहः) ग्लह शब्द (अप्) अप् प्रत्ययान्त निपातित है।

उदा०-अक्षस्य ग्लहः। द्यूतक्रीडा में लगाई गई शर्त को जीतकर धन आदि ग्रहण करना।

सिद्धि-ग्लहः। ग्रह+अप्। ग्लह्+अ। ग्लह+सु। ग्लहः।

यहां 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से भाव में तथा अक्षक्रीडा विषय में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। निपातन से ग्रह् धातु के 'र्' को 'ल्' आदेश हो जाता है। 'अप्' प्रत्यय तो 'ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च' (३।३।५८) से सिद्ध था। यह लत्व के लिये निपातन किया गया है।

अप्–

(५३) प्रजने सर्तेः।७१।

प०वि०–प्रजने ७।१ सर्तेः ५।१।

अनु०–अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च प्रजने सर्तेर्धातोरप्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे प्रजने च विषये वर्तमानात् सर्ति-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति। प्रजनम्=प्रथमं गर्भग्रहणम्।

उदा०–गवामुपसरः। स्त्रीगवीषु पुंगवानां गर्भाधानाय प्रथममुपसंरणम्, उपसर इत्युच्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (प्रजने) प्रथम गर्भ-ग्रहण विषय में विद्यमान (सर्तेः) सृ (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-गवामुपसरः। साण्डों का गर्भाधान के लिये गौओं में प्रथम बार उपसरण होना 'उपसर' कहाता है।

सिद्धि-उपसरः। उप+सृ+अप्। उप+सर्+अ। उपसर+सु। उपसरः।

यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से प्रजन विषय में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'सृ' धातु को गुण होता है।

अप्–

(५४) ह्वः सम्प्रसारणं च न्यभ्युपविषु।७२।

प०वि०–ह्वः ५।१ सम्प्रसारणम् १।१ च अव्ययपदम् नि-अभि-उप-विषु ७।३।

स०–निश्च अभिश्च उपश्च विश्च ते-न्यभ्युपवयः, तेषु-न्यभ्युपविषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च न्यभ्युपविषु ह्वो धातोरप् सम्प्रसारणं च।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् नि-अभि-उप-विपूर्वाद् ह्वा-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, धातोश्च सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-**(निः)** निहवः। **(अभिः)** अभिहवः। **(उपः)** उपहवः। **(विः)** विहवः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (न्यभ्युपविषु) नि, अभि, उप, वि उपसर्गपूर्वक (ह्वः) ह्वा (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है (च) और ह्वा धातु को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

उदा०-(नि) निहवः। निमन्त्रण देना। (अभि) अभिहवः। अभिमुख बुलाना। (उप) उपहवः। पास बुलाना। (वि) विहवः। विशेष रूप से बुलाना।

सिद्धि-(१) निहवः। नि+ह्वा+अप्। नि+हु आ+अ। नि+हु+अ। नि+हो+अ। निहव+सु। निहवः।

यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक 'ह्वेञ् स्पर्धायाम्' (भ्वा०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से अप् प्रत्यय है और 'ह्वा' धातु को सम्प्रसारण होता है। 'ह्वा' धातु के 'व्' को 'उ' सम्प्रसारण, 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०४) से आ को पूर्व रूप होकर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'हु' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-अभिहवः, उपहवः, विहवः।

अप्-

(५५) आङि युद्धे।७३।

प०वि०-आङि ७।१ युद्धे ७।१।

अनु०-अप्, ह्वः, सम्प्रसारणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च आङि ह्वो धातोरप् सम्प्रसारणं च।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् आङ्-पूर्वाद् ह्वा-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, धातोश्च सम्प्रसारणं भवति, युद्धेऽभिधेये।

उदा०-आहूयन्ते यस्मिन् योद्धार इति आहवः=युद्धम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (आङि) आङ् उपसर्गपूर्वक (ह्वः) ह्वा (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है और ह्वा धातु को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है, (युद्धे) यदि वहां युद्ध वाच्यार्थ हो।

उदा०-आहूयन्ते यस्मिन् योद्धार इति आहवः=युद्धम्। जिसमें योद्धा जनों का आह्वान किया जाता है वह 'आहव' युद्ध कहाता है।

सिद्धि-आहवः। आङ्+ह्वा+अप्। आ+हु आ+अ। आ+हु+अ। आ+हो+अ। आहव+सु। आहवः।

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ह्वा' धातु से अधिकरण कारक में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय और 'ह्वा' धातु को सम्प्रसारण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अप् (निपातनम्)-

(५६) निपानमाहावः।७४।

प०वि०-निपानम् १।१ आहावः १।१।

अनु०-अप्, ह्वः, सम्प्रसारणम्, आङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च आहावोऽप्, निपानम्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमान आह्वाव-शब्दोऽप् प्रत्ययान्तो निपात्यते, यदि निपानमभिधेयं भवति। निपिबन्ति यस्मिंस्तत् निपानमुदकाधार उच्यते।

उदा०-आहावः पशूनाम्। कूपोपसरेषु य उदकाधारस्तत्र जलपानाय पशव आहूयन्ते, स आहाव इति कथ्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (आहावः) आहाव शब्द (अप्) अप्-प्रत्ययान्त निपातित है, यदि वहां (निपानम्) निपान वाच्यार्थ हो। जिसमें पशु झुककर जल पीते हैं उस जलाधार (खेळ) को निपान कहते हैं।

उदा०-आहावः पशूनाम्। कूप के ससमीप जो पशुओं के जलपान के लिये जलाधार (खेळ) आदि होते हैं, वहां छेक-छेक शब्द से पशु जलपान के लिये बुलाये जाते हैं, अतः वे 'आहाव' कहाते हैं।

सिद्धि-आहावः। आङ्+ह्वा+अप्। आ+हु आ+अ। आ+हु+अ। आ+हौ+अ। आहाव+सु। आहावः।

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ह्वा' धातु से अधिकरण कारक में तथा निपान वाच्यार्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है, 'ह्वा' धातु को सम्प्रसारण होता है। 'अप्' प्रत्यय परे होने पर सम्प्रसारित 'ह्वा' (हु) धातु को निपातन से वृद्धि होती है।

अप्–

(५७) भावेऽनुपसर्गस्य ।७५।

प०वि०–भावे ७ ।१ अनुपसर्गस्य ६ ।१ ।

स०–न विद्यते उपसर्गो यस्य सः–अनुपसर्गः, तस्मिन्–अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः) ।

अनु०–अप्, ह्वः, सम्प्रसारणमिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–भावेऽनुपसर्गाद् ह्वो धातोरप् सम्प्रसारणं च ।

अर्थः–भावेऽर्थे वर्तमानाद् अनुपसर्गाद् ह्वा-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, धातोश्च सम्प्रसारणं भवति ।

उदा०–हवः । हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।

आर्यभाषा-अर्थ–(भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अनुपसर्गस्य) उपसर्ग से रहित (ह्वः) ह्वा (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है और ह्वा धातु को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।

उदा०–हवः । स्पर्धा करना (बुलाना)।

सिद्धि–हवः । ह्वा+अप् । हु आ+अ । हु+अ । हो+अ । हव+सु । हवः ।

यहां उपसर्ग से रहित पूर्वोक्त 'ह्वा' धातु से केवल भाव अर्थ में ही इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय और 'ह्वा' धातु को सम्प्रसारण होता है। सम्प्रसारित 'ह्वा' धातु (हु) को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७ ।३ ।८४) से गुण होता है।

अप्–

(५८) हनश्च वधः ।७६।

प०वि०–हनः ५ ।१ (६ ।१) च अव्ययपदम्, वधः १ ।१ ।

अनु०–अप्, भावे, अनुपसर्गस्य इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–भावेऽनुपसर्गाद् हनो धातोरप् हनश्च वधः ।

अर्थः–भावेऽर्थे वर्तमानाद् अनुपसर्गाद् हन्-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, हनः स्थाने च वध-आदेशो भवति ।

उदा०-वधश्चोराणाम्। वधो दस्यूनाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अनुपसर्गस्य) उपसर्ग से रहित (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है (च) और (हनः) हन् धातु के स्थान में (वधः) वध-आदेश होता है।

उदा०-वधश्चोराणाम्। चोरों का हनन (वध)। वधो दस्यूनाम्। दस्यु=आर्येतर जनों का हनन (वध)।

सिद्धि-वधः। हन्+अप्। वध्+अ। वध+सु। वधः।

यहां उपसर्ग से रहित 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से केवल भाव अर्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है और 'हन्' के स्थान में वध् आदेश है।

अप्-

(५६) मूर्तौ घनः।७७।

प०वि०-मूर्तौ ७।१ घनः १।१।

अनु०-अप्, हन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च हनो धातोरप्, हनश्च घनो मूर्तौ।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् हन्-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, हन स्थाने च घन-आदेशो भवति, मूर्ताविभिधेयायाम्। मूर्तिः=काठिन्यमित्यर्थः।

उदा०-अभ्रघनः। दधिघनः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (अप्) प्रत्यय होता है और (हनः) हन् के स्थान में (घनः) घन-आदेश होता है, (मूर्तौ) यदि वहां मूर्ति वाच्यार्थ हो। मूर्तिः=कठोरता।

उदा०-अभ्रघनः। बादल की कठोरता=सघनता। दधिघनः। दही की कठोरता=कड़ापन।

सिद्धि-अभ्रघनः। हन्+अप्। घन्+अ। घन्+सु। घनः।

यहां 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से भाव अर्थ में तथा मूर्ति-भाव वाच्यार्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय और 'हन्' के स्थान में 'घन' आदेश है। अभ्रस्य घन इति अभ्रघनः (षष्ठीतत्पुरुषः)। ऐसे ही-दधिघनः।

अप्–

(६०) अन्तर्घनो देशे।७८।

प०वि०–अन्त: अव्ययपदम्, घन: १।१ देशे ७।१।

अनु०–अप्, हन इति चानुवर्तते।

अन्वय:–अकर्तरि कारके भावे च अन्त:पूर्वाद् हनो धातोरप्, हनश्च घनो देशे।

अर्थ:–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् हन्-धातो: परोऽप् प्रत्ययो भवति, हन: स्थाने च घन-आदेशो भवति, देशेऽभिधेये।

उदा०–अन्तर्घनो नाम देश:। संज्ञीभूतो वाहीकेषु देशविशेष उच्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अन्त:) अन्त: शब्दपूर्वक (हन:) हन् (धातो:) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है और हन् के स्थान में (घन:) घन-आदेश होता है, (देशे) यदि वहां देश-विशेष का कथन हो।

उदा०-अन्तर्घनो नाम देश:। वाहीक जनपद में एक देश विशेष का नाम 'अन्तर्घन:' है।

सिद्धि-अन्तर्घन:। अन्तर्+हन्+अप्। अन्तर्+घन्+अ। अन्तर्घन+सु। अन्तर्घन:।

यहां अन्त: शब्दपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से अधिकरण कारक में तथा देश विशेष के वाच्यार्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय और 'हन्' के स्थान में 'घन' आदेश है। अन्तर्हण्यन्ते प्राणिनो यत्र स:-अन्तर्घनो देश:। जिसके अन्दर प्राणी मारे जाते हैं, उस देश विशेष का नाम 'अन्तर्घन:' है।

विशेष-कहीं-कहीं 'अन्तर्घण:' पाठ मिलता है। उसे भी पाणिनि के शिष्य साधु मानते हैं। पाणिनि मुनि ने अपने शिष्यों को दोनों प्रकार का पाठ पढ़ाया है।

अप् (निपातनम्)–

(६१) अगारैकदेशे प्रघण: प्रघाणश्च।७६।

प०वि०–अगार-एकदेशे ७।१ प्रघण: १।१ प्रघाण: १।१ च अव्ययपदम्।

स०–अगारस्य एकदेश इति अगारैकदेश:, तस्मिन्-अगारैकदेशे (षष्ठीतत्पुरुष:)। अगार:=गृहम्।

अनु०–अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रघणः प्रघाणश्च अप्, अगारैकदेशे।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानः प्रघणः प्रघाणश्च शब्दोऽप्-प्रत्ययान्तो निपात्यते, अगारैकदेशेऽभिधेये।

उदा०-प्रघणः। प्रघाणः। प्रविशद्भिर्जनैः पादैः प्रकर्षेण हन्यत इति प्रघणः, प्रघाणो वा। "द्वारप्रदेशे द्वौ प्रकोष्ठावलिन्दौ आभ्यन्तरः, बाह्यश्च। तत्र बाह्यप्रकोष्ठे निपातनम्, नागारैकदेशमात्रे", इति पदमञ्जर्यां हरदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (प्रघणः) प्रघण (च) और (प्रघाणः) प्रघाण शब्द (अप्) अप्-प्रत्ययान्त निपातित हैं, (अगारैकदेशे) यदि वहां घर का एक देश वाच्यार्थ हो।

उदा०-प्रघणः प्रघाणः।

"घर के द्वार-प्रवेश पर दो प्रकोष्ठ (कमरे) होते हैं। उनमें एक अन्दर और एक बाहर होता है। बाह्य प्रकोष्ठ को प्रघण अथवा प्रघाण कहते हैं, अगार के एक देशमात्र को नहीं" (पं० हरदत्तमिश्रकृत पदमञ्जरी)।

सिद्धि-(१) प्रघणः। प्र+हन्+अप्। प्र+घन्+अ। प्र+घण्+अ। प्रघण+सु। प्रघणः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से कर्म करण कारक में तथा अगार एक देश के वाच्यार्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय निपातित है। निपातन से 'हन्' के स्थान में 'घन' आदेश होता है। 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' (८।४।३) से 'णत्व' होता है।

(२) प्रघाणः। यहां निपातन से 'हन्' धातु के 'घन्' आदेश को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अप् (निपातनम्)-

(६२) उद्घनोऽत्याधानम्।८०।

प०वि०-उद्घनः १।१ अत्याधानम् १।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उद्घनोऽप्, अत्याधानम्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमान उद्घनः शब्दोऽप्-प्रत्ययान्तो निपात्यते, यदि तद् अत्याधानं भवति। यस्मिन् काष्ठे स्थापयित्वाऽन्यानि काष्ठानि तक्ष्यन्ते तदत्याधानमित्युच्यते।

उदा०-उद्घनः। उद् हन्यन्ते यस्मिन् काष्ठानि स उद्घनः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उद्घनः) उद्घन शब्द (अप्) अप्-प्रत्ययान्त निपातित है, यदि उसका अर्थ (अत्याधानम्) अत्याधान हो। जिस काष्ठ पर रखकर दूसरे काष्ठ छीले जाते हैं, उसे अत्याधान कहते हैं।

उदा०-उद्घनः। अत्यधान (निह इति भाषा)।

सिद्धि-उद्घनः। उत्+हन्+अप्। उद्+घन्+अ। उद्घन+सु। उद्घनः।

यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से अधिकरण कारक में तथा अत्याधान अर्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय निपातित है। निपातन से 'हन्' के स्थान में 'घन्' आदेश होता है।

अप् (निपातनम्)–

(६३) अपघनोऽङ्गम्।८१।

प०वि०-अपघनः १।१ अङ्गम् १।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानोऽपघनशब्दोऽप् प्रत्ययान्तो निपात्यते, यदि तच्छरीराङ्गं भवति।

उदा०-अपघनः पाणिः। अपघनः पादः। अपहन्यते येन सः-अपघनः। अत्राङ्गशब्देन शरीरस्य पाणिपादमेव गृह्यते नाङ्गमात्रम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अपघनः) अपघन शब्द (अप्) अप्-प्रत्ययान्त निपातित है, यदि उसका अर्थ (अङ्गम्) शरीर का अङ्ग हो।

उदा०-अपघनः पाणिः। हाथ। अपघनः पादः। चरण। यहां अङ्ग से शरीर के पाणि और पाद का ग्रहण किया जाता है, अङ्गमात्र का नहीं।

सिद्धि-अपघनः। अप+हन्+अप्। अप+घन्+अ। अपघन+सु। अपघनः।

यहां 'अप्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से करण कारक में तथा शरीराङ्ग-विशेष अर्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। निपातन से 'हन्' के स्थान में 'घन्' आदेश होता है।

अप्–

(६४) करणेऽयोविद्रुषु।८२।

प०वि०-करणे ७।१ अयः-वि-द्रुषु ७।३।

स०-अयश्च विश्च द्रुश्च ते-अयोविद्रवः, तेषु-अयोविद्रुषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अप्, हनः, घन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणेऽयोविद्रुषु हनो धातोरप्, हनश्च घनः।

अर्थः-करणे कारके वर्तमानाद् अयोविद्रुपूर्वाद् हन्-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, हनः स्थाने च घन-आदेशो भवति।

उदा०-(अयः) अयो हन्यते येन सः-अयोघनः। (विः) विहन्यते येन सः-विघनः। (द्रुः) द्रुवो हन्यन्ते येन सः-द्रुघनः।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण कारक में विद्यमान (अयोविद्रुषु) अयः, वि, द्रु पूर्वक (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है और 'हन्' के स्थान में (घनः) घन-आदेश होता है।

उदा०-(अयः) अयो हन्यते येन सः-अयोघनः। जिससे अयः=लोहा पीटा जाता है, वह अयोघन=हथौड़ा। (वि) विहन्यते येन सः-विघनः। जिससे विविध प्रकार से लोहा आदि पीटा जाता है, वह विघन=हथौड़ी। (द्रु) द्रुवो हन्यन्ते येन सः-द्रुघनः। जिसे द्रु=वृक्ष की शाखायें काटी जाती है, वह द्रुघन=कुल्हाड़ी।

सिद्धि-(१) अयोघनः। अयस्+हन्+अप्। अयस्+घन्+अ। अयरु+घन्+अ। अयर्+घन्+अ। अयउ+घन्+अ। अयोघन+सु। अयोघनः।

यहां अयः उपपद पूर्वोक्त 'हन्' धातु से करण कारक में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। 'हन्' के स्थान में 'घन्' आदेश है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से 'अयस्' के 'स्' को रुत्व और 'हशि च' (६।१।११०) से 'र्' को उत्व होता है।

(२) विघनः। 'वि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से पूर्ववत्।

(३) द्रुघनः। 'द्रु' उपपद पूर्वोक्त 'हन्' धातु से पूर्ववत्।

कः+अप्–

(६५) स्तम्बे क च।८३।

प०वि०-स्तम्बे ७।१ क १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) च अव्ययपदम्।

अनु०-अप्, हनः, घनः, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणे स्तम्बे हनो धातोः कोऽप् च हनश्च घनः।

अर्थः-करणे कारके वर्तमानात् स्तम्बोपपदाद् हन्-धातोः परः कोऽप् च प्रत्ययो भवति, हनः स्थाने च घन-आदेशो भवति।

उदा०-स्तम्बो हन्यते येन सः-स्तम्बघ्नः (कः)। स्तम्बघनः (अप्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण कारक में विद्यमान (स्तम्बे) स्तम्ब-उपपदवाले (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (कः) क प्रत्यय (च) और (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-स्तम्बो हन्यते येन सः-स्तम्बघ्नः (कः)। स्तम्बघनः (अप्)। जिससे स्तम्ब=घास आदि काटा जाता है वह स्तम्बघ्न/स्तम्बघन=खुरपा आदि।

सिद्धि-(१) स्तम्बघ्नः। स्तम्ब+हन्+क। स्तम्ब+हन्+अ। स्तम्ब+घ्न्+अ। स्तम्बघ्न+सु। स्तम्बघ्नः।

यहां स्तम्ब उपपद पूर्वोक्त 'हन्' धातु से करण कारक में इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'गमहनजन०' (६।४।९८) से 'हन्' धातु को उपधा लोप और 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।३।५४) से 'हन्' धातु के 'ह्' को कुत्व 'घ्' होता है।

(२) स्तम्बघनः। यहां स्तम्ब उपपद पूर्वोक्त 'हन्' धातु से पूर्ववत् 'अप्' प्रत्यय और 'हन्' के स्थान में 'घन्' आदेश है।

अप्-

(६६) परौ घः।८४।

प०वि०-परौ ७।१ घः १।१।

अनु०-अप्, हनः, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणे परौ हनो धातोरप्, हनश्च घः।

अर्थः-करणे कारके वर्तमानात् परि-पूर्वाद् हन्-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, हनः स्थाने च घ-आदेशो भवति।

उदा०-परितो हन्यते येन सः-परिघः। पलिघः।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण (कारके) कारक में विद्यमान (परौ) परि-उपसर्गपूर्वक (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है और 'हन्' के स्थान में 'घ' सवदिश होता है।

उदा०-परितो हन्यते येन सः-परिघः। पलिघः। सब ओर मार करनेवाला शस्त्र (लोह का मुद्गर)।

सिद्धि-(१) परिघः। परि+हन्+अप्। परि+घ+अ। परिघ+सु। परिघः।

यहां 'परि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से करण कारक में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है और 'हन्' के स्थान में 'घ' सवदिश होता है।

(२) पलिघः। यहां 'परेश्च घाङ्कयोः' (८।२।२२) से 'परि' उपसर्ग के 'र्' को विकल्प से 'ल्' आदेश होता है।

अप्-(निपातनम्)-

(६७) उपघ्न आश्रये।८५।

प०वि०-उपघ्नः १।१ आश्रये ७।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उपघ्नोऽप्, आश्रये।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमान उपघ्नः शब्दोऽप्-प्रत्ययान्तो निपात्यते, आश्रयेऽभिधेये। आश्रयः=सामीप्यम्।

उदा०-पर्वतोपघ्नः। ग्रामोपघ्नः। पर्वतेन उपहन्यते=सामीप्येन गम्यते इति पर्वतोपघ्नः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उपघ्नः) उपघ्न शब्द (अप्) अप् प्रत्ययान्त निपातित है, यदि वहां (उपाश्रये) आश्रय=समीपता वाच्यार्थ हो।

*उदा०-**पर्वतोपघ्नः**। पर्वत के समीपस्थ=पहाड़ के सहारे। **ग्रामोपघ्नः**। ग्राम की समीपस्थ=गांव के सहारे।*

*सिद्धि-**पर्वतोपघ्नः**। उप+हन्+अप्। उप+हन्+अ। उप+घ्न्+अ। उपघ्न+सु। उपघ्नः। पर्वत+उपघ्नः। पर्वतोपघ्नः।*

*यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से कर्म कारक में तथा आश्रय अर्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। निपातन से 'गमहनजन०' (६।४।९८) से 'हन्' का उपधा-लोप होता है। 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।३।५४) से 'हन्' के 'ह्' को कुत्व 'घ्' होता है। पर्वतस्य उपघ्न इति **पर्वतोपघ्नः** (षष्ठीतत्पुरुषः)। ऐसे ही-**ग्रामोपघ्नः**।*

अप् (निपातनम्)-

(६८) संघोद्घौ गणप्रशंसयोः।८६।

प०वि०-संघ-उद्घौ १।२ गण-प्रशंसयोः ७।२।

स०-संघश्च उद्घश्च तौ-संघोद्घौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। गणश्च प्रशंसा च ते-गणप्रशंसे, तयोः-गणप्रशंसयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च संघोद्घावप् गणप्रशंसयोः।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानौ संघोद्घौ शब्दौ अप्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते, यथासंख्यं गणेऽभिधेये प्रशंसायां च गम्यमानायाम्।

उदा०-(गणः) संघः पशूनाम्। (प्रशंसा) उद्घो मनुष्याणाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (संघोद्घौ) संघ और उद्घ शब्द (अप्) अप्-प्रत्ययान्त निपातित हैं (गणप्रशंसयोः) यदि वहां यथासंख्य गण वाच्यार्थ और प्रशंसा अर्थ प्रकट हो।

उदा०-(गण) संघः पशूनाम्। पशुओं का गण (समुदाय)। (प्रशंसा) उद्घो मनुष्याणाम्। मनुष्यों में प्रशंसनीय।

सिद्धि-(१) संघः। सम्+हन्+अप्। सम्+ह्+अ। सम्+घ्+अ। संघ+सु। संघः।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से भाव में तथा गण अर्थ में इस सूत्र से अप् प्रत्यय है। निपातन से 'हन्' धातु का टि-लोप (अन्) और 'ह्' को 'घ्' आदेश होता है। संहननम्=संघः।

(२) उद्घः। उत्+हन्+अप्। उद्+ह्+अ। उद्+घ्+अ। उद्घ+सु। उद्घः।

यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से कर्म कारक में तथा प्रशंसा अर्थ में इस सूत्र से अप् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। उद्हन्यते=उत्कृष्टो ज्ञायत इति उद्घः। यहां 'हन्' धातु ज्ञानार्थक है।

अप् (निपातनम्)-

(६६) निघो निमितम्।८७।

प०वि०-निघः १।१ निमितम् १।१।

अनु०-अप् इत्यनुवतति।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च निघोऽप् निमित्तम्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानो निघः शब्दोऽप्प्रत्ययान्तो निपात्यते, निमितं चेद् अभिधेयं भवति। समन्ताद् मितमिति निमितम्, समानारोहपरिणाहम्।

उदा०-निघा वृक्षाः। निघाः शालयः। तुल्यारोहपरिणाहवन्त इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (निघः) निघ शब्द (अप्) अप् प्रत्ययान्त निपातित है, यदि उसका वाच्यार्थ (निमितम्) समान आरोह परिणाह हो। आरोह=ऊंचाई। परिणाह=फैलाव।

उदा०-निघा वृक्षाः। समान आरोह-परिणाहवाले वृक्ष। निघाः शालयः। समान आरोह-परिणाहवाले धान।

सिद्धि-(१) निघः। नि+हन्+अप्। नि+ह्+अ। नि+घ्+अ। निघ+सु। निघः।

यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से कर्म कारक तथा 'निमित' अर्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। निपातन से 'हन्' धातु का टि-लोप (अन्) और 'ह्' को 'घ्' आदेश होता है। निर्विशेषं हन्यते=ज्ञायत इति निघः, कर्मण्यप् प्रत्ययः।

क्त्रिः-

(७०) ड्वितः क्त्रिः।८८।

प०वि०-डु-इतः ५।१ क्त्रिः १।१।

स०-डु इद् यस्य सः-ड्वित् तस्मात्-ड्वितः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च ड्वितो धातोः क्त्रिः।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् डु-इतो धातोः परः क्त्रिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(डुपचष्) पक्त्रिमम्। (डुवप्) उप्त्रिमम्। (डुकृञ्) कृत्रिमम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (ड्वितः) डु इत् वाले (धातोः) धातु से परे (क्त्रिः) क्त्रि प्रत्यय होता है।

उदा०-(डुपचष्) पक्त्रिमम्। पाक से बना हुआ। (डुवप्) उप्त्रिमम्। बोने से बना हुआ। (डुकृञ्) कृत्रिमम्। बनाने से बना हुआ (बनावटी)।

सिद्धि-(१) पक्त्रिमम्। पच्+क्त्रि। पच्+त्रि। पक्त्रि+मप्। पक्त्रि+म। पक्त्रिम+सु। पक्त्रिमम्।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु के डु की 'आदिर्ञिटुडवः' (१।३।५) से इत्संज्ञा होती है। 'पच्' धातु के डु-इत्वाला होने से भाव में इस सूत्र से 'क्त्रि' प्रत्यय है। क्त्रि प्रत्ययान्त 'पक्त्रि' शब्द से 'क्त्रेर्मम्नित्यम्' (४।४।२०) से नित्य 'मप्' प्रत्यय होता है। केवल क्त्रि-प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग नहीं होता है।

(२) उप्त्रिमम्। वप्+क्त्रि। वप्+त्रि। उ अप्+त्रि। उप्+त्रि। उप्त्रि+मप्। उप्त्रि+म। उप्त्रिम+सु। उप्त्रिमम्।

यहां 'डुवप् बीजसन्ताने छेदने च' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से क्त्रि प्रत्यय है। 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से 'वप्' को सम्प्रसारण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) कृत्रिमम्। 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) पूर्ववत्।

अथुच्–

(७१) ट्वितोऽथुच् ।८६।

प०वि०–टु-इतः ५ ।१ अथुच् १ ।१ ।

स०–टु इद् यस्य सः–ट्वित्, तस्मात्–ट्वितः (बहुव्रीहिः) ।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च ट्वितो धातोरथुच् ।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाट् टु-इतो धातोः परोऽथुच् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–(टुवेपृ) वेपथुः ।(टुओश्वि) श्वयथुः । (टुक्षु) क्षवथुः ।

आर्यभाषा-अर्थ–(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (ट्वितः) टु इत् वाले (धातोः) धातु से परे (अथुच्) अथुच् प्रत्यय होता है ।

उदा०–(टुवेपृ) वेपथुः । कम्पन । (टुओश्वि) श्वयथुः । सूजन । (टुक्षु) क्षवथुः । खांसी ।

सिद्धि–(१) वेपथुः । वप्+अथुच् । वप्+अथु । वेपथु+सु । वेपथुः ।

यहां 'टुवेपृ कम्पने' (भ्वा०आ०) धातु के 'टु' की 'आदिर्ञिटुडवः' (१ ।३ ।५) से इत्-संज्ञा होती है । 'वेप्' धातु के टु-इत् वाला होने से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'अथुच्' प्रत्यय है ।

(२) श्वयथुः । श्वि+अथुच् । श्वे+अथु । श्वयथु+सु । श्वयथुः ।

यहां 'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः' (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अथुच्' प्रत्यय है । 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७ ।३ ।८४) से 'श्वि' धातु को गुण होता है ।

(३) क्षवथुः । 'टुक्षु शब्दे' (अदा०प०) पूर्ववत् ।

नङ्–

(७२) यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ।९०।

प०वि०–यज-याच-यत-विच्छ-प्रच्छ-रक्षः ५ ।१ नङ् १ ।१ ।

स०–यजश्च याचश्च यतश्च विच्छश्च प्रच्छश्च रक्ष् च एतेषां समाहारः–यज०रक्ष्, तस्मात्–यज०रक्षः (समाहारद्वन्द्वः) ।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च यज०रक्षो धातोर्नङ् ।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यो यजादिभ्यो धातुभ्यः परो नङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(यजः) यज्ञः। (याचः) याच्ञा। (यतः) यत्नः। (विच्छः) विश्नः। (प्रच्छः) प्रश्नः। (रक्ष्) रक्ष्णः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (यज०रक्षः) यज, याच, यत, विच्छ, प्रच्छ, रक्ष् (धातोः) धातुओं से परे (नङ्) नङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(यज) यज्ञः। देवपूजा, संगतिकरण और दान करना। (याच) याच्ञा। मांगना। (यत) यत्नः। प्रयत्न करना। (विच्छ) विश्नः। गति करना। (प्रच्छ) प्रश्नः। पूछना। (रक्ष्) रक्ष्णः। रक्षा करना। रखना।

सिद्धि-(१) यज्ञः। यज्+नङ्। यज्+न। यज्+ञ। यज्ञ+सु। यज्ञः।

यहां 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'नङ्' प्रत्यय है। 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) से 'नङ्' प्रत्यय के 'न्' को 'ञ्' आदेश होता है।

(२) याच्ञा। याच्+नङ्। याच्+न। याच्+ञ। याच्ञ+टाप्। याच्ञा+सु। याच्ञा।

यहां 'टुयाचृ याच्ञायाम्' (भ्वा०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'नङ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'नङ्' प्रत्यय के 'न्' को 'ञ्' आदेश होता है। याच्ञ+टाप्। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है। याच्ञा शब्द 'याच्ञा स्त्रियाम्' (लिङ्गानुशासन २।६।) से स्त्रीलिङ्ग में होता है, शेष 'नङ्' प्रत्ययान्त शब्द 'नङन्तः' (लि० २।५) से पुंलिङ्ग होते हैं।

(३) यत्नः। 'यती प्रयत्ने' (भ्वा०आ०)।

(४) विश्नः। विच्छ्+नङ्। विश्+न। विश्न+सु। विश्नः।

यहां 'विच्छ गतौ' (तु०प०)। 'छ्वोः शूडनुनासिके च' (६।४।१९) से 'छ्' के स्थान में 'श्' आदेश होता है। प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है।

(५) प्रश्नः। 'प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्' (तु०प०)। पूर्ववत् 'छ्' के स्थान में 'श्' आदेश होता है। 'प्रश्ने चासन्नकाले' (३।२।११७) ज्ञापक से 'ग्रहिज्यावयि०' (६।१।१६) से प्राप्त सम्प्रसारण नहीं होता है।

(६) रक्ष्णः। रक्ष्+नङ्। रक्ष्+न। रक्ष्+ण। रक्ष्ण+सु। रक्ष्णः।

यहां 'रक्ष रक्षणे' (भ्वा०प०) 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (८।४।१) से णत्व होता है।

नन्–

(७३) स्वपो नन्।६१।

प०वि०–स्वप: ५।१ नन् १।१।

अन्वय:–अकर्तरि कारके भावे च स्वपो धातोर्नन्।

अर्थ:–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात्-स्वप्-धातो: परो नन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–स्वप्न:।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (स्वप:) स्वप् (धातो:) धातु से परे (नन्) नन् प्रत्यय होता है।

उदा०–स्वप्न:। शयन करना।

सिद्धि–स्वप्न:। स्वप्+नन्। स्वप्+न। स्वप्न+सु। स्वप्न:।

यहां 'ञिष्वप् शये' (अदा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'नन्' प्रत्यय है। 'नन्' प्रत्यय के 'नित्' होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर होता है।

कि:–

(७४) उपसर्गे घो: कि:।६२।

प०वि०–उपसर्गे ७।१ घो: ५।१ कि: १।१।

अन्वय:–अकर्तरि कारके भावे च उपसर्गे घो: कि:।

अर्थ:–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्य: सोपसर्गेभ्यो घु-संज्ञकेभ्यो धातुभ्य: पर: कि: प्रत्ययो भवति।

उदा०–(दा) प्रदि:। (धा) प्रधि:। अन्तर्धि:।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उपसर्गे) उपसर्गपूर्वक (घो:) घु-संज्ञक (धातो:) धातुओं से परे (कि:) कि प्रत्यय होता है।

उदा०–(दा) प्रदि:। प्रदान करना। (धा) प्रधि:। धारण-पोषण करना। अन्तर्धि:। अन्तर्धान होना (छुपना)।

सिद्धि-(१) प्रदि:। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'कि' प्रत्यय है। 'कि' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'दा' के आ का लोप हो जाता है।

(२) प्रधिः। 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) पूर्ववत्।

(३) अन्तर्धिः। अन्तःपूर्वक पूर्वोक्त 'धा' धातु से पूर्ववत्।

विशेष-घु-'दाधा घ्वदाप्' (१।१।१९) से डुदाञ् दाने, दाण् दाने, दो अवखण्डने, देङ् रक्षणे, डुधाञ् धारणपोषणयोः, धेट् पाने इन छः धातुओं की घु-संज्ञा है। 'क्यन्तो घुः' (लि० २।७) से कि-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग होते हैं।

(७५) कर्मण्यधिकरणे च।६३।

प०वि०-कर्मणि ७।१ अधिकरणे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-घोः, किरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणे कर्मणि च घोर्धातोः किः।

अर्थः-अधिकरणे कारके वर्तमानेभ्यः कर्मोपपदेभ्यो घु-संज्ञकेभ्यो धातुभ्यः किः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(धा) जलं धीयते यस्मिन् सः-जलधिः। शरा धीयन्ते यस्मिन् सः-शरधिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अधिकरणे) अधिकरण (कारके) कारक में विद्यमान (कर्मणि) कर्म-उपपदवाले (घोः) घु-संज्ञक (धातोः) धातुओं से परे (किः) कि प्रत्यय होता है।

उदा०-(धा) जलं धीयते यस्मिन् सः-जलधिः। जिसमें जल रखा जाता है वह जलधि=समुद्र आदि। शरा धीयन्ते यस्मिन् सः-शरधिः। जिसमें शर=बाणों को रखा जाता है वह शरधि=तूणीर।

सिद्धि-जलधिः। जल+अम्+धा+कि। जल+ध्+इ। जलधि+सु। जलधिः।

यहां जल कर्म उपपद होने पर घुसंज्ञक 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से अधिकरण कारक में इस सूत्र से 'कि' प्रत्यय है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'धा' के आ का लोप होता है। ऐसे ही-शरधिः।

स्त्रीलिङ्गप्रत्ययप्रकरणम्

क्तिन्-

(१) स्त्रियां क्तिन्।६४।

प०वि०-स्त्रियाम् ७।१ क्तिन् १।१।

अन्वयः०-अकर्तरि कारके भावे च धातोः स्त्रियां क्तिन्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः सर्वेभ्यो धातुभ्यः परः स्त्रियां क्तिन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(कृ) कृतिः। (चि) चितिः। (मन) मतिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) सब धातुओं से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (क्तिन्) क्तिन् प्रत्यय होता है।

उदा०-(कृ) कृतिः। करना/रचना। (चि) चितिः। चयन करना/चिनना। (मन) मतिः। जानना।

सिद्धि-कृतिः। कृ+क्तिन्। कृ+ति। कृति+सु। कृतिः।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से क्तिन् प्रत्यय है। 'क्तिन्' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है।

(२) चितिः। 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) पूर्ववत्।

(३) मतिः। मन्+क्तिन्। मन्+ति। म+ति। मति+सु। मतिः।

यहां 'मन ज्ञाने' (दि०आ०)। 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से 'मन्' धातु के अनुनासिक 'न्' का लोप होता है।

क्तिन् (भावे)-

(२) स्थागापापचो भावे।६५।

प०वि०-स्था-गा-पा-पचः ५।१ भावे ७।१।

स०-स्थाश्च गाश्च पाश्च पच् च एतेषां समाहारः-स्थागापापच्, तस्मात्-स्थागापापचः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-स्त्रियां, क्तिन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भावे स्थागापापचो धातोः स्त्रियां क्तिन्।

अर्थः-भावेऽर्थे वर्तमानेभ्यः स्थागापापचिभ्यो धातुभ्यः स्त्रियां क्तिन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(स्था) प्रस्थितिः। (गा) उद्गीतिः। संगीतिः। (पा) प्रपीतिः। संपीतिः। (पच्) पंक्तिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (स्था०पचः) स्था, गा, पा, पच् (धातोः) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (क्तिन्) क्तिन् प्रत्यय होता है।

उदा०-(स्था) प्रस्थितिः। प्रस्थान करना। (गा) उद्गीतिः। उच्च स्वर से गान करना। संगीतिः। मिलकर गाना। (पा) प्रपीतिः। खूब पीना। सम्पीतिः। मिलकर पीना। (पच्) पंक्तिः। पकाना।

सिद्धि-(१) प्रस्थितिः । प्र+स्था+क्तिन् । प्र+स्था+ति । प्र+स्थि+ति । प्रस्थिति+सु । प्रस्थितिः ।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से भाव अर्थ में तथा स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'क्तिन्' प्रत्यय है। 'द्यतिस्यतिमा०' (७।४।४०) से 'स्था' के 'आ' को 'इत्त्व' होता है।

(२) उद्गीतिः । उत्+गा+क्तिन् । उद्+गा+ति । उद्+गी+ति । उद्गीति+सु । उद्गीतिः ।

यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'गै शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्तिन्' प्रत्यय है। 'घुमास्था०' (६।४।६६) से 'गा' के 'आ' को 'ईत्त्व' होता है। ऐसे ही-संगीतिः ।

(३) प्रपीतिः । यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्तिन्' प्रत्यय तथा पूर्ववत् 'ईत्त्व' होता है। ऐसे ही-सम्पीतिः ।

(४) पक्तिः । यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्तिन्' प्रत्यय है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'पच्' के 'च्' को कुत्व 'क्' होता है।

क्तिन्-

(३) मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः।९६।

प०वि०-मन्त्रे ७।१ वृष-इष-पच-मन-विद-भू-वी-राः १।३ (पञ्चम्यर्थे) उदात्तः १।१।

स०-वृषश्च इषश्च पचश्च मनश्च विदश्च भूश्च वीश्च राश्च ते-वृष०राः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-स्त्रियां भावे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मन्त्रे भावे वृषादिभ्यो धातुभ्यः स्त्रियां क्तिन् उदात्तः।

अर्थः-मन्त्रे विषये भावेऽर्थे वर्तमानेभ्यो वृषादिभ्यो धातुभ्यः परः स्त्रियां क्तिन् प्रत्ययो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-(वृष) वृष्टिः (ऋ० १।३८।२)। (इष) इष्टिः (ऋ० ४।४।७)। (पच) **पक्तिः** (ऋ० ४।२४।५)। (मन) **मतिः** (ऋ० ४।१४।१)। (विद) वित्तिः। (भू) भूतिः। (वी) वीतिः। **यन्ति वीतये** (अथर्व० २०।६९।३)। (रा) **रातिः** (ऋ० १।३४।१)।

आर्यभाषा-अर्थ-(मन्त्रे) वेदविषय में और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (वृष०रा:) वृष, इष, पच, मन, विद, भू, वी, रा (धातो:) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (क्तिन्) क्तिन् प्रत्यय होता है।

उदा०-(वृष) वृष्टि: (ऋ० १।३८।२) सींचना। (इष) इष्टि: (ऋ० ४।४।७) इच्छा करना। (पच) पक्ति: (ऋ० ४।२४।५) पकाना। (मन) मति: (४।१४।१) समझना/जानना। (विद) वित्ति:। जानना। (भू) भूति:। सत्ता होना। (वी) वीति:। गति आदि करना। यन्ति वीतये (अथर्व० २०।६९।३)। (रा) राति: (ऋ० १।३४।१) दान करना।

सिद्धि-(१) वृष्टि:। यहां मन्त्रविषय में 'वृष सेचने' (भ्वा०प०) धातु से भाव अर्थ में तथा स्त्रीलिङ्ग में 'क्तिन्' प्रत्यय है। 'ष्टुना ष्टु:' (८।४।४) से 'क्तिन्' प्रत्यय के 'त्' को 'ट्' आदेश होता है। 'क्तिन्' प्रत्यय के 'कित्' होने से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है। 'क्तिन्' प्रत्यय के 'नित्' होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से 'क्तिन्' प्रत्ययान्त शब्द को नित्य आद्युदात्त स्वर प्राप्त था, किन्तु इस सूत्र से केवल 'क्तिन्' प्रत्यय को उदात्त स्वर विधान किया गया है। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५८) से शेष स्वर अनुदात्त होता है।

(२) इष्टि:। 'इषु इच्छायाम्' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(३) पक्ति:। 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) 'चो: कु:' (८।४।३०) से 'पच्' के 'च्' को कुत्व 'क्' होता है।

(४) मति:। 'मन ज्ञाने' (दि०आ०) 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से 'मन्' के अनुनासिक 'न्' का लोप होता है।

(५) वित्ति:। 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) 'खरि च' (८।४।५४) से 'विद्' के 'द्' को चर् 'त्' होता है।

(६) भूति:। 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(७) वीति:। 'वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(८) राति:। 'रा दाने' (अदा०प०)।

क्तिन् (निपातनम्)-

(४) ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च।९७।

प०वि०-ऊति-यूति-जूति-साति-हेति-कीर्त्तय: १।३ च अव्ययपदम्।

स०-ऊतिश्च यूतिश्च जूतिश्च सातिश्च हेतिश्च कीर्तिश्च ता:-ऊति०कीर्तय: (इतरेतयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-स्त्रियां, क्तिन्, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च ऊति०कीर्त्तयश्च स्त्रियां क्तिन् उदात्तः।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमाना ऊति-आदयः शब्दा अपि स्त्रियां क्तिन्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते, अत्र च क्तिन् प्रत्यय उदात्तो भवति।

उदा०-ऊतिः। यूतिः। जूतिः। सातिः। हेतिः। कीर्तिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (ऊति०कीर्त्तयः) ऊति, यूति, जूति, साति, हेति, कीर्ति शब्द (क्तिन्) क्तिन् प्रत्ययान्त निपातित हैं और यहां 'क्तिन्' प्रत्यय (उदात्तः) उदात्त होता है। इससे ये शब्द अन्तोदात्त स्वरवाले होते हैं।

उदा०-ऊतिः। रक्षा आदि करना। यूतिः। मिश्रण-अमिश्रण करना। जूतिः। भागना। सातिः। अन्त होना। हेतिः। मारना/गति करना। कीर्तिः। स्तुति करना।

सिद्धि-(१) ऊतिः। अव्+क्तिन्। अव्+ति। ऊठ्+ति। ऊ+ति। ऊति+सु। ऊतिः।

यहां 'अव रक्षणादिषु' (भ्वा०प०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'क्तिन्' प्रत्यय है और अन्तोदात्त निपातित किया गया है। 'क्तिन्' प्रत्यय के 'नित्' होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से नित्य आद्युदात्त स्वर प्राप्त था। 'ज्वरत्वर०' (६।४।२०) से अव् धातु की उपधा (अ) तथा 'व्' के स्थान में 'ऊठ्' आदेश होता है।

(२) यूतिः। यु+क्तिन्। यू+ति। यूति+सु। यूतिः।

यहां 'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च' (अदा०प०) धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय, 'यु' धातु को दीर्घत्व और अन्तोदात्त स्वर निपातित है।

(३) जूतिः। 'जु वेगे' (सौत्रधातु) धातु को दीर्घत्व और अन्तोदात्त स्वर निपातित है।

(४) सातिः। 'षोऽन्तकर्मणि' (दि०प०) धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर 'द्यतिस्यति०' (७।४।४०) से प्राप्त इत्त्व निपातन से नहीं होता है। अथवा 'षणु दाने' (त०उ०) धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर 'जनसन०' (६।४।४२) से 'आत्व' होता है। निपातन से अन्तोदात्त स्वर होता है।

(५) हेतिः। 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से 'हन्' के अनुनासिक (न्) का लोप होता है। निपातन से 'हन्' के 'अ' को 'ए' आदेश होता है अथवा 'हि गतौ' (स्वा०प०) धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्राप्त गुण-प्रतिषेध निपातन से नहीं होता है।

(६) कीर्तिः। कृत्+णिच्। कृत्+इ+क्तिन्। कृत्+०+ति। कि र् त्+ति। की र् त्+ति। कीर्ति+सु। कीर्तिः।

यहां 'कृत संशब्दने' (चु०प०) धातु से चुरादि णिच् प्रत्यय करने पर 'ण्यासश्रन्थो युच्' (३।३।१०७) से 'युच्' प्रत्यय प्राप्त था, निपातन से 'क्तिन्' प्रत्यय होता है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से णिच् का लोप, 'उपधायाश्च' (७।१।१०१) से कृत् की उपधा (ऋ) को इत्त्व, 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से 'इ' को रपरत्व (इर्) और 'हलि च' (८।२।७८) से दीर्घ होता है।

क्यप् (भावे)–

(५) व्रजयजोर्भावे क्यप्।९८।

प०वि०-व्रज-यजोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) भावे ७।१ क्यप् १।१।

स०-व्रजश्च यज् च तौ-व्रजयजौ, तयोः-व्रजयजोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-स्त्रियाम्, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भावे व्रजयजिभ्यां धातुभ्यां स्त्रियां क्यप्, उदात्तः।

अर्थः-भावेऽर्थे वर्तमानाभ्यां व्रजयजिभ्यां धातुभ्यां परः स्त्रियां क्यप् प्रत्ययो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-(व्रज) व्रज्या। (यज्) इज्या।

आर्यभाषा-अर्थ-(भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (व्रजयजोः) व्रज, यज् (धातोः) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।

उदा०-(व्रज) व्रज्या। गति करना। (यज्) इज्या। देवपूजा, संगतिकरण और दान करना।

सिद्धि-(१) व्रज्या। व्रज्+क्यप्। व्रज्+य। व्रज्य+टाप्। व्रज्य+आ। व्रज्या+सु। व्रज्या।

यहां 'व्रज गतौ' (भ्वा०प०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से क्यप् प्रत्यय है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है। क्यप् प्रत्यय के पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त स्वर प्राप्त था, इस सूत्र से उदात्त स्वर होता है।

(२) इज्या। यज्+क्यप्। यज्+य। इ अ ज्+य। इज्+य। इज्य+टाप्। इज्य+आ। इज्या+सु। इज्या।

यहां 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय करने पर 'यज्' धातु को 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से सम्प्रसारण होता है। 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।४४) से 'अ' को पूर्वरूप एकादेश होता है, पूर्ववत् टाप् प्रत्यय है।

क्यप् (भावे)–

(६) संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः।९९।

प०वि०–संज्ञायाम् ७।१ समज-निषद-निपत-मन-विद-षुञ्-शीङ्-भृञ्-इणः ५।१।

स०–समजश्च निषदश्च निपतश्च मनश्च विदश्च षुञ् च शीङ् च भृञ् च इण् एतेषां समाहारः-समज०इण्, तस्मात्-समज०इणः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–स्त्रियाम्, उदात्तः, भावे, क्यप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–भावे समज०इणो धातोः स्त्रियां क्यप् उदात्तः संज्ञायाम्।

अर्थः–भावेऽर्थे वर्तमानेभ्यः समजादिभ्यो धातुभ्यः परः स्त्रियां क्यप् प्रत्ययो भवति, स चोदात्तो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–**(समज)** समज्या। **(निषद)** निषद्या। **(निपत)** निपत्या। **(मन)** मन्या। **(विद)** विद्या। **(षुञ्)** सुत्या। **(शीङ्)** शय्या। **(भृञ्)** भृत्या। **(इण्)** इत्या।

आर्यभाषा-अर्थ-(भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (समज०इणः) समज, निषद, निपत, मन, विद, षुञ्, शीङ्, भृञ्, इण् (धातोः) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है, यदि वहां (संज्ञायाम्) संज्ञा अर्थ प्रकट हो।

उदा०-(समज) समजन्ति=संगच्छन्ते यस्यां सा समज्या=सभा। जिसमें लोग कार्य के लिए संगत होते हैं। (निषद्) निषीदन्ति यस्यां सा निषद्या=आपणः। दुकान। जिसमें लोग व्यवहार के लिये बैठते हैं। (निपत) निपतन्ति यस्यां सा निपत्या=पिच्छिला भूमिः। चिकणी जमीन जिस पर लोग फिसलन से गिरते हैं। (मन) मन्यन्ते यया सा मन्या=गलपार्श्वशिरा, तया हि क्रुद्धो ज्ञायते। गल के पार्श्व की एक नाड़ी जिससे क्रुद्ध व्यक्ति जाना जाता है। (विद) विद्यते=गृह्यते ययाऽर्थः सा विद्या। जिससे यथार्थ में पदार्थ ग्रहण किया जाता है। (षुञ्) सूयते=अभिषूयते सोमो यस्यां सा

सुत्या=अभिषवदिवसः। वह दिन जिसमें सोम का सवन किया जाता है। (शीङ्) शय्यते यस्यां सा शय्या। जिस पर शयन किया जाता है वह खट्वा आदि। (भृञ्) भरणं भृत्या, जीविका। आजीविका (नौकरी आदि)। (इण्) ईयते=गम्यते यया सा इत्या=दीपिका। जिससे रात्रि में अयन=गमन किया जाता है, वह दीपिका (लालटेन आदि)।

सिद्धि-(१) समज्या। सम्+अज्+क्यप्। सम्+अज्+य। समज्य+टाप्। समज्य+आ। समज्या+सु। समज्या।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'अज गतिक्षेपणयोः' (भ्वा०प०) धातु से भाव अर्थ में संज्ञा विषय में तथा स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। संज्ञा की प्रतीति न होने से 'अजेर्व्यघञपोः' (२।४।५६) से 'अज' धातु के स्थान में 'वी' आदेश नहीं होता है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(२) निषद्या। 'नि' उपसर्गपूर्वक 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'क्यप्' प्रत्यय है।

(३) निपत्या। 'नि' उपसर्गपूर्वक 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(४) मन्या। 'मन ज्ञाने' (दि०आ०)।

(५) सुत्या। 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) से 'क्यप्' प्रत्यय परे होने पर 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।७१) से 'सु' धातु को 'तुक्' आगम होता है।

(६) शय्या। शीङ्+क्यप्। श् अयङ्+य। श् अय्+य। शय्य+टाप्। शय्य+आ। शय्या+सु। शय्या।

यहां 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय करने पर 'अयङ् यि क्ङिति' (७।४।२२) से 'शी' धातु को 'अयङ्' आदेश होता है।

(७) भृत्या। 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय करने पर 'भृ' धातु को 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'तुक्' आगम होता है।

(८) इत्या। 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय करने पर पूर्ववत् 'तुक्' आगम होता है।

शः+क्यप्–

(७) कृञः श च।१००।

प०वि०-कृञः ५।१ श १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) च अव्ययपदम्।

अनु०-स्त्रियां, क्यप्, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च कृञो धातोः स्त्रियां शः क्यप् च उदात्तः।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् कृञ्-धातोः परः स्त्रियां शः क्यप् च प्रत्ययो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-(कृञ्) क्रिया (शः)। कृत्या (क्यप्)। योगविभागात् क्तिन् प्रत्ययोऽपि विधीयते-कृतिः (क्तिन्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (स्त्रियाम्)। स्त्रीलिङ्ग में (शः) श प्रत्यय (च) और (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(कृञ्) क्रिया (श) कृत्या (क्यप्)। योग विभाग से क्तिन् प्रत्यय भी होता है-कृतिः। करना। 'वा वचनं कर्तव्यं क्तिन्नर्थम्' (महाभाष्य)।

सिद्धि-(१) क्रिया। कृ+श। क् रिङ्+अ। क् रि+अ। क् र् इयङ्+अ। क् र् इय्+अ। क्रिय+टाप्। क्रिय+आ। क्रिया+सु। क्रिया।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'श' प्रत्यय है। 'रिङ् शयग्लिङ्क्षु' (७।४।२८) से 'कृ' धातु को 'रिङ्' आदेश और उसे 'अचि श्नुधातु०' (६।४।७७) से 'इयङ्' आदेश होता है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(२) कृत्या। कृ+क्यप्। कृ+य। कृ+तुक्+य। कृत्य+टाप्। कृत्य+आ। कृत्या+सु। कृत्या।

यहां पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से 'क्यप्' प्रत्यय करने पर 'कृ' धातु को 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'तुक्' आगम होता है और पूर्ववत् टाप् प्रत्यय होता है।

(३) कृतिः। पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय है।

शः (निपातनम्)-

(८) इच्छा।१०१।

प०वि०-इच्छा १।१।

अनु०-स्त्रियां, श इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च इच्छा स्त्रियां शः।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमान इच्छाशब्दः स्त्रियां श-प्रत्ययान्तो निपात्यते।

उदा०-इच्छा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (इच्छा) इच्छा शब्द (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (शः) श-प्रत्ययान्त निपातित है।

उदा०-इच्छा। चाहना।

सिद्धि-इच्छा। इष्+श। इष्+अ। इछ्+अ। इ तुक् छ्+अ। इच्छ्+अ। इच्छ्+टाप्। इच्छ+आ। इच्छा+सु। इच्छा।

यहां 'इषु इच्छायाम्' (भ्वा०प०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'श' प्रत्यय है। 'श' प्रत्यय के 'शित्' होने से 'इषुगमियमां छः' (७।३।७७) से 'इष्' के 'ष्' को 'छ्' आदेश होता है। 'छे च' (६।१।७१) से 'इ' को 'तुक्' आगम तथा 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) से 'त्' को 'च्' आदेश होता है। 'श' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से भाववाच्य में 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से प्राप्त 'यक्' विकरण-प्रत्यय निपातन से नहीं होता है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।

अः-

(६) अ प्रत्ययात्।१०२।

प०वि०-अ १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) प्रत्ययात् ५।१।

अनु०-स्त्रियामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रत्ययान्ताद्धातोः स्त्रियाम् अः।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः परः स्त्रियाम् अ-प्रत्ययो भवति। क्तिनोऽपवादः।

उदा०-चिकीर्षा। जिहीर्षा। पुत्रीया। पुत्रकाम्या। लोलूया। कण्डूया।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (प्रत्ययात्) प्रत्ययान्त (धातोः) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अः) 'अ' प्रत्यय होता है। यह क्तिन् प्रत्यय का अपवाद है।

उदा०-चिकीर्षा। करने की इच्छा। जिहीर्षा। हरने की इच्छा। पुत्रीया। अपने पुत्र की इच्छा। पुत्रकाम्या। अपने पुत्र की इच्छा। लोलूया। पुनः-पुनः काटना। कण्डूया। खाज करना।

सिद्धि-(१) चिकीर्षा। चिकीर्ष+अ। चिकीर्ष्+अ। चिकीर्ष+टाप्। चिकीर्ष+आ। चिकीर्षा+सु। चिकीर्षा।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से प्रथम सन् प्रत्यय और तत्पश्चात् सन्नन्त चिकीर्ष धातु से इस सूत्र से

स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय है। 'अतो लोपः' (६।४।४८) से अङ्ग के 'अ' का लोप और 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(२) जिहीर्षा। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

(३) पुत्रीया। यहां प्रथम 'पुत्र' सुबन्त से 'सुप आत्मनः क्यच्' (३।१।८) से क्यच् प्रत्यय और तत्पश्चात् क्यच्-प्रत्ययान्त 'पुत्रीय' धातु से इस धातु से स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय है।

(४) पुत्रकाम्या। यहां प्रथम 'पुत्र' शब्द से 'काम्यच्च' (३।१।९) से 'काम्यच्' प्रत्यय और तत्पश्चात् काम्यच् प्रत्ययान्त 'पुत्रकाम्य' धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय है।

(५) लोलूया। यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से प्रथम 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय, तत्पश्चात् 'यङ्' प्रत्ययान्त 'लोलूय' धातु से इस सूत्र से 'अ' प्रत्यय है।

(६) कण्डूया। यहां 'कण्डूञ् गात्रविघर्षणे' (कण्डू०उ०) धातु से प्रथम 'कण्ड्वादिभ्यो यक्' (३।१।२७) से 'यक्' प्रत्यय और तत्पश्चात् 'यक्' प्रत्ययान्त 'कण्डूय' धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय है।

अः–

(१०) गुरोश्च हलः।१०३।

प०वि०-गुरोः ५।१ च अव्ययपदम्, हलः ५।१।

अनु०-स्त्रियाम्, अ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च हलो गुरोश्च धातोः स्त्रियाम् अः।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् हलन्ताद् गुरुमतश्च धातोः परः स्त्रियाम् अ-प्रत्ययो भवति।

उदा०-कुण्डा। हुण्डा। ईहा। ऊहा। शिक्षा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (हलः) हलन्त (गुरोः) गुरुमान् (धातोः) धातु से परे (च) भी स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अः) अ-प्रत्यय होता है।

उदा०-कुण्डा। दाह (जलना)। हुण्डा। संघात (समूह होना)। ईहा। चेष्टा। ऊहा। वितर्क। शिक्षा। विद्या ग्रहण करना।

सिद्धि-(१) कुण्डा। कुडि+अ। कु नुम् ड्+अ। कुण्ड्+अ। कुण्ड+टाप्। कुण्ड+आ। कुण्डा+सु। कुण्डा।

यह 'कुडि दाहे' (भ्वा०आ०) इस हलन्त, गुरुमान् धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय है। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(२) हुण्डा। 'हुडि संघाते' (भ्वा०आ०)।

(३) ईहा। 'ईह चेष्टायाम्' (भ्वा०आ०)।

(४) ऊहा। 'ऊह वितर्के' (भ्वा०आ०)।

(५) शिक्षा। 'शिक्ष विद्योपादाने' (भ्वा०आ०)।

अङ्–

(११) षिद्भिदादिभ्योऽङ्।१०४।

प०वि०–षिद्-भिदादिभ्यः ५।३ अङ् १।१।

स०–ष इद् येषां ते षितः, भिद् आदिर्येषां ते भिदादयः। षितश्च भिदादयश्च ते षिद्भिदादयः, तेभ्यः षिद्भिदादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित-इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–स्त्रियामित्यनुवर्तते।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च धातुभ्यः परः स्त्रियाम् अङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(षितः)** जॄष्-जरा। त्रपूष्-त्रपा। **(भिदादयः)** भिदा। छिदा।

भिदादयः–भिदा। छिदा। विदा। क्षिपा। गुहा गिरि-ओषध्योः। श्रद्धा। मेधा। गोधा। आरा। हारा। कारा। क्षिया। तारा। धारा। लेखा। रेखा। चूडा। पीडा। वपा। वसा। सृजा। क्रपेः सम्प्रसारणं च-कृपा इति भिदादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (षिद्भिदादिभ्यः) षित् और भिद् आदि (धातोः) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अङ्) अङ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-*(षित्) जॄष्-जरा। बुढ़ापा। त्रपूष्-त्रपा। लज्जा। (भिदादि) भिदा। फाड़ना। छिदा। काटना। इत्यादि।*

सिद्धि-*(१) जरा। यहां 'जॄष् वयोहानौ' (दि०उ०) इस 'षित्' धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'अङ्' प्रत्यय है। 'अङ्' प्रत्यय के 'ङित्' होने से 'क्ङिति च' (१।१।५)*

से गुण-प्रतिषेध प्राप्त था किन्तु 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से अङ्ग (जॄ) को गुण होता है।

(२) त्रपा। त्रपूष् लज्जायाम् (भ्वा०आ०)।

(३) भिदा। भिदिर् विदारणे। (रुधा०प०)।

(४) छिदा। 'छिदिर् द्वैधीकरणे। (रुधा०प०)।

अङ्–

(१२) चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च।१०५।

प०वि०–चिन्ति-पूजि-कथि-कुम्बि-चर्चः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–चिन्तिश्च पूजिश्च कथिश्च कुम्बिश्च चर्च् च एतेषां समाहारः-चिन्ति०चर्च्, तस्मात् चिन्ति०चर्चः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–स्त्रियाम्, अङ् चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च चिन्ति०चर्चो धातोः स्त्रियाम् अङ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यश्चिन्तिपूजिकथिकुम्बि-चर्चिभ्यो धातुभ्यः परः स्त्रियाम् अङ्-प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**चिन्तिः**) चिन्ता। (**पूजिः**) पूजा। (**कथिः**) कथा। (**कुम्बिः**) कुम्बा। (**चर्चः**) चर्चा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (चिन्ति०चर्चः) चिन्ति, पूजि, कथि, कुम्बि, चर्च (धातोः) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अङ्) अङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(चिन्ति) चिन्ता। स्मरण करना। (पूजि) पूजा। पूजा करना। (कथि) कथा। कहना। (कुम्बि) कुम्बा। सघन बाड़। 'कुम्बा सुगहना वृत्तिः'इत्यमरः। (चर्च) चर्चा। अध्ययन करना।

सिद्धि-(१) चिन्ता। चिति+णिच्+अङ्। चिति+अ। चि नुम् त्+अ। चिन्त्+अ। चिन्त+टाप्। चिन्त+आ। चिन्ता+सु। चिन्ता।

यहां 'चिति स्मृत्याम्' (चुरादि०) धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'अङ्' प्रत्यय है। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से धातु को 'नुम्' आगम होता है। यह 'ण्यासश्रन्थो युच्' (३।३।१०७) से 'युच्' प्रत्यय का पूर्वापवाद है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है।

(२) पूजा। 'पूज पूजायाम्' (चुरादि०)।

(३) कथा। 'कथ वाक्यप्रबन्धे' (चुरादि०)।

(४) कुम्बा। 'कुबि आच्छादने' (चुरादि०)।

(५) चर्चा। 'चर्च अध्ययने' (चुरादि०)।

अङ्–

(१३) आतश्चोपसर्गे।१०६।

प०वि०-आतः ५।१ च अव्ययपदम्, उपसर्गे ७।१।

अनु०-स्त्रियाम्, अङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उपसर्गे आतो धातोः स्त्रियाम् अङ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः सोपसर्गेभ्य आकारान्तेभ्योऽपि धातुभ्यः परः स्त्रियाम् अङ् प्रत्ययो भवति। क्तिनोऽपवादः।

उदा०-प्रदा। उपदा। प्रधा। उपधा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उपसर्गे) उपसर्गपूर्वक (आतः) आकारान्त (धातोः) धातुओं से (च) भी परे (अङ्) अङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-प्रदा। प्रदान करना (भेंट)। उपदा। उपदान करना (रिश्वत)। प्रधा। प्रधारण करना (पहनना)। उपधा। उपधारण करना (ओढना)।

सिद्धि-(१) प्रदा। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) इस आकारान्त धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'अङ्' प्रत्यय है। यह 'क्तिन्' प्रत्यय का अपवाद है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'अङ्ग' के आकार का लोप और तत्पश्चात् 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(२) उपदा। 'उप' उपसर्गपूर्वक पूर्ववत् 'दा' धातु।

(३) प्रधा। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०)।

(४) उपधा। 'उप' उपसर्गपूर्वक पूर्ववत् 'धा' धातु।

युच्–

(१४) ण्यासश्रन्थो युच्।१०७।

प०वि०-णि-आस-श्रन्थः ५।१ युच् १।१।

स०-णिश्च आसश्च श्रन्थ् च एतेषां समाहारः-ण्यासश्रन्थ, तस्मात्-ण्यासश्रन्थः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-स्त्रियामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च ण्यासश्रन्थो धातोः स्त्रियां युच्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यो णिजन्तेभ्यो धातुभ्यः आस-श्रन्थिभ्यां च धातुभ्यां परः स्त्रियां युच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(णिः) कारणा। हारणा। (आसः) आसना। (श्रन्थः) श्रन्थना।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (ण्यासश्रन्थः) णिजन्त धातु, आस तथा श्रन्थ (धातोः) धातु से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (युच्) युच् प्रत्यय होता है।

उदा०-(णि) कारणा। कार्य कराना। हारणा। चोरी कराना। (आस) आसना। बैठना। (श्रन्थ) श्रन्थना। शिथिल होना (ढीलापन)।

सिद्धि-(१) कारणा। कृ+णिच्+युच्। कारि+यु। कार्+अन। कारण+टाप्। कारण+आ। कारणा+सु। कारणा।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय और तत्पश्चात् णिजन्त 'कारि' धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'युच्' प्रत्यय होता है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि, 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णि' का लोप, 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश और 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।१।२) से णत्व होता है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में टाप् प्रत्यय होता है। यह 'अ' प्रत्यय का अपवाद है।

(२) हारणा। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०)।

(३) आसना। 'आस उपवेशने' (अदा०आ०)।

(४) श्रन्थना। 'श्रथि शैथिल्ये' (भ्वा०आ०)।

ण्वुल्-

(१५) रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम्।१०८।

प०वि०-रोग-आख्यायाम् ७।१ ण्वुल् १।१ बहुलम् १।१।

स०-रोगस्य आख्या इति रोगाख्या, तस्याम्-रोगाख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-स्त्रियामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च धातोः स्त्रियां बहुलं ण्वुल्, रोगाख्यायाम्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परः स्त्रियां बहुलं ण्वुल् प्रत्ययो भवति, रोगाख्यायां गम्यमानायाम्।

उदा०-प्रच्छर्दिका। प्रवाहिका। विचर्चिका। बहुलग्रहणं व्यभिचारार्थं तेनेह न भवति-शिरोऽर्तिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (बहुलम्) प्रायशः (ण्वुल्) ण्वुल् प्रत्यय होता है (रोगाख्यायाम्) यदि वहां किसी रोगविशेष का कथन हो।

उदा०-प्रच्छर्दिका। वमन (उलटी)। प्रवाहिका। पेचिश। विचर्चिका। दाद। यहां बहुल-ग्रहण विधि के व्यभिचार के लिये है अतः यहां ण्वुल् प्रत्यय नहीं होता है-शिरोऽर्तिः। सिरदर्द।

सिद्धि-(१) प्रच्छर्दिका। प्र+छर्द्+ण्वुल्। प्र+छर्द्+अक। प्रच्छर्दक। प्रच्छर्दक+टाप्। प्रच्छर्दिक+आ। प्रच्छर्दिका+सु। प्रच्छर्दिका।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'छर्द उद्वमने' (जु०प०) धातु से इस सूत्र से रोगविशेष अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में ण्वुल् प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय और 'प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः' (७।३।४४) से इत्त्व होता है।

(२) प्रवाहिका। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०)।

(३) विचर्चिका। 'वि' उपसर्गपूर्वक 'चर्च अध्ययने' (चुरादि०)।

(४) शिरोऽर्तिः। अर्द्+क्तिन्। अर्द्+ति। अर्त्+ति। अर्ति+सु। अर्तिः। शिरस्+अर्तिः। शिररु+अर्तिः। शिर् र्+अर्तिः। शिर उ+अर्तिः। शिरोर्तिः।

यहां 'अर्द हिंसायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' (३।३।४४) से 'क्तिन्' प्रत्यय, 'खरि च' (८।४।५४) से 'द्' को चर्त्व 'त्' होता है। शिरस् शब्द के साथ षष्ठीसमास- 'शिरसोऽर्तिरिति शिरोऽर्तिः'। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से रुत्व, 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' (६।१।१०९) से उत्व, 'आद्गुणः' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश और 'एङः पदान्तादति' (६।१।१०५) से 'अ' को पूर्वरूप होता है। यहां बहुलवचन से 'ण्वुल्' प्रत्यय नहीं होता है।

ण्वुल्-

(१६) संज्ञायाम्।१०६।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-स्त्रियां, ण्वुल् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च धातोः स्त्रियां ण्वुल् संज्ञायाम्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परः स्त्रियां ण्वुल् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-उद्दालकपुष्पभञ्जिका। वरणपुष्पप्रचायिका। अभ्यूषखादिका। आचोषखादिका। शालभञ्जिका। तालभञ्जिका।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ण्वुल्) ण्वुल् प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञाविषय की प्रतीति हो।

*उदा०-**उद्दालकपुष्पभञ्जिका**। उद्दालक वृक्ष के फूल तोड़ने की क्रीडा। **वरणपुष्पप्रचायिका**। वरण वृक्ष के फूल चुनने की क्रीडा। **अभ्यूषखादिका**। अभ्यूष=अपूपविशेष खाने की क्रीडा। **आचोषखादिका**। आचोष=खाद्यविशेष खाने की क्रीडा। **शालभञ्जिका**। शाल तोड़ने की क्रीडा। **तालभञ्जिका**। ताल तोड़ने की क्रीडा।*

*सिद्धि-(१) **उद्दालकपुष्पभञ्जिका**। भञ्ज्+ण्वुल्। भञ्ज्+अक। भञ्जक+टाप्। भञ्जक+आ। भञ्जिका+सु। भञ्जिका। उद्दालकपुष्प+भञ्जिका=उद्दालकपुष्पभञ्जिका।*

यहां उद्दालकपुष्प उपपद 'भञ्जो आमर्दने' (रु०प०) धातु से अधिकरण कारक में, संज्ञा विषय में और स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। 'नित्यं क्रीडाजीविकयोः' (२।२।१६) से क्रीडा अर्थ में नित्य षष्ठीसमास होता है। शेष कार्य 'प्रच्छर्दिका' के समान है।

*(२) **वरणपुष्पप्रचायिका**। वरणपुष्प उपपद, प्र उपसर्ग पूर्वक 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०)।*

*(३) **अभ्यूषखादिका**। अभ्यूष उपपद 'खादृ भक्षणे' (भ्वा०प०)।*

*(४) **आचोषखादिका**। आचोष उपपद 'खादृ भक्षणे' (भ्वा०प०)।*

*(५) **शालभञ्जिका**। शाल उपपद 'भञ्जो आमर्दने' (रु०प०)।*

*(६) **तालभञ्जिका**। ताल उपपद 'भञ्जो आमर्दने' (रु०प०)।*

इञ्+ण्वुल्-

(१७) विभाषाऽऽख्यानपरिप्रश्नयोरिञ् च।११०।

प०वि०-विभाषा १।१ आख्यान-परिप्रश्नयोः ७।२। इञ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-आख्यानं च परिप्रश्नश्च तौ-आख्यानपरिप्रश्नौ, तयोः-आख्यानपरिप्रश्नयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पूर्वं परिप्रश्नः पश्चाच्चाख्यानं

भवति। 'अल्पाच्तरम्' (२।२।३४) इति नियमादाऽऽख्यानशब्दस्य पूर्वनिपात: कृत:।

अनु०-स्त्रियां ण्वुल् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-अकर्तरि कारके भावे च धातो: स्त्रियां विभाषा इञ् ण्वुल् चाऽऽख्यान-परिप्रश्नयो:।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् धातो: पर: स्त्रियां विकल्पेन इञ् ण्वुल् च प्रत्ययो भवति, परिप्रश्ने आख्याने च कर्त्तव्ये। अत्र विभाषा-वचनाद् यथाप्राप्तं सर्वे प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-परिप्रश्ने (इञ्) कां कारिमकार्षी: ? (ण्वुल्) कां कारिकामकार्षी: ? (श:) कां क्रियामकार्षी: ? (क्यप्) कां कृत्यामकार्षी: ? (क्तिन्) कां कृतिमकार्षी: ? **आख्याने**-(इञ्) सर्वां कारिमकार्षम्। (ण्वुल्) सर्वां कारिकामकार्षम्। (श:) सर्वां क्रियामकार्षम्। (क्यप्) सर्वां कृत्यामकार्षम्। (क्तिन्) सर्वां कृतिमकार्षम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातो:) धातु से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (विभाषा) विकल्प से (इञ्) इञ् (च) और (ण्वुल्) ण्वुल् प्रत्यय होता है। (आख्यानपरिप्रश्नयो:) यदि वहां प्रश्न और उत्तर हो। यहां विभाषा=वचन से यथाप्राप्त सब प्रत्यय होते हैं।

उदा०-प्रश्न-(इञ्) कां कारिमकार्षी: ? (ण्वुल्) कां कारिकामकार्षी: ? (श) कां क्रियामकार्षी ? (क्यप्) कां कृत्यामकार्षी: ? (क्तिन्) कां कृतिमकार्षी: ? तूने क्या कार्य किया ? उत्तर-(इञ्) सर्वां कारिमकार्षम्। (ण्वुल्) सर्वां कारिकामकार्षम्। (श) सर्वां क्रियामकार्षम्। (क्यप्) सर्वां कृत्यामकार्षम्। (क्तिन्) सर्वां कृतिमकार्षम्। मैंने सब कार्य कर लिया।

सिद्धि-(१) कारि:। कृ+इञ्। कार्+इ। कारि+सु। कारि:।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से परिप्रश्न और आख्यान अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है।

(२) कारिका। कृ+ण्वुल्। कृ+अक। कार्+अक। कारक+टाप्। कारक+आ। कारिका+सु। कारिका।

यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'ण्वुल्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और 'प्रत्ययस्थात्०' (७।३।४४) से 'इत्त्व' होता है।

(३) क्रिया। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से कृञः श च' (३।३।१००) से 'श' प्रत्यय है। शेष कार्य वहीं देखें।

(४) कृत्या। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'कृञः श च' (३।३।१००) से 'क्यप्' प्रत्यय है। शेष कार्य वहीं देखें।

(५) कृतिः। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है।

ण्वुच्–

(१८) पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच्।१११।

प०वि०-पर्याय-अर्ह-ऋण-उत्पत्तिषु ७।३ ण्वुच् १।१।

स०-पर्यायश्च अर्हश्च ऋणं च उत्पत्तिश्च ताः-पर्यायार्हर्णोत्पत्तयः, तासु-पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-स्त्रियां विभाषा इति चानुवर्तते।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परः स्त्रियां विकल्पेन ण्वुच् प्रत्ययो भवति, पर्याय-अर्ह-ऋण-उत्पत्तिष्वर्थेषु द्योत्येषु। पर्यायः=परिपाटीक्रमः। अर्हः=तद्योग्यता। ऋणम्=यत् परस्य धारयते तत्। उत्पत्तिः=जन्म।

उदा०-(**पर्यायः**) भवतः शायिका। भवतोऽग्रग्रासिका। (**अर्हः**) अर्हति भवान् इक्षुभक्षिकाम्। (**ऋणम्**) इक्षुभक्षिकां मे धारयसि। ओदनभोजिकां मे धारयसि। पयःपायिकां में धारयसि। (**उत्पत्तिः**) इक्षुभक्षिका मे उदपादि भवता। ओदनभोजिका मे उदपादि भवता। पयःपायिका मे उदपादि भवता।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (विभाषा) विकल्प से (ण्वुच्) ण्वुच् प्रत्यय होता है (पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु) यदि वहां पर्याय, अर्ह, ऋण और उत्पत्ति अर्थ प्रकाशित हो।

*उदा०-(पर्याय) **भवतः शायिका।** आपकी सोने की पर्याय (बारी) है। **भवतोऽग्रग्रासिका।** आपकी पहले भोजन करने की बारी है। (अर्ह) **अर्हति भवान् इक्षुभक्षिकाम्।** आप गन्ना चूस सकते हो। (ऋण) **इक्षुभक्षिकां मे धारयसि।** तू मेरी इक्षुभक्षिका (गन्ना चुसाई) का ऋणी है। **ओदनभोजिकां मे धारयसि।** तू मेरी एक ओदनभोजिका (भात खिलाई) का ऋणी है। **पयःपायिकां मे धारयसि।** तू मेरी एक*

पय:पायिका (दूध पिलाई) का ऋणी है। (उत्पत्ति) इक्षुभक्षिका मे उदपादि भवता। आपने मेरे लिए इक्षुभक्षिका उत्पन्न की। ओदनभोजिका मे उदपादि भवता। आपने मेरे लिये ओदनभोजिका उत्पन्न की (भात खाने का अवसर दिया)। पय:पाचिका मे उदपादि भवता। आपने मेरे लिये पय:पायिका उत्पन्न की। दुग्धपान का अवसर दिया।

सिद्धि-(१) शायिका। शीङ्+ण्वुच्। शी+वु। शी+अक। शै+अक। शायक+टाप्। शायक+आ। शायिका+सु। शायिका।

यहां 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से पर्याय अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में 'ण्वुच्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'अक' आदेश और 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि होता है। पूर्ववत् टाप् और इत्त्व होता है।

(२) अग्रग्रासिका। 'अग्र' उपपद 'ग्रसु अदने' (भ्वा०आ०)।

(३) इक्षुभक्षिका। 'इक्षु' उपपद 'भक्ष अदने' (भ्वा०प०)।

(४) पय:पायिका। 'पय:' उपपद 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्वुच्' इस सूत्र से ऋण अर्थ में 'ण्वुच्' प्रत्यय है। 'आतो युक् चिण्कृतो:' (७।३।३३) से 'पा' को 'युक्' आगम होता है।

अनि:–

(१६) आक्रोशे नञ्यनि:।११२।

प०वि०-आक्रोशे ७।१ नञि ७।१ अनि: १।१।

अनु०-स्त्रियाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-अकर्तरि कारके भावे च नञि धातो: स्त्रियाम् अनि:।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् नञ्-उपपदात् धातो: पर: स्त्रियाम् अनि: प्रत्ययो भवति, आक्रोशे गम्यमाने। आक्रोश:=शपनम्।

उदा०-अकरणिस्ते वृषल ! भूयात्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (नञि) नञ् उपपदवाले (धातो:) धातु से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अनि:) अनि प्रत्यय होता है, (आक्रोशे) यदि वहां आक्रोश (शाप देना) अर्थ प्रकट हो।

उदा०-अकरणिस्ते वृषल ! भूयात्। हे नीच ! तेरी करणी का नाश हो।

सिद्धि-अकरणि:। नञ्+कृ+अनि। अ+कर्+अनि। अकरणि+सु। अकरणि:।

यहां 'नञ्' उपपद 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से आक्रोश अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में 'अनि' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयो:' (७।।८४) से 'कृ' को गुण और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।

इति अकर्तृकारकभावप्रकरणं स्त्रीलिङ्गप्रत्ययप्रकरणं च।

विविधार्थप्रत्ययप्रकरणम्

कृत्या ल्युट् च (बहुलार्थकाः)–

(१) कृत्यल्युटो बहुलम्।११३।

प०वि०-कृत्य-ल्युटः १।३ बहुलम् १।१।

स०-कृत्याश्च ल्युट् च ते-कृत्यल्युटः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'अकर्तरि कारके भावे च' इति निवृत्तम्।

अर्थः-कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया ल्युट् च प्रत्ययो धातोः परो बहुलमर्थेषु भवन्ति। यस्मिन्नर्थे विहितास्ततोऽन्यत्रापि भवन्ति। कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया भावे कर्मणि चार्थे विहितास्ते कारकान्तरेऽपि भवन्ति।

उदा०-(कृत्याः) स्नाति येनेति स्नानीयं चूर्णम्। दीयते यस्मै स दानीयो ब्राह्मणः। (ल्युट्) करणाधिकरणयोर्भावे चार्थे ल्युड् विहितः सोऽन्यत्रापि भवति। अपसिच्यते यदिति अपसेचनम्। अवस्राव्यते यदिति अवस्रावणम्। भुज्यन्त इति भोजनाः, राज्ञो भोजना इति राजभोजनाः शालयः। आच्छाद्यन्ते इति आच्छादनानि, राज्ञ आच्छादनानीति राजाच्छादनानि वासांसि। प्रस्कन्दति यस्मादिति प्रस्कन्दनम्। प्रपतीति यस्मादिति प्रपतनम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(कृत्यल्युटः) कृत्यसंज्ञक प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय (धातोः) धातु से परे (बहुलम्) बहुल अर्थों में होते हैं। जिस अर्थ में विहित हैं उससे अन्यत्र भी होते हैं। कृत्यसंज्ञक प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में विहित हैं वे अन्य कारक में भी होते हैं।

उदा०-(कृत्य) स्नाति येनेति स्नानीयं चूर्णम्। स्नान करने योग्य आटा (उबटन)। दीयते यस्मै स दानीयो ब्राह्मणः। दान देने योग्य ब्राह्मण। (ल्युट्) करण और अधिकरण तथा भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्यय विहित है, वह अन्य अर्थ में भी होता है। अपसिच्यते यदिति अपसेचनम्। जो भलीभांति नहीं सींचा जाता है। अवस्राव्यत यदिति अवस्रावणम्। जो बुरी तरह बहाया जाता है। भुज्यन्त इति भोजनाः, राज्ञो भोजना इति राजभोजनाः शालयः। राजा के भोजन करने योग्य चावल। आच्छाद्यन्त इति आच्छादनानि, राज्ञ आच्छादनानीति राजाच्छादनानि वासांसि। राजा के ओढने योग्य वस्त्र। प्रस्कन्दति यस्मादिति प्रस्कन्दनम्। जिससे फिसलता है, वह स्थान। प्रपतति यस्मादिति प्रपतनम्। जिससे जलादि गिरता है, वह झरना आदि।

सिद्धि-(१) स्नानीयम्। स्ना+अनीयर्। स्ना+अनीय। स्नानीय+सु। स्नानीयम्।

यहां 'ष्णा शौचे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से अनीयर् प्रत्यय है।

(२) दानीयः। दा+अनीयर्। दा+अनीय। दानीय+सु। दानीयः।

यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से सम्प्रदान कारक में 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९४) से अनीयर् प्रत्यय है।

(३) अपसेचनम्। अप्+सिच्+ल्युट्। अप+सेच्+अन। अपसेचन+सु। अपसेचनम्।

यहां 'अप' उपसर्गपूर्वक 'षिच्लृ सेचने' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से कर्म कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८५) से 'सिच्' धातु को लघूपध गुण होता है।

(४) अचस्रावणम्। अव+स्रु+णिच्। अवस्रावि+ल्युट्। अवस्राव्+अन। अवस्रावण+सु। अवस्रावणम्।

यहां 'अव' उपसर्गपूर्वक 'स्रु गतौ' (भ्वा०प०) इस णिजन्त धातु से इस सूत्र से कर्म कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है।

(५) राजभोजनाः। भुज्+ल्युट्। भोज्+अन। भोजन+जस्। भोजनाः।

यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस धातु से कर्म कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। तत्पश्चात् राजन् और भोजन पदों का षष्ठीसमास होता है।

(६) राजाच्छादनानि। यहां आङ्पूर्वक 'छद' (चु०उ०) धातु से इस सूत्र से कर्म कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् राजन् और आच्छादन पदों का षष्ठीसमास होता है।

(७) प्रस्कन्दनम्। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'स्कन्दिर् गतिशोषणयोः' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अपादान कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है।

(८) प्रपतनम्। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अपादान कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है।

क्तः (भावे, नपुंसके)–

(२) नपुंसके भावे क्तः।११४।

प०वि०-नपुंसके ७।१ भावे ७।१ क्तः १।१।

अन्वयः-नपुंसके भावे च धातोः क्तः।

अर्थः-नपुंसकलिङ्गे भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परः क्तः प्रत्ययो भवति।

उदा०-हसितम्। सहितम्। जल्पितम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(नपुंसके) नपुंसकलिङ्ग में (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (क्तः) क्त प्रत्यय होता है।

उदा०-हसितम्। हंसना। सहितम्। सहन करना। जल्पितम्। बकना।

सिद्धि-(१) हसितम्। हस्+क्त। हस्+इट्+त। हस्+इ+त। हसित+सु। हसितम्।

यहां 'हस हसने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से नपुंसकलिङ्ग में और भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है।

(२) सहितम्। 'षह मर्षणे' (भ्वा०आ०)।

(३) जल्पितम्। 'जल्प व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०)।

ल्युट् (भावे, नपुंसके)-

(३) ल्युट् च।११५।

प०वि०-ल्युट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-नपुंसके भावे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसके भावे च धातोर्ल्युट् च।

अर्थः-नपुंसकलिङ्गे भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परो ल्युट् प्रत्ययोऽपि भवति।

उदा०-हसनं छात्रस्य शोभनम्। जल्पनम्। शयनम्। आसनम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(नपुंसके) नपुंसकलिङ्ग में और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (ल्युट्) ल्युट् प्रत्यय (च) भी होता है।

उदा०-हसनं छात्रस्य शोभनम्। छात्र का हंसना सोहणा है। जल्पनम्। बकना। शयनम्। सोना। आसनम्। बैठना।

सिद्धि-(१) हसनम्। हस्+ल्युट्। हस्+अन। हसन+सु। हसनम्।

यहां 'हस हसने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है।

(२) जल्पनम्। 'जल्प व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०)।

(३) शयनम्। 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'शीङ्' धातु को गुण होता है।

(४) आसनम्। 'आस उपवेशने' (अदा०आ०)।

ल्युट् (भावे, नपुंसके)–

(४) कर्मणि च येन संस्पर्शात् कर्तुः शरीरसुखम्।११६।

प०वि०–कर्मणि ७।१ च अव्ययपदम्, येन ३।१ संस्पर्शात् ५।१ कर्तुः ६।१ शरीरसुखम् १।१।

स०–शरीरस्य सुखमिति शरीरसुखम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–नपुंसके भावे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–येन कर्मणा संस्पर्शात् कर्तुः शरीरसुखं तस्मिन् कर्मणि च नपुंसके भावे धातोर्ल्युट्।

अर्थः–येन कर्मणा संस्पृश्यमानस्य कर्तुः शरीरसुखमुत्पद्यते तस्मिन् कर्मण्युपपदेऽपि नपुंसकलिङ्गे भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परो ल्युट् प्रत्ययो भवति। पूर्वेणैव ल्युट्-प्रत्यये सिद्धे नित्यसमासार्थमिदं वचनम्, उपपदसमासो हि नित्यसमासः।

उदा०–पयःपानं सुखं देवदत्तस्य। ओदनभोजनं सुखं यज्ञदत्तस्य।

आर्यभसाषा-अर्थ-(येन) जिस कर्म से (संस्पर्शात्) संस्पर्श करनेवाले (कर्तुः) कर्ता को (शरीरसुखम्) शारीरिक सुख होता है, उस (कर्मणि) कर्म के उपपद होने पर (च) भी (नपुंसके) नपुंसकलिङ्ग में और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (ल्युट्) ल्युट् प्रत्यय होता है। पूर्व सूत्र से भी ल्युट् प्रत्यय सिद्ध था यह नित्य समास के लिये कथन किया गया है क्योंकि उपपद समास नित्य समास है।

उदा०-पयःपानं सुखं देवदत्तस्य। दुग्ध का पान देवदत्त को सुखकारी है। ओदनभोजनं सुखं यज्ञदत्तस्य। चावल का भोजन यज्ञदत्त को सुखकारी है।

सिद्धि-(१) पयःपानम्। पा+ल्युट्। पा+अन। पान+सु। पानम्। पयः+पानम्= पयःपानम्।

यहां पयस् कर्म उपपद होने पर नपुंसकलिङ्ग में और भाव अर्थ में 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ल्युट्' प्रत्यय है। पयस् और पान पदों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से नित्यसमास होता है। पयः के सेवन से पा धातु के कर्ता देवदत्त आदि को शरीरसुख होता है।

(२) ओदनभोजनम्। यहां ओदन कर्म उपपद होने पर 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है।

ल्युट् (करणेऽधिकरणे च)–

(५) करणाधिकरणयोश्च।११७।

प०वि०–करण–अधिकरणयोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०–करणं च अधिकरणं च ते करणाधिकरणे, तयोः-करणाधिकरणयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ल्युड् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–करणाधिकरणयोश्च धातोर्ल्युट्।

अर्थः–करणेऽधिकरणे च कारकेऽपि धातोः परो ल्युट् प्रतययो भवति।

उदा०–(करणे) प्रवृश्चन्ति येन स प्रव्रश्चनः, इध्मानां प्रव्रश्चन इति इध्मप्रव्रश्चनः, कुठारादिकम्। शातयन्ति येन स शातनः, पलाशानां शातन इति पलाशशातनः। येन दण्डेन वृक्षस्य पर्णानि पात्यन्ते सः। (अधिकरणे) गां दुहन्ति यस्यां सा गोदोहनी। सक्तून् दधति यस्यां सा सक्तुधानी।

आर्यभाषा–अर्थ–(करणाधिकरणयोः) करण और अधिकरण (कारके) कारक में (च) भी (धातोः) धातु से परे (ल्युट्) ल्युट् प्रत्यय होता है।

उदा०–(करण) इध्मप्रव्रचनः। इन्धन काटने का करण, कुल्हाड़ी आदि। पलाशपातनः। पत्ते तोड़ने का करण दण्डा। (अधिकरण) गोदोहनी। गौ दुहने का अधिकरण (आधार) बटलोई आदि। सक्तुधानी। सत्तु रखने का अधिकरण=पात्रविशेष।

सिद्धि–(१) इध्मप्रव्रचनः। प्र+व्रश्च्+ल्युट्। प्र+व्रश्च्+अन। प्रव्रश्चन+सु। प्रव्रश्चनः। इध्म+प्रव्रश्चनः=इध्मप्रव्रश्चनः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'ओव्रश्चू छेदने' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् इध्म और प्रव्रश्चन पदों में षष्ठीसमास है।

(२) पलाशशातनः। शद्+णिच्। शाद्+इ। शाति+ल्युट्। शात्+अन। शातन+सु। शातन। पलाशः+शातनः। पलाशशातनः।

यहां 'शद्लृ शातने' (भ्वा०प०) धातु से प्रथम हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय होने पर 'शदेरगतौ तः' (७।३।४२) से 'शद्' के 'द्' को 'त्' आदेश है। तत्पश्चात् 'शाति' धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। पलाश और शातन पदों का षष्ठीसमास है।

(३) गोदोहनी। दुह्+ल्युट्। दोह्+अन। दोहन+ङीप्। दोहन+ई। दोहनी+सु। दोहनी। गो+दोहनी=गोदोहनी।

यहां 'दुह् प्रपूरणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से अधिकरण कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'ल्युट्' प्रत्यय के 'टित्' होने से स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् 'गौ' और 'दोहनी' पदों में षष्ठीसमास होता है।

(४) सक्तुधानी। यहां 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'ल्युट्' प्रत्यय है।

घः (करणेऽधिकरणे पुंसि)-

(६) पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण।११८।

प०वि०-पुंसि ७।१ संज्ञायाम् ७।१ घः १।१ प्रायेण ३।१।

अनु०-करणाधिकरणयोः इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-करणाधिकरणयोर्धातोः पुंसि प्रायेण घः संज्ञायाम्।

अर्थः-करणेऽधिकरणे च कारके धातोः परः पुंलिङ्गे प्रायेण घः प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-**(करणे)** दन्तान् छादयन्ति येन सः-दन्तच्छदः। उरश्छादयन्ति येन सः-उरश्छदः। **(अधिकरणे)** एत्य कुर्वन्ति यस्मिन् सः-आकरः। उत्पत्तिस्थानम्। आलीयन्ते यस्मिन् सः-आलयो गृहम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणाधिकरणयोः) करण और अधिकरण (कारके) कारक में (धातोः) धातु से परे (पुंसि) पुंलिङ्ग में (प्रायेण) अधिकशः (घः) घ प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ का प्रतीति हो।

उदा०-(करण) दन्तान् छादयन्ति येन सः-दन्तच्छदः। दांतों को ढकने का करण (ओष्ठ)। उरश्छादयन्ति येन सः-उरश्छदः। उरः=छाती को ढकने का करण, बण्डी (Sweater) आदि। (अधिकरण) एत्य कुर्वन्ति यस्मिन् सः-आकरः, उत्पत्तिस्थानम्। लोग जहां आकर कोई कार्य विशेष करते हैं वह आकर, उत्पत्तिस्थान (खान आदि)। आलीयन्ते यस्मिन् स आलयः, गृहम्। जिसमें लोग छुपे रहते हैं, वह घर।

सिद्धि-(१) दन्तच्छदः। छद्+णिच्। छादि+घ। छदि+अ। छद्+अ। छदः। दन्त+छदः=दन्तच्छदः।

यहां 'छद आवरणे' (चुरादि०) धातु से प्रथम 'सत्यापपाश०' (३।१।२५) से 'णिच्' प्रत्यय और 'छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य' (६।४।९६) से छादि धातु को को ह्रस्व होता

है। तत्पश्चात् 'छदि' धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घ' प्रत्यय है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है। दन्त और छद पदों में षष्ठीसमास है।

(२) उरश्छदः। पूर्ववत्।

(३) आकरः। यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से से अधिकरण कारक में 'घ' प्रत्यय है।

(४) आलयः। 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'लीङ् श्लेषणे' (दि०आ०)।

घः (निपातनम्)–

(७) गोचरसंचरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च।११६।

प०वि०-गोचर-संचर-वह-व्रज-व्यज-आपण-निगमाः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-गोचरश्च संचरश्च वहश्च व्रजश्च व्यजश्च आपणश्च निगमश्च ते गोचर०निगमाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-करणाधिकरणयोः, पुंसि, संज्ञायाम्, घः, प्रायेण इति चानुवतति। **'प्रायेण'** इति निपातनसामर्थ्यादर्थे न सम्बध्यते।

अर्थः-करणेऽधिकरणे च कारके गोचरादयः शब्दा अपि पुंलिङ्गे घ-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(**गोचरः**) गावश्चरन्ति यस्मिन् सः-गोचरः, चक्षुरादीनां विषयः। (**सञ्चरः**) संचरन्ते येन स संचरः, मार्गः। (**वहः**) वहन्ति येन स वहः, स्कन्धः। (**व्रजः**) व्रजन्ति यस्मिन् स व्रजः, गोष्ठम्। (**व्यजः**) व्यजन्ति येन स व्यजः, तालवृन्तम् (व्यजनम्)। (**आपणः**) एत्याऽऽपणन्ते यस्मिन् स आपणः, पण्यस्थानम्। (**निगमः**) निगच्छन्ति यस्मिन् स निगमः, छन्दः (वेदः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणाधिकरणयोः) करण और अधिकरण (कारके) कारक में (गोचर०निगमाः) गोचर, संचर, वह, व्रज, व्यज, आपण, निगम शब्द (च) भी (पुंसि) पुंलिङ्ग में (घः) घ प्रत्ययान्त निपातित हैं, (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में।

उदा०-गोचरः जहां इन्द्रियां विचरण करती हैं, वह चक्षु आदि का विषय। वहः। जिससे भार आदि वहन करते हैं, वह कन्धा। व्रजः। जहां गौ आदि पशु विश्राम के लिये जाते हैं, वह गोष्ठ (गोशाला)। व्यजः। जिससे हवा करते हैं, वह तालवृक्ष का पत्ता

(पंखा)। आपण:। लोग जहां आकर लेन-देन का व्यवहार करते हैं, वह दुकान। निगम:। जिसमें विद्वान् लोग निश्चित ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह वेद।

सिद्धि-(१) गोचर:। चर्+घ। चर्+अ। चर+सु। चर:। गो+चर:=गोचर:।

यहां 'चर गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अधिकरण कारक में 'घ' प्रत्यय है। तत्पश्चात् गौ और चर पदों में षष्ठीसमास होता है।

(२) संचर:। यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'चर' धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घ' प्रत्यय है। 'समस्तृतीयायुक्तात्' (१।३।५४) से धातु में आत्मनेपद होता है।

(३) वह:। 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से करण करक में 'घ' प्रत्यय है।

(४) व्रज:। 'व्रज गतौ' (भ्वा०प०) धातु से अधिकरण कारक में 'घ' प्रत्यय है।

(५) व्यज:। 'वि' उपसर्गपूर्वक 'अज गतिक्षेपणयो:' (भ्वा०प०) धातु से करण कारक में 'घ' प्रत्यय है। निपातन से 'अजेर्व्यघञपो:' (२।४।५६) से 'अज' के स्थान में 'वी' आदेश नहीं होता है।

(६) आपण:। 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' (भ्वा०आ०) धातु से अधिकरण कारक में 'घ' प्रत्यय है।

(७) निगम:। 'नि' उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से अधिकरण कारक में 'घ' प्रत्यय है।

घञ् (पुंसि)-

(८) अवे तृस्त्रोर्घञ्।१२०।

प०वि०-अवे ७।१ तृ-स्त्रो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) घञ् १।१।

स०-तृश्च स्तृश्च तौ-तृस्त्रौ, तयो:-तृस्त्रो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-करणाधिकरणयो:, पुंसि, संज्ञायाम्, प्रायेण इति चानुवर्तते।

अन्वय:-करणाधिकरणयोरवे तृस्तृभ्यां धातुभ्यां पुंसि प्रायेण घञ् संज्ञायाम्।

अर्थ:-करणेऽधिकरणे च कारके अवे उपपदे तृ-स्तृभ्यां धातुभ्यां पर: पुंलिङ्गे प्रायेण घञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(तृ:) अवतरन्ति यस्मिन् स्नानार्थं स:-अवतार:। (स्तृ:) अवस्तृणन्ति येन स:-अवस्तार: (जवनिका)।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणाधिकरणयो:) करण और अधिकरण कारक में (अवे) अव उपसर्ग उपपद होने पर (तृ-स्त्रो:) तृ और स्तृ (धातो:) धातु से परे (पुंसि) पुंलिङ्ग में

(प्रायेण) अधिकशः (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-(तॄ) अवतरन्ति यस्मिन् स्नानार्थं सः-अवतारः। जिसमें स्नान के लिये उतरते हैं, वह अवतार (घाट)। (स्तॄ) अवस्तृणन्ति येन सः-अवस्तारः। जिससे मंचस्थ पात्रों को तिरोहित करते हैं, वह अवस्तार=जवनिका (पर्दा)।

सिद्धि-(१) अवतारः। अव+तॄ+घञ्। अव+तार्+अ। अवतार+सु। अवतारः।

यहां 'अव' उपसर्गपूर्वक 'तॄ प्लवनसन्तरणयोः' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'तॄ' धातु को वृद्धि होती है।

(२) अवस्तारः। 'अव' उपसर्गपूर्वक 'स्तॄञ् आच्छादने' (रुधा०उ०)।

घञ्-

(६) हलश्च।१२१।

प०वि०-हलः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-करणाधिकरणयोः, पुंसि, संज्ञायाम्, प्रायेण, घञ् इति चानुवतति।

अन्वयः-करणाधिकरणयोर्हलश्च धातोः पुंसि प्रायेण घञ् संज्ञायाम्।

अर्थः-करणेऽधिकरणे च कारके हलन्ताद् धातोः परोऽपि पुंलिङ्गे प्रायेण घञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-लिखन्ति येन सः-लेखः। विदन्ति येन धर्माधर्मौ सः-वेदः। अपमृज्यते येन व्याधि सः-अपामार्गः। विमृज्यते येन गृहादिकं सः-वीमार्गः।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणाधिकरणयोः) करण और अधिकरण कारक में (हलः) हलन्त (धातोः) धातु से परे (च) भी (पुंसि) पुंलिङ्ग में (प्रायेण) अधिकशः (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-लिखन्ति येन सः-लेखः। जिससे लिखते हैं वह लेख (लेखनी)। विदन्ति येन धर्माधर्मौ सः-वेदः। जिससे धर्म-अधर्म को जानते हैं, वह वेद (चार वेद)। अपमृज्यते येन व्याधिः सः-अपामार्गः। जिससे व्याधि को हटाया जाता है वह अपामार्ग (चिरचटा)। विमृज्यते येन गृहकादिकं सः-वीमार्गः। जिससे घर आदि को शुद्ध किया जाता है, वह वीमार्ग (झाडू)।

सिद्धि-(१) लेखः। लिख+घञ्। लेख्+अ। लेख+सु। लेखः।

यहां 'लिख अक्षरविन्यासे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'लिख्' धातु को लघूपध गुण होता है।

(२) वेदः। 'विद ज्ञाने' (अदा०प०)।

(३) वेष्टः। 'वेष्ट वेष्टने' (भ्वा०आ०)।

(४) अपामार्गः। अप+मृज्+घञ्। अप+मृग्+अ। अप+मार्ग्+अ। अपामार्ग+सु। अपामार्गः।

यहां 'अप' उपसर्गपूर्वक 'मृजूष् शुद्धौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व, मृजेर्वृद्धिः' (७।२।११४) से वृद्धि और 'उपसर्गस्य घञि०' (६।३।१२०) से उपसर्ग को दीर्घ होता है।

(५) वीमार्गः। 'वि' उपसर्गपूर्वक 'मृजूष् शुद्धौ' (अदा०प०) से पूर्ववत्।

घञ् (निपातनम्)–

(१०) अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च।१२२।

प०वि०–अध्याय-न्याय-उद्याव-संहाराः १।३ च अव्ययपदम्।

स०–अध्यायश्च न्यायश्च उद्यावश्च संहारश्च ते–अध्याय-न्यायोद्यावसंहाराः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–करणाधिकरणयोः, पुंसि, संज्ञायाम्, घञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–करणाधिकरणयोरध्याय०संहाराश्च पुंसि, घञ् संज्ञायाम्।

अर्थः–करणेऽधिकरणे च कारकेऽध्यायन्यायोद्यावसंहाराः शब्दा अपि पुंलिङ्गे घञ्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–अधीयते यस्मिन् सः–अध्यायः। नियन्ति येन सत्यं सः–न्यायः। उद्युवन्ति यस्मिन् सः–उद्यावः। संह्रियन्ते येन सः–संहारः।

आर्यभाषा-अर्थ–*(करणाधिकरणयोः) करण और अधिकरण कारक में (अध्याय०संहाराः) अध्याय, न्याय, उद्याव, संहार शब्द (च) भी (पुंसि) पुलिङ्ग में (घञ्) घञ् प्रत्ययान्त निपातित हैं, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०–अधीयते यस्मिन् सः–अध्यायः। जिसमें विषय-विशेष को पढ़ते हैं, वह अध्याय। नियन्ति येन सत्यं सः–न्यायः। जिससे सत्य को प्राप्त करते हैं, न्याय। उद्युवन्ति यस्मिन् सः–उद्यावः। जहां लोग एकत्र होते हैं, वह स्थानविशेष। संह्रियन्ते येन सः–संहारः। जिससे पदार्थों का नाश किया जाता है वह संहार (प्रलय)।

सिद्धि–(१) अध्यायः। अधि+इङ्+घञ्। अधि+ऐ+अ। अधि+आय्+अ। अध्याय+सु। अध्यायः।

यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से अधिकरण कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११४) से धातु को वृद्धि और 'इको यणचि' (६।१।७४) से 'यण्' आदेश होता है।

(२) न्यायः। 'नि' उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(३) उद्यावः। 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(४) संहारः। 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

विशेष-इन धातुओं के अजन्त होने से 'हलश्च' (३।३।१२१) से 'घञ्' प्रत्यय प्राप्त नहीं था, अतः यहां घञ् प्रत्यय का निपातन किया गया है।

घञ् (निपातनम्)–

(११) उदङ्कोऽनुदके।१२३।

प०वि०-उदङ्कः १।१ अनुदके ७।१।

स०-न उदकमिति अनुदकम्, तस्मिन्-अनुदके (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अधिकरणे, पुंसि, संज्ञायाम्, घञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणेऽनुदके उदङ्कः पुंसि घञ्, संज्ञायाम्।

अर्थः-अधिकरणे कारकेऽनुदके विषये उदङ्क इति शब्दः पुंलिङ्गे घञ्-प्रत्ययान्तो निपात्यते, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-तैलमुदच्यते=उद्ध्रियते यस्मिन् सः-तैलोदङ्कः। चर्ममयं पात्रम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अधिकरणे) अधिकरण कारक में (अनुदके) उदक=जलविषय को छोड़कर (उदङ्कः) उदङ्क शब्द (पुंसि) पुंलिङ्ग में (घञ्) घञ् प्रत्ययान्त निपातित है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-तैलमुदच्यते=उद्ध्रियते यस्मिन् सः-तैलोदङ्कः। तैल का कुप्पा।

सिद्धि-(१) तैलोदङ्कः। उत्+अन्च्+घञ्। उत्+अं क्+अ। उत्+अङ्क्+अ। उदङ्कः+सु। उदङ्कः। तैल+उदङ्कः=तैलोदङ्कः।

यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'अञ्चु गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अधिकरण कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व, 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से परसवर्ण ङकार होता है। तैलस्य उदङ्क इति तैलोदङ्कः। तैल और उदङ्क पदों में षष्ठीसमास है।

यहां 'हलश्च' (३।३।१२१) से 'घञ्' प्रत्यय सिद्ध था, अनुदक अर्थ के लिये निपातन किया गया है।

घञ् (निपातनम्)–

(१२) जालमानाय: ।१२४।

प०वि०-जालम् १ ।१ आनाय: १ ।१ ।

अनु०-करणे पुंसि, संज्ञायाम्, घञ् इति चानुवर्तते ।

अन्वय:-करणे आनाय: पुंसि घञ्, जालम्, संज्ञायाम् ।

अर्थ:-करणे कारके आनाय: शब्द: पुंलिङ्गे घञ्-प्रत्ययान्तो निपात्यते, जालं चेत्तद् भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम् ।

उदा०-आनयन्ति येन स:-आनाय: । आनायो मत्स्यानाम् । आनायो मृगाणाम् ।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण कारक में (आनाय:) आनाय शब्द (पुंसि) पुंलिङ्ग में (घञ्) प्रत्ययान्त निपातित है, यदि वह (जालम्) जाल हो और (संज्ञायाम्) वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो ।

उदा०-आनयन्ति येन स:-आनाय: । आनायो मत्स्यानाम् । मछली पकड़ने का जाल । आनायो मृगाणाम् । मृग पकड़ने का जाल ।

सिद्धि-(१) आनाय: । आङ्+नी+घञ् । आ+नै+अ । आनाय+सु । आनाय: ।

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घञ्' प्रत्यय है । 'अचो ञ्णिति' (७ ।२ ।११५) से 'नी' धातु को वृद्धि होती है ।

घ:+घञ् (पुंसि)–

(१३) खनो घ च ।१२५।

प०वि०-खन: ५ ।१ घ १ ।१ (लुप्तप्रथमानिदेश:) च अव्ययपदम् ।

अनु०-करणाधिकरणयो:, पुंसि, संज्ञायाम् घञ् इति चानुवर्तते ।

अन्वय:-करणाधिकरणयो:, खनो धातो: पुंसि घो घञ् च संज्ञायाम् ।

अर्थ:-करणेऽधिकरणे च कारके खन्-धातो: पर: पुंलिङ्गे घो घञ् च प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम् ।

उदा०-(घ:) आखनति येन स:-आखन: । (घञ्) आखान: । खनित्रम् ।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणाधिकरणयो:) करण और अधिकरण कारक में (खन:) खन् (धातो:) धातु से परे (पुंसि) पुंलिङ्ग में (घ) घ प्रत्यय (च) और (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो ।

उदा०-(घ) आखनन्ति येन सः-आखनः। (घञ्) आखानः। भूमि खोदने का साधन कुदाल आदि।

सिद्धि-(१) आखनः। आङ्+खन्+घ। आ+खन्+अ। आखन+सु। आखनः।

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घ' प्रत्यय है।

(२) आखानः। पूर्वोक्त 'खन्' धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'खन्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

खल् (भावे कर्मणि च)-

(१४) ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्।१२६।

प०वि०-ईषत्-दुः-सुषु ७।३ कृच्छ्र-अकृच्छार्थेषु ७।३ खल् १।१।

स०-ईषच्च दुश्च सुश्च ते-ईषद्दुःसवः, तेषु ईषद्दुःसुषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कृच्छ्रम्=दुःखम्। न कृच्छ्रमिति अकृच्छ्रम्=सुखम्। कृच्छ्रं च अकृच्छ्रं च ते-कृच्छ्राकृच्छ्रे। कृच्छ्राकृच्छ्रे अर्थौ येषां ते-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थाः, तेषु-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अन्वयः-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु धातोः खल्।

अर्थः-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु उपपदेषु धातोः परः खल् प्रत्ययो भवति। कृच्छ्रं दुसो विशेषणम्। अकृच्छं च ईषत्स्वोर्विशेषणम् अर्थसम्भवात्।

उदा०-(ईषत्) ईषत्करः कटो भवता। (दुस्) दुष्करः कटो भवता। (सुः) सुकरः कटो भवता।

आर्यभाषा-अर्थ-(कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु) दुःख और सुख अर्थ में (ईषद्दुःसुषु) ईषत्, दुस्, सु उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (खल्) खल् प्रत्यय होता है। कृच्छ्र दुस् का विशेषण है और अकृच्छ्र ईषत् और सु का विशेषण है, अर्थ की सम्भवता से।

उदा०-(ईषत्) ईषत्करः कटो भवता। आपके द्वारा चटाई बनाना सुगम है। (दुस्) दुष्करः कटो भवता। आपके द्वारा चटाई बनाना कठिन है। (सु) सुकरः कटो भवता। आपके द्वारा चटाई बनाना सुगम है।

सिद्धि-(१) ईषत्करः। ईषत्+कृ+खल्। ईषत्+कर्+अ। ईषत्कर+सु। ईषत्करः।

यहां अकृच्छ्र अर्थ में 'ईषत्' शब्द उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'खल्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है। 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' (३।४।७०) से 'खल्' प्रत्यय कर्मवाच्य अर्थ में है।

(२) दुष्करः। 'दुस्' उपपद 'कृ' धातु से पूर्ववत् खल् प्रत्यय है।
(३) सुकरः। 'सु' उपपद 'कृ' धातु से पूर्ववत् खल् प्रत्यय है।

(१५) कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः।१२७।

प०वि०-कर्तृ-कर्मणोः ७।२ च अव्ययपदम्, भू-कृञोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-कर्ता च कर्म च ते-कर्तृकर्मणी, तयोः-कर्तृकर्मणोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। भूश्च कृञ् च तौ-भूकृञौ तयोः-भूकृञोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छार्थेषु, खल् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृच्छ्राकृच्छार्थेषु ईषद्दुःसुषु कर्तृकर्मणोश्च भूकृञ्भ्यां धातुभ्यां खल्।

अर्थः-कृच्छ्राकृच्छार्थेषु ईषद्दुःसुषु उपपदेषु कर्तरि कर्मणि चोपपदे यथासंख्यं भूकृञ्भ्यां धातुभ्यां खल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ईषत्+कर्ता+भूः) ईषदाढ्यम्भवं भवता। अनाढ्येन भवता सुखेनाऽऽढ्येन भूयते इत्यर्थः। (दुस्+कर्ता+भूः) दुराढयम्भवं भवता। अनाढ्येन भवता दुःखेनाऽऽढयेन भूयते। (ईषत्+कर्म+कृः) ईषदाढ्यङ्करो देवदत्तो भवता। भवताऽनाढ्यो देवदत्तः सुखेनाढ्यः क्रियते इत्यर्थः। (सु+कर्म+कृः) स्वाढ्यङ्करो देवदत्तो भवता। भवताऽनाढ्यो देवदत्तः सुखेनाढ्यः क्रियते इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु) सुख और दुःख अर्थ में (ईषद्दुःसुषु) ईषद्, दुस्, सु तथा (कर्तृकर्मणोः) कर्ता और कर्म उपपद होने पर यथासंख्य (भूकृञोः) भू और कृञ् (धातोः) धातु से परे (खल्) खल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(ईषत्+कर्ता+भू) ईषदाढ्यम्भवं भवता। अनाढ्य आप, सुखपूर्वक आढ्य हो रहे हो। आढ्य=धनवान्। (दुस्+कर्ता+भू) दुराढ्यम्भवं भवता। अनाढ्य आप दुःखपूर्वक आढ्य हो रहे हो। (ईषत्+कर्म+कृ) ईषदाढ्यङ्करो देवदत्तो भवता। आपके द्वारा अनाढ्य देवदत्त, सुखपूर्वक आढ्य बनाया जारहा है। (सु+कर्म+कृ) स्वाढ्यङ्करो देवदत्तो भवता। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) ईषदाढ्यम्भवम्। ईषत्+आढ्य+भू+खल्। ईषत्+आढ्य+मुम्+भू+अ। ईषत्+आढ्य+म्+भो+अ। ईषदाढ्यम्भव+सु। ईषदाढ्यम्भवम्।

यहां 'ईषत्' तथा 'आढ्य' कर्ता उपपद होने पर 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र 'खल्' प्रत्यय है। 'खल्' प्रत्यय के 'खित्' होने से 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६६) से 'आढ्य' शब्द को 'मुम्' आगम होता है।

(२) दुराढ्यम्भवम्। यहां 'दुस्' उपपद तथा 'आढ्य' कर्ता उपपद होने पर 'भू' धातु से पूर्ववत् 'खल्' प्रत्यय है।

(३) ईषदाढ्यङ्करः। 'ईषद्' उपपद तथा 'आढ्य' कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'खल्' प्रत्यय है।

(४) स्वाढ्यङ्करः। 'सु' उपपद तथा 'आढ्य' कर्म उपपद होने पर 'कृ' धातु से 'खल्' प्रत्यय है।

विशेष-यहां च्वि-अर्थ=अभूततद्भाव अर्थ में 'खल्' प्रत्यय अभीष्ट है।

युच् (भावे कर्मणि च)–

(१६) आतो युच्।१२८।

प०वि०-आतः ५।१ युच् १।१।

अनु०-ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु आतो धातोर्युच्।

अर्थः-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्-दुः-सुषु उपपदेषु आकारान्तेभ्यो धातुभ्यो युच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ईषत्) ईषत्पानः सोमो भवता। (दुस्) दुष्पानः सोमो भवता। (सुः) सुपानः सोमो भवता। (ईषत्) ईषद्दाना गौर्भवता। (दुस्) दुर्दाना गौर्भवता। (सु) सुदाना गौर्भवता।

आर्यभाषा-अर्थ-(कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु) सुख और दुःख अर्थ में (ईषद्दुःसुषु) ईषद्, दुस्, सु उपपद होने पर (आतः) आकारान्त धातुओं से परे (युच्) युच् प्रत्यय होता है।

उदा०-(ईषत्) ईषत्पानः सोमो भवता। आपके द्वारा सोम का पान करना सुगम है। (दुस्) दुष्पानः सोमो भवता। आपके द्वारा सोम का पान करना कठिन है। (सु) सुपानः सोमो भवता। आपके द्वारा सोम का पान करना सुगम है। (ईषत्) ईषद्दाना गौर्भवता। आपके द्वारा गौ का दान करना सुगम है। (दुस्) दुर्दाना गौर्भवता। आपके द्वारा गौ का दान करना कठिन है। (सु) सुदाना गौर्भवता। आपके द्वारा गौ का दान करना सुगम है।

सिद्धि-(१) ईषत्पानः। ईषत्+पा+युच्। ईषत्+पा+अन। ईषत्पान+सु। ईषत्पानः।

यहां 'ईषत्' उपपद 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है।

(२) 'दुस्' उपपद 'पा' धातु से 'युच्' प्रत्यय है।

(३) सुपानः। 'सु' उपपद 'पा' धातु से 'युच्' प्रत्यय है।

(४) ईषद्दाना। 'ईषद्' उपपद होने पर 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'युच्' प्रत्यय है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-दुर्दाना और सुदाना।

युच् (भावे कर्मणि च)-

(१७) छन्दसि गत्यर्थेभ्यः।१२६।

प०वि०-छन्दसि ७।१ गति-अर्थेभ्यः ५।३।

स०-गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाः, तेभ्यः-गत्यर्थेभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ईषद्दुःसुषु, कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु युच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यो युच्।

अर्थः-छन्दसि विषये कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु उपपदेषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यो युच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सु+उपसद्) सूपसदनोऽग्निः। सूपसदनमन्तरिक्षम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु) दुःख और सुख अर्थ में (ईषद्दुःसुषु) ईषत्, दुस्, सु उपपद होने पर (गत्यर्थेभ्यः) गति-अर्थक (धातोः) धातुओं से परे (युच्) युच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(सु+उपसद्) **सूपसदनोऽग्निः।** अग्नि का उपगम सुगम है। **सूपसदनमन्तरिक्षम्।** अन्तरिक्ष का उपगम सुगम होता है।*

*सिद्धि-**सूपसदनः।** सु+उप+सद्+युच्। सु+उप+सद्+अन। सूपसदन+सु। सूपसदनः।*

*यहां 'सु' उपपद, उप-उपसर्गपूर्वक **'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु'** (भ्वा०प०) इस गत्यर्थक धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय है।*

युच् (भावे कर्मणि च)-

(१८) अन्येभ्योऽपि दृश्यते।१३०।

प०वि०-अन्येभ्यः ५।३ अपि अव्ययपदम्, दृश्यते क्रियापदम्।

अनु०-ईषद्दुःसुषु, कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु, युच्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु अन्येभ्योऽपि धातुभ्यो युच् दृश्यते।

अर्थः-छन्दसि विषये कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु उपपदेषु अन्येभ्योऽपि धातुभ्यो युच् प्रत्ययो दृश्यते।

उदा०-(सु+दुह्) सुदोहनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम्। सुवेदनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु) दुःख और सुख अर्थ में (ईषद्दुःसुषु) ईषत्, दुस्, सु उपपद होने पर (अन्येभ्यः) अन्य (धातोः) धातुओं से भी (युच्) युच् प्रत्यय (दृश्यते) देखा जाता है।

*उदा०-(सु+दुह्) **सुदोहनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम्।** ब्राह्मण के लिये गौ को सुखपूर्वक दोहन के योग्य बना दिया। (सु+विद्) **सुवेदनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम्।** ब्राह्मण के लिये गौ को सुलभ बना दिया।*

सिद्धि-(१) सुदोहना। सु+दुह्+युच्। सु+दोह्+अन। सुदोहन+टाप्। सुदोहना+सु। सुदोहना।

यहां 'सु' उपपद 'दुहं प्रपूरणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'दुह्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(२) सुवेदनाम्। 'सु' उपपद 'विद्लृ लाभे' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत्।

वर्तमानवत्प्रत्ययविधिः (भूते भविष्यति च)-

(१६) वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा।१३१।

प०वि०-वर्तमान-सामीप्ये ७।१ वर्तमानवत् अव्ययपदम्, वा अव्ययपदम्।

स०-समीपमेव सामीप्यम्, **'चातुर्वर्ण्यादीनामुपसंख्यानम्'** (वा० ५।१।१२४) इति स्वार्थे ष्यञ् प्रत्ययः। वर्तमानस्य सामीप्यमिति वर्तमानसामीप्यम्, तस्मिन् वर्तमानसामीप्ये (षष्ठीतत्पुरुषः)। वर्तमाने इव इति वर्तमानवत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११५) इति वतिः प्रत्ययः।

अन्वयः-वर्तमानसामीप्ये धातोर्वा वर्तमानवत् प्रत्ययः।

अर्थः-वर्तमानसामीप्ये=भूते भविष्यति च कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन वर्तमानवत् प्रत्यया भवन्ति।

'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) इत्यारभ्य 'उणादयो बहुलम्' (३।३।१) इति यावद् वर्तमाने काले ये प्रत्यया विहितास्ते भूते भविष्यति काले च विधीयन्ते।

उदा०-(भूते) कदा देवदत्त ! आगतोऽसि ? अयमागच्छामि, आगच्छन्तमेव मां विद्धि, अयमागमम्, एषोऽस्म्यागतः। **(भविष्यति)** कदा देवदत्त ! गमिष्यसि ? एष गच्छामि, गच्छन्तमेव मां विद्धि, एष गमिष्यामि, गन्ताऽस्मि।

आर्यभाषा-अर्थ-(वर्तमानसामीप्ये) वर्तमानकाल के समीप अर्थात् भूत और भविष्यत्काल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (वा) विकल्प से (वर्तमानवत्) वर्तमानकाल के समान प्रत्यय होते हैं।

'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से लेकर 'उणादयो बहुलम्' (३।३।१) तक वर्तमानकाल में जो प्रत्यय विधान किये हैं वे भूत और भविष्यत्काल में भी होते हैं।

*उदा०-(भूत) कदा देवदत्त! आगतोऽसि? हे देवदत्त! तू कब आया है? **अयमागच्छामि,** यह मैं अभी आया था। आगच्छन्तमेव मां विद्धि। मुझे आया हुआ ही समझ। विकल्प पक्ष में-**अयमागमम्।** यह मैं अभी आया था। एषोऽस्म्यागतः। यह मैं आगया। (भविष्यत्) कदा देवदत्त! गमिष्यसि? हे देवदत्त! तू कब जायेगा? एष गच्छामि। यह मैं अभी जाऊंगा। गच्छन्तमेव मां विद्धि। तू मुझे जानेवाला ही समझ। विकल्प पक्ष में-एष गमिष्यामि। यह में अभी जाऊंगा। एष गन्तास्मि। यह मैं अभी जाऊंगा।*

*सिद्धि-(१) **अयमागच्छामि।** यहां 'आगच्छामि' पद में इस सूत्र से भूतकाल अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है।*

*(२) **आगच्छन्तमेव मां विद्धि।** यहां 'आगच्छन्तम्' पद में इस सूत्र से भूतकाल अर्थ में 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में इस सूत्र से भूतकाल में 'शतृ' आदेश है।*

*(३) **अयमागम्।** यहां 'आगमम्' पद में विकल्प पक्ष में भूतकाल में 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है।*

*(४) **एषोऽस्म्यागतः।** यहां 'आगतः' पद में विकल्प पक्ष में भूतकाल में 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है।*

*(५) **एष गच्छामि।** यहां 'गच्छामि' पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२४) से लट् प्रत्यय है।*

(६) गच्छन्तमेव मां विद्धि। यहां 'गच्छन्तम्' पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लटः शतृशानचा०' (३।२।१२४) से 'लट्' प्रत्यय के स्थान में 'शतृ' आदेश है।

(७) एष गमिष्यामि। यहां 'गमिष्यामि' पद में विकल्प पक्ष में 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से भविष्यत्काल में 'लृट्' प्रत्यय है।

(८) गन्ताऽस्मि। यहां 'गन्ता' पद में विकल्प पक्ष में 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से भविष्यत्काल में 'लुट्' प्रत्यय है।

भूतवद्वर्तमानवच्च प्रत्ययविधिः (भविष्यति)–

(२०) आशंसायां भूतवच्च।१३२।

प०वि०–आशंसायाम् ७।१ भूतवत् अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्। भूते इव भूतवत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११५) इति वतिः प्रत्ययः। अप्राप्तस्य प्रियपदार्थस्य प्राप्तुमिच्छा=आशंसा, तस्याश्च भविष्यत्कालो विषयः।

अनु०–वर्तमानवद् वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–(भविष्यति) आशंसायां धातोर्वा भूतवद् वर्तमानवच्च प्रत्ययाः।

अर्थः–भविष्यति काले आशंसायामर्थे वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन भूतवद् वर्तमानवच्च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०–उपाध्यायश्चेद् आगमत्, आगतः, आगच्छति, आगमिष्यति वा, एते वयं व्याकरणमध्यगीष्महि, अधीतवन्तः, अधीमहे, अध्येष्यामहे।

आर्यभाषा-अर्थ–*भविष्यत्काल में (आशंसायाम्) अप्राप्त प्रिय पदार्थ की प्राप्ति की इच्छा अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (वा) विकल्प से (भूतवत्) भूतकाल के समान (च) और (वर्तमानवत्) वर्तमानकाल के समान प्रत्यय होते हैं।*

उदा०–*उपाध्यायश्चेद् आगमत्, आगतः, आगच्छति, आगमिष्यति वा, एते वयं व्याकरणमध्यगीष्महि, अधीवन्तः, अधीमहे, अध्येष्यामहे। यदि उपाध्याय जी आ गये तो ये हम लोग व्याकरण पढ़ेंगे।*

सिद्धि–*(१) आगमत्। इस पद से इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है।*

(२) आगतः। इस पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है।

(३) आगच्छति। इस पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

(४) आगमिष्यति। इस पद में विकल्प पक्ष में भविष्यत्काल में 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है।

(५) अध्यगीष्महि। इस पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है।

(६) अधीतवन्तः। इस पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है।

(७) अधीमहे। इस पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

(८) अध्येष्यामहे। इस पद में विकल्प पक्ष में भविष्यत्काल में 'लृट् शेषे च' (३।३।११३) से 'लृट्' प्रत्यय है।

विशेष-यहां आशंसा अर्थ में भूतकाल और वर्तमानकाल में विहित प्रत्यय भी भविष्यत्काल अर्थ में होते हैं।

लृट् (भविष्यति)–

(२१) क्षिप्रवचने लृट्।१३३।

प०वि०-क्षिप्रवचने ७।१ लृट् १।१।

स०-क्षिप्रस्य वचनमिति क्षिप्रवचनम्, तस्मिन्-क्षिप्रवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-आशंसायाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-क्षिप्रवचने आशंसायां धातोर्लृट्।

अर्थः-क्षिप्रवचने उपपदे आशंसायां गम्यमानायां धातोः परो लृट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-उपाध्यायश्चेत् क्षिप्रमागमिष्यति, वयं क्षिप्रं व्याकरण-मध्येष्यामहे।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्षिप्रवचने) 'क्षिप्र' शब्द उपपद होने पर (आशंसायाम्) अप्राप्त प्रिय पदार्थ की प्राप्ति की इच्छा में (धातोः) धातु से परे (लृट्) लृट् प्रत्यय होता है।

उदा०-उपाध्यायश्चेत् क्षिप्रमागमिष्यति वयं क्षिप्रं व्याकरणमध्येष्यामहे। यदि उपाध्याय जी शीघ्र आ जायेंगे तो हम शीघ्र व्याकरण पढ़ेंगे।

सिद्धि-(१) आगमिष्यति। यहां 'क्षिप्र' शब्द उपपद होने पर आशंसा अर्थ में इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय है।

(२) अध्येष्यामहे। यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय है।

लिङ् (भविष्यति)–

(२२) आशंसावचने लिङ्।१३४।

प०वि०–आशंसावचने ७।१ लिङ् १।१।

स०–आशंसा उच्यते येन सः–आशंसावचनः, तस्मिन्–आशंसावचने।

अन्वयः–आशंसावचने धातोर्लिङ्।

अर्थः–आशंसावचने उपपदे धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–उपाध्यायश्चेद् आगच्छेत् आशंसे युक्तोऽधीयीय, आशंसे क्षिप्रमधीयीय।

आर्यभाषा-अर्थ-(आशंसावचने) आशंसावाची शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-उपाध्यायश्चेद् आगच्छेत् आशंसे युक्तोऽधीयीय, आशंसे क्षिप्रमधीयीय। यदि उपाध्याय जी आ जायेंगे तो मैं इच्छा रखता हूं कि लगकर पढूंगा, इच्छा रखता हूं कि शीघ्र पढूंगा।

सिद्धि-(१) आगच्छेत्। यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लिङ्' प्रत्यय है।

(२) अधीयीय। यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लिङ्' प्रत्यय है। यहां उत्तम पुरुष का 'इट्' प्रत्यय, 'लिङः सीयुट्' (३।४।१०२) से सीयुट् आगम, 'इटोऽत्' (३।४।१०२) से 'इट्' के स्थान में अत् आदेश, 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (३।४।१०६) से 'स्' का लोप, 'अचि श्नुधातुभ्रुवां०' (६।४।७७) से 'इयङ्' आदेश तथा 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।७) से दीर्घ होता है।

अनद्यतनवत् प्रत्ययप्रतिषेधः–

(२३) नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः।१३५।

प०वि०–न अव्ययपदम्, अनद्यतनवत् अव्ययपदम्, क्रियाप्रबन्ध-सामीप्ययोः ७।२। अनद्यतने इव अनद्यतनवत् 'तत्र तस्येव' (५।१।११५) इति वतिः प्रत्ययः।

स०–क्रियायाः प्रबन्ध इति क्रियाप्रबन्धः, क्रियाप्रबन्धश्च सामीप्यं च ते–क्रियाप्रबन्धसामीप्ये तयोः–क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः (षष्ठीतत्पुरुष-गर्भितइतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोर्धातोरनद्यतनवत् प्रत्ययो न।

अर्थः-क्रियाप्रबन्धे सामीप्ये च गम्यमाने धातोः परोऽनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति।

'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) **'अनद्यतने लुट्'** (३।३।१५) इति भूतानद्यतने भविष्यदनद्यतने च लङ्लुटौ प्रत्ययौ विहितौ, तयोरयं प्रतिषेधः। क्रियाप्रबन्धः=क्रियायाः सातत्येनानुष्ठानम्।

उदा०-**(क्रियाप्रबन्धः)** देवदत्तो यावज्जीवं भृशमन्नमदात् (लुङ्) भृशमन्नं दास्यति (लृट्)। यज्ञदत्तो यावज्जीवं पुत्रमध्यापिपत् (लुङ्) यावज्जीवं पुत्रमध्यापयिष्यति (लृट्)। **(सामीप्यम्)** येयं पौर्णमास्यतिक्रान्ता, एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधित, सोमेनाऽयष्ट, गामदित (लुङ्)। येयममावस्याऽऽगामिनी, एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधास्यते, सोमेन यक्ष्यते, गां दास्यते (लृट्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः) क्रिया की निरन्तरता और काल की समीपता की प्रतीति में (धातोः) धातु से परे (अनद्यतनवत्) अनद्यतन भूतकाल और अनद्यतन भविष्यत्काल में विहित लङ् और लुट् प्रत्यय (न) नहीं होते हैं।

उदा०-(क्रियाप्रबन्ध) ***देवदत्तो यावज्जीवमन्नमदात् (लुङ्)।*** *देवदत्त ने आजीवन बहुत अन्न का दान किया। (भूतकाल)* ***भृशमन्नं दास्यति (लृट्)।*** *बहुत अन्न का दान करेगा (भविष्यत्काल)। (सामीप्य)* ***येयं पौर्णमास्यतिक्रान्ता, एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधित, सोमेनायष्ट, गामदित (लुङ्)।*** *जो यह पौर्णमासी गयी है इसमें उपाध्याय जी ने अनेक अग्नियों का आधान किया (अनेक यज्ञ किये), सोम से यज्ञ किया, गोदान किया (भूतकाल)।* ***येयममावस्याऽऽगामिनी, एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधास्यते, सोमेन यक्ष्यते, गां दास्यते (लृट्)।*** *जो यह आनेवाली अमावस्या है, इसमें उपाध्याय जी अनेक अग्नियों का आधान करेंगे, सोम से यज्ञ करेंगे, गोदान करेंगे (भविष्यत्काल)।*

सिद्धि-(१) अदात्। दा+लुङ्। अट्+दा+च्लि+लुङ्। अ+दा+सिच्+तिप्। अ+दा+त्। अदात्।

यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'गातिस्थाघु०' (२।४।७०) से 'सिच्' का लुक् होता है।

(२) दास्यति। यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से भविष्यत्काल में 'लृट्' प्रत्यय है, 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय होता है।

(३) अध्यापिपत्। यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। इसकी पूर्ण सिद्धि 'णौ च संश्चङोः' (२।४।५१) की व्याख्या में देख लेवें।

(४) अध्यापयिष्यति। यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त णिजन्त 'इङ्' धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से भविष्यत्काल में लृट् प्रत्यय है।

(५) आधित। आङ्+धा+लुङ्। अट्+आ+धा+च्लि+लुङ्। आ+धा+सिच्+त। आ+धि+०+त। आधित।

यहां आङ्पूर्वक 'डुदाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'स्थाघ्वोरिच्च' (१।२।१७) से इत्त्व और 'ह्रस्वादङ्गात्' (८।२।२७) से 'सिच्' का लोप होता है।

(६) अयष्ट। यज्+लुङ्। अट्+यज्+च्लि+लुङ्। अ+यज्+सिच्+त। अ+यष्+स्+त। अ+यष्+०+ट। अयष्ट।

यहां 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय, 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से षत्व और 'झलो झलि' (८।२।२६) से 'सिच्' का लोप होता है।

(७) अदित। यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'आधित' के समान कार्य है।

(८) आधास्यते। यहां आङ् पूर्वक 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।

(९) यक्ष्यते। यज्+लृट्। यज्+स्य+त। यष्+स्य+त। यक्+ष्य+ते। यक्ष्यते।

यहां पूर्वोक्त 'यज्' धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से षत्व और 'षढोः कः सि' (८।२।४१) से कत्व होता है।

(१०) दास्यते। यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।

विशेष-यहां क्रियाप्रबन्ध और सामीप्य अर्थ में अनद्यतनवत् अर्थात् अनद्यतन अर्थ में विहित लङ् (भूत) और लुट् (भविष्यत्) प्रत्यय का प्रतिषेध होने से भूतकाल में लुङ् और भविष्यत्काल में लृट् प्रत्यय होता है।

(२४) भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन्।१३६।

प०वि०-भविष्यति ७।१ मर्यादावचने ७।१ अवरस्मिन् ७।१।

स०-मर्यादा उच्यते येन सः-मर्यादावचनः, तस्मिन् मर्यादावचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-न, अनद्यतनवत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् (विभागे) धातोरनद्यतवत् प्रत्ययो न।

अर्थः-भविष्यति काले मर्यादावचनेऽवरस्मिन् प्रविभागे धातोः परोऽनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति।

उदा०-योऽयमध्वागन्तव्य आ पाटलिपुत्रात्, तस्य यदवरं कौशाम्ब्याः, तत्र द्विरोदनं भोक्ष्यामहे, तत्र सक्तून् पास्यामः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भविष्यति) भविष्यत्काल में (मर्यादावचने) मर्यादा के कथन में (अवस्मिन्) अवर=इधर के प्रविभाग में (धातोः) धातु से परे (अनद्यतनवत्) अनद्यतन अर्थ में विहित लुट् प्रत्यय (न) नहीं होता है, अपितु 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय होता है।

उदा०-योऽयमध्वा गन्तव्य आ पाटलिपुत्रात्, तस्य यद् अवरं कौशाम्ब्याः तत्र द्विरोदनं भोक्ष्यामहे, सत्र सक्तून् पास्यामः। हमने जो यह पटना तक मार्ग तय करना है, उस मार्ग में कौशाम्बी नगरी का जो अवर भाग है वहां हम दो बार ओदन (भात) खायेंगे, वहां सत्तु पीयेंगे।

सिद्धि-(१) भोक्ष्यामहे। भुज्+लृट्। भुज्+स्य+महिङ्। भोक्+स्य+महि। भोक्+ष्या+महे। भोक्ष्यामहे।

यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रु०प०) धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से कुत्व और 'अतो दीर्घो यञि' (७।३।१०१) से दीर्घत्व होता है।

(२) पास्यामः। यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।

(२५) कालविभागे चानहोरात्राणाम्।१३७।

प०वि०-कालविभागे ७।१ च अव्ययपदम्, अनहोरात्राणाम् ६।३।

स०-कालस्य विभाग इति कालविभागः, तस्मिन्-कालविभागे (षष्ठीतत्पुरुषः)। अहानि च रात्रयश्च तानि-अहोरात्राणि, न अहोरात्राणीति अनहोरात्राणि, तेषाम्-अनहोरात्राणाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-न, अनद्यतनवत्, भविष्यति, मर्यादावचने, अवरस्मिन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् (कालविभागे) धातोरनद्यतनवत् प्रत्ययो न, अनहोरात्राणाम्।

अर्थः-भविष्यति काले मर्यादावचनेऽवरस्मिन् कालविभागे सति धातोः परोऽनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति, न चेदहोरात्रसम्बन्धी कालविभागो भवति।

उदा०-योऽयं संवत्सर आगामी, तत्र यदवरमाग्रहायण्याः, तत्र युक्ता अध्येष्यामहे, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे।

आर्यभाषा-अर्थ-(भविष्यति) भविष्यत्काल में (मर्यादावचने) मर्यादा के कथन में (अवरस्मिन्) इधर के (कालविभागे) कालविभाग में (धातोः) धातु से परे (अनद्यतनवत्) अनद्यतनकाल में विहित प्रत्यय विधि (न) नहीं होती है, अपितु 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय होता है। यदि वह कालविभाग (अनहोरात्राणाम्) अहोरात्रसम्बन्धी न हो।

उदा०-योऽयं संवत्सर आगामी, तत्र यदवरमाग्रहायण्याः, तत्र युक्ता अध्येष्यामहे, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे। जो यह संवत्सर (वर्ष) आनेवाला है, उसमें जो आग्रहायणी (मार्गशीर्षी पौर्णमासी) का इधर का भाग है, उसमें हम लगकर पढ़ेंगे, उसमें चावल खायेंगे।

सिद्धि-(१) अध्येष्यामहे। यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से अनद्यतनवत् प्रत्ययविधि अर्थात् 'लुट्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से भविष्यत्काल में 'लृट्' प्रत्यय है।

(२) भोक्ष्यामहे। 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।

अनद्यतनवत् प्रत्ययविकल्पः-

(२६) परस्मिन् विभाषा।१३८।

प०वि०-परस्मिन् ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-अनद्यतनवत्, भविष्यति, मर्यादावचने, कालविभागे, अनहोरात्राणाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भविष्यति मर्यादावचने परस्मिन् कालविभागे धातोर्विभाषाऽनद्यतनवत् प्रत्यय, अनहोरात्राणाम्।

अर्थः-भविष्यति काले मर्यादावचने परस्मिन् कालविभागे सति धातोः परो विकल्पेनानद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्भवति, न चेदहोरात्रसम्बन्धी कालविभागो भवति।

उदा०-योऽयं संवत्सर आगामी, तत्र यत् परमाग्रहायण्याः, तत्र युक्ता अध्येष्यामहे, अध्येतास्महे वा, तत्र सक्तून् पास्यामः, पातास्मो वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(भविष्यति) भविष्यत्काल में (मर्यादावचने) मर्यादा के कथन में (परस्मिन्) उधर के (कालविभागे) कालविभाग में (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (अनद्यतनवत्) अनद्यतनकाल में विहित प्रत्ययविधि होती है, यदि वह कालविभाग (अनहोरात्राणाम्) अहोरात्रसम्बन्धी न हो।

उदा०-योऽयं संवत्सर आगामी, तत्र यत् परमाग्रहायण्याः, तत्र युक्ता अध्येष्यामहे, अध्येतास्महे वा, तत्र सक्तून् पास्यामः, पातास्मो वा। जो यह संवत्सर आनेवाला है, उसमें जो आग्रहायणी (मार्गशीर्षी पौर्णमासी) का उधर का भाग है, उसमें हम लगकर पढ़ेंगे, उसमें सत्तू पीयेंगे।

सिद्धि-(१) अध्येष्यामहे। यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।

(२) अध्येतास्महे। यहां पूर्वोक्त 'इङ्' धातु से विकल्प पक्ष में 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है।

(३) पास्यामः। यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लट्' प्रत्यय है।

(४) पातास्मः। यहां पूर्वोक्त 'पा' धातु से विकल्प पक्ष में 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है।

लृङ् (भविष्यति)-

(२७) लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ।१३६।

प०वि०-लिङ्निमित्ते ७।१ लृङ् १।१ क्रियातिपत्तौ ७।१।

स०-लिङो निमित्तमिति लिङ्निमित्तम्, तस्मिन्-लिङ्निमित्ते (षष्ठीतत्पुरुषः)। क्रियाया अतिपत्तिरिति क्रियातिपत्तिः, तस्याम्-क्रियातिपत्तौ (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-'भविष्यति' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-भविष्यति लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ धातोर्लृङ्।

अर्थः-भविष्यति काले लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ च सत्यां धातोः परो लृङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-भवान् दक्षिणेन चेदाऽऽयास्यत्, न शकटं पर्यभविष्यत्। अभोक्ष्यत भवान् घृतेन यदि मत्समीपमागमिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(भविष्यति) भविष्यत्काल में (लिङ्निमित्ते) लिङ्लकार के निमित्त (क्रियातिपत्तौ) क्रिया की अतिपत्ति=असिद्धि होने पर (धातोः) धातु से परे (लृङ्) लृङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-भवान् दक्षिणेन चेदायास्यत् न शकटं पर्याभविष्यत्। *आप यदि दक्षिण मार्ग से आओगे तो आपकी गाड़ी नहीं टूटेगी।* **अभोक्ष्यत भवान् घृतेन यदि मत्समीपमागमिष्यत्।** *आप यदि मेरे पास आओगे तो घृत से भोजन करोगे।*

सिद्धि-(१) आयास्यत्। यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'या प्रापणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल लिङ्निमित्त हेतु और हेतुमान् अर्थ में तथा क्रिया की असिद्धि के कथन में 'लृङ्' प्रत्यय है। यहां दक्षिण मार्ग से आना हेतु और गाड़ी का न टूटना हेतुमान् है। क्रिया की अतिपत्ति इस अर्थापत्ति से प्रकट होती है कि यदि आप दक्षिण मार्ग से आओगे तो गाड़ी टूट जायेगी।

(२) पर्याभविष्यत्। यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लृङ्' प्रत्यय है।

(३) अभोक्ष्यत। यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'लृङ्' प्रत्यय है।

(४) आगमिष्यत्। यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लृङ्' प्रत्यय है।

लृङ् (भूते)-

(२८) भूते च।१४०।

प०वि०-भूते ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-लिङ्निमित्ते, लृङ्, क्रियातिपत्तौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भूते च लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ धातोर्लृङ्।

अर्थः-भूते कालेऽपि लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ च सत्यां धातोः परो लृङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दृष्टो मया भवत्पुत्रोऽन्नार्थी चङ्क्रम्यमाणः, अपरश्च द्विजो ब्राह्मणार्थी, यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत् तर्हि अभोक्ष्यत, न तु स भुक्तवान्, अन्येन पथा स गतः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भूते) भूतकाल में (च) भी (लिङ्निमित्ते) लिङ्लकार के निमित्त में (क्रियातिपत्तौ) क्रिया की असिद्धि होने पर (धातोः) धातु से परे (लृङ्) लृङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-दृष्टो मया भवत्पुत्रोऽन्नार्थी चङ्क्रम्यमाणः, अपरश्च द्विजो ब्राह्मणार्थी, यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत् तर्हि अभोक्ष्यत, न तु स भुक्तवान्, अन्येन पथा स गतः। मैंने आपका अन्नार्थी पुत्र घूमता हुआ देखा था और एक द्विज ब्राह्मणार्थी भी देखा था, यदि आपका पुत्र उसने देखा होता तो वह भोजन कर लेता, किन्तु उसने भोजन नहीं किया क्योंकि वह द्विज किसी अन्य मार्ग से चला गया।

सिद्धि-(१) अभविष्यत्। यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल अर्थ में 'लृङ्' प्रत्यय है।

(२) अभोक्ष्यत। यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'लृङ्' प्रत्यय है।

लृङ्प्रत्ययविकल्पाधिकारः (भूते)-

(२६) वोताप्योः।१४१।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, आ अव्ययपदम्, उताप्योः ७।२।

स०-उतश्च अपिश्च तौ-उतापी, तयोः-उताप्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-लिङ्निमित्ते, लृङ्, क्रियातिपत्तौ, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भूते आ उताप्योर्लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ वा लृङ्।

अर्थः-भूते काले **'उताप्योः समर्थयोर्लिङ्'** (३।३।१५१) इति सूत्रपर्यन्तं लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ सत्यां विकल्पेन लृङ् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति **'विभाषा कथमि लिङ् च'** (३।३।१४३) कथं नाम तत्र भवान् शूद्रं न याजयिष्यत् (लृङ्) यथाप्राप्तं च न याजयेत् (लिङ्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(भूते) भूतकाल में (आ+उताप्योः) 'उताप्योः समर्थयोर्लिङ्' (३।३।१५१) इस सूत्र तक (लिङ्निमित्ते) लिङ् का निमित्त होने पर तथा (क्रियातिपत्तौ) क्रिया की असिद्धि होने पर (वा) विकल्प से (लृङ्) लृङ् प्रत्यय होता है, यह अधिकार सूत्र है। जैसे कहेगा- 'विभाषा कथमि लिङ् च' (३।३।१४३)। यहां लिङ् का निमित्त होने से क्रिया की असिद्धि में भूतकाल में लृङ् प्रत्यय भी होता है-कथं नाम तत्र भवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्। कैसे आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया और यथाप्राप्त लिङ् भी होता है-न याजयेत्। यज्ञ नहीं कराया।

सिद्धि-(१) अयाजयिष्यत्। यहां णिजन्त 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से 'विभाषा कथमि लिङ् च' (३।३।१५१) से भूतकाल में लिङ् का निमित्त और क्रिया की असिद्धि होने पर 'लङ्' प्रत्यय है।

(२) याजयेत्। यहां पूर्वोक्त 'यज' धातु से पूर्वोक्त अर्थ में विकल्प पक्ष में 'लिङ्' प्रत्यय है।

विशेष-वैदिककाल में सबको यज्ञ कराया जाता था। मध्यकाल में वैदिकरीति का ह्रास होने से शूद्र को यज्ञ कराना बन्द कर दिया गया। अब पुनः महर्षि दयानन्द की दया से वैदिकधर्म के प्रचार से शूद्र को यज्ञ न कराना अच्छा नहीं माना जाता है। अतः ये उदाहरण वर्तमानकाल की दृष्टि से दिये हैं, मध्यकाल की दृष्टि से नहीं। काशिकावृत्ति आदि में मध्यकालीन उदाहरण दिये गये हैं।

लट् (कालत्रये)-

(३०) गर्हायां लडपि जात्वोः।१४२।

प०वि०-गर्हायाम् ७।१ लट् १।१ अपि-जात्वोः ७।२।

स०-अपिश्च जातुश्च तौ-अपिजातू, तयोः-अपिजात्वोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अर्थः-अपिजात्वोरुपपदयोर्धातोः परो लट् प्रत्ययो भवति, गर्हायां गम्यमानायाम्।

'वर्तमाने लट्' (३।२।११३) इति वर्तमाने काले लड् विहितः स कालसामान्ये न प्राप्नोति, इति कालत्रये लड् विधीयते।

उदा०-**(अपिः)** अपि तत्र भवान् शूद्रं न याजयति, **(जातुः)** जातु तत्र भवान् वृषलं न याजयति, गर्हामहे, अन्याय्यमेतत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अपिजात्वोः) अपि और जातु शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लट्) लट् प्रत्यय है (गर्हायाम्) यदि वहां निन्दा अर्थ की प्रतीति हो।

'वर्तमाने लट्' (३।२।११३) से वर्तमानकाल में 'लट्' प्रत्यय का विधान किया गया है, वह काल सामान्य में प्राप्त नहीं होता है, अतः इस सूत्र से तीनों कालों में 'लट्' प्रत्यय का विधान किया गया है।

उदा०-(अपि) अपि नाम तत्र भवान् शूद्रं न याजयति, आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया, कराते हो, कराओगे। (जातु) जातु नाम तत्रभवान् वृषलं न याजयति, गर्हामहे, अन्याय्येमतत्। कभी आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया, कराते हो, कराओगे, हम इसकी निन्दा करते हैं, यह अन्याय है। क्योंकि यज्ञ का मानवमात्र को अधिकार है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।। (यजु० २६।२)

अर्थ-ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! जिस प्रकार मैं तुमको चारों वेदों का उपदेश करता हूं, उसी प्रकार से तुम भी उनको पढ़के मनुष्यों को पढ़ाया और सुनाया करो। क्योंकि यह चारों वेदरूप वाणी सबका कल्याण करनेवाली है। वेदाधिकार जैसे ब्राह्मण के लिये है, वैसा ही क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पुत्र, भृत्य और अतिशूद्र के लिये भी बराबर है। (महर्षि दयानन्द-ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

सिद्धि-(१) याजयति। यहां णिजन्त 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से गर्हा अर्थ में लट् प्रत्यय है।

लिङ्+लट् (कालत्रये)-

(३१) विभाषा कथमि लिङ् च।१४३।

प०वि०-विभाषा १।१ कथमि ७।१ लिङ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-गर्हायां, लट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कथमि धातोर्लिङ् लट् च गर्हायाम्।

अर्थः-कथं-शब्दे उपपदे धातोः परो विकल्पेन लिङ् लट् च प्रत्ययो भवति, गर्हायां गम्यमानायाम्।

अत्र यथास्वं कालविषये विहितानां प्रत्ययानामबाधनार्थं विभाषा ग्रहणं क्रियते, तेन यथाप्राप्तं प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-(लिङ्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। (लट्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयति। **यथाप्राप्तम्**-(लृट्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिष्यति। (लुट्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिता। (लुङ्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायीयजत्। (लङ्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायाजयत्। (लिट्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयाञ्चकार।

अत्र लिङ्निमित्तमस्तीति भूते काले क्रियातिपत्तौ वा लृङ् प्रत्ययो भवति-कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, न याजयेद् वा। भविष्यति काले तु नित्यं लृङ् एव भवति-कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(कथमि) कथम् शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (लिङ्) लिङ् (च) और (लट्) लट् प्रत्यय होता है (गर्हायाम्) यदि वहां निन्दा अर्थ की प्रतीति हो।

यहां अपने-अपने विषय में विहित प्रत्ययों के अबाधन के लिये 'विभाषा' ग्रहण किया गया है। इससे यथाप्राप्त प्रत्यय भी होते हैं।

उदा०-(लिङ्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। (लट्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयति। कैसे आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया, कराते हैं, करायेंगे। यथाप्राप्त-(लृट्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिष्यति। कैसे आप शूद्र को यज्ञ नहीं करायेंगे। (लुट्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिता। अर्थ पूर्ववत् है। (लुङ्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायीयजत्। कैसे आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया। (लङ्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायाजयत्। अर्थ पूर्ववत् है। (लिट्) कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयाञ्चकार। अर्थ पूर्ववत् है।

यहां लिङ्निमित्त भी है अतः भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से लृङ् प्रत्यय होता है। कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, न याजयेद् वा। कैसे आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया ? भविष्यत्काल में तो नित्य लङ् ही होता है-कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्। कैसे आप शूद्र को यज्ञ नहीं करायेंगे ?

सिद्धि-(१) याजयेत्। यहां णिजन्त 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से कथम् शब्द उपपद होने पर गर्हा अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है।

(२) याजयति। पूर्वोक्त 'यज्' धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय है।

(३) याजयिष्यति। पूर्वोक्त 'यज्' धातु से विकल्प पक्ष में 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है।

(४) याजयिता। पूर्वोक्त 'यज्' धातु से विकल्प पक्ष में 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है।

(५) अयीयजत्। पूर्वोक्त 'यज्' धातु से विकल्प पक्ष में 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है।

(६) अयाजयत्। पूर्वोक्त 'यज्' धातु से 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है।

(७) याजयाञ्चकार। पूर्वोक्त 'यज्' धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है।

(८) अयाजयिष्यत्। पूर्वोक्त 'यज्' धातु से 'लिङ्' के निमित्त में क्रियातिपत्ति होने पर 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से 'वोताप्योः' (३।३।१४१) के अधिकार में भूतकाल में 'लङ्' प्रत्यय है।

(९) अयाजयिष्यत्। पूर्वोक्त 'यज्' धातु से 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से भविष्यत्काल में नित्य 'लृङ्' प्रत्यय होता है।

लिङ्+लृट् (कालत्रये)-

(३२) किंवृत्ते लिङ्लृटौ।१४४।

प०वि०-किंवृत्ते ७।१ लिङ्-लृटौ १।२।

स०-किमो वृत्तमिति किंवृत्तम्, तस्मिन्-किंवृत्ते (षष्ठीतत्पुरुषः)। लिङ् च लृट् च तौ-लिङ्लृटौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-गर्हायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-किंवृत्ते धातोर्लिङ्लुटौ गर्हायाम्।

अर्थः-किंवृत्ते शब्दे उपपदे धातोः परौ लिङ्लृटौ प्रत्ययौ भवतः, गर्हायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(लिङ्) को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत्। कतरो नाम/कतमो नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत्। (लृट्) को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयिष्यति। कतरो नाम/कतमो नाम वृषलो यं तत्र भवान् न याजयिष्यति।

भूते काले क्रियातिपत्तौ सत्यां वा लृङ् प्रत्ययो भवति। को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् नायाजयिष्यत्, याजयेद् वा। भविष्यति काले क्रियातिपत्तौ सत्यां तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति-को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् नायाजयिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(किंवृत्ते) विभक्त्यन्त तथा डतर-डतम प्रत्ययान्त किं शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्लृटौ) लिङ् और लृट् प्रत्यय होते हैं (गर्हायाम्) यदि वहां निन्दा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-(लिङ्) को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत्। वह कौन शूद्र हो, जिसको आप यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। कतरो नाम/कतमो नाम वृषलो यं तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। वह कौनसा शूद्र है जिसे आप यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। (लृट्) को नाम शूद्रं यं तत्रभवान् न याजयिष्यति। अर्थ पूर्ववत् है। कतरो नाम/कतमो नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयिष्यति। अर्थ पूर्ववत् है।

भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से 'लृङ्' प्रत्यय होता है। (लृङ्) को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् नायाजयिष्यत्, याजयेद् वा। वह कौन शूद्र कौन शूद्र है जिसे आपने यज्ञ नहीं कराया। भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि में नित्य 'लृङ्' प्रत्यय होता है। को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् नायाजयिष्यत्। वह कौन शूद्र है जिसे आप यज्ञ नहीं करायेंगे।

किंवृत्ते शब्द की व्याख्या 'किंवृत्ते लिप्सायाम्' (३।३।६) में देख लेवें।

सिद्धि-(१) याजयेत्। यहां णिजन्त 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से काल सामान्य में और गर्हा अर्थ में किंवृत्त शब्द उपपद होने पर इस सूत्र से 'लिङ्' प्रत्यय है।

(२) याजयिष्यति। पूर्वोक्त 'यज' धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।

(३) अयाजयिष्यत्। पूर्वोक्त 'यज' धातु से 'लिङ्' के निमित्त में भूतकाल में क्रियातिपत्ति होने पर 'वोताप्योः' (३।३।१४१) के अधिकार से विकल्प से 'लृङ्' प्रत्यय है।

(४) याजयेद्। यहां पूर्ववत् विकल्प पक्ष में 'लिङ्' प्रत्यय है।

(५) अयाजयिष्यत्। पूर्वोक्त 'यज्' धातु से 'लिङ्' के निमित्त में भविष्यत्काल में क्रियातिपत्ति होने पर 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से नित्य 'लृङ्' प्रत्यय होता है।

(३३) अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि।१४५।

प०वि०-अनवक्लृप्ति-अमर्षयोः ७।२ अकिंवृत्ते ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०-अवक्लृप्तिः=सम्भावना। न अवक्लृप्तिरिति अनवक्लृप्तिः= असम्भवनेत्यर्थः (नञ्तत्पुरुषः)। न मर्ष इत्यमर्षः=अक्षमेत्यर्थः (नञ्तत्पुरुषः)। अनवक्लृप्तिश्चामर्षश्च तौ अनवक्लृप्त्यमर्षौ, तयोः-अनवक्लृप्त्यमर्षयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। किमो वृत्तमिति किंवृत्तम्, न किंवृत्तमिति अकिंवृत्तम्, तस्मिन्-अकिंवृत्ते (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-लिङ्लृटावित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकिंवृत्तेऽपि धातोर्लिङ्लृटौ, अनवक्लृप्त्यमर्षयोः।

अर्थः-किंवृत्तेऽकिंवृत्ते च शब्दे उपपदे धातोः परौ लिङ्लृटौ प्रत्ययौ भवतः, अनवक्लृप्ति-अमर्षयोर्गम्यमानयोः।

उदा०-{१} **(अनवक्लृप्तिः)** नावकल्पयामि=न सम्भावयामि, न श्रद्दधे तत्रभवान् नाम शूद्रं न याजयेत् (लिङ्)। तत्रभवान् नाम शूद्रं न याजयिष्यति (लृट्)।

{२} **(किंवृत्तम्)** को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत् (लिङ्)। को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयिष्यति (लृट्)।

{३} **(अमर्षः)** न मर्षयामि तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत् (लिङ्)। तत्रभवान् शूद्रं न याजयिष्यति। **(किंवृत्तम्)** को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत् (लिङ्)। को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयिष्यति (लृट्)।

{४} भूते काले क्रियातिपत्तौ सत्यां वा लृङ् प्रत्ययो भवति। नावकल्पयामि तत्रभवान् नाम शूद्रं नायाजयिष्यत्, न याजयेद् वा। भविष्यति काले क्रियातिपत्तौ तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति। नावकल्पयामि तत्रभवान् नाम शूद्रं नायाजयिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकिंवृत्तेऽपि) किंवृत्त और अकिंवृत्त शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्लृटौ) लिङ् और लृट् प्रत्यय होते हैं (अनवक्लृप्त्यमर्षयोः) यदि वहां अनवक्लृप्ति=असम्भावना और अमर्ष=अक्षमा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-{१} (अनवक्लृप्ति) नावकल्पयामि=न सम्भावयामि, न श्रद्दधे तत्र भवान् नाम शूद्रं न याजयेत् (लिङ्)। मैं सम्भावना नहीं करता हूं कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हैं/कराया/करायेंगे। तत्रभवान् नाम शूद्रं न याजयिष्यति (लृट्)। अर्थ पूर्ववत् है।

{२} (किंवृत्त) को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत् (लिङ्)। वह कौन शूद्र है जिसे आप यज्ञ नहीं कराते हैं/कराया/करायेंगे। को नाम वृषलो यं तत्रभवान् न याजयिष्यति (लृट्)। अर्थ पूर्ववत् है।

{३} (अमर्ष) न मर्षयामि तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। मैं यह सहन नहीं करता हूं कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत् (लिङ्)। वह कौन शूद्र है जिसे आप यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। को नाम शूद्रो तत्रभवान् न याजयिष्यति (लृट्)। अर्थ पूर्ववत् है।

{४} भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से 'लृङ्' प्रत्यय होता है। नावकल्पयामि तत्रभवान् नाम शूद्रं नायाजयिष्यत्, याजयेद् वा। मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं कि आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया। भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर

नित्य 'लृङ्' प्रत्यय होता है। नावकल्पयामि तत्रभवान् नाम शूद्रं नायाजयिष्यत्। मैं सम्भावना नहीं करता हूं कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं करायेंगे।

सिद्धि-(१) याजयेत्। यहां णिजन्त 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष अर्थ में किंवृत्त और अकिंवृत्त शब्द उपपद होने पर 'लिङ्' प्रत्यय है।

(२) याजयिष्यति। यहां पूर्वोक्त 'यज्' धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।

(३) अयाजयिष्यत्। यहां पूर्वोक्त णिजन्त 'यज्' धातु से भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर 'वोताप्योः' (३।३।१४१) के अधिकार से 'लृङ्' प्रत्यय है। विकल्प पक्ष में 'लिङ्' प्रत्यय भी होता है। भविष्यत्काल में 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय ही होता है।

लृट् (कालत्रये)-

(३४) किंकिलास्त्यर्थेषु लृट्।१४६।

प०वि०-किंकिल-अस्ति-अर्थेषु ७।३ लृट् १।१।

स०-अस्तिरर्थो येषां तेऽस्त्यर्थाः, किंकिलश्च अस्त्यर्थाश्च ते-किंकिलास्त्यर्थाः, तेषु-किंकिलास्त्यर्थेषु (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अनवक्लृप्त्यमर्षयोरित्यनुवर्तते।

अर्थः-किंकिल-अस्त्यर्थेषु चोपपदेषु धातोः परो लृट् प्रत्ययो भवति, अनवक्लृत्यमर्षयोर्गम्यमानयोः।

उदा०-{१} **(अनवक्लृप्तिः)** नावकल्पयामि=न सम्भावयामि किंकिल नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिष्यति। अस्ति/भवति/विद्यते नाम तत्र भवान् शूद्रं न याजयिष्यति।

{२} **(अमर्षः)** न मर्षयामि किंकिल नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिष्यति। अस्ति/भवति/विद्यते नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिष्यति।

आर्यभाषा-अर्थ-(किंकिलास्त्यर्थेषु) किंकिल और अस्ति अर्थक शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लृट्) लृट् प्रत्यय होता है (अनवक्लृप्ति-अमर्षयोः) यदि वहां असम्भवना और अक्षमा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-{१} (अनवक्लृप्ति) नावकल्पयामि=न सम्भावयामि किंकिल नाम तत्र भवान् शूद्रं न याजयिष्यति। मैं यह सम्भावना नहीं करता कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं

कराते हो/कराया/कराओगे। अस्ति/भवति/विद्यते नाम तत्र शूद्रं न याजयिष्यति। क्या ऐसा है कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे।

{२} (अमर्ष) न मर्षयामि किंकिल नाम तत्र भवान् शूद्रं न याजयिष्यति। मैं यह सहन नहीं करता हूं कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। अस्ति/भवति/विद्यते नाम तत्र भवान् शूद्रं न याजयिष्यति। क्या ऐसा है कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे।

सिद्धि-याजयिष्यति। यहां णिजन्त 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष अर्थ की प्रतीति में किंकिल और अस्त्यर्थक शब्द उपपद होने पर कालसामान्य में 'लृट्' प्रत्यय है।

विशेष-'किंकिल' शब्द अप्रसन्नता का द्योतक अव्यय है और 'अस्ति' सत्ता (स्थिति) का द्योतक अव्यय है, तिङन्त पद नहीं है।

लिङ् (कालत्रये)–

(३५) जातुयदोर्लिङ्।१४७।

प०वि०-जातु-यदोः ७।२ लिङ् १।१।

स०-जातुश्च यच्च तौ-जातुयदौ, तयोः-जातुयदोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अनक्लृप्त्यमर्षयोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-जातुयदोर्धातोर्लिङ्, अनवक्लृप्त्यमर्षयोः।

अर्थः-जातुयदोः शब्दयोरुपपदयोः धातोः परो लिंङ् प्रत्ययो भवति, अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्गम्यमानयोः।

उदा०-**(अनवक्लृप्तिः)** नावकल्पयामि=न सम्भवयामि जातु तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। यत् तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। **(अमर्षः)** न मर्षयामि जातु तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। यत् तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।

भूते काले क्रियातिपत्तौ सत्यां वा लृङ् प्रत्ययो भवति। नावकल्पयामि जातु यत् तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, न याजयेद् वा।

भविष्यति काले क्रियातिपत्तौ सत्यां तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति। नावकल्पयामि जातु यत् तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्

आर्यभाषा-अर्थ-(जातुयदोः) जातु और यद् शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है (अनवक्लृत्यमर्षयोः) यदि वहां असम्भवना और अक्षमा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-(अनवक्लृप्ति) नावकल्पयामि=न सम्भावयामि जातु तत्र भवान् शूद्रं न याजयेत्। मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं कि कब आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। यत् तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं कि जो आप शूद्र को यज्ञ करते हो/कराया/कराओगे।

(अमर्ष) न मर्षयामि जातु तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। मैं यह सहन नहीं करता हूं कि कब आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। न मर्षयामि यत् तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। मैं यह सहन नहीं करता हूं कि जो आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे।

भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से लिङ् प्रत्यय होता है। नावकल्पयामि जातु/यत् तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत, याजयेद् वा। मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं कि आपने कब/जो शूद्र को यज्ञ नहीं कराया।

भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर तो नित्य 'लृङ्' प्रत्यय होता है। नावकल्पयामि/न मर्षयामि, जातु/यत् तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्। मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं/न सहन करता हूं कि कब/जो आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराओगे।

सिद्धि-(१) याजयेत्। यहां पूर्वोक्त णिजन्त 'यज्' धातु से इस सूत्र से अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थ में जातु और यद् शब्द उपपद होने पर 'लिङ्' प्रत्यय है।

(२) अयाजयिष्यत्। यहां पूर्वोक्त 'णिजन्त यज्' धातु से भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर 'वोताप्योः' (३।३।१४१) के अधिकार में विकल्प से 'लृङ्' प्रत्यय है, पक्ष में लिङ् प्रत्यय होता है-याजयेत्। भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर तो 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से नित्य 'लृङ्' प्रत्यय है।

लिङ् (कालत्रये)-

(३६) यच्चयत्रयोः।१४८।

प०वि०-यच्च-यत्रयोः ७।२।

स०-यच्चश्च यत्रश्च तौ-यच्चयत्रौ, तयोः-यच्चयत्रयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्लिङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यच्चयत्रयोर्धातोर्लिङ्, अनवक्लृप्त्यमर्षयोः।

अर्थः-यच्चयत्रयोः शब्दयोरुपपदयोर्धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति, अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्गम्यमानयोः।

उदा०-(**अनवक्लृप्तिः**) नावकल्पयामि=न सम्भावयामि **यच्च** तत्र भवान् शूद्रं न याजयेत्। **यत्र** तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। (**अमर्षः**) न मर्षयामि **यच्च** तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। **यत्र** तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।

भूते काले क्रियातिपत्तौ सत्यां वा लृङ् प्रत्ययो भवति। नावकल्पयामि **यच्च/यत्र** तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, न याजयेद् वा।

भविष्यति काले क्रियातिपत्तौ सत्यां तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति। नावकल्पयामि **यच्च/यत्र** तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(यच्चयत्रयोः) यच्च और यत्र शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है (अनवक्लृप्त्यमर्षयोः) यदि वहां असम्भावना और अक्षमा अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-(अनवक्लृप्ति) **नावकल्पयामि=न सम्भावयामि यच्च तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।** मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं कि और जो आप शूद्र को यज्ञ नहीं करते हो/कराया/कराओगे। **यत्र तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।** जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। (अमर्षः) **न मर्षयामि यच्च तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।** मैं यह सहन नहीं करता हूं कि और जो आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। **यत्र तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।** जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे।*

*भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से लङ् प्रत्यय होता है। **नावकल्पयामि/न मर्षयामि/यच्च/यत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, न याजयेद् वा।** मैं सम्भावना नहीं करता हूं/न सहन करता हूं कि और जो/जहां आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया।*

*भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर तो नित्य लिङ् प्रत्यय होता है। **नावकल्पयामि/न मर्षयामि/यच्च/यत्र भवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्।** मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं/न सहन करता हूं कि और जो/जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराओगे।*

सिद्धि-(१) याजयेत्। *यहां पूर्वोक्त णिजन्त 'यज्' धातु से इस सूत्र से अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थ में यच्च और यत्र शब्द उपपद होने पर 'लिङ्' प्रत्यय है।*

(२) अयाजयिष्यत्। *यहां पूर्वोक्त 'लृङ्' प्रत्यय है।*

लिङ् (कालत्रये)–

(३७) गर्हायां च।१४६।

प०वि०–गर्हायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अनक्लृप्त्यमर्षयोरिति निवृत्तम्। लिङ् यच्चयत्रयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–यच्चयत्रयोर्धातोर्लिङ् गर्हायां च।

अर्थः–यच्चयत्रयोः शब्दयोरुपपदयोर्धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति, गर्हायां च गम्यमानायाम्। गर्हा=निन्दा।

उदा०–**(यच्च)** यच्च तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् गर्हामहे, अन्याय्यमेतत्। **(यत्र)** यत्र तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् गर्हामहे, अन्याय्यमेतत्।

भूते काले क्रियातिपत्तौ सत्यां वा लृङ् प्रत्ययो भवति। यच्च/यत्र तत्र भवान् शूद्रं नायजयिष्यद्, याजयेद् वा।

भविष्यति काले क्रियातिपत्तौ सत्यां तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति। यच्च/यत्र तत्र भवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(यच्चयत्रयोः) यच्च और यत्र शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है (गर्हायाम्) यदि वहां निन्दा अर्थ की (च) भी प्रतीति हो।

*उदा०-(यच्च) **यच्च तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् गर्हामहे, अन्याय्मेतत्।** और जो कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे, हम आपकी निन्दा करते हैं, यह अन्याय है। (यत्र) **यत्र तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् गर्हामहे, अन्याय्यमेतत्।** जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे, हम आपकी निन्दा करते हैं, यह अन्याय है।*

*भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से लृङ् प्रत्यय होता है। **यच्च/तत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यद्, न याजयेद् वा/गर्हामहे अन्याय्यमेतत्।** और जो/जहां आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया हम आपकी निन्दा करते हैं, यह अन्याय है।*

*भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर तो लृङ् प्रत्यय होता है। **यच्च/यत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, गर्हामहे, अन्याय्यमेतत्।** और जो/जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराओगे, हम आपकी निन्दा करते हैं, यह अन्याय है।*

सिद्धि-(१) याजयेत्। पूर्ववत् (३।३।१४८)।

(२) अयाजयिष्यत्। पूर्ववत्।

लिङ् (कालत्रये)-

(३७) चित्रीकरणे च।१५०।

प०वि०-चित्रीकरणे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-लिङ् यच्चयत्रयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-यच्चयत्रयोर्धातोर्लिङ् चित्रीकरणे च।

अर्थः-यच्चयत्रयोः शब्दयोरुपपदयोर्धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति, चित्रीकरणे च गम्यमाने।

उदा०-(यच्च) यच्च तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् आश्चर्यमेतत्। **(यत्र)** यत्र तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् आश्चर्यमेतद्।

भूते काले क्रियातिपत्तौ सत्यां वा लृङ् प्रत्ययो भवति। यच्च/यत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यद्, याजयेद् वा आश्चर्यमेतत्।

भविष्यति काले क्रियातिपत्तौ सत्यां तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति। यच्च/यत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, आश्चर्यमेतत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(यच्चयत्रयोः) यच्च और यत्र शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) प्रत्यय होता है (चित्रीकरणे) यदि वहां आश्चर्य अर्थ की (च) भी प्रतीति हो।

*उदा०-(यच्च) **यच्च तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् आश्चर्यमेतत्।** और जो आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे, यह आश्चर्य की बात है। (यत्र) **यत्र तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् आश्चर्यमेतत्।** जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे, यह आश्चर्य की बात है।*

*भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से लृङ् प्रत्यय होता है। **यच्च/यत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यद् न याजयेद् वा, आश्चर्यमेतत्।** जो कि/और जो/जहां आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया, यह आश्चर्य की बात है।*

*भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर तो नित्य लृङ् प्रत्यय होता है। **यच्च/यत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत् आश्चर्यमेतत्।** और जो/जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराओगे यह आश्चर्य की बात है।*

***सिद्धि-याजयेत्/अयाजयिष्यत्।** पूर्ववत्।*

लृट् (कालत्रये)-

(३९) शेषे लृडयदौ।१५१।

प०वि०-शेषे ७।१ लृट् १।१ अयदौ ७।१।

स०-न यदिरिति अयदिः, तस्मिन्-अयदौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-चित्रीकरणे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अयदौ शेषे धातोर्लृट् चित्रीकरणे।

अर्थः-यदिशब्दवर्जिते शेषे उपपदे धातोः परो लृट् प्रत्ययो भवति चित्रीकरणे गम्यमाने। यच्चयत्राभ्यामन्यः शब्दः शेषः।

उदा०-अन्धो नाम पर्वतमारोक्ष्यति, आश्चर्यमेतत्। बधिरो नाम व्याकरणमध्येष्यते, चित्रमेतत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अयदौ) यदि शब्द से भिन्न (शेषे) शेष उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लृट्) लृट् प्रत्यय होता है (चित्रीकरणे) यदि वहां आश्चर्य अर्थ की प्रतीति हो। यच्च और यत्र से भिन्न शब्द शेष है।

*उदा०-**अन्धो नाम पर्वतमारोक्ष्यति, आश्चर्यमेतत्।** एक अन्धा पहाड़ पर चढ़ता है/चढ़ा/चढ़ेगा यह आश्चर्य की बात है। **बधिरो नाम व्याकरणमध्येष्यते, चित्रमेतत्।** एक बहरा व्याकरणशास्त्र पढ़ता है/पढ़ा/पढ़ेगा, यह विचित्र बात है।*

*सिद्धि-(१) **आरोक्ष्यति।** आङ्+रुह्+लृट्। आ+रुह्+स्य+तिप्। आ+रुढ्+स्य+ति। आ+रुक्+ष्य+ति। आ+रोक्+ष्य+ति। आरोक्ष्यति।*

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अन्ध शब्द उपपद होने पर आश्चर्य अर्थ की प्रतीति में कालसामान्य में लृट् प्रत्यय है। 'हो ढः' (८।२।३१) से 'रुह्' धातु के 'ह्' को 'ढ्' 'षढोः कः सि' (८।२।४१) से 'ढ्' को 'क्' और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

*(२) **अध्येष्यते।** अधि+इङ्+लृट्। अधि+इ+स्य+त। अधि+ए+ष्य+ते। अध्येष्यते।*

यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'इङ्' धातु को गुण और पूर्ववत् षत्व होता है।

लिङ् (भविष्यति)-

(४०) उताप्योः समर्थयोर्लिङ्।१५२।

प०वि०-उत-अप्योः ७।२ समर्थयोः ७।२ लिङ् १।१।

स०-उतश्च अपिश्च तौ-उतापी, तयोः-उताप्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। समानोऽर्थो ययोस्तौ समर्थौ, तयोः-समर्थयोः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-समर्थयोरुताप्योर्धातोर्लिङ्।

अर्थः-समर्थयोः=समानार्थयो रुताप्योः शब्दयोरुपपदयोर्धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति। बाढमित्यस्मिन्नर्थेऽनयोः समानार्थत्वं वर्तते।

उदा०-**(उतः)** उत कुर्यात्। उत अधीयीत। **(अपि)** अपि कुर्यात्। अपि अधीयीत।

'वोताप्योः' (३।३।१४१) इति विकल्पाधिकारो निवृत्तः। इतः प्रभृति भूते कालेऽपि लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ सत्यां नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति, भविष्यति काले तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवत्येव।

आर्यभाषा-अर्थ-*(समर्थयोः) समान अर्थवाले (उताप्योः) उत और अपि शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है। उत और अपि शब्द बाढम्=हां अर्थ में समानार्थक हैं।*

उदा०-*(उत) उत कुर्यात्। हां! वह करे। उत अधीयीत। हां! वह पढ़े। (अपि) अपि कुर्यात्। हां! वह करे। अपि अधीयीत। हां! वह पढ़े।*

सिद्धि-*(१) कुर्यात्। कृ+लिङ्। कृ+यासुट्+तिप्। कृ+उ+यास्+त्। कुर्+०+या+त्। कुर्यात्।*

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से उत/अपि उपपद होने पर 'लिङ्' प्रत्यय है। 'अत उत् सार्वधातुके' (६।४।११०) से उत्व, रपरत्व और 'ये च' (६।४।१०९) से उकार का लोप होता है।

(२) अधीयीत। यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लिङ्' प्रत्यय है।

विशेष-*यहां से 'वोताप्योः' (३।३।१४१) से विहित विकल्प का अधिकार निवृत्त होगया। यहां से आगे भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर लिङ्निमित्त में नित्य लृङ् प्रत्यय होता है। भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर तो नित्य लृङ् प्रत्यय होता ही है।*

लिङ् (भविष्यति)-

(४१) कामप्रवेदनेऽकच्चिति।१५३।

प०वि०-काम-प्रवेदने ७।१ अकच्चिति ७।१।

स०-कामस्य प्रवेदनमिति कामप्रवेदनम्, तस्मिन्-कामप्रवेदने (षष्ठीतत्पुरुषः)। कामः=इच्छा, प्रवेदनम्=प्रकाशनम्। स्वेच्छायाः प्रकाशनमित्यर्थः। न कच्चिदिति अकच्चित्, तस्मिन्-अकच्चिति (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-लिङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकच्चिति धातोर्लिङ् कामप्रवेदने।

अर्थः-कच्चिद्वर्जिते शब्दे उपपदे धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति, कामप्रवेदने=स्वेच्छाप्रकाशने गम्यमाने।

उदा०-कामो मे भुञ्जीत भवान्। अभिलाषो मे भुञ्जीत भवान्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकच्चिति) कच्चित् को छोड़कर कोई शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है (कामप्रवेदने) यदि वहां अपनी इच्छा प्रकट करने अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-कामो मे भुञ्जीत भवान्। मेरी कामना है कि आप भोजन करें। अभिलाषो मे भुञ्जीत भवान्। मेरी इच्छा है कि आप भोजन करें।

सिद्धि-भुञ्जीत। भुज्+लिङ्। भुज+सीयुट्+लिङ्। भु श्नम् ज्+ईय्+सुट्+त। भु न् ज्+ई+त। भु ं ज्+ई+त। भुञ्जीत।

यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से कामप्रवेदन अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। 'लिङः सीयुट्' (३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम, 'रुधादिभ्यः श्नम्' (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय, 'लिङः स लोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'सीयुट्' और 'सुट्' के 'स्' का लोप, 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'य्' का लोप होता है। 'श्नसोरल्लोपः' (६।४।१११) से 'श्नम्' के 'अ' का लोप, 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार ं और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण 'ञ्' होता है।

लिङ् (भविष्यति)-

(४२) सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे।१५४।

प०वि०-सम्भावने ७।१ अलम् अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, चेत् अव्ययपदम्, सिद्धाप्रयोगे ७।१।

स०-न प्रयोग इति अप्रयोगः, सिद्धोऽप्रयोगो यस्य स सिद्धाप्रयोगः, तस्मिन्-सिद्धाप्रयोगे (नञ्गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-लिङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सम्भावने धातोर्लिङ्, अलमिति चेत्, सिद्धाप्रयोगे।

अर्थः-सम्भावनेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति, तच्चेत् सम्भावनमलमात्मकं भवति, सिद्धश्चेदलमोऽप्रयोगो भवति। क्व चासौ सिद्धः ? यत्र गम्यतेऽर्थो न तु शब्दः प्रयुज्यते।

उदा०-अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात्। अपि द्रोणपाकं भुञ्जीत।

आर्यभाषा-अर्थ-(सम्भावने) सम्भावना अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है, (चेत्) यदि वह सम्भावना (अलम्) अलमात्मक=पर्याप्ति अर्थक हो (सिद्धाप्रयोगे) और वहां 'अलम्' शब्द का अप्रयोग सिद्ध हो। जहां अर्थ की प्रतीति होती है किन्तु शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता है, उसे 'सिद्धाप्रयोग' कहते हैं।

*उदा०-**अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात्।** यह तो शिर से पहाड़ को तोड़ सकता है, यह ऐसा बलवान् है। **अपि द्रोणपाकं भुञ्जीत।** यह तो द्रोण=२० सेर पकवान खा सकता है, यह ऐसा खाऊ है।*

सिद्धि-भिन्द्यात्। भिद्+लिङ्। भिद्+यासुट्+तिप्। भिद्+यास्+सुट्+त्। भि श्नम् द्+या+त्। भिन्द्+या+त्। भिन्द्यात्।

यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से सम्भावना अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। 'रुधादिभ्यः श्नम्' (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण प्रत्यय है। शेष कार्य 'भुञ्जीत' के समान हैं (३।३।१५३)।

लिङ्विकल्पः (भविष्यति)-

(४३) विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि।१५५।

प०वि०-विभाषा १।१ धातौ ७।१ सम्भावनवचने ७।१ अयदि ७।१।

स०-सम्भावनमुच्यते येन सः-सम्भावनवचनः, तस्मिन्-सम्भावनवचने (उपपदसमासः)। न यदिति अयद्, तस्मिन् अयदि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-लिङ्, सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अयदि सम्भावनवचने धातौ सम्भावने च धातोर्विभाषा लिङ्, अलमिति चेत्, सिद्धाप्रयोगे।

अर्थः-यद्-वर्जिते सम्भावनवचने धातावुपपदे सम्भावनेऽर्थे च वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन लिङ् प्रत्ययो भवति, तच्चेत् सम्भावनमलमात्मकं भवति, सिद्धश्चेदलमोऽप्रयोगो भवति।

उदा०-सम्भावयामि भुञ्जीत भवान्। अवकल्पयामि भुञ्जीत भवान् (लिङ्)। सम्भावयामि भोक्ष्यते भवान् अवकल्पयामि भोक्ष्यते भवान् (लृट्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अयदि) यद् शब्द को छोड़कर (सम्भावनवचने) सम्भावनवाची (धातौ) क्रिया उपपद होने पर (सम्भावने) सम्भावना अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है (चेत्) चेत् यदि वह सम्भावना (अलम्) अलमात्मक=पर्याप्ति अर्थक हो, (सिद्धाप्रयोगे) और वहां 'अलम्' शब्द का अप्रयोग सिद्ध हो।

उदा०-सम्भावयामि भुञ्जीत भवान्। अवकल्पयामि भुञ्जीत भवान् (लिङ्)। मैं सम्भावना करता हूं कि आप भोजन कर सकेंगे। सम्भावयामि भोक्ष्यते भवान्। अवकल्पयामि भोक्ष्यते भवान् (लृट्)। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) भुञ्जीत। पूर्ववत्।

(२) भोक्ष्यते। यहां पूर्वोक्त 'भुज्' धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से भविष्यत्काल में विकल्प पक्ष में 'लृट्' प्रत्यय है।

लिङ्+लृट् (भविष्यति)-

(४४) हेतुहेतुमतोर्लिङ्।१५६।

प०वि०-हेतु-हेतुमतोः ७।२ लिङ् १।१।

स०-हेतुश्च हेतुमाँश्च तौ-हेतुहेतुमन्तौ, तयोः-हेतुहेतुमतोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। हेतुः=कारणम्। हेतुमत्=फलम्।

अनु०-विभाषा इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-हेतुहेतुमतोर्धातोर्विभाषार्लिङ्।

अर्थः-हेतौ हेतुमति चार्थे वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन लिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दक्षिणेन चेद् यायान्न शकटं पर्याभवेत् (लिङ्)। दक्षिणेन चेद् यास्यति न शाकटं पर्याभविष्यति (लृट्)। अत्र दक्षिणेन यानं हेतुः, अपर्याभवनं च हेतुमत् (फलम्) वर्तते।

आर्यभाषा-अर्थ-(हितुहेतुमतोः) हेतु और हेतुमान् अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-दक्षिणेन चेद् यायान्न शकटं पर्याभवेत् (लिङ्)। यदि वह दक्षिण के मार्ग से जायेगा तो गाड़ी नहीं टूटेगी। दक्षिणेन चेद् यास्यति न शकटं पर्याभविष्यति (लट्)। अर्थ पूर्ववत् है। यहां दक्षिण-मार्ग से जाना हेतु और गाड़ी न टूटना हेतुमान् (फल) है।

सिद्धि-(१) यायात्। यहां 'या प्रापणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से हेतु अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है।

(२) पर्याभवेत्। यहां परि-आङ् उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से हेतुमत्' (फल) अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है।

(३) यास्यति। यहां पूर्वोक्त 'या' धातु से विकल्प पक्ष में 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से भविष्यत्काल में हेतु अर्थ में 'लृट्' प्रत्यय है।

(४) पर्याभविष्यति। यहां परि-आङ् उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से विकल्प पक्ष में पूर्ववत् हेतुमान् अर्थ में 'लृट्' प्रत्यय है।

लिङ्+लोट् (भविष्यति)-

(४५) इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ।१५७।

प०वि०-इच्छार्थेषु ७।३ लिङ्-लोटौ १।२।

स०-इच्छा अर्थो येषां ते-इच्छार्थाः, तेषु-इच्छार्थेषु (बहुव्रीहिः)। लिङ् च लोट् च तौ-लिङ्लोटौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-इच्छार्थेषु धातुषु उपपदेषु धातोः परौ लिङ्लोटौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(लिङ्) इच्छामि भुञ्जीत भवान्। कामये भुञ्जीत भवान्। (लोट्) इच्छामि भुङ्क्तां भवान्। कामये भुङ्क्तां भवान्।

आर्यभाषा-अर्थ-(इच्छार्थेषु) इच्छा अर्थक धातु उपपद होते पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्लोटौ) लिङ् और लोट् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(लिङ्) इच्छामि भुञ्जीत भवान्। कामये भुञ्जीत भवान्। मैं चाहता हूं कि आप भोजन करें। (लोट्) इच्छामि भुङ्क्तां भवान्। कामये भुङ्क्तां भवान्। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) भुञ्जीत। पूर्ववत्।

(२) भुङ्क्ताम्। भुज्+लोट्। भु श्नम् ज्+त। भुनज्+ते। भु ं क्+ताम्। भुङ्क्ताम्।

यहां पूर्वोक्त 'भुज्' धातु से इस सूत्र से 'लोट्' प्रत्यय है। 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से एत्व और उसे 'आमेतः' (३।४।९०) से 'आम्' आदेश होता है। शेष कार्य 'भुञ्जीत' (३।३।१५३) के समान है।

तुमुन् (भविष्यति)–

(४६) समानकर्तृकेषु तुमुन्।१५८।

प०वि०–समान-कर्तृकेषु ७।३ तुमुन् १।१।

स०–समानः कर्ता येषां ते–समानकर्तृकाः, तेषु–समानकर्तृकेषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०–इच्छार्थेषु इत्यनुवतति।

अन्वयः–समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु धातोस्तुमुन्।

अर्थः–समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु धातुषु उपपदेषु धातोः परस्तुमुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–इच्छति भोक्तुं देवदत्तः। कामयते भोक्तुं यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकेषु) समान कर्तावाले (इच्छार्थेषु) इच्छार्थक धातुओं के उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (तुमुन्) तुमुन् प्रत्यय होता है।

उदा०–इच्छति भोक्तुं देवदत्तः। देवदत्त भोजन करना चाहता है। कामयते भोक्तुं यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त भोजन की कामना करता है।

सिद्धि-भोक्तुम्। भुज्+तुमुन्। भुज्+तुम्। भोज्+तुम्। भोग्+तुम्। भोक्+तुम्। भोक्तुम्+सु। भोक्तुम्।

यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से तुमुन् प्रत्यय है। इच्छति धातु और 'भुज्' धातु का देवदत्त कर्ता समान है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'भुज्' धातु के 'ज्' को 'ग्' और 'खरि च' (८।४।५४) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है।

लिङ् (भविष्यति)–

(४७) लिङ् च।१५९।

प०वि०–लिङ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–इच्छार्थेषु, समानकर्तृकेषु इति चानुवतति।

अन्वयः–समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु धातोर्लिङ् च।

अर्थ:-समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु धातुषु उपपदेषु धातोः परो लिङ् प्रत्ययोऽपि भवति।

उदा०-भुञ्जीय इतीच्छति देवदत्तः। अधीयीय इति कामयते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकेषु) समान कर्तावाले (इच्छार्थेषु) इच्छार्थक धातुओं के उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय (च) भी होता है।

उदा०-भुञ्जीय इतीच्छति देवदत्तः। देवदत्त यह चाहता है कि मैं भोजन करूं। अधीयीय इति कामयते यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त यह कामना करता है कि मैं भोजन करूं।

सिद्धि-(१) भुञ्जीय। यहां 'इच्छति' धातु उपपद होने पर 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'लिङ्' प्रत्यय है। 'इच्छति' धातु और 'भुज्' धातु का देवदत्त कर्ता समान है। यहां 'इट्' प्रत्यय के स्थान में 'इटोऽत्' (३।४।१०६) से 'अत्' आदेश होता है। शेष कार्य 'भुञ्जीत' (३।३।१५३) के समान है।

(२) अधीयीय। यहां 'इच्छति' धातु उपपद होने पर अधि उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'लिङ्' प्रत्यय है। 'इच्छति' और 'अधीङ्' धातु का यज्ञदत्त कर्ता समान है। शेष कार्य 'भुञ्जीय' के समान है।

वर्तमानकालप्रत्ययप्रकरणम्

लिङ्+लट्-

(१) इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्तमाने।१६०।

प०वि०-इच्छार्थेयः ५।३ विभाषा १।१ वर्तमाने ७।१।

स०-इच्छा अर्थो येषां ते-इच्छार्थाः, तेभ्यः-इच्छार्थेभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-लिङ् इत्यनुवर्तति।

अन्वयः-वर्तमाने इच्छार्थेभ्यो धातुभ्यो विभाषा लिङ्।

अर्थ:-वर्तमाने काले इच्छार्थेभ्यो धातुभ्यो विकल्पेन लिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(लिङ्) इच्छेत् देवदत्तः। (लट्) इच्छति देवदत्तः। (लिङ्) कामयेत यज्ञदत्तः। (लट्) कामयते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इच्छार्थेभ्यः) इच्छार्थक (धातोः) धातुओं से परे (विभाषा) विकल्प से (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(लिङ्) इच्छेत् देवदत्तः। देवदत्त चाहता है। (लट्) इच्छति देवदत्तः। देवदत्त चाहता है। (लिङ्) कामयेत् यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त कामना करता है। कामयते यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त कामना करता है।

सिद्धि-(१) इच्छेत्। इष्+लिङ्। इष्+यासुट्+तिप्। इष्+यास्+सुट्+त्। इष्+शप्+यास्+स्+त्। इष्+अ+या+०+त्। इष्+अ+इय्+त्। इच्छ्+अ+इ+त्। इच्छेत्।

यहां 'इषु इच्छायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लिङ्' प्रत्यय है। यहां 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम, 'सुट्तिथोः' (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय, 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'यासुट्' और 'सुट्' के 'स्' का लोप, 'अतो येयः' (७।२।३) से 'या' को 'इय्' आदेश, 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'य्' का लोप होता है। 'इषुगमियमां छः' (७।३।७७) से 'इष्' के 'ष्' को 'छ्' आदेश होता है।

(२) इच्छति। यहां पूर्वोक्त 'इष्' धातु से विकल्प पक्ष में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

(३) कामयेत। यहां 'कमु कान्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से प्रथम 'कमेर्णिङ्' (३।१।३०) से 'णिङ्' प्रत्यय और णिजन्त 'कामि' धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लिङ्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'इच्छेत्' के समान है।

(४) कामयते। पूर्वोक्त कामि, धातु से विकल्प पक्ष में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

लिङ् (विध्यादिषु)-

(२) विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्।१६१।

प०वि०-विधि-निमन्त्रण-आमन्त्रण-अधीष्ट-सम्प्रश्न-प्रार्थनेषु ७।३ लिङ् १।१।

स०-विधिश्च निमन्त्रणं च आमन्त्रणं च अधीष्टं च सम्प्रश्नश्च प्रार्थनं च तानि-विधि०प्रार्थनानि, तेषु-विधि०प्रार्थनेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-विधि०प्रार्थनेषु वर्तमाने धातोर्लिङ्।

अर्थः-विध्यादिष्वर्थेषु धातोः परो वर्तमाने काले लिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(१) विधिः=प्रेरणम् (आज्ञापनम्) कटं कुर्याद् देवदत्तः। ग्रामं भवान् आगच्छेत्। (२) निमन्त्रणम्=नियोगकरणम्। इह भवान्

भुञ्जीत। इह भवान् आसीत। (३) आमन्त्रणम्=कामचारकरणम्। इह भवान् भुञ्जीत। इह भवान् आसीत। (४) अधीष्टम्=सत्कारपूर्वको व्यवहारः। अधीच्छामो भवन्तम्-माणवकं भवान् उपनयेत्। (५) सम्प्रश्नः=सम्प्रधारणम् (कर्तव्यविचारणा) किं नु खलु भो अहं व्याकरणमधीयीय। (६) प्रार्थनम्=याच्ञा। भवति मे प्रार्थनाऽहं व्याकरणमधीयीय।

आर्यभाषा-अर्थ-(विधि०प्रार्थनेषु) विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थन अर्थों में (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(१) विधि=आज्ञा देना। **कटं कुर्याद् देवदत्तः।** देवदत्त चटाई बनाये। **ग्रामं भवानागच्छेत्।** आप गांव आओ। (२) निमन्त्रण=अवश्य निमन्त्रित करना। **इह भवान् भुञ्जीत।** आप यहां अवश्य भोजन करें। **इह भवान् आसीत।** आप यहां अवश्य ठहरें। (३) आमन्त्रणम्=इच्छापूर्वक आमन्त्रित करना। **इह भवान् भुञ्जीत।** यदि आप चाहें तो यहां भोजन करें। **इह भवान् आसीत।** यदि आप चाहें तो यहां ठहरें। (४) अधीष्ट=गुरुजन आदि के प्रति सत्कारपूर्वक व्यवहार। **अधीच्छामो भवन्तम्-माणवकं भवान् उपनयेत्।** हम चाहते हैं कि आप हमारे बालक का उपनयन-संस्कार करायें। (५) सम्प्रश्न=कर्त्तव्य का विचार करना। **किं नु खलु भो अहं व्याकरणमधीयीय।** भाई! क्या मैं व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करूं? (६) प्रार्थनं=मांग। **भवति मे प्रार्थनाऽहं व्याकरणमधीयीय।** मेरी यह मांग है कि मैं व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करूं।*

*सिद्धि-(१) **कुर्यात्।** यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से विधि अर्थ में वर्तमानकाल में 'लिङ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **आगच्छेत्।** यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से विधि अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। '**इषुगमियमां छः**' (७।३।७७) से 'गम्' के 'म्' को 'छ्' आदेश होता है।*

*(३) **भुञ्जीत।** पूर्ववत्।*

*(४) **आसीत।** 'आस उपवेशने' (अदा०आ०) शेष कार्य 'भुञ्जीत' के समान है।*

*(५) **उपनयेत्।** यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक '**णीञ् प्रापणे**' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से अधीष्ट अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है।*

*(६) **अधीयीय।** यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक '**इङ् अध्ययने**' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से सम्प्रश्न/प्रार्थन अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

लोट् (विध्यादिषु)-

(३) लोट् च।१६२।

प०वि०-लोट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-वर्तमाने विधि०प्रार्थनेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-विधि०प्रार्थनेषु धातोर्वर्तमाने लोट् च।

अर्थः-विध्यादिष्वर्थेषु धातोः परो वर्तमाने काले लोट् प्रत्ययोऽपि भवति।

उदा०-(विधि) कटं तावद् भवान् करोतु। ग्रामं भवानागच्छतु। **(निमन्त्रणम्)** अमुत्र भवान् भुङ्क्ताम्। अमुत्र भवान् आस्ताम्। **(आमन्त्रणम्)** इहं भवान् भुङ्क्ताम्। **(अधीष्टम्)** अधीच्छामो भवन्तं माणवकं भवानुपनयतु। **(सम्प्रश्नः)** किं नु खलु भो अहं व्याकरणमध्ययै। **(प्रार्थनम्)** भवति मे प्रार्थनाऽहं व्याकरणमध्ययै।

आर्यभाषा-अर्थ-(विधि०प्रार्थनेषु) विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थन अर्थों में (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (लोट्) लोट् प्रत्यय (च) भी होता है।

*उदा०-(विधि) **कटं तावद् भवान् करोतु।** आप चटाई बनावें। **ग्रामं भवान् आगच्छतु।** आप गांव आवें। (निमन्त्रणम्) **अमुत्र भवान् भुङ्क्ताम्।** आप वहां अवश्य भोजन करें। **अमुत्र भवान् आस्ताम्।** आप वहां अवश्य ठहरें। (आमन्त्रण) **इह भवान् भुङ्क्ताम्।** यदि आप चाहें तो यहां भोजन करें। (अधीष्ट) **अधीच्छमो भवन्तं माणवकं भवान् उपनयतु।** हम चाहते हैं कि आप हमारे बालक का उपनयन-संस्कार करें। (सम्प्रश्न) **किं न खलु भो अहं व्याकरणमध्ययै।** भाई! क्या मैं व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करूं। (प्रार्थन) **भवति मे प्रार्थनाऽहं व्याकरणमध्ययै।** मेरी यह प्रार्थना है कि मैं व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करूं।*

सिद्धि-(१) करोतु। कृ+लोट्। कृ+उ+तिप्। कर्+उ+ति। कर्+ओ+तु। करोतु।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से विधि अर्थ में वर्तमानकाल में लोट् प्रत्यय है। 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय और 'एरुः' (३।४।८६) से 'ति' के 'इ' को 'उ' आदेश होता है।

(२) आगच्छतु। आङ्+गम्+लोट्। आ+गम्+शप्+तिप्। आ+गच्छ्+अ+तु। आगच्छतु।

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से विधि अर्थ में 'लोट्' प्रत्यय है। 'इषुगमियमां छः' (७।३।७७) से 'गम्' के 'म्' को 'छ्' आदेश होता है।

(३) भुङ्क्ताम्। यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से निमन्त्रण/आमन्त्रण अर्थ में 'लोट्' प्रत्यय है। 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से 'त' प्रत्यय के 'टि' भाग (अ) को 'ए' आदेश और 'आमेतः' (३।४।९०) से 'ए' को 'आम्' आदेश होता है। शेष पूर्ववत्।

(४) उपनयतु। यहां उप' उपसर्गपूर्वक 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अधीष्ट अर्थ में 'लोट्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'करोतु' के समान है।

(५) अध्ययै। अधि+इङ्+लोट्। अधि+इ+इट्। अधि+इ+आट्+इ। अधि+इ+आ+ए। अधि+ए+ऐ। अधि+अय्+ऐ। अध्य्+अय्+ऐ। अध्ययै।

यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से सम्प्रश्न/प्रार्थन अर्थ में 'लोट्' प्रत्यय है। 'आडुत्तमस्य पिच्च' (३।४।९२) से 'आट्' आगम, 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से एत्व, 'आटश्च' (६।१।८७) से वृद्धि, धातु को गुण और 'अय्' आदेश होता है। 'इको यणचि' (६।१।७४) से 'यण्' आंदेश होता है।

कृत्याः+लोट् (प्रैषादिषु)–

(४) प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च।१६३।

प०वि०- प्रैष-अतिसर्ग-प्राप्तकालेषु ७।३ कृत्याः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-प्रैषश्च अतिसर्गश्च प्राप्तकालश्च ते-प्रैषातिसर्गप्राप्तकालाः, तेषु-प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने, लोट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु धातोर्वर्तमाने कृत्या लोट् च।

अर्थः-प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेष्वर्थेषु धातोः परे वर्तमाने काले कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया लोट् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रैषः=प्रेरणा। अतिसर्गः=कामचारपूर्वकमाज्ञाप्रदानम्। प्राप्तकालः=समयः समागतः। (कृत्याः) भवता कटः करणीयः, कर्तव्यः,

कृत्यः, कार्यो वा। (लोट्) प्रेषितो भवान् गच्छतु ग्रामम्। अतिसृष्टो भवान् गच्छतु ग्रामम्। प्राप्तकालो भवान् गच्छतु ग्रामम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु) प्रैष=प्रेरणा करना, अतिसर्ग=कामचारपूर्वक आज्ञा देना, प्राप्तकाल=समय आना अर्थ में (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (कृत्याः) कृत्यसंज्ञक प्रत्यय (च) और (लोट्) लोट् प्रत्यय होता है।

उदा०-(कृत्य) भवता कटः करणीयः, कर्तव्यः, कृत्यः, कार्यो वा। प्रैष=आप चटाई बनावें। अतिसर्ग=आपकी इच्छा है, आप चटाई बनावें। प्राप्तकाल=आपका समय आगया है, आप चटाई बनावें। (लोट्) प्रेषितो भवान् गच्छतु ग्रामम्। भेजे हुये आप गांव जावें। अतिसृष्टो भवान् गच्छतु ग्रामम्। आपकी इच्छा है, आप गांव जावें। प्राप्तकालो भवान् गच्छतु ग्रामम्। आपका समय आगया है, आप गांव जावें।

सिद्धि-(१) करणीयः। यह 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से प्रैष आदि अर्थों में वर्तमानकाल में 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से कृत्यसंज्ञक 'अनीयर्' प्रत्यय है।

(२) कर्तव्यः। पूर्ववत् कृत्यसंज्ञक 'तव्य' प्रत्यय है।

(३) कृत्यः। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'विभाषा कृवृषोः' (३।१।१२०) से कृत्यसंज्ञक 'क्यप्' प्रत्यय है।

(४) कार्यः। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से कृत्यसंज्ञक 'ण्यत्' प्रत्यय है।

(५) गच्छतु। यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से प्रैष आदि अर्थों में वर्तमानकाल में 'लोट्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

लिङ्+कृत्याः+लोट् (प्रैषादिषु)–

(५) लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके।१६४।

प०वि०-लिङ् १।१ च अव्ययपदम्, ऊर्ध्वमौहूर्तिके ७।१।

स०-ऊर्ध्वं मुहूर्तादिति-ऊर्ध्वमुहूर्त्तम् (अस्मादेव निपातनात्पञ्चमी-तत्पुरुषः)। ऊर्ध्वमुहूर्ते भवमिति ऊर्ध्वमौहूर्तिकम् 'बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्' (४।३।८७) इति ठञ् प्रत्ययः (अस्मादेव निपातनादुत्तरपदवृद्धिः)।

अनु०-वर्तमाने, लोट्, प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु, कृत्या इति चानुवतति।

अन्वयः-प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु धातोरूर्ध्वमौहूर्तिके वर्तमाने लोट्, कृत्या लिट् च।

अर्थः-प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेष्वर्थेषु धातोः परे ऊर्ध्वमौहूर्तिके वर्तमाने काले लोट् कृत्यसंज्ञका लिङ् च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-(लोट्) प्रेषितः, अतिसृष्टः, प्राप्तकालो वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवान् कटं करोतु। (कृत्याः) प्रेषितेन, अतिसृष्टेन, प्राप्तकालेन वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवता कटः करणीयः, कर्तव्यः, कृत्यः, कार्यो वा। (लिङ्) प्रेषितः, अतिसृष्टः प्राप्तकालो वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवान् कटं कुर्यात्।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु) प्रेरणा करना, कामचारपूर्वक आज्ञा देना और समय आना अर्थ में (धातोः) धातु से परे (ऊर्ध्वमौहूर्तिके) एक मुहूर्त के पश्चात् (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (लोट्) लोट् (कृत्याः) कृत्यसंज्ञक (च) और (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(लोट्) प्रेषितः, अतिसृष्टः, प्राप्तकालो वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवान् कटं करोतु। प्रेरित, स्वेच्छापूर्वक वा समय आने पर आप एक मुहूर्त के पश्चात् चटाई बनाओ। (कृत्य) प्रेषितेन, अतिसृष्टेन, प्राप्तकालेन वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवता कटः करणीयः, कर्तव्यः, कृत्यः, कार्यो वा। प्रेरित, स्वेच्छापूर्वक वा समय आने पर एक मुहूर्त के पश्चात् आपको चटाई बनानी चाहिये। (लिङ्) प्रेषितः, अतिसृष्टः, प्राप्तकालो वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवान् कटं कुर्यात्। प्रेरित, स्वेच्छापूर्वक वा समय आने पर आप एक मुहूर्त के पश्चात् चटाई बनावें। मुहूर्त=४८ मिनट।

सिद्धि-(१) करोतु, (२) करणीयः, (३) कुर्यात् आदि सिद्धियां पूर्ववत् हैं।

लोट् (प्रैषादिषु)-

(६) स्मे लोट्।१६५।

प०वि०-स्मे ७।१ लोट् १।१।

अनु०-वर्तमाने, प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु, ऊध्वमौहूर्तिके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु स्मे, ऊर्ध्वमौहूर्तिके वर्तमाने धातोर्लोट्।

अर्थः-प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेष्वर्थेषु स्म-शब्दे उपपदे ऊर्ध्वमौहूर्तिके वर्तमाने काले धातोः परो लोट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रेषितः, अतिसृष्टः, प्राप्तकालो वा ऊर्ध्वमुहूर्ताद् भवान् कटं करोतु स्म, ग्रामं गच्छतु स्म, माणवकमध्यापयतु स्म।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु) प्रेरणा करना, कामचारपूर्वक आज्ञा देना और समय आना अर्थ में (स्मे) स्म शब्द उपपद होने पर (ऊर्ध्वमौहूर्तिके) एक मुहूर्त पश्चात् के (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (लोट्) प्रत्यय होता है।

उदा०-प्रेषितः, अतिसृष्टः, प्राप्तकालो वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवान् कटं करोतु स्म, ग्रामं गच्छतु स्म, माणवकमध्यापयतु स्म। प्रेरित, स्वेच्छापूर्वक वा समय आने पर आप एक मुहूर्त के पश्चात् चटाई बनावें, गांव जावें, बालक को पढ़ावें।

सिद्धि-(१) करोतु, (२) गच्छतु, (३) अध्यापयतु की सिद्धियां पूर्ववत् हैं।

लोट् (अधीष्टे)-

(७) अधीष्टे च।१६६।

प०वि०-अधीष्टे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-स्मे लोट् इति चानुवर्तते।

अर्थः-स्म-शब्दे उपपदे धातोः परो लोट् प्रत्ययो भवति, अधीष्टे गम्यमाने।

उदा०-अङ्ग स्म आचार्य ! माणवकमध्यापय। अङ्ग स्म राजन् ! अग्निहोत्रं जुहुधि।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्मे) स्म शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लोट्) लोट् प्रत्यय होता है (अधीष्टे) यदि वहां सत्कारपूर्वक व्यवहार करना अर्थ प्रकट हो।

उदा०-अङ्ग स्म आचार्य ! माणवकमध्यापय। हे आचार्यप्रवर ! आपसे अनुनय है कि आप मेरे बालक को पढ़ावें। अङ्ग स्म राजन् ! अग्निहोत्रं जुहुधि। हे राजन् ! आपसे विनय है कि आप अग्निहोत्र का अनुष्ठान करें।

सिद्धि-(१) अध्यापय। अध्यापि+लोट्। अध्यापि+सिप्। अध्यापि+शप्+सि। अध्यापि+अ+ति। अध्यापे+अ+०। अध्यापय।

यहां णिजन्त 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से स्म शब्द उपपद होने पर सत्कारपूर्ण व्यवहार की अभिव्यक्ति में 'लोट्' प्रत्यय है। यहां 'सिप्' प्रत्यय के स्थान में 'सेर्ह्यपिच्च' ३।४।८७) से 'हि' आदेश और 'अतो हेः' (६।४।१०५) से 'हि' का लुक् होता है।

(२) जुहुधि। हु+लोट्। हु+सिप्। हु+हु+शप्+सि। झु+हु+अ+सि। जु+हु+०+हि। जु+हु+धि। जुहुधि।

यहां 'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके' (जु०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है। 'सिप्' प्रत्यय के स्थान में पूर्ववत् 'हि' आदेश और 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' (६।४।१०१) से 'हि' के स्थान में 'धि' आदेश होता है।

विशेष-यहां 'अङ्ग' शब्द अनुनय-विनय का द्योतक है और 'स्म' शब्द अधिकार का वाचक है।

तुमुन् (कालसमयवेलासु)-

(८) कालसमयवेलासु तुमुन्।१६७।

प०वि०-काल-समय-वेलासु ७।३ तुमुन् १।१।

स०-कालश्च समयश्च वेला च ताः-कालसमयवेलाः, तासु-कालसमयवेलासु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कालसमयवेलासु वर्तमाने धातोस्तुमुन्।

अर्थः-कालसमयवेलासु उपपदेषु वर्तमाने काले धातोः परस्तुमुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(कालः) कालो भोक्तुम्। **(समयः)** समयो भोक्तुम्। **(वेला)** वेला भोक्तुम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(कालसमयवेलासु) काल, समय, वेला शब्द उपपद होने पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (तुमुन्) तुमुन् प्रत्यय होता है।

उदा०-(काल) कालो भोक्तुम्। यह भोजन का काल है। (समयः) समयो भोक्तुम्। यह भोजन का समय है। (वेला) वेला भोक्तुम्। यह भोजन की वेला है। वेला=समय।

सिद्धि-(१) भोक्तुम्। भुज्+तुमुन्। भुज्+तुम्। भुक्+तुम्। भोक्+तुम्। भोक्तुम्।

यहां पूर्वोक्त 'भुज' धातु से इस सूत्र से काल आदि शब्द उपपद होने पर वर्तमानकाल में 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

लिङ् (कालसमयवेलासु)-

(९) लिङ् यदि।१६८।

प०वि०-लिङ् १।१ यदि ७।१।

अनु०-वर्तमाने, कालसमयवेलासु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कालसमयवेलासु यदि वर्तमाने धातोर्लिङ्।

अर्थः-कालसमयवेलासु यत्-सहितेषु उपपदेषु वर्तमाने काले धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**कालः**) कालो यद् भुञ्जीत भवान्। (**समयः**) समयो यद् भुञ्जीत भवान्। (**विला**) वेला यद् भुञ्जीत भवान्।

आर्यभाषा-अर्थ-(यदि) यद् शब्द सहित (कालसमयवेलासु) काल, समय, वेला शब्द उपपद होने पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(काल) **कालो यद् भुञ्जीत भवान्।** काल है कि आप भोजन करें। (समय) **समयो यद् भुञ्जीत भवान्।** समय है कि आप भोजन करें। (विला) वेला यद् भुञ्जीत भवान्। वेला है कि आप भोजन करें। वेला=समय।*

सिद्धि-(१) भुञ्जीत। पूर्ववत्।

कृत्याः+तृच्+लिङ् (अर्हार्थे)-

(१०) अर्हे कृत्यतृचश्च।१६६।

प०वि०-अर्हे ७।१ कृत्य-तृचः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-कृत्याश्च तृच् च ते-कृत्यतृचः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने लिङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्हे वर्तमाने धातोः कृत्यतृचो लिङ् च।

अर्थः-अर्हे कर्तरि वाच्ये वर्तमाने काले धातोः परे कृत्यसंज्ञकाः, तृच्, लिङ् च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-(**कृत्याः**) भवता खलु कन्या वोढव्या, वहनीया, वाह्या वा। (**तृच्**) भवान् खलु कन्याया वोढा। (**लिङ्**) भवान् खलु कन्यां वहेत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अर्हे) योग्य कर्ता वाच्य होने पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (कृत्यतृचः) कृत्यसंज्ञक, तृच् (च) और (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-(कृत्य) **भवता खलु कन्या वोढव्या, वहनीया, वाह्या वा।** आप कन्या से विवाह करने के योग्य हैं। (तृच्) **भवान् खलु कन्याया वोढा।** आप कन्या से विवाह करने की योग्यतावाले हैं। (लिङ्) **भवान् खलु कन्यां वहेत्।** आप कन्या से विवाह कर सकते हैं।*

सिद्धि-(१) वहनीया। यहां 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'अर्ह' (योग्य) अर्थ में 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से कृत्यसंज्ञक अनीयर् प्रत्यय है।

(२) वोढव्या। वह्+तव्य। वढ्+तव्य। वढ्+धव्य। वढ्+ढव्य+। व०+ढव्य। वो+ढव्य। वोढव्य+टाप्। वोढव्य+आ। वोढव्या+सु। वोढव्या।

यहां पूर्ववत् कृत्यसंज्ञक 'तव्य' प्रत्यय है। यहां 'हो ढः' (८।२।३१) से 'वह्' के 'ह्' को 'ढ्' आदेश, 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से 'तव्य' के 'त्' को 'ध्' आदेश, 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से 'ध्' को 'ढ्' आदेश, 'ढो ढे लोपः' (८।३।१३) से पूर्व ढकार का लोप, 'सहिवहोरोदवर्णस्य' (६।३।१११) से 'वह्' के अकार को ओकार आदेश होता है।

*(३) **वाह्या**। यहां पूर्वोक्त 'वह' धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'वह' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(४) **वोढा**। यहां पूर्वोक्त 'वह' धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'वोढव्या' के समान हैं।*

*(५) **वहेत्**। यहां पूर्वोक्त 'वह' धातु से इस सूत्र से उक्त अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है।*

णिनिः (आवश्यके, आधमर्ण्ये च)–

(११) आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः।१७०।

प०वि०–आवश्यक-आधमर्ण्ययोः ७।२ णिनिः १।१।

स०–अवश्यं भाव आवश्यकम् **'द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च'** (५।१।१३२) इति वुञ् प्रत्ययः। अधममृणं यस्य सः-अधमर्णः, अधमर्णस्य भाव आधमर्ण्यम्। आवश्यकं च आधमर्ण्यं च ते-आवश्यकाधमर्ण्ये, तयोः-आवश्यकाधमर्ण्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–आवश्यकाधमर्ण्ययोर्वर्तमाने धातोर्णिनिः।

अर्थः–आवश्यके आधमर्ण्ये च कर्तरि वाच्ये वर्तमाने काले धातोः परो णिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(आवश्यकम्)** अवश्यङ्कारी देवदत्तः। **(आधमर्ण्यम्)** शतंदायी देवदत्तः। सहस्रंदायी ब्रह्मदत्तः। निष्कंदायी यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(आवश्यकाधमर्ण्ययोः) आवश्यंभाव से युक्त और अधमर्णता से युक्त कर्ता वाच्य होने पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है।

उदा०-(आवश्यक) अवश्यङ्कारी देवदत्तः। देवदत्त कार्य को अवश्य करनेवाला है। (आधमर्ण्य) शतंदायी देवदत्तः। देवदत्त सौ रुपये का देनदार (ऋणी) है। सहस्रंदायी

ब्रह्मदत्तः। ब्रह्मदत्त हजार रुपये का देनदार (ऋणी) है। निष्कंदायी यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त एक निष्क का देनदार (ऋणी) है। निष्क=१६ माशे का सोने का सिक्का।

सिद्धि-(१) अवश्यङ्कारी। अवश्यम्+कृ+णिनि। अवश्यम्+कार्+इन्। अवश्यंकारिन्+सु। अवश्यंकारीन्+०। अवश्यङ्कारी।

अवश्यम् उपपद 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से अवश्यंभाव कर्ता वाच्य होने पर 'णिनि' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है। 'सौ च' (६।४।१३) से नकारान्त की उपधा 'इ' को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। यहां 'मयूरव्यंसकादयश्च' (२।१।७) से कर्मधारय समास है।

(२) शतं दायी। दा+णिनि। दा+युक्+इन्। दा+य्+इन्। दायिन्+सु। दायीन्+०। दायी।

यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से आधमर्ण्ययुक्त कर्ता वाच्य होने पर 'णिनि' प्रत्यय है। 'आतो युक् चिण्कृतोः' से 'दा' धातु को 'युक्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। यहां 'अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः' (२।३।७०) से षष्ठीविभक्ति का प्रतिषेध होने पर 'कर्मणि द्वितीया' (२।३।२) से 'शत' कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। ऐसे ही-सहस्रं दायी आदि।

कृत्याः (आवश्यके आधमर्ण्ये च)-

(१२) कृत्याश्च।१७१।

प०वि०-कृत्याः १।३ च अव्ययपदम्।

अनु०-वर्तमाने, आवश्यकाधमर्ण्ययोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-आवश्यकाधमर्ण्ययोर्वर्तमाने धातोः कृत्याश्च।

अर्थः-आवश्यके आधमर्ण्ये चार्थे वर्तमाने काले धातोः परे कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया अपि भवन्ति।

उदा०-(आवश्यकम्) भवता खलु अवश्यं कटः करणीयः, कर्तव्यः, कृत्यः, कार्यो वा। **(आधमर्ण्यम्)** भवता शतं दातव्यम्। भवता सहस्रं देयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(आवश्यकाधमर्ण्ययोः) आवश्यक और आधमर्ण्य अर्थ में (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (कृत्याः) कृत्यसंज्ञक प्रत्यय (च) भी होते हैं।

उदा०-(आवश्यक) भवता खलु अवश्यं कटः करणीयः, कर्तव्यः, कृत्यः, कार्यो वा। आपको चटाई अवश्य बनानी है। (अधमर्ण्यम्) भवता शतं दातव्यम्। आपको सौ रुपये देने हैं। भवता सहस्रं देयम्। आपको हजार रुपये देने हैं।

सिद्धि-(१) करणीय आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

(२) देयम्। दा+यत्। दी+य। दे+य। देय+सु। देयम्।

यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से आधमर्ण्य अर्थ में 'अचो यत्' (३।१।९६) से 'यत्' प्रत्यय है। 'ईद् यति' (६।४।६५) से 'दा' के 'आ' को ईत्त्व और उसे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण होता है।

लिङ्+कृत्याः (शक्नोत्यर्थे)-

(१३) शकि लिङ् च।१७२।

प०वि०-शकि ७।१ लिङ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-वर्तमाने, कृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शकि वर्तमाने धातोर्लिङ् कृत्याश्च।

अर्थः-शक्नोति-विशिष्टेऽर्थे वर्तमाने काले धातोः परे लिङ्, कृत्य-संज्ञकाश्च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-(लिङ्) भवान् खलु भारं वहेत्। (कृत्यः) भवता खलु भारो वोढव्यः, वहनीयः, वाह्यो वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(शकि) शक्नोति अर्थ से विशिष्ट (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से (लिङ्) लिङ् (च) और (कृत्याः) कृत्यसंज्ञक प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(लिङ्) भवान् खलु भारं वहेत्। आप भार वहन कर सकते हो। (कृत्य) भवता खलु भारो वोढव्यः, वहनीयः, वाह्यो वा। आपके द्वारा भार वहन किया जा सकता है।

सिद्धि-(१) वहेत्। यहां 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) इस शक्नोति अर्थ से विशिष्ट धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लिङ् प्रत्यय है।

(२) 'वोढव्य' आदि पदों की सिद्धि' पूर्ववत् है।

लिङ्+लोट् (आशिषि)-

(१४) आशिषि लिङ्लोटौ।१७३।

प०वि०-आशिषि ७।१ लिङ्-लोटौ १।२।

स०-लिङ् च लोट् च तौ-लिङ्लोटौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अर्थः-आशीर्विशिष्टेऽर्थे वर्तमाने काले धातोः परौ लिङ्लोटौ प्रत्ययौ भवतः। आशंसनमाशीः=अप्राप्तस्याभीष्टस्य पदार्थस्य प्राप्तुमिच्छा।

उदा०-(लिङ्) चिरं जीव्याद् भवान्। (लोट्) चिरं जीवतु भवान्।

आर्यभाषा-अर्थ-(आशिषि) अप्राप्त अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति की इच्छा में (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (लिङ्लोटौ) लिङ् और लोट् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(लिङ्) चिरं जीव्याद् भवान्। आप चिरकाल तक जीवित रहें, ऐसी मेरी इच्छा है। (लोट्) चिरं जीवतु भवान्। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) जीव्यात्। जीव्+लिङ्। जीव्+यासुट्+तिप्। जीव+यास्+सुट्+त्। जीव्+यास्+स्+त्। जीव्+या+त्। जीव्यात्।

यहां 'जीव प्राणधारणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से आशीर्वाद अर्थ में, वर्तमानकाल में 'लिङ्' प्रत्यय है। 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम और 'सुट् तिथोः' (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम होता है। 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' (८।२।२९) से 'यास्' के 'स्' और 'सुट्' के 'स्' का लोप हो जाता है।

(२) जीवतु। यहां पूर्वोक्त 'जीव' धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है। 'एरुः' (३।४।८६) से 'तिप्' के 'इ' को 'उ' आदेश होता है।

क्तिच्+क्तः (आशिषि)-

(१५) क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्।१७४।

प०वि०-क्तिच्-क्तौ १।२ च अव्ययपदम्, संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-वर्तमाने, आशिषि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आशिषि वर्तमाने धातोः क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्।

अर्थः-आशीर्विशिष्टेऽर्थे वर्तमाने काले धातोः परौ क्तिच्-क्तौ च प्रत्ययौ भवतः, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(क्तिच्) तनुतादिति तन्तिः। सनुतादिति सातिः। भवतादिति भूतिः। (क्तः) देवा एनं देयासुरिति देवदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(आशिषि) आशीर्वाद अर्थ में (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (क्तिच्-क्तौ) क्तिच् और क्त प्रत्यय (च) भी होते हैं (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-(क्तिच्) तनुतादिति तन्तिः। जिसे कोई विस्तृत करना चाहता है-रेखा, गौ, डोरी, पंक्ति। सनुतादिति सातिः। जिसे कोई देना चाहता है-भेंट, दान, सहायता आदि। भवतादिति भूतिः। जिसे कोई रखना चाहता है-अस्तित्व, जन्म, वैभव आदि। (क्त) देवा एनं देयासुरिति देवदत्तः। देवताओं ने जिसे आशीर्वादपूर्वक प्रदान किया है, वह देवदत्त पुरुषविशेष।

सिद्धि-(१) तन्तिः। तन्+क्तिच्। तन्+ति। तन्ति+सु। तन्तिः।

यहां 'तनु विस्तारे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से आशीर्वाद अर्थ में 'क्तिच्' प्रत्यय है। यहां 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से अनुनासिक का लोप और 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति' (६।४।१५) से दीर्घत्व प्राप्त है किन्तु 'न क्तिचि दीर्घश्च' (६।४।३९) से दोनों का प्रतिषेध होता है।

(२) सातिः। यहां 'षणु दाने' (तना०उ०) धातु से 'जनसनखनां सञ्झलोः' (६।४।४२) से 'सन्' को आत्त्व होता है।

(३) भूतिः। 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०)।

(४) देवदत्तः। देव+दा+क्त। देव+दद्+त। देव+दत्+त। देवदत्त+सु। देवदत्तः।

यहां देव' उपपद 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से आशीर्वाद अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। 'दो दद् घोः' (७।४।४६) से 'दा' के स्थान में 'दद्' आदेश और 'खरि च' (७।४।५४) से चर्त्व 'द्' को 'त्' आदेश होता है।

लुङ् (माङि)–

(१६) माङि लुङ्।१७५।

प०वि०-माङि ७।१ लुङ् १।१।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-माङि वर्तमाने धातोर्लुङ्।

अर्थः-माङ्शब्दे उपपदे वर्तमाने काले धातोः परो लुङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-मा कार्षीद् देवदत्तः। मा हार्षीद् यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(माङि) माङ् शब्द उपपद होने पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से (लुङ्) लुङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-मा कार्षीद् देवदत्तः। देवदत्त न करे। मा हार्षीद् यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त हरण न करे।

सिद्धि-(१) मा कार्षीत्। यहां 'माङ्' उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'न माङ्योगे' (६।४।७४) से यहां 'अट्' आगम नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है (द्रष्टव्य ३।१।४४)।

(२) मा हार्षीत्। पूर्ववत् (३।१।४४)।

लङ्+लुङ् (माङि स्मोत्तरे)-

(१७) स्मोत्तरे लङ् च।१८६।

प०वि०-स्मोत्तरे ७।१ लङ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-स्म उत्तरं यस्य सः-स्मोत्तरः, तस्मिन्-स्मोत्तरे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-वर्तमाने, लुङ् इति चानुवतति।

अन्वयः-स्मोत्तरे माङि वर्तमाने धातोर्लङ् लुङ् च।

अर्थः-स्मोत्तरे माङ्शब्दे उपपदे वर्तमाने काले धातोर्लङ् लुङ् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(लङ्) मा स्म करोद् देवदत्तः। मा स्म हरद् यज्ञदत्तः। (लुङ्) मा स्म कार्षीद् देवदत्तः। मा स्म हार्षीद् यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्मोत्तरे) स्म शब्द जिसके उत्तर में है ऐसा (माङि) माङ् शब्द उपपद होने पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से (लङ्) लङ् (च) और (लुङ्) लुङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(लङ्) मा स्म करोद् देवदत्तः। देवदत्त न करे। मा स्म हरद् यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त हरण न करे। (लुङ्) मा स्म कार्षीद् देवदत्तः। मा स्म हार्षीद् यज्ञदत्तः। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) मा स्म करोत्। यहां स्मोत्तर माङ् शब्द उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लङ्' प्रत्यय है। 'न माङ्योगे' (६।४।७४) से 'माङ्' के योग में 'अट्' आगम नहीं होता है।

(२) मा स्म हरत्। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

(३) मा स्म कार्षीत्। यहां स्मोत्तर माङ् शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'न माङ्योगे (६।४।७४) से 'माङ्' के योग में 'अट्' आगम नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है (द्रष्टव्य ३।१।४४)।

(४) मा स्म हार्षीत्। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।

तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः

धात्वर्थसम्बन्धप्रत्ययप्रकरणम्

धात्वर्थसम्बन्धः–

(१) धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः ।१।

प०वि०–धातु-सम्बन्धे ७ ।१ प्रत्ययाः १ ।३ ।

स०–अत्र धात्वर्थे धातुशब्दो वर्तते। धात्वर्थानां सम्बन्ध इति धातुसम्बन्धः, तस्मिन्–धातुसम्बन्धे (षष्ठीतत्पुरुषः)। धात्वर्थसम्बन्धः= परस्परं विशेष्यविशेषणभावः।

अर्थः–धात्वर्थानां सम्बन्धे सति, अयथाकालोक्ता अपि प्रत्ययाः साधवो भवन्ति।

उदा०–अग्निष्टोमयाजी पुत्रोऽस्य जनिता। कृतः कटः श्वो भविता। भावि कृत्यमासीत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातुसम्बन्धे) धातु के अर्थों का परस्पर सम्बन्ध=विशेष्य-विशेषण भाव होने पर (प्रत्ययाः) अयथाकाल में विहित भी प्रत्यय साधु होते हैं।

उदा०–अग्निष्टोमयाजी पुत्रोऽस्य जनिता। इसके यहां अग्निष्टोम यज्ञ करनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा। कृतः कटः श्वो भविता। बनाई जानेवाली चटाई कल बनेगी। भावि कृत्यमासीत्। होनेवाला कार्य था। गोमानासीत्। गोमान् था।

सिद्धि-(१) अग्निष्टोमयाजी पुत्रोऽस्य जनिता। यहां 'अग्निष्टोमयाजी' पद में 'करणे यजः' (३।२।८५) से 'यज्' धातु से भूतकाल में 'णिनि' प्रत्यय है और 'जनिता' पद में 'जनी' धातु से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से भविष्यत्काल में 'लुट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'यज्' धातु के अर्थ का 'जनी' धातु के अर्थ के साथ विशेषण-विशेष्यभाव रूप सम्बन्ध होने पर इस सूत्र से भूतकाल में विहित 'णिनि' प्रत्यय का भविष्यत्काल में विहित 'लुट्' प्रत्यय के साथ साधुत्व विधान किया है। यहां सुबन्त पद विशेषण और तिङन्त पद विशेष्य है। सुबन्त पद गौण और तिङन्त पद प्रधान होता है। गौण पद अपने अर्थ को छोड़कर प्रधान पद के मुख्यार्थ के साथ सम्बन्धित हो जाता है।

(२) कृतः कटः श्वो भविता। यहां 'कृतः' पद में 'कृ' धातु से क्त प्रत्यय 'निष्ठा' (३।२।१०२) से भूतकाल में है और 'भविता' पद में 'भू' धातु से 'लुट्' प्रत्यय, 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से भविष्यत्काल में है। इस सूत्र से धात्वर्थों का सम्बन्ध होने पर इन भिन्नकाल में विहित प्रत्ययों का साधुत्व है।

(३) भावि कृत्यमासीत्। यहां 'भावि' पद में 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'भुवश्च' (३।२।१३८) से 'इनि' प्रत्यय है जो 'भविष्यति गम्यादयः' (३।३।३) से भविष्यत्काल में होता है और 'आसीत्' पद में 'अस् भुवि' (अदा०प०) धातु से 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय भूतकाल में है। इस सूत्र से धात्वर्थों का सम्बन्ध होने पर इन भिन्नकाल में विहित प्रत्ययों का साधुत्व है।

(४) गोमानासीत्। यहां 'गोमान्' पद में 'तदस्यास्मिन्नस्ति मतुप्' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय वर्तमानकाल में है और 'आसीत्' पद में पूर्ववत् 'लङ्' प्रत्यय भूतकाल में है। इस सूत्र से धात्वर्थों का सम्बन्ध होने पर इन भिन्न काल में विहित प्रत्ययों का साधुत्व है।

लोट् (क्रियासमभिहारे)-

(२) क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः।२।

प०वि०-क्रिया-समभिहारे ७।१ लोट् १।१ लोटः ६।१ हिस्वौ १।२ वा अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, त-ध्वमोः ६।२।

स०-क्रियायाः समभिहार इति क्रियासमभिहारः, तस्मिन्-क्रियासमभिहारे (षष्ठीतत्पुरुषः)। समभिहारः=पौनःपुन्यं भृशार्थो वा। हिश्च स्वश्च तौ-हिस्वौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। तश्च ध्वम् च तौ-तध्वमौ, तयोः-तध्वमोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातुसम्बन्धे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातुसम्बन्धे क्रियासमभिहारे धातोर्लोट्, लोटो हिस्वौ, तध्वमोश्च वा।

अर्थः-धात्वर्थानां सम्बन्धे सति क्रियासमभिहारेऽर्थे धातोः परो लोट् प्रत्ययो भवति, तस्य च लोटः स्थाने हिस्वावादेशौ भवतः, त-ध्वमोश्च स्थाने विकल्पेन भवतः। उदाहरणानि यथा-

वर्तमानकालः (हि-आदेशः)

१. स भवान् लुनीहि लुनीति इति	स लुनाति।	वह काटो काटो ऐसे काटता है।
२. तौ भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति	तौ लुनीतः।	वे दोनों काटते हैं।
३. ते भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति	ते लुनन्ति।	वे सब काटते हैं।
४. त्वं भवान् लुनीहि लुनीहि इति	त्वं लुनासि।	तू काटता है।
५. युवां भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति	युवां लुनीथः।	तुम दोनों काटते हो।
६. यूयं भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति	यूयं लुनीथ।	तुम सब काटते हो।
(यूयं भवन्तो लुनीत लुनीत इति)	यूयं लुनीथ।	तुम सब काटते हो।
७. अहं लुनीहि लुनीहि इति	अहं लुनामि।	मैं काटता हूं।
८. आवां लुनीहि लुनीहि इति	आवां लुनीवः।	हम दोनों काटते हैं।
९. वयं लुनीहि लुनीहि इति	वयं लुनीमः।	हम सब काटते हैं।

भूतकालः (हि-आदेशः)

१. स भवान् लुनीहि लुनीहि इति	सोऽलावीत्।	उसने काटो काटो ऐसे काटा।
२. तौ भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति	तावलाविष्टाम्।	उन दोनों ने काटा।
३. ते भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति	तेऽलाविषुः।	उन सबने काटा।
४. त्वं भवान् लुनीहि लुनीहि इति	त्वमलावीः।	तूने काटा।
५. युवां भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति	युवामलाविष्टम्।	तुम दोनों ने काटा।
६. युयं भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति	यूयमलाविष्ट।	तुम सबने काटा।
(यूयं भवन्तो लुनीत लुनीत इति)	यूयमलाविष्ट।	तुम सबने काटा।
७. अहं लुनीहि लुनीहि इति	अहमलाविषम्।	मैंने काटा।
८. आवां लुनीहि लुनीहि इति	आवामलाविष्व।	हम दोनों ने काटा।
९. वयं लुनीहि लुनीहि इति	वयमलाविष्म।	हम सबने काटा।

भविष्यत्कालः (हि-आदेशः)

१. स भवान् लुनीहि लुनीहि इति	स लविष्यति।	वह काटो-काटो ऐसे काटेगा।
२. तौ भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति	तौ लविष्यतः।	वे दोनों काटेंगे।
३. ते भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति	ते लविष्यन्ति।	वे सब काटेंगे।
४. त्वं भवान् लुनीहि लुनीहि इति	त्वं लविष्यसि।	तू काटेगा।
५. युवां भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति	युवां लविष्यथः।	तुम दोनों काटोगे।
६. यूयं भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति	यूयं लविष्यथ।	तुम सब काटोगे।
(यूयं भवन्तो लुनीत लुनीत इति)	यूयं लविष्यथ।	तुम सब काटोगे।
७. अहं लुनीहि लुनीहि इति	अहं लविष्यामि।	मैं काटूंगा।
८. आवां लुनीहि लुनीहि इति	आवां लविष्यावः	हम दोनों काटेंगे।
९. वयं लुनीहि लुनीहि इति	वयं लविष्यामः।	हम सब काटेंगे।

वर्तमानकालः (स्वादेशः)

१. स भवान् अधीष्व अधीष्व इति	सोऽधीते।	वह पढ़ो-पढ़ो ऐसे पढ़ता है।
२. तौ भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इति	तावधीयाते।	वे दोनों पढ़ते हैं।
३. ते भवन्तोऽधीष्व अधीष्व इति	तेऽधीयते।	वे सब पढ़ते हैं।
४. त्वं भवान् अधीष्व अधीष्व इति	त्वमधीषे।	तू पढ़ता है।
५. युवां भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इति	युवामधीयाथे।	तुम दोनों पढ़ते हो।
६. यूयं भवन्तोऽधीष्व अधीष्व इति	यूयमधीध्वे।	तुम सब पढ़ते हो।
यूयं भवन्तोऽधीष्वम् अधीष्वम् इति)	यूयमधीध्वे।	तुम सब पढ़ते हो।
७. अहम् अधीष्व अधीष्व इति	अहमधीये।	मैं पढ़ता हूं।
८. आवाम् अधीष्व अधीष्व इति	आवामधीवहे।	हम दोनों पढ़ते हैं।
९. वयम् अधीष्व अधीष्व इति	वयमधीमहे।	हम सब पढ़ते हैं।

भूतकालः (स्व-आदेशः)

१. स भवान् अधीष्व अधीष्व इति	सोऽध्यगीष्ट।	उसने पढ़ो-पढ़ो ऐसा पढ़ा।
२. तौ भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इति	तावध्यगीषाताम्।	उन दोनों ने पढ़ा।
३. ते भवन्तोऽधीष्व अधीष्व इति	तेऽध्यगीषत।	उन सबने पढ़ा।
४. त्वं भवान् अधीष्व अधीष्व इति	त्वमध्यगीष्ठाः।	तूने पढ़ा।
५. युवां भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इति	युवामध्यगीषाथाम्।	तुम दोनों ने पढ़ा।
६. यूयं भवन्तो अधीष्व अधीष्व इति	यूयमध्यगीढ्वम्।	तुम सबने पढ़ा।
(यूयं भवन्तोऽधीध्वम् अधीध्वम् इति)	यूयमध्यगीढ्वम्।	तुम सबने पढ़ा।
७. अहम् अधीष्व अधीष्व इति	अहमध्यगीषि।	मैंने पढ़ा।
८. आवाम् अधीष्व अधीष्व इति	आवामध्यगीष्वहि।	हम दोनों ने पढ़ा।
९. वयम् अधीष्व अधीष्व इति	वयमध्यगीष्महि।	हम सबने काटा।

भविष्यत्कालः (स्वादेशः)

१. स भवान् अधीष्व अधीष्व इति	सोऽध्येष्यते।	वह पढ़ो-पढ़ो ऐसे पढ़ेगा।
२. तौ भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इति	तावध्येष्येते।	वे दोनों पढ़ेंगे।
३. ते भवन्तोऽधीष्व अधीष्व इति	तेऽध्येष्यन्ते।	वे सब पढ़ेंगे।
४. त्वं भवान् अधीष्व अधीष्व इति	त्वमध्येष्यसे।	तू पढ़ेगा।
५. युवां भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इति	युवामध्येष्येथे।	तुम दोनों पढ़ोगे।
६. यूयं भवन्तोऽधीष्व अधीष्व इति	यूयमध्येष्यध्वे।	तुम सब पढ़ोगे।
यूयं भवन्तोऽधीध्वम् अधीध्वम् इति)	यूयमध्येष्यध्वे।	तुम सब पढ़ोगे।
७. अहम् अधीष्व अधीष्व इति	अहमध्येष्ये।	मैं पढ़ूंगा।
८. आवाम् अधीष्व अधीष्व इति	अवामध्येष्यावहे।	हम दोनों पढ़ेंगे।
९. वयम् अधीष्व अधीष्व इति	वयमध्येष्यामहे।	हम सब पढ़ेंगे।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातुसम्बन्धे) धात्वर्थों का परस्पर सम्बन्ध होने पर (क्रियासमभिहारे) क्रिया के बार-बार होने अथवा अधिक होने में (धातोः) धातु से परे (लोट्) लोट् प्रत्यय होता है और (लोटः) उस लोट् प्रत्यय के स्थान में (हि-स्वौ) हि और स्व आदेश होते हैं (च) और (तध्वमोः) त और ध्वम् प्रत्यय के स्थान में हि और स्व आदेश (वा) विकल्प से होते हैं।

उदा०-संस्कृत भाग में सब उदाहरण और उनके अर्थ लिख दिये हैं, वहां देख लेवें।

सिद्धि-(१) लुनीहि-लुनीहि। यहां 'लूञ् छेदने' (रुधा०उ०) धातु से इस सूत्र से धातु अर्थ सम्बन्ध में तथा क्रियासमभिहार अर्थ में 'लोट्' प्रत्यय है और उसके स्थान में 'हि' आदेश होता है। 'त' प्रत्यय के स्थान में विकल्प से 'हि' आदेश होता है-लुनीत। यह 'हि' आदेश तीनों कालों में होता है, जैसा कि ऊपर उदाहरणों में स्पष्ट किया गया है।

(२) अधीष्व। यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है और उसके स्थान में 'स्व' आदेश है। 'ध्वम्' प्रत्यय के स्थान में विकल्प से 'स्व' आदेश होता है-लुनीध्वम्। यह 'स्व' आदेश तीनों कालों में होता है, जैसा कि ऊपर उदाहरणों में स्पष्ट किया गया है।

लोट् (समुच्चये)-

(३) समुच्चयेऽन्यतरस्याम्।३।

प०वि०-समुच्चये ७।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-धातुसम्बन्धे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातुसम्बन्धे समुच्चये धातोरन्यतरस्यां लोट्, लोटो हिस्वौ, तध्वमोश्च वा।

अर्थः-धात्वर्थानां सम्बन्धे सति समुच्चयेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन लोट् प्रत्ययो भवति, लोटः स्थाने च हिस्वावादेशौ भवतः, तध्वमोश्च स्थाने विकल्पेन भवतः।

उदा०-(हिः) भ्राष्ट्रमट, मठमट, खदूरमट, स्थाल्यपिधानमट इत्येवायम्-अटति, इतीमावटतः, इतीमेऽटन्ति, इति त्वमटसि, इति युवामटथः, इति यूयमटथ (अथवा भ्राष्ट्रमटत, मठमटत, खदूरमटत, स्थाल्यपिधानमटत इत्येवं यूयमटथ) इत्यमहटामि, इत्यावामटावः, इति वयमटामः।

अथवा-भ्राष्ट्रमटति, मठमटति, खदूरमटति, स्थाल्यपिधानमटति, इत्ययमटति इत्यादिकम्।

(स्वः) छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधीष्व, निरुक्तमधीष्व इत्ययमधीते, इतीमावधीयाते, इतीमेऽधीयते, इति त्वमधीषे, इति युवामधीयाथे, इति यूयमधीध्वे अथवा-छन्दोऽधीध्वम्, व्याकरणमधीध्वम्, निरुक्तमधीध्वमिति यूयमधीध्वे) इत्यहमधीये, आवामधीवहे, वयमधीमहे।

अथवा-छन्दोऽधीते, व्याकरणमधीते, निरुक्तमधीते इत्ययमधीते इत्यादिकम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातुसम्बन्धे) धात्वर्थों का परस्पर सम्बन्ध होने पर (समुच्चये) क्रिया-समुच्चय अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लोट्) लोट् प्रत्यय होता है और (लोटः) लोट् के स्थान में (हिस्वौ) हि और स्व आदेश होते हैं और (तध्वमोः) 'त' और 'ध्वम्' प्रत्यय के स्थान में (वा) विकल्प से 'हि' और 'स्व' आदेश होते हैं।

उदा०-समस्त उदाहरण संस्कृतभाषा में देख लेवें। उनका यहां भाषार्थमात्र लिखा जाता है :-

(हि)-भाड़ पर जा, मठ में जा, कमरे में जा, स्थाली के ढक्कन तक जा इस प्रकार यह अटन करता है। ये दोनों अटन करते हैं। ये सब अटन करते हैं। तू अटन करता है, तुम सब अटन करते हो। मैं अटन करता हूं। हम दोनों अटन करते हैं, हम सब अटन करते हैं।

अथवा-भाड़ पर जाता है, मठ में जाता है, कमरे में जाता है, स्थाली के ढक्कन तक जाता है, ऐसे यह अटन करता है, इत्यादि।

(स्व)-छन्द पढ़, व्याकरण पढ़, निरुक्त पढ़, ऐसे यह पढ़ता है, ये दोनों पढ़ते हैं, ये सब पढ़ते हैं, तू पढ़ता है, तुम दोनों पढ़ते हो, तुम सब पढ़ते हो, मैं पढ़ता हूं, हम दोनों पढ़ते हैं, हम सब पढ़ते हैं।

अथवा-छन्द पढ़ता है, व्याकरण पढ़ता है, निरुक्त पढ़ता है, ऐसे यह पढ़ता है, इत्यादि।

सिद्धि-(१) अट। यहां 'अट गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से क्रिया-समुच्चय अर्थ में 'लोट्' प्रत्यय है। 'लोट्' के स्थान में 'हि' आदेश और 'अतो हेः' (६।४।१०५) से 'हि' का लुक् होता है।

(२) अटत। यहां पूर्वोक्त 'अट्' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय और उसके 'त' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में 'हि' आदेश नहीं होता है।

(३) अटति। यहां पूर्वोक्त 'अट्' धातु से विकल्प पक्ष में 'लोट्' प्रत्यय नहीं है, अपितु वर्तमाने लट् (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

(४) अधीष्व। यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद में 'स्व' आदेश है।

(५) अधीष्वम्। यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'इङ्' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है और उसके 'ध्वम्' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में 'स्व' आदेश नहीं होता है।

(६) अधीते। यहां पूर्वोक्त 'इङ्' धातु से विकल्प पक्ष में 'लोट्' प्रत्यय नहीं है, अपितु 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

अनुप्रयोगविधिः–

(४) यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन्।४।

प०वि०-यथाविधि अव्ययपदम्, अनुप्रयोगः १।१ पूर्वस्मिन् ७।१।

स०-विधिमनतिक्रम्य इति यथाविधि (अव्ययीभावः)।

अर्थः-पूर्वस्मिन् लोड्विधाने (३।४।२) यथाविधि=यस्माद् धातोर्लोट् प्रत्ययो विधीयते तस्यैव धातोरनुप्रयोगः कर्तव्यः।

उदा०-स भवान् लुनीहि लुनीहि इति स लुनाति। अत्र लुनातीत्येव प्रयुज्यते न पर्यायवाची छिनत्तीति। एवं सर्वत्र वेदितव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(पूर्वस्मिन्) प्रथम लोट् विधान (३।४।२) में (यथाविधि) जिस धातु से लोट् प्रत्यय का विधान किया जाता है, उसी धातु का (अनुप्रयोगः) पश्चात् प्रयोग करना चाहिये।

उदा०-स भवान् लुनीहि-लुनीहि इति स लुनाति। काटो काटो ऐसे वह काटता है। यहां 'लुनाति' का पर्यायवाची 'छिनत्ति' धातु का अनुप्रयोग नहीं किया जाता है। ऐसा ही सर्वत्र समझें।

(५) समुच्चये सामान्यवचनस्य।५।

प०वि०-समुच्चये ७।१ सामान्यवचनस्य ६।१।

अनेकक्रियाध्याहारः=समुच्चयः, तस्मिन् समुच्चये।

स०-उच्यते येन स वचनः, सामान्यस्य वचन इति सामान्यवचनः, तस्मिन्-सामान्यवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अनुप्रयोग इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-द्वितीये लोड्विधाने समुच्चये सामान्यवचनस्य धातोरनुप्रयोगः।

अर्थः-द्वितीये लोड्विधाने समुच्चये=अनेकक्रियाध्याहारे (३।४।३) सामान्यवचनस्यैव धातोरनुप्रयोगः कर्तव्यः, न सर्वेषां धातूनाम्।

उदा०-ओदनं भुङ्क्ष्व, सक्तून् पिब, धानाः खाद इत्ययम्-अभ्यवहरति।

आर्यभाषा-अर्थ-(समुच्चये) अनेक क्रिया-अध्याहारविषयक द्वितीय लोट् प्रत्यय के विधान में (३।४।३) (सामान्यवचनस्य) सामान्यवाची धातु का ही (अनुप्रयोगः) पश्चात् प्रयोग करना चाहिये, सब धातुओं का नहीं।

उदा०-ओदनं भुङ्क्ष्व, सक्तून् पिब, धानाः खाद इत्ययम्-अभ्यवहरति। चावल खाओ, सत्तू पीओ, धान खाओ ऐसे यह खाता-पीता है। यहां सामान्यवाची 'अभ्यवहरति' धातु का प्रयोग है, भुङ्क्ते आदि सब धातुओं का नहीं।

वैदिकप्रत्ययार्थप्रकरणम्

लुङ्+लङ्+लिट्-

(१) छन्दसि लुङ्लङ्लिटः।६।

प०वि०-छन्दसि ७।१ लुङ्-लङ्-लिटः १।३।

स०-लुङ् च लङ् च लिट् च ते-लुङ्लङ्लिटः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अत्र धातुसम्बन्धे 'अन्यतरस्याम्' (३।४।३) इति च मण्डूकोत्पलुत्याऽनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि धातुसम्बन्धे धातोरन्यतरस्यां लुङ्लङ्लिटः।

अर्थः-छन्दसि विषये धात्वर्थानां सम्बन्धे सति कालसामान्ये धातोः परे विकल्पेन लुङ्लङ्लिटः प्रत्यया भवन्ति। अत्र 'अन्यतरस्याम्' इति वचनादन्येऽपि लकारा यथायथं भवन्ति।

उदा०-(लुङ्) शकलाऽङ्गुष्ठकोऽकरत्। अहं तेभ्योऽकरं नमः (यजु० १६।८) (लङ्) अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः। (लिट्) अद्या ममार स ह्यः समानः (ऋ० १०।५५।५)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (धातुसम्बन्धे) धात्वर्थ का सम्बन्ध होने पर कालसामान्य में (धातोः) धातु से परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लुङ्लङ्लिटः) लुङ्, लङ्, लिट् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(लुङ्) शकलाऽङ्गुष्ठकोऽकरत्। अहं तेभ्योऽकरं नमः (यजु० १६।८) मैं उन्हें नमस्कार करता हूं। (लङ्) अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः। इस यजमान ने आज 'होता' अग्नि (ऋत्विक्) का वरण किया है। (लिट्) अद्या ममार स ह्यः समानः (ऋ० १०।५५।५) जो आज मरता है...... ।

सिद्धि-(१) अकरत्। कृ+लुङ्। अट्+कृ+च्लि+ल्। अ+कृ+अङ्+तिप्। अ+कर्+अ+त्। अकरत्।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से वेद में वर्तमानकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि' (३।१।५९) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश और 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से 'कृ' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-अकरम्।

(२) अवृणीत। वृ+लङ्। अट्+वृ+श्ना+त। अ+वृ+ना+त। अ+वृ+णी+त। अवृणीत।

यहां 'वृञ् वरणे' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लङ्' प्रत्यय है। 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय और 'श्नाभ्यस्तयोरातः' (६।४।११२) से ईत्व होता है।

(३) ममार। मृ+लिट्। मृ+तिप्। मृ+णल्। मृ+अ। मृ+मृ+अ। म+मार+अ। ममार।

यहां 'मृङ् प्राणत्यागे' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लिट्' प्रत्यय है। 'म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च' (१।३।६१) के नियम से परस्मैपद होता है। 'परस्मैपदानां णलतुसुस०' (३।४।८३) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश, 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'मृ' धातु को वृद्धि, 'द्विर्वचनेऽचि' (१।१।५८) से स्थानिवद्भाव होने से 'मृ' को द्वित्व, 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास के 'ऋकार' को 'अकार' आदेश होता है।

लेट् (लिङर्थे)-

(२) लिङर्थे लेट्।७।

प०वि०-लिङर्थे ७।१ लेट् १।१।

स०-लिङोऽर्थ इति लिङर्थः, तस्मिन्-लिङर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अन्यतरस्याम्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि लिङर्थे धातोरन्यतरस्यां लेट्।

अर्थः-छन्दसि विषये लिङर्थे धातोः परो विकल्पेन लेट् प्रत्ययो भवति। हेतुहेतुमद्भावो विध्यादयश्च लिङर्थाः सन्ति (३।३।१५६, १६१)।

उदा०-जोषिषत् (ऋ० २।३५।१)। तारिषत् (ऋ० १।२५।१२)। मन्दिषत्। पताति दिद्युत् (ऋ० ७।२५।१)। धियो यो नः प्रचोदयात् (ऋ० ३।६२।१०)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (लिङर्थे) लिङ् लकार के अर्थ में (धातोः) धातु से परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लेट्) लेट् प्रत्यय होता है। हेतु-हेतुमद्भाव और विधि आदि (३।३।१५६, १६१) लिङ् लकार के अर्थ हैं।

*उदा०-**जोषिषत्।** वह प्रीति/सेवा करे। **तारिषत्।** वह सन्तरण करे। **मन्दिषत्।** वह स्तुति करे। **पताति दिद्युत्।** बिजली गिरे। **धियो यो नः प्रचोदयात्।** सविता देव हमारी बुद्धियों को शुभ गुण, कर्म, स्वभाव में प्रेरित करे।*

*सिद्धि-(१) **जोषिषत्।** आदि की सिद्धि 'सिब् बहुलं लेटि' (३।१।३४) के प्रवचन में देख लेवें।*

*(२) **प्रचोदयात्।** यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'चुद प्रेरणे' (जु०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिङ्' के स्थान में 'लेट्' प्रत्यय है। 'लेटोऽडाटौ' (३।४।९४) से 'आट्' आगम होता है।*

लेट् (उपसंवादे आशंकायां च)-

(३) उपसंवादाशङ्कयोश्च।८।

प०वि०-उपसंवाद-आशंकयोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-उपसंवादश्च आशङ्का च ते-उपवादाशङ्के, तयोः-उपवादाशङ्कयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि, लेट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि धातोर्लेट् उपसंवादाशङ्कयोश्च।

अर्थः-छन्दसि विषये धातोः परो लेट् प्रत्ययो भवति, उपसंवादे आशङ्कायां च गम्यमानायाम्। उपसंवादः=परिभाषणम्, कर्त्तव्ये पणबन्धः-'यदि मे भवानिदं कुर्याद् अहमपि भवते इदं दास्यामि' इति। आशङ्का=कार्यतः कार्यानुसरणं, तर्क उत्प्रेक्षा इत्यर्थः।

उदा०-(उपसंवादः) अहमेव पशूनामीशै (का०सं० २५।१)। मदग्रा एव वो ग्रहा गृह्यान्तै (मै०सं० ४।५।८) इति। मद्देवत्यान्येव पात्राण्युच्यान्तै

(तै०सं० ६।४।७।२)। (आशङ्का) नेज्जिह्मायन्त्यो नरकं पताम (ऋ० १०।१०६।१)। जिह्माचरणेन नरके पात आशङ्क्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (धातोः) धातु से (लेट्) लेट् प्रत्यय होता है (उपवादाशङ्कयोः) यदि वहां उपसंवाद=शर्त और आशङ्का=उत्प्रेक्षा अर्थ (एक कार्य से दूसरे कार्य का अनुमान) की प्रतीति हो।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) ईशै। ईश्+लेट्। ईश्+अट्+ल्। ईश्+अ+इट्। ईश्+अ+ए। ईश्+अ+ऐ। ईशै।

यहां 'ईश ऐश्वर्ये' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से उपसंवाद अर्थ में लेट् प्रत्यय है। 'लेटोऽडाटौ' (३।४।४) से 'लेट्' को 'अट्' आगम, उत्तम पुरुष एक वचन में 'इट्' प्रत्यय, 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से एत्व और 'एत ऐ' (३।४।९३) से 'ऐ' आदेश होता है।

(२) गृह्यान्तै। ग्रह्+लेट्। ग्रह्+आट्+ल्। ग्रह+यक्+आ+झ। गृह+य+आ+अन्ते। गृह्+य+आ+अन्तै। गृह्यान्तै।

यहां 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से उपसंवाद अर्थ में 'लेट्' प्रत्यय 'लेटोऽडाटौ' (३।४।९४) से 'लेट्' को 'आट्' आगम, प्रथम बहुवचन में 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'झ' के स्थान में अन्त-आदेश, कर्मवाच्य में 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय, 'ग्रहिज्या०' (६।१।१६) से सम्प्रसारण होता है। एत्व और 'ऐ' आदेश पूर्ववत् हैं।

(३) उच्यान्तै। यहां 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से 'वचिस्वपि०' (६।१।१५) से 'वच्' धातु को सम्प्रसारण होता है। शेष कार्य 'गृह्यान्तै' के समान है।

(४) पताम। यहां 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से आशंका अर्थ में 'लेट्' प्रत्यय, उत्तम पुरुष बहुवचन में 'मस्' प्रत्यय और 'लेटोऽडाटौ' (३।४।९४) से 'आट्' आगम होता है।

से-आदयः (तुमर्थे)–

(४) तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेक्सेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्-शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः।६।

प०वि०-तुमर्थे ७।१ से-सेन्-असे-असेन्-क्से-क्सेन्-अध्यै-अध्यैन्-कध्यै-कध्यैन्-शध्यै-शध्यैन्-तवै-तवेङ्-तवेनः १।३।

स०-तुमुनोऽर्थ इति तुमर्थः, तस्मिन्-तुमर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)। सेश्च सेन् च असेश्च असेन् च क्सेश्च क्सेन् च अध्यैश्च अध्यैन् च कध्यैश्च कध्यैन् च शध्यैश्च शध्येन् च तवैश्च तवेङ् च तवेन् च ते-से०तवेनः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तुमर्थे धातोः से०तवेनः प्रत्ययाः।

अर्थः-छन्दसि विषये तुमर्थे धातोः परे से-आदयः पञ्चदश प्रत्यय भवन्ति। तुमुर्थः=भावः।

उदा०-**(से)** वक्षे रायः। **(सेन्)** ता वामेषे रथानाम् (ऋ० ५।६६।३)। **(असे)** क्रत्वे दक्षाय जीवसे (अथर्व० ६।१९।२)। **(असेन्)** जीवसे स्वरे विशेषः। **(क्से)** प्रेषे भगाय (यजु० ५।७)। **(कसेन्)** गवामिव श्रियसे (ऋ० ५।५९।३)। **(अध्यै)** कर्मण्युपाचरध्यै। **(अध्यैन्)** उपाचरध्यै-स्वरे विशेषः। **(कध्यै)** इन्द्राग्नी आहुवध्यै (यजु० ३।१३)। **(कध्यैन्)** श्रियध्यै। **(शध्यै)** पिबध्यै (ऋ० ७।९२।२)। **(शध्यैन्)** सह मादयध्यै (यजु० ३।१३)। **(तवै)** सोममिन्द्राय पातवै। **(तवेङ्)** दशमे मासि सूतवे (ऋ० १०।१८४।३)। **(तवेन्)** स्वर्देवेषु गन्तवे (यजु० १५।५५)। कर्तवे (ऋ० १।८६।२०)। हर्तवे।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुमर्थे) तुमुन् प्रत्यय के (भाव) अर्थ में (धातोः) धातु से परे (से०तवेनः) से-आदि १५ प्रत्यय होते हैं।

उदा०-संस्कृतभाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) वक्षे। वच्+से। वक्+षे। वक्षे+सु। वक्षे।

यहां 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से तुमुन् अर्थ (भाव) में 'से' प्रत्यय है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'वच्' के 'च्' को कुत्व 'क्' और 'आदेशप्रत्यययोः' (५।३।५९) से षत्व होता है। वक्षे=कहने के लिये।

(२) एषे। इ+से। ए+षे। एषे+सु। एषे।

यहां 'इण् गतौ' (अदा०प०) से 'सेन' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण और पूर्ववत् षत्व होता है। एषे=जाने के लिये।

(३) जीवसे। यहां 'जीव प्राणधारणे' (भ्वा०प०) धातु से 'असे' प्रत्यय है। 'असेन्' प्रत्यय करने पर 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर विशेष होता है-जीवसे। जीवसे=जीने के लिये।

(४) प्रेषे। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से 'क्से' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'कित्' होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से 'इण्' धातु को गुण का प्रतिषेध और 'आद् गुणः' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश होता है। प्रेषे=प्रगति के लिये।

(५) श्रियसे। श्रि+कसेन्। श्रि+असे। श्रृ इयङ्+असे। श्रिय्+असे। श्रियसे+सु। श्रियसे।

यहां 'श्रिञ् सेवायाम्' (भ्वा०उ०) धातु से 'कसेन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'कित्' होने से पूर्ववत् गुण का प्रतिषेध होता है। 'अचि श्नुधातु०' (६।४।७७) से 'श्रि' धातु को 'इयङ्' आदेश होता है। श्रियसे=सेवा के लिये।

(६) उपाचरध्यै। उप, आङ् उपसर्गपूर्वक 'चर गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'अध्यै' प्रत्यय है। 'अध्यैन्' करने पर 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर विशेष होता है-उपाचरध्यै। उपाचरध्यै=उपचार के लिये।

(७) आहुवध्यै। आङ्+हु+कध्यै। आ+ह उवङ्+अध्यै। आ+हुव्+अध्यै। आहुवध्यै+सु। आहुवध्यै।

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके' (जुहो०प०) धातु से 'कध्यै' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'कित्' होने से पूर्ववत् गुण का प्रतिषेध होता है। 'अचि श्नुधातु०' (६।४।७७) से 'हु' धातु को 'उवङ्' आदेश होता है। आहुवध्यै=आहुति के लिये।

(८) श्रियध्यै। यहां 'श्रिञ् सेवायाम्' (भ्वा०उ०) धातु से 'कध्यैन्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'श्रियसे' (५) के समान है। श्रियध्यै=सेवा के लिये।

(९) पिबध्यै। पा+शध्यै। पिब्+अध्यै। पिबध्यै+सु। पिबध्यै।

यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से 'शध्यै' प्रत्यय है। 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'पा' के स्थान में 'पिब' आदेश होता है। पिबध्यै=पीने के लिये।

(१०) मादयध्यै। मद+णिच्। मादि+शध्यैन्। मादे+अध्यै। मादयध्यै+सु। मादयध्यै।

यहां 'मदी हर्षे' (भ्वा०प०) धातु से हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय और णिजन्त मादि धातु से 'शध्यैन्' प्रत्यय है, तत्पश्चात् पूर्ववत् गुण और 'अय्' आदेश होता है। मादयध्यै=हर्षित करने के लिये।

(११) पातवै। 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से 'तवै' प्रत्यय है। पातवै=पीने के लिये।

(१२) सूतवे। 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' (अदा०आ०) धातु से 'तवेङ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'ङित्' होने से पूर्ववत् गुण का प्रतिषेध होता है। सूतवे=जन्म के लिये।

(१३) गन्तवे। 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'तवेन्' प्रत्यय है। गन्तवे=जाने के लिये।

(१४) कर्तवे। 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'तवेन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'कृ' धातु को गुण होता है। कर्तवे=करने के लिये।

(१५) हर्तवे। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से 'तवेन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'हृ' धातु को गुण होता है। हर्तवे=हरने के लिये।

विशेष-'वक्षे' आदि की 'कृन्मेजन्तः' (१।३।३८) से अव्ययसंज्ञा है। अतः 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सुप्' का लुक् होता है।

तुमर्थे (निपातनम्)-

(५) प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै।१०।

प०वि०-प्रयै अव्ययपदम्, रोहिष्यै अव्ययपदम्, अव्यथिष्यै अव्ययपदम्। 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३८) इत्यनेनाव्ययत्वम्।

अनु०-छन्दसि, तुमर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तुमर्थे प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै।

अर्थः-छन्दसि विषये तुमर्थे प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै इत्येते शब्दा निपात्यन्ते।

उदा०-**(प्रयै)** प्रयै देवेभ्यः (ऋ० १।१४२।६)। **(रोहिष्यै)** अपामोषधीनां रोहिष्यै (तै०सं० १।३।१०।२)। **(अव्यथिष्यै)** अव्यथिष्यै (का०सं० ३।७)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुमर्थे) तुमुन् प्रत्यय के (भावे) भाव अर्थ में (प्रयै०) प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै ये शब्द निपातित हैं।

उदा०-(प्रयै) प्रयै देवेभ्यः। देवों को प्राप्त करने के लिये। (रोहिष्यै) अपामोषधीनां रोहिष्यै। जल एवं ओषधियों की उत्पत्ति के लिये। (अव्यथिष्यै) अव्यथिष्यै। कष्ट न पाने के लिये।

सिद्धि-(१) प्रयै। प्र+या+कै। प्र+य्+ऐ। प्रयै+सु। प्रयै।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'पा प्रापणे' (अदा०आ०) धातु से 'कै' प्रत्यय निपातित है। प्रत्यय के 'कित्' होने से 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'या' धातु के 'आ' का लोप होता है।

(२) रोहिष्यै। रुह+इष्यै। रोह्+इष्यै। रोहिष्यै+सु। रोहिष्यै।

यहां 'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च' (भ्वा०प०) धातु से 'इष्यै' प्रत्यय निपातित है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'रुह्' धातु को लघूपध गुण होता है।

(३) अव्यथिष्यै। यहां नञ्पूर्वक 'व्यथ भयसंचलनयो:' (भ्वा०आ०) धातु से 'इष्यै' प्रत्यय निपातित है।

विशेष-यहां सर्वत्र 'कृन्मेजन्त:' (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा और 'अव्ययदाप्सुप:' (२।४।८२) से सुप् का लुक् होता है।

तुमर्थे (निपातनम्)-

(६) दृशे विख्ये च।११।

प०वि०-दृशे अव्ययपदम्, विख्ये अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि, तुमर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि तुमर्थे दृशे विख्ये च।

अर्थ:-छन्दसि विषये तुमर्थे दृशे विख्ये च शब्दौ निपात्येते।

उदा०-(दृशे) 'दृशे विश्वाय सूर्यम्' (यजु० ७।४१)। (विख्ये) विख्ये त्वा हरामि।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुमर्थे) तुमुन् प्रत्यय के भाव अर्थ में (दृशे विख्ये) दृशे और विख्ये शब्द (च) भी निपातित हैं।

उदा०-(दृशे) 'दृशे विश्वाय सूर्यम्' (यजु० ७।४१) किरणें सब पदार्थों को देखने के लिये सूर्य को प्राप्त कराती हैं। (विख्ये) विख्ये त्वा हरामि। विख्याति के लिये तुझे हरण करता हूं।

सिद्धि-(१) दृशे। दृश्+के। दृश्+ए। दृशे+सु। दृशे।

यहां 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से 'के' प्रत्यय निपातित है। प्रत्यय के 'कित्' होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

(२) विख्ये। वि+ख्या+के। वि+ख्य्+ए। विख्ये+सु। विख्ये।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'ख्या प्रकथने' (अदा०प०) धातु से 'के' प्रत्यय निपातित है। प्रत्यय के 'कित्' होने से 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'ख्या' के 'आ' का लोप होता है।

विशेष-यहां उभयत्र 'कृन्मेजन्त:' (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।

णमुल्+कमुल् (तुमर्थे)-

(७) शकि णमुल्कमुलौ।१२।

प०वि०-शकि ७।१ णमुल्-कमुलौ १।२।

स०-णमुल् च कमुल् च तौ-णमुल्कमुलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि, तुमर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तुमर्थे शकि धातोर्णमुल्कमुलौ।

अर्थः-छन्दसि विषये तुमर्थे शकि-धातावुपपदे धातोः परौ णमुल्कमुलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(णमुल्) अग्निं वै देवा **विभाजं** नाशक्नुवन् (मै०सं० १।६।४)। विभक्तुमित्यर्थः। (कमुल्) **अपलुपम्** नाशक्नोत् (मै०सं० १।६।५)। अपलोप्तुमित्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुमुर्थे) तुमुन् प्रत्यय के भाव अर्थ में (शकि) शक् धातु के उपपद होने पर (धातोः) धातु से (णमुल्कमुलौ) णमुल् और कमुल् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(णमुल्) अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्। देव लोग अग्नि को विभक्त नहीं कर सके। (कमुल्) अपलुपं नाशक्नोत्। वह विनष्ट नहीं कर सका।

सिद्धि-(१) विभाजम्। वि+भज्+णमुल्। वि+भाज्+अम्। विभाजम्+सु। विभाजम्।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'भज सेवायाम्' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'णित्' होने से 'भज्' धातु को 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

(२) अपलुपम्। अप+लुप्+कमुल्। अप+लुप्+अम्। अपलुपम्+सु। अपलुपम्।

यहां 'अप' उपसर्गपूर्वक 'लुप्लृ छेदने' (तु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

विशेष-यहां 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।

तोसुन्+कसुन् (तुमर्थे)-

(८) ईश्वरे तोसुन्कसुनौ।१३।

प०वि०-ईश्वरे ७।१ तोसुन्-कसुनौ १।२।

स०-तोसुन् च कसुन् च तौ-तोसुन्कसुनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि तुमर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तुमर्थे ईश्वरे धातोस्तोसुन्कसुनौ।

अर्थः-छन्दसि विषये तुमर्थे ईश्वर-शब्दे उपपदे धातोः परौ तोसुन्कसुनौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(तोसुन्) ईश्वरोऽभिचरितोः। अभिचरितुमित्यर्थः। (कसुन्) ईश्वरो विलिखः। विलिखितुमित्यर्थः। ईश्वरो वितृदः। वितर्दितुमित्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुमर्थे) तुमुन् प्रत्यय के भाव अर्थ में (ईश्वरे) ईश्वर शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (तोसुन्कसुनौ) तोसुन् और कसुन् प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-(तोसुन्) **ईश्वरोऽभिचरितोः**। अभिचरण के लिये ईश्वर (समर्थ)। (कसुन्) **ईश्वरो विलिखः**। विलेखन के लिये ईश्वर (समर्थ)। **ईश्वरो वितृदः**। हिंसा, अनादर के लिये ईश्वर (समर्थ)।*

सिद्धि-(१)अभिचरितोः। अभि+चर्+तोसुन्। अभि+चर्+इट्+तोस्। अभिचरितोस्+सु। अभिचरितोः।

यहां 'अभि' उपसर्गपूर्वक 'चर गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'तोसुन्' प्रत्यय है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है।

(२) विलिखः। वि+लिख्+कसुन्। वि+लिख्+अस्। विलिखिस्+सु। विलिखः।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'लिख अक्षरविन्यासे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'कसुन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से पूर्ववत् गुण का प्रतिषेध होता है।

(३) वितृदः। वि+तृद्+कसुन्। वि+तृद्+अस्। वितृदस्+सु। वितृदः।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'उतृदिर् हिंसानादरयोः' (रुधा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'कसुन्' प्रत्यय है।

विशेष-यहां सर्वत्र 'क्त्वातोसुन्कसुनः' (१।१।३९) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।

तवै-आदयः (कृत्यार्थे)-

(६) कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः।१४।

प०वि०-कृत्यार्थे ७।१ तवै-केन्-केन्य-त्वनः १।३।

स०-कृत्यानाम् अर्थ इति कृत्यार्थः, तस्मिन्-कृत्यार्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

तवैश्च केन् च केन्यश्च त्वन् च ते-तवैकेन्केन्यत्वनः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कृत्यार्थे धातोस्तवैकेन्केन्यत्वनः।

अर्थः-छन्दसि विषये कृत्यप्रत्ययानामर्थे धातोः परे तवै-केन्-केन्य-त्वनः प्रत्यया भवति।

उदा०-(**तवैः**) अन्वेतवै (ऋ० ७।४४।५) अन्वेतव्यम्। परिधातवै (अथर्व० २।१३।३)। परिधातव्यम्। परिस्तरितवै (का०सं० ३२।७)। परिस्तरितव्यम्। (**केन्**) नावगाहे=नावगाहितव्यम्। दिदृक्षेण्यः (ऋ० १।१४६।५)। दिदृक्षितव्यम्। शुश्रूषेण्यः (तै०आ० ४।१।१)। शुश्रूषितव्यम्। (**त्वन्**) कर्त्वं हविः (अथर्व० १।४।३)। कर्तव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कृत्यार्थे) कृत्यसंज्ञक प्रत्ययों के भाव, कर्म तथा अर्ह अर्थ में (तवै०त्वनः) तवै, केन्, केन्य, त्वन्, प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(तवै) अन्वेतवै। अन्वय करना चाहिये। परिधातवै। परिधान के योग्य। परिस्तरितवै। आच्छादन के योग्य। (केन्) नावगाहे। स्नान करने के योग्य नहीं। (केन्य) दिदृक्षेण्यः। दिदृक्षा के योग्य। दिदृक्षा=देखने की इच्छा। शुश्रूषेण्यः। शुश्रूषा के योग्य। शुश्रूषा=गुरु सेवा। (त्वन्) कर्त्वं हविः। करने योग्य हवि।

सिद्धि-(१) अन्वेतवै। अनु+इ+तवै। अनु+ए+तवै। अन्वेतवै+सु। अन्वेतवै।

यहां 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से 'तवै' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'इण्' धातु को गुण होता है।

(२) परिधातवै। यहां 'परि' उपसर्गपूर्वक 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से 'तवै' प्रत्यय है।

(३) परिस्तरितवै। 'परि' उपसर्गपूर्वक 'स्तृञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से 'तवै' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'इट्' आगम और गुण होता है।

(४) अवगाहे। 'अव' उपसर्गपूर्वक 'गाहू विलोडने' (भ्वा०आ०) धातु से 'केन्' प्रत्यय है।

(५) दिदृक्षेण्यः। 'दिदृक्ष' (सन्नन्त) धातु से 'केन्य' प्रत्यय है।

(६) शुश्रूषेण्यः। 'शुश्रूष' (सन्नन्त) धातु से 'केन्य' प्रत्यय है।

(७) कर्त्वम्। 'कृ' धातु से 'त्वन्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है।

कृत्यार्थ- 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' (३।४।७०) से कृत्यसंज्ञक प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में तथा 'अर्हे कृत्यतृचश्च' (३।३।१६९) से अर्ह अर्थ में होते हैं।

कृत्यार्थे (निपातनम्)–

(१०) अवचक्षे च।१५।

प०वि०-अवचक्षे अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि कृत्यार्थे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि कृत्यार्थेऽवचक्षे च।

अर्थ:-छन्दसि विषये कृत्यप्रत्ययानामर्थेऽवचक्षे इति च निपात्यते।

उदा०-रिपुणा नावचक्षे (यजु० १७।९३)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कृत्यार्थे) कृत्यसंज्ञक प्रत्ययों के अर्थ में (अवचक्षे) अवचक्षे शब्द (च) भी निपातित हैं।

उदा०-रिपुणा नावचक्षे। शत्रु के द्वारा न देखने योग्य।

सिद्धि-अवचक्षे। यहां 'अव' उपसर्गपूर्वक 'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शनेऽपि' (अ०आ०) धातु से 'शेन्' प्रत्यय निपातित है। 'शेन्' प्रत्यय के 'शित्' होने से 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' (३।४।११३) से सार्वधातु संज्ञा होने से 'चक्षिङः ख्याञ्' (२।४।५४) से 'चक्षिङ्' के स्थान में 'ख्याञ्' आदेश नहीं होता है, क्योंकि 'ख्याञ् आदेश आर्धधातुक विषय में होता है।

विशेष-'अवचक्षे' यहां 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।

तोसुन् (भावलक्षणे)–

(११) भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन्।१६।

प०वि०-भावलक्षणे ७।१ स्था-इण्-कृञ्-वदि-चरि-हु-तमि-जनिभ्य: ५।३ तोसुन् १।१।

स०-भाव:=क्रिया। भावस्य लक्षणमिति भावलक्षणम्, तस्मिन्-भावलक्षणे (षष्ठीतत्पुरुष:)। स्थाश्च इण् च कृञ् च वदिश्च चरिश्च हुश्च तमिश्च जनिश्च ते स्था०जनय:, तेभ्य:-स्था०जनिभ्य: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-छन्दसि, तुमर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि तुमर्थे भावलक्षणे स्थेण्०जनिभ्यो धातुभ्यस्तोसुन्।

अर्थः-छन्दसि विषये तुमर्थे भावलक्षणे चार्थे वर्तमानेभ्यः स्थाऽऽदिभ्यो धातुभ्यः परस्तोसुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**स्थाः**) आ संस्थातोर्वेद्यां शेरते (का०सं० ११।१६)। आ समाप्तेः सीदन्तीत्यर्थः। (**इण्**) पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः (का०सं० ८।३)। (**कृञ्**) पुरा वत्सानामपाकर्तोः (का०सं० ३१।१५)। (**वदिः**) पुरा वदितोरग्नौ प्रहोतव्यम्। (**चरिः**) पुरा प्रचरितोरग्नीध्रीये होतव्यम् (गो०ब्रा० २।२।१०)। (**हुः**) आ होतोरप्रमत्तस्तिष्ठति। (**तमिः**) आ तमितोरासीत (तै०ब्रा० १।४।४।५)। (**जनिः**) आ विजनितोः सम्भवामेति (तै०सं० २।५।१।५)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुमर्थे) तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में (भावलक्षणे) क्रिया के लक्षण में वर्तमान (स्था०जनिभ्यः) स्था, इण्, कृञ्, वदि, चरि, हु, तमि, जनि (धातोः) धातुओं से परे (तोसुन्) तोसुन् प्रत्यय होता है।

उदा०-संस्कृतभाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) संस्थातोः। सम्+स्था+तोसुन्। सम्+स्था+तोस्। संस्थातोस्+सु। संस्थातोः।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से तुमुन् प्रत्यय के भाव अर्थ में तथा क्रिया के लक्षण में 'तोसुन्' प्रत्यय है। आ संस्थातोः=समाप्ति तक। समाप्त होना क्रियालक्षण है।

(२) उदेतोः। यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'तोसुन्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'इण्' धातु को गुण होता है। उदेतोः=उदय होना।

(३) अपाकर्तोः। यहां 'अप' और 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'तोसुन्' प्रत्यय है। 'कृ' धातु को पूर्ववत् गुण होता है। अपाकर्तोः=दूर करना।

(४) वदितोः। यहां 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'तोसुन' प्रत्यय है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (८।२।३५) से 'तोसुन्' प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है। वदितोः=बोलना।

(५) प्रचरितोः। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'चर गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तोसुन्' प्रत्यय और पूर्ववत् 'इट्' आगम होता है। प्रचरितोः=प्रचरण करना।

(६) होतोः। यहां 'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके' (जु०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'तोसुन्' प्रत्यय और 'हु' धातु को पूर्ववत् गुण होता है। होतोः=हवन करना।

(७) तमितोः। यहां 'तमु काङ्क्षायाम्' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'तोसुन्' प्रत्यय और पूर्ववत् 'इट्' आगम होता है। तमितोः=आकाङ्क्षा करना।

(८) विजनितोः। यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'तोसुन्' प्रत्यय और पूर्ववत् 'इट्' आगम होता है। विजनितोः=उत्पन्न होना।

विशेष-(१) भावलक्षणम्-आ संस्थातो वेद्यां शेरते। यज्ञ की समाप्ति तक वेदी पर बैठते हैं। यहां वेदी पर बैठना, यज्ञ की समाप्ति क्रिया से लक्षित किया जारहा है, अतः भावलक्षण (क्रियालक्षण) अर्थ में सम्+स्था धातु से 'तोसुन्' प्रत्यय है। ऐसे ही सर्वत्र क्रियालक्षण को समझ लेवें।

(२) यहां 'संस्थातोः' आदि शब्दों की 'क्त्वा तोसुन्कसुनः' (१।१।३९) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।

कसुन् (भावलक्षणे)–

(१२) सृपितृदोः कसुन्।१७।

प०वि०–सृपि-तृदोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) कसुन् १।१।

स०–सृपिश्च तद् च तौ–सृपितृदौ, तयोः–सृपितृदोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–छन्दसि, तुमर्थे भावलक्षणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तुमर्थे भावलक्षणे सृपितृदिभ्यां धातुभ्यां कसुन्।

अर्थः–छन्दसि विषये तुमर्थे भावलक्षणे चार्थे वर्तमानाभ्यां सृपितृदिभ्यां धातुभ्यां परः कसुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(सृपिः) पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् (यजु० १।२८)। (तृद्) पुरा जर्तृभ्य आतृदः (ऋ० ८।१।१२)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुमर्थे) तुमुन् प्रत्यय के भाव अर्थ में और (भावलक्षणे) क्रिया के लक्षण में विद्यमान (सृपितृदोः) सृपि और तृद् (धातोः) धातुओं से परे (कसुन्) कसुन् प्रत्यय होता है।

उदा०-संस्कृतभाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) विसृपः। वि+सृप्+कसुन्। वि+सृप्+अस्। विसृपस्+सु। विसृपः।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक (भ्वा०प०) धातु से तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में तथा क्रिया के लक्षण में 'कसुन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'कित्' होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से

'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है। विसृपः=विसर्पण करना।

(२) वितृदः। यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'उतृदिर् हिंसानादरयोः' (रुधा०उ०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'कसुन्' प्रत्यय है। वितृदः=हिंसा/अनादर करना।

विशेष-यहां 'विसृपः' और 'वितृदः' पदों की 'क्त्वातोसुन्कसुनः' (१।१।३९) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।

क्त्वाप्रत्ययप्रकरणम्

क्त्वा (प्राचां मते)-

(१) अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा।१८।

प०वि०-अलंखल्वोः ७।२ प्रतिषेधयोः ७।२ प्राचाम् ६।३ क्त्वा १।१ (लुप्तप्रथमा)।

स०-अलं च खलुश्च तौ-अलंखलू, तयोः-अलंखल्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि, तुमर्थे, भावलक्षणे इति च सर्वं निवृत्तम्।

अन्वयः-प्रतिषेधयोरलंखल्वोर्धातोः क्त्वा प्राचाम्।

अर्थः-प्रतिषेधार्थयोरलङ्खल्वोः शब्दायोरुपपदयोर्धातोः परः क्त्वा प्रत्ययो भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-(अलम्) अलं कृत्वा। अलं बाले रुदित्वा। (खलुः) खलु कृत्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रतिषेधार्थयोः) निषेध अर्थक (अलंखल्वोः) अलम् और खलु शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय होता है (प्राचाम्) प्राग्देशीय आचार्यों के मत में।

उदा०-(अलम्) अलं कृत्वा। मत करना। अलं बाले रुदित्वा। हे बाले! मत रोना। (खलु) खलु कृत्वा। मत करना।

सिद्धि-(१) कृत्वा। कृ+क्त्वा। कृ+त्वा। कृत्वा+सु। कृत्वा।

यहां 'कृ' धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'कित्' होने से 'कृ' धातु को पूर्ववत् गुण नहीं होता है।

(२) रुदित्वा। यहां 'रुदिर् अश्रुविमोचने' (अ०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय और 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'क्त्वा' प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है।

विशेष- 'कृत्वा' आदि शब्दों की 'क्त्वातोसुन्कसुनः' (१।१।३९) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।

क्त्वा (व्यतीहारे)-

(२) उदीचां माङो व्यतीहारे।१६।

प०वि०-उदीचाम् ६।३ माङः ५।१ व्यतीहारे ७।१।

अनु०-क्त्वा इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-व्यतीहारे माङो धातोः क्त्वा उदीचाम्।

अर्थः-व्यतीहारेऽर्थे वर्तमानाद् माङ्धातोः परः क्त्वा प्रत्ययो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन। व्यतीहारः=विनिमयः। 'माङः' इति मेङ् धातोः कृतात्त्वस्य निर्देशः।

उदा०-अपमित्य याचते। अपमित्य हरति। पाणिनिमते-याचित्वाऽपमयते। हृत्वाऽपमयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(व्यतीहारे) विनिमय अर्थ में विद्यमान (माङः) माङ् (धातोः) धातु से परे (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय होता है (उदीचाम्) उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में।

उदा०-अपमित्य याचते। विनिमय करके मांगता है। अपमित्य हरति। विनिमय करके हरण करता है। पाणिनिमत में-याचित्वाऽपमयते। मांग कर विनिमय करता है। हृत्वाऽपमयते। अपहरण करके विनिमय करता है।

सिद्धि-(१) अपमित्य। यहां 'अप' उपसर्गपूर्वक 'मेङ् प्रतिदाने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से व्यतीहार अर्थ में 'क्त्वा' प्रत्यय हो। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से 'मेङ्' धातु को आत्त्व, 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादिसमास, 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (७।१।३७) से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश और 'मयतेरिदन्यतरस्याम्' (६।४।७०) से 'माङ्' के 'आ' को इत्त्व और 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।७१) से तुक् आगम होता है।

(२) याचित्वा। यहां 'टुयाचृ याच्ञायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय और 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है।

(३) हृत्वा। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

क्त्वा (परावरयोगे)–

(३) परावरयोगे च।२०।

प०वि०–परावरयोगे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०–परश्च अवरश्च तौ–परावरौ, ताभ्याम्–परावराभ्याम्, परावराभ्यां योग इति परावरयोगः, तस्मिन्–परावरयोगे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०–क्त्वा इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–परावरयोगे च धातोः क्त्वा।

अर्थः–परेणाऽवरस्य, अवरेण च परस्य योगेऽपि धातोः परः क्त्वा प्रत्ययो भवति।

उदा०–(परस्यावरेण योगः) अप्राप्य नदीं पर्वतः स्थितः। परया नद्या सहावरस्य पर्वतस्य योगोऽस्ति। **(अवरस्य परेण योगः)** अनतिक्रम्य तु पर्वतं नदी स्थिता। अवरया नद्या सह परस्य पर्वतस्य योगोऽस्ति।

आर्यभाषा–अर्थ–(परावरयोगे) पर के साथ अवर का और अवर के साथ पर का योग होने पर (च) भी (धातोः) धातु से परे (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय होता है।

उदा०–(पर का अवर के साथ योग) अप्राप्य नदीं पर्वतः स्थितः। परवर्तिनी नदी के साथ अवरवर्ती पर्वत का योग है। (अवर का पर के साथ योग) अनतिक्रम्य पर्वतं नदी स्थिता। अवरवर्तिनी नदी के साथ परवर्ती पर्वत का योग है।

सिद्धि–(१) अप्राप्य। प्र+आप्+क्त्वा। प्र+आप्+ल्यप्। प्राप्+य। प्राप्य+सु। प्राप्य। नञ्+प्राप्य=अप्राप्य।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'आप्लृ व्याप्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय है। 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादिसमास, 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (७।१।३७) से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश है और तत्पश्चात् प्राप्य शब्द के साथ 'नञ्' समास है।

(२) अनतिक्रम्य। यहां 'अति' उपसर्गपूर्वक 'क्रमु पादविक्षेपे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

क्त्वा (पूर्वकाले)–

(४) समानकर्तृकयोः पूर्वकाले।२१।

प०वि०–समानकर्तृकयोः ७।२ पूर्वकाले ७।१।

स०-समान: कर्ता ययोर्धात्वर्थयोस्तौ-समानकर्तृकौ, तयो:-समानकर्तृकयो: (बहुव्रीहि:)। पूर्वश्चासौ काल इति पूर्वकाल:, तस्मिन्-पूर्वकाले (कर्मधारय:)।

अनु०-क्त्वा इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-समानकर्तृकयोर्धात्वो: पूर्वकाले धातो: क्त्वा।

अर्थ:-समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे वर्तमानाद् धातो: पर: क्त्वा प्रत्ययो भवति।

उदा०-भुक्त्वा व्रजति देवदत्त:। पीत्वा व्रजति यज्ञदत्त:।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकयो:) समान कर्तावाले दो धातु-अर्थों में से (पूर्वकाले) पूर्वकालविषयक धात्वर्थ में विद्यमान (धातो:) धातु से परे (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय होता है।

उदा०-भुक्त्वा व्रजति देवदत्त:। देवदत्त खाकर जाता है। पीत्वा व्रजति यज्ञदत्त:। यज्ञदत्त पीकर जाता है।

सिद्धि-(१) भुक्त्वा। भुज्+क्त्वा। भुक्+त्वा। भुक्त्वा+सु। भुक्त्वा।

यहां 'भुज्' धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'कित्' होने से पूर्ववत् प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है। 'चो: कु:' (८।२।३०) से 'भुज्' धातु के 'ज्' को कुत्व 'ग्' और 'खरि च' (८।४।५४) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है।

(२) पीत्वा। पा+क्त्वा। पी+त्वा। पीत्वा+सु। पीत्वा।

यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय और 'घुमास्था०' (६।४।६६) से 'पा' के 'आ' को ईत्त्व होता है।

विशेष-यहां 'भुज्' और 'व्रज्' धात्वर्थों का कर्ता एक (समान) देवदत्त है। इन दोनों धात्वर्थों में से 'भुज्' का धात्वर्थ पूर्वकाल में है और 'व्रज' का धात्वर्थ उत्तरकाल में है, अत: 'भुज्' धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है।

क्त्वाणमुल्प्रत्ययप्रकरणम्

क्त्वा+णमुल् (आभीक्ष्ण्ये)-

(५) आभीक्ष्ण्ये णमुल् च।२२।

प०वि०-आभीक्ष्ण्ये ७।१ णमुल् १।१ च अव्ययपदम्। क्रियाया: पौन:पुन्यम्=आभीक्ष्ण्यम्, तस्मिन्-आभीक्ष्ण्ये।

अनु०-समानकर्तृकयो: पूर्वकाले क्त्वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले अभीक्ष्ण्ये च धातोः णमुल् क्त्वा च।

अर्थः-समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे आभीक्ष्ण्ये चार्थे वर्तमानाद् धातोः परो णमुल् क्त्वा च प्रत्ययो भवति। द्विर्वचनसहितौ क्त्वाणमुलावाभीक्ष्ण्यं द्योतयतः, न केवलौ।

उदा०-(णमुल्) भोजं भोजं व्रजति देवदत्तः। पायं पायं व्रजति यज्ञदत्तः। **(क्त्वा)** भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति देवदत्तः। पीत्वा पीत्वा व्रजति यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकयोः) समान कर्तावाले दो धातु अर्थों में से (पूर्वकाले) पूर्वकालविषयक धात्वर्थ में तथा (आभीक्ष्ण्ये) क्रिया के पुनः पुनः होने अर्थ में (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् (च) और (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय होता है। द्विर्वचन सहित क्त्वा और णमुल् प्रत्यय आभीक्ष्ण्य अर्थ को प्रकाशित करते हैं, केवल नहीं।

*उदा०-(णमुल्) **भोजं भोजं व्रजति देवदत्तः।** देवदत्त पुनः पुनः खाकर जाता है। **पायं पायं व्रजति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त पुनः पुनः पीकर जाता है। (क्त्वा) **भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति देवदत्तः। पीत्वा पीत्वा व्रजति यज्ञदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-(१) भोजम्। भुज्+णमुल्। भोज्+अम्। भोजम्+सु। भोजम्।

*यहां 'भुज्' धातु से इस सूत्र से आभीक्ष्ण्य विशिष्ट अर्थ में णमुल् प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः' इस वार्तिक वचन से द्वित्व होता है-**भोजं भोजम्।***

(२) पायम्। पा+णमुल्। पा+युक्।+अम्। पा+य्+अम्। पायम्+सु। पायम्।

यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् णमुल् प्रत्यय है। 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'पा' धातु को 'युक्' आगम होता है। शेष पूर्ववत् है।

(३) भुक्त्वा। 'भुज्' धातु से पूर्ववत् (३।४।२१)।

(४) पीत्वा। 'पा' धातु से पूर्ववत् (३।४।२१)।

विशेष-'भोजम्' आदि शब्दों की 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा है और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।

क्त्वा-णमुल्-प्रतिषेधः-

(६) न यद्यनाकाङ्क्षे।२३।

प०वि०- न अव्ययपदम्, यदि ७।१ अनाकाङ्क्षे ७।१।

स०-न विद्यते आकाङ्क्षा (अपेक्षा) यस्य सः अनाकाङ्क्षः तस्मिन्-अनाकाङ्क्षे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले, क्त्वा, णमुल् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले यदि धातोः क्त्वाणमुलौ न अनाकाङ्क्षे।

अर्थः-समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे वर्तमानाद् यद्-शब्दे उपपदे धातोः परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ न भवतः, अनाकाङ्क्षे वाच्ये। यस्मिन् वाक्ये पूर्वोत्तरे क्रिये स्तः, तच्चेद् वाक्यं न परं किञ्चिदाकाङ्क्षते=अपेक्षते।

उदा०-यदयं भुङ्क्ते ततः पचति। यदयमधीते ततः शेते। अनाकाङ्क्षे इति किम्? यदयं भुक्त्वा व्रजति, अधीते एव ततः परम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकयोः) समान कर्तावाले दो धातु-अर्थों में से (पूर्वकाले) पूर्वकालविषयक धात्वर्थ में विद्यमान (यदि) यद् शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (क्त्वा-णमुल्) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय (न) नहीं होते हैं (अनाकाङ्क्षे) यदि वहां अनाकाङ्क्षा=उपेक्षा अर्थ वाच्य हो। जिस वाच्य में पूर्व-उत्तर क्रियायें हों और वह वाक्य किसी अन्य वाक्य की आकाङ्क्षा=अपेक्षा न रखता हो।

*उदा०-**यदयं भुङ्क्ते ततः पचति**। जो यह पहले खाता है तत्पश्चात् पकाता है। **यदयमधीते ततः शेते**। जो यह पहले पढ़ता है तत्पश्चात् सोता है। अनाकाङ्क्ष का कथन इसलिये किया है कि यहां प्रतिषेध न हो-**यदयं भुक्त्वा व्रजति अधीते एव ततः परम्**।*

सिद्धि-यहां भुङ्क्ते, अधीते पदों में पूर्वकाल विषयक धात्वर्थ में इस सूत्र से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय का प्रतिषेध है।

क्त्वा-णमुल्विकल्पः-

(७) विभाषाऽग्रेप्रथमपूर्वेषु।२४।

प०वि०-विभाषा १।१ अग्रे-प्रथम-पूर्वेषु ७।३।

स०-अग्रेश्च प्रथमं च पूर्वं च तानि-अग्रेप्रथमपूर्वाणि, तेषु-अग्रेप्रथमपूर्वेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले क्त्वा णमुल् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समानकर्तृकयोः पूर्वकालेऽग्रेप्रथमपूर्वेषु धातोः क्त्वा णमुल् च।

अर्थः-समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे वर्तमानाद् अग्रेप्रथमपूर्वेषु उपपदेषु धातोः परौ विकल्पेन क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः। अत्र विभाषाग्रहणात् क्त्वाणमुल्भ्यां मुक्ते लडादयोऽपि भवन्ति।

उदा०-**(अग्रे)** अग्रे भोजं व्रजति (णमुल्)। अग्रे भुक्त्वा व्रजति (क्त्वा)। अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति (लट्)। **(प्रथमम्)** प्रथमं भोजं व्रजति (णमुल्)। प्रथमं भुक्त्वा व्रजति (क्त्वा)। प्रथमं भुङ्क्ते ततो व्रजति (लट्)। **(पूर्वम्)** पूर्वं भोजं व्रजति (णमुल्)। पूर्वं भुक्त्वा व्रजति (क्त्वा)। पूर्वं भुङ्क्ते ततो व्रजति (लट्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकयोः) समान कर्तावाले दो धात्वर्थों में से (पूर्वकाले) पूर्वकाल विषयक धात्वर्थ में विद्यमान तथा (अग्रेप्रथमपूर्वेषु) अग्रे, प्रथम, पूर्व शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (क्त्वा-णमुल्) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं। यहां विभाषाग्रहण से क्त्वा और णमुल् से मुक्त होने पर धातु से 'लट्' आदि प्रत्यय भी होते हैं।

उदा०-(अग्रे) अग्रे भोजं व्रजति (णमुल्)। अग्रे भुक्त्वा व्रजति (क्त्वा)। पहले खाकर जाता है। अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति। पहले खाता है तत्पश्चात् जाता है। (प्रथम) प्रथमं भोजं व्रजति (णमुल्)। प्रथमं भुक्त्वा व्रजति (क्त्वा)। प्रथम खाकर जाता है। प्रथमं भुङ्क्ते ततो व्रजति। प्रथम खाता है, तत्पश्चात् जाता है। (पूर्व) पूर्वं भोजं व्रजति (णमुल्)। पूर्वं भुक्त्वा व्रजति (क्त्वा)। पूर्व खाकर जाता है। पूर्वं भुङ्क्ते ततो व्रजति। पूर्व खाता है, तत्पश्चात् जाता है।

सिद्धि-भोजम्, भुक्त्वा, भुङ्क्ते पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

खमुञ्-प्रत्ययविधिः

खमुञ् (आक्रोशे)-

(८) कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ्।२५।

प०वि०-कर्मणि ७।१ आक्रोशे ७।१ कृञः ५।१ खमुञ् १।१।

अनु०-समानकर्तृकयोः, पूर्वकाले इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले कर्मणि कृञो धातोः खमुञ् आक्रोशे।

अर्थः-समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे वर्तमानात् कर्मण्युपपदे कृञ्धातोः परः खमुञ् प्रत्ययो भवति, आक्रोशे गम्यमाने।

उदा०-चोरङ्कारमाक्रोशति। चोरोऽसि दस्युरसि, इत्याक्रोशति।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकयोः) समान कर्तावाले दो धातु अर्थों में से (पूर्वकाले) पूर्वकाल विषयक धात्वर्थ में विद्यमान तथा (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (खमुञ्) खमुञ् प्रत्यय होता है (आक्रोशे) यदि वहां आक्रोश (निन्दा) अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-चोरङ्कारमाक्रोशति। तू चोर है ऐसा कहकर निन्दा करता है।

सिद्धि-चोरङ्कारम्। चोर+अम्+कृ+खमुञ्। चोर+कार्+अ। चोर+मुम्+कार+अ। चोर+ ं +कार्+अ। चोरङ्कार+सु। चोरङ्कारम्।

यहां चोर कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'खमुञ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ञित् होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है। प्रत्यय के 'खित्' होने से 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६६) से 'चोर' शब्द को 'मुम्' आगम होता है। 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से 'म्' को अनुस्वार ं और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार ं को परसवर्ण ङकार होता है।

विशेष-कृञ्-यहां 'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति' (महाभाष्य) के प्रमाण से कृञ् धातु उच्चारणार्थक है, करणार्थक नहीं।

णमुल्प्रत्ययप्रकरणम्

णमुल् (पूर्वकाले)-

(१) स्वादुमि णमुल्।२६।

प०वि०-स्वादुमि ७।१ णमुल् १।१।

अनु०-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले, कृञ् इति चानुवतति। अत्र 'स्वादुमि' इत्यर्थग्रहणं क्रियते।

अन्वयः-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले स्वादुमि कृञो धातोर्णमुल्।

अर्थः-समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे वर्तमानात्, स्वादु-अर्थेषु उपपदेषु कृञ्धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते। लवणङ्कारं भुङ्क्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकयोः) समान कर्तावाले दो धातु अर्थों में से (पूर्वकाले) पूर्वकाल विषयक धात्वर्थ में विद्यमान (स्वादुमि) स्वादु-अर्थक शब्द उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। स्वाद बनाकर खाता है। सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते। दूध, दही, घृत आदि से सम्पन्न बनाकर खाता है। लवणङ्कारं भुङ्क्ते। नमक डालकर खाता है।

सिद्धि-(१) स्वादुङ्कारम्। स्वादुम्+कृ+णमुल्। स्वादुम्+कार्+अम्। स्वादु+ ं +कार्+अम्। स्वादुङ्कारम्+सु। स्वादुङ्कारम्।

यहां 'स्वादुम्' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'णमुल्' प्रत्यय के 'णित्' होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है। यहां 'स्वादुम्' शब्द मकारान्त निपातित है। इससे च्वि-अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में 'वोतो गुणवचनात्' (४।१।४४) से 'ङीप्' प्रत्यय नहीं होता है-अस्वाद्वीं स्वाद्वीं कृत्वा भुङ्क्ते इति स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। 'म्' को पूर्ववत् अनुस्वार और परसवर्ण होता है। 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३८) से स्वादुङ्कारं की अव्यय संज्ञा है और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।

(२) सम्पन्नङ्कारम्। यहां सम्पन्नम् शब्द उपपद होने पर पूर्ववत् 'णमुल्' प्रत्यय है।

(३) लवणङ्कारम्। यहां 'लवणम्' शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से पूर्ववत् 'णमुल्' प्रत्यय है।

विशेष-स्वादुम्-यहां स्वादु शब्द तथा इसके पर्यायवाची शब्दों का ग्रहण किया जाता है। स्वादु शब्द यहां मकारान्त निपातित है, उसका फल ऊपर बतलाया गया है। स्वादुम् शब्द के मकारान्त निपातन से सम्पन्नम् आदि शब्द भी मकारान्त ग्रहण किये जाते हैं।

णमुल् (सिद्धाप्रयोगे)-

(२) अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्।२७।

प०वि०-अन्यथा-एवम्-कथम्-इत्थंसु ७।३. सिद्धाप्रयोगः १।१ चेत् अव्ययपदम्।

स०-अन्यथा च एवं च कथं च इत्थं च ते-अन्यथा०इत्थमः, तेषु-अन्यथा०इत्थंसु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न प्रयोग इति अप्रयोगः, सिद्धोऽप्रयोगो यस्य सः-सिद्धाप्रयोगः (नञ्गर्भितबहुव्रीहिः)।

अन्वयः-अन्यथैवंकथमित्थंसु कृञो धातोर्णमुल्, सिद्धाप्रयोगश्चेत्।

अनु०-कृञः, णमुल् इति चानुवर्तते।

अर्थः-अन्यथा=एवं-कथम्-इत्थंसु उपपदेषु कृञ्धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, सिद्धाप्रयोगश्चेत् करोतेर्भवति। कथं पुनरसौ सिद्धाप्रयोगः? निरर्थकत्वान्न प्रयोगमर्हतीति एवमेव प्रयुज्यते। **'अन्यथा भुङ्क्ते'** इति यावानर्थस्तावानेवान्यथाकारं भुङ्क्ते इत्यस्य विज्ञायते।

उदा०-(अन्यथा) अन्यथाकारं भुङ्क्ते। **(एवम्)** एवङ्कारं भुङ्क्ते। **(कथम्)** कथङ्कारं भुङ्क्ते। **(इत्थम्)** इत्थङ्कारं भुङ्क्ते।

आर्यभाषा-अर्थः-(अन्यथा०इत्थंसु) अन्यथा, एवम्, कथम्, इत्थम् शब्द उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (सिद्धाप्रयोगः, चेत्) यदि वहां कृञ् धातु का अप्रयोग सिद्ध हो। जहां निरर्थक होने से प्रयोग की आवश्यकता न हो और वहां उसका प्रयोग किया जाये उसे सिद्धाप्रयोग कहते हैं। जो अर्थ 'अन्यथा भुङ्क्ते' का है वही अर्थ 'अन्यथाकारं भुङ्क्ते' का है। अतः यहां 'कृञ्' धातु सिद्धाप्रयोग है।

उदा०-(अन्यथा) अन्यथाकारं भुङ्क्ते। अन्य प्रकार से खाता है। (एवम्) एवङ्कारं भुङ्क्ते। इस प्रकार से खाता है। (कथम्) कथङ्कारं भुङ्क्ते। किस प्रकार से खाता है। (इत्थम्) इत्थङ्कारं भुङ्क्ते। इस प्रकार से खाता है।

सिद्धि-(१) अन्यथाकारम्। अन्यथा+कृ+णमुल्। अन्यथा+कार्+अम्। अन्यथा+करम्+सु। अन्यथाकारम्।

यहां अन्यथा उपपद होने पर 'कृ' धातु से णमुल् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'एवङ्कारम्' आदि में कोई विशेष नहीं है।

णमुल् (असूयाप्रतिवचने)-

(३) यथातथयोरसूयाप्रतिवचने।२८।

प०वि०-यथा-तथयोः ७।२ असूया-प्रतिवचने ७।१।

स०-यथाश्च तथाश्च तौ यथातथौ, तयोः-यथातथयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। असूया=निन्दा, प्रतिवचनम्=उत्तरम्। असूयायाः प्रतिवचनमिति असूयाप्रतिवचनम्, तस्मिन्-असूयाप्रतिवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०- णमुल्, कृञः, सिद्धाप्रयोगश्चेद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथातथयोः कृञो धातोर्णमुल्, सिद्धाप्रयोगश्चेत्, असूर्या-प्रतिवचने।

अर्थः-यथातथयोरुपपदयोः कृञ्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, सिद्धाप्रयोगश्चेत् करोतेर्भवति, असूयाप्रतिवचने गम्यमाने।

उदा०-कस्मिँश्चित् पृच्छति सति कश्चिदसूयन् प्रतिवक्ति-यथाकारं करोमि, तथाकारं करोमि किं तवानेन।

आर्यभाषा-अर्थ-(यथातथयोः) यथा और तथा शब्द उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (सिद्धाप्रयोगश्चेत्) यदि वहां कृञ् धातु का अप्रयोग सिद्ध हो और (असूयाप्रतिवचने) निन्दात्मक प्रत्युत्तर की प्रतीति हो।

*उदा०-किसी के पूछने पर कोई असूया करता हुआ प्रत्युत्तर देता है-**यथाकारं करोमि, तथाकारं करोमि किं तवानेन।** मैं जैसे करता हूं वैसे करता हूं, तुझे इससे क्या?*

सिद्धि-(१) यथाकारम्। यहां 'यथा' उपपद होने पर 'कृ' धातु से णमुल् प्रत्यय है। 'कृ' धातु को पूर्ववत् वृद्धि होती है।

(२) तथाकारम्। पूर्ववत्।

णमुल् (साकल्ये)-

(४) कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये।२६।

प०वि०-कर्मणि ७।१ दृशि-विदोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) साकल्ये ७।१।

स०-दृशिश्च विद् च तौ-दृशिविदौ, तयोः-दृशिविदोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-साकल्ये कर्मणि दृशिविदिभ्यां धातुभ्यां णमुल्।

अर्थः-साकल्ये विशिष्टे कर्मण्युपपदे दृशिविदिभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(दृशिः) ब्राह्मणदर्शं भोजयति। यं यं ब्राह्मणं पश्यति तं तं भोजयतीत्यर्थः। (विद्) ब्राह्मणवेदं भोजयति। यं यं ब्राह्मणं जानाति/लभते/विचारयति वा तं तं भोजयतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(साकल्ये) सम्पूर्णता अर्थ से युक्त (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (दृशिविदोः) दृश् और विद् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(दृशि) ब्राह्मणदर्शं भोजयति। जिस जिस ब्राह्मण=वेदज्ञ विद्वान् को देखता है उस उस को भोजन कराता है। (विद्) ब्राह्मणवेदं भोजयति। जिस जिस ब्राह्मण=वेदज्ञ विद्वान् को जानता है/प्राप्त करता है/सोचता है उस उस को भोजन कराता है।

सिद्धि-(१) ब्राह्मणदर्शम्। यहां साकल्य अर्थ से विशिष्ट 'ब्राह्मण' कर्म उपपद होने पर 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'दृश्' धातु को लघूपध गुण होता है।

(२) ब्राह्मणवेदम्। यहां 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) 'विद्लृ लाभे' (रुधा०आ०) 'विद विचारणे' (तु०उ०) धातु से पूर्ववत्।

णमुल्–

(५) यावति विन्दजीवोः।३०।

प०वि०-यावति ७।१ विन्द-जीवोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-विन्दश्च जीव् च तौ-विन्दजीवौ, तयोः-विन्दजीवोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यावति विन्दजीविभ्यां धातुभ्यां णमुल्।

अर्थः-यावत्-शब्दे उपपदे विन्दजीविभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(विन्दः) यावद्वेदं भुङ्क्ते। (जीव्) यावज्जीवम् अधीते।

आर्यभाषा-अर्थ-(यावति) यावत् शब्द उपपद होने पर (विन्दजीवोः) विन्द और जीव् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(विन्द) यावद्वेदं भुङ्क्ते। जितना मिलता है उतना खाता है। (जीव्) यावज्जीवम् अधीते। जब तक जीता है, तब तक पढ़ता है।

सिद्धि-(१) यावद्वेदम्। यहां यावत् शब्द उपपद होने पर 'विद्लृ लाभे' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'विद्' धातु को लघूपध गुण होता है।

(२) यावज्जीवम्। 'जीव प्राणरक्षणे' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

णमुल्–

(६) चर्मोदरयोः पूरेः ।३१।

प०वि०–चर्म–उदरयोः ७ ।२ पूरेः ५ ।१।

स०–चर्म च उदरं च ते–चर्मोदरे, तयोः–चर्मोदरयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–णमुल्, कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–चर्मोदरयोः कर्मणोः पूरेर्धातोर्णमुल्।

अर्थः–चर्मोदरयोः कर्मणोरुपपदयोः पूरि–धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति। पूरिरिति णिजन्तस्येदं ग्रहणम्।

उदा०–(चर्म) चर्मपूरं स्तृणाति। (उदरम्) उदरपूरं भुङ्क्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(चर्मोदरयोः) चर्म और उदर शब्द (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (पूरेः) णिजन्त पूरि (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(चर्म) चर्मपूरं स्तृणाति। चर्म को फैला करके ढकता है। (उदरम्) उदरपूरं भुङ्क्ते। उदर को पूर्ण करके खाता है (पिटभर खाता है)।

सिद्धि-(१) चर्मपूरम्। यहां चर्म कर्म उपपद होने पर 'पूरी आप्यायने' (दि०आ०) इस णिजन्त धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'णमुल्' प्रत्यय के परे होने पर 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(१) उदरपूरम्। पूर्ववत्।

णमुल् (वर्षप्रमाणे)–

(६) वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् ।३२।

प०वि०–वर्षप्रमाणे ७ ।१ ऊलोपः १ ।१ अस्य ६ ।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–वर्षस्य प्रमाणमिति वर्षप्रमाणम्, तस्मिन्–वर्षप्रमाणे (षष्ठीतत्पुरुषः)। ऊकारस्य लोप इति ऊलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–णमुल्, कर्मणि पूरेः इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मणि पूरेर्धातोर्णमुल्, ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम्।

अर्थः–कर्मणि कारके उपपदे पूरिधातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, धातोरूकारस्य च विकल्पेन लोपो भवति, वर्षस्य प्रमाणे गम्यमाने।

उदा०-गोष्पदपूरं वृष्टो देवः। गोष्पदप्रं वृष्टो देवः। सीतापूरं वृष्टो देवः। सीताप्रं वृष्टो देवः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (पूरेः) पूरि (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (च) और (अस्य) इस धातु के (ऊलोपः) ऊकार का लोप (अन्यतरस्याम्) विकल्प से होता है (वर्षप्रमाणे) यदि वहां वर्षा का प्रमाण प्रतीत हो।

उदा०-गोष्पदपूरं वृष्टो देवः। गोष्पदप्रं वृष्टो देवः। पर्जन्य देव ने गौ के पद=चरणचिह्न को भरकर वर्षा की। सीतापूरं वृष्टो देवः, सीताप्रं विष्टो देवः। पर्जन्य देव ने सीता=खूड को भरकर वर्षा की। गौ के चरणचिह्न का भरना तथा खूड का भरना वर्षा का प्रमाण (माप) है।

सिद्धि-(१) गोष्पदपूरम्। यहां गोष्पद कर्म उपपद होने पर पूर्वोक्त 'पूरि' धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है।

(२) गोष्पदप्रम्। यहां विकल्प पक्ष में 'पूरि' धातु के ऊकार का लोप होगया है। शेष पूर्ववत्।

(३) सीतापूरम्/सीताप्रम्। पूर्ववत्।

णमुल् (वर्षप्रमाणे)-

(७) चेले क्नोपेः।३३।

प०वि०-चेले ७।१ क्नोपेः ५।१।

अनु०-णमुल्, कर्मणि, वर्षप्रमाणे इति चानुवर्तते। 'चेले' इत्यत्रार्थग्रहणं क्रियते। चेलम्=वस्त्रम्।

अन्वयः-चेले कर्मणि क्नोपेर्धातोर्णमुल् वर्षप्रमाणे।

अर्थः-चेलार्थेषु कर्मसु उपपदेषु क्नोपि-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, वर्षप्रमाणे गम्यमाने।

उदा०-चेलक्नोपं वृष्टो देवः। वस्त्रक्नोपं वृष्टो देवः। वसनक्नोपं वृष्टो देवः।

आर्यभाषा-अर्थ-(चेले) चेल=वस्त्रार्थक शब्द (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (क्नोपेः) क्नोपि (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (वर्षप्रमाणे) यदि वहां वर्षा के प्रमाण (माप) की प्रतीति हो।

उदा०-चेलक्नोपं वृष्टो देवः। वस्त्रक्नोपं वृष्टो देवः। वसनक्नोपं वृष्टो देवः। पर्जन्य देव ने वस्त्र गीला करनेवाली वर्षा की।

सिद्धि-(१) चेलक्नोपम्। चेल+अम्+क्नूय्+णिच्+णमुल्। चेल+क्नूय्+पुक्+इ+आम्। चेल+क्नूप्+अम्। चेल+क्नोप्+अम्। चेलक्नोपम्+सु। चेलक्नोपम्।

यहां 'चेल' कर्म उपपद होने पर णिजन्त 'क्नूयी शब्द उन्दे च' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'क्नूयी' धातु से हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय, 'अर्तिह्री०' (७।३।३६) से धातु को 'पुक्' आगम, 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६५) से धातु के 'य्' का लोप और 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से पुगन्त 'क्नूप्' धातु को गुण होता है।

(२) वस्त्रक्नोपम्/वसनक्नोपम्। पूर्ववत्।

णमुल्-

(८) निमूलसमूलयोः कषः।३४।

प०वि०-निमूल-समूलयोः ७।२ कषः ५।१।

स०-निमूलं च समूलं च ते-निमूलसमूले, तयोः-निमूलसमूलयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल् कर्मणि इति चानुवतति।

अन्वयः-निमूलसमूलयोः कर्मणो कषो धातोर्णमुल्।

अर्थः-निमूलसमूलयोः कर्मणोरुपपदयोः कष्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(निमूलम्) निमूलकाषं कषति। **(समूलम्)** समूलकाषं कषति। निगतं मूलं यस्य तत्-निमूलम्। मूलेन सहेति समूलम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(निमूलसमूलयोः) निमूल और समूल शब्द (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (कषः) कष् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(निमूल) निमूलकाषं कषति। वृक्ष आदि को नीचे जड़ छोड़कर काटता है। (समूल) समूलकाषं कषति। वृक्ष आदि को जड़ सहित काटता है।

सिद्धि-(१) निमूलकाषम्। यहां निमूल कर्म उपपद होने पर 'कष हिंसायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से कष् धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) समूलकाषम्। पूर्ववत्।

विशेष-पाणिनीय धातुपाठ में 'कष' धातु हिंसार्थक पठित है किन्तु 'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति' (महाभाष्य) के प्रमाण से यहां 'कष' धातु छेदनार्थक है।

णमुल्–

(९) शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ।३५।

प०वि०–शुष्क-चूर्ण-रूक्षेषु ७ ।३ पिषः ५ ।१।

स०–शुष्कं च चूर्णं च रूक्षं च तानि–शुष्कचूर्णरूक्षाणि, तेषु–शुष्कचूर्णरूक्षेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–णमुल् कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–शुष्कचूर्णरूक्षेषु कर्मसु पिषो धातोर्णमुल्।

अर्थः–शुष्कचूर्णरूक्षेषु कर्मसु उपपदेषु **पिष्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो** भवति।

उदा०–**(शुष्कम्)** शुष्कपेषं पिनष्टि। शुष्कं पिनष्टीत्यर्थः। **(चूर्णम्)** चूर्णपिषं पिनष्टि। चूर्णं पिनष्टीत्यर्थः। **(रूक्षम्)** रूक्षपेषं पिनष्टि। रूक्षं पिनष्टीत्यर्थः।

आर्यभाषा–अर्थ–(शुष्कचूर्णरूक्षेषु) शुष्क, चूर्ण, रूक्ष शब्द (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (पिषः) पिष् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०–(शुष्क) शुष्कपेषं पिनष्टि। शुष्क द्रव्य को पीसता है। (चूर्ण) चूर्णपिषं पिनष्टि। चून पीसता है। (रूक्ष) रूक्षपेषं पिनष्टि। रूक्ष द्रव्य को पीसता है।

सिद्धि–(१) शुष्कपेषम्। यहां शुष्क कर्म उपपद होने पर 'पिष्लृ संचूर्णने' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'पिष्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः' (३।४।४६) से 'पिष्' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय किया गया है, अतः 'पिष्' धातु का ही अनुप्रयोग किया जाता है–पिनष्टि, अन्य धातु का नहीं।

(२) चूर्णपिंषम्/रूक्षपेषम्। पूर्ववत्।

णमुल्–

(१०) समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ।३६।

प०वि०–समूल-अकृत-जीवेषु ७ ।३ हन्-कृञ्-ग्रहः ५ ।१।

स०–समूलं च अकृतं च जीवश्च ते–समूलाकृतजीवाः, तेषु–समूलाकृतजीवेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। हन् च कृञ् च ग्रह् च एतेषां समाहारः–हन्कृञ्ग्रह्, तस्मात्–हन्कृञ्ग्रहः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल्, कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समूलाकृतजीवेषु कर्मसु हन्कृञ्ग्रहो धातोर्णमुल्।

अर्थः-समूलाकृतजीवेषु कर्मसु उपपदेषु यथासंख्यं हन्कृञ्ग्रहिभ्यो धातुभ्यो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(समूलम्) समूलघातं हन्ति। समूलं हन्तीत्यर्थः। (अकृतम्) अकृतकारं करोति। अकृतं करोतीत्यर्थः। (जीवः) जीवग्राहं गृह्णाति। जीवं गृह्णातीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(समूलाकृतजीवेषु) समूल, अकृत, जीव शब्द (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर यथासंख्य (हन्कृञ्ग्रहः) हन्, कृञ्, ग्रह (धातोः) धातुओं से (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(समूल) समूलघातं हन्ति। समूल नष्ट करता है। (अकृत) अकृतकारं करोति। अकृत कार्य को करता है। (जीव) जीवग्राहं गृह्णाति। जीव को पकड़ता है।

सिद्धि-(१) समूलघातम्। समूल+अम्+हन्+णमुल्। समूल+हन्+अम्। समूल+घन्+अम्। समूल+घत्+अम्। समूल+घात्+अम्। समूलघातम्+सु। समूलघातम्।

यहां समूल कर्म उपपद होने पर 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।३।५४) से 'हन्' धातु के 'ह्' को कुत्व 'घ्', 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (७।३।३२) से 'हन्' धातु के 'न्' को 'त्' होता है। प्रत्यय के णित् होने से 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'हन्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) अकृतकारम्। अकृत कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है।

(३) जीवग्राहम्। जीव कर्म उपपद होने पर 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। पूर्ववत् उपधावृद्धि होती है।

णमुल्-

(११) करणे हनः।३७।

प०वि०-करणे ७।१ हनः ५।१।

अनु०-णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-करणे हनो धातोर्णमुल्।

अर्थः-करणे कारके उपपदे हन्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पाणिघातं वेदिं हन्ति। पादघातं भूमिं हन्ति।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-पाणिघातं वेदिं हन्ति। हाथ से वेदि को कूटता है। पादघातं भूमिं हन्ति। पैर से भूमि को कूटता है।

सिद्धि-(१) पाणिघातम्। यहां पाणिकरण उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'समूलघातम्' (३।४।३६) के समान है।

(२) पादघातम्। यहां पादकरण उपपद होने पर पूर्वोक्त 'हन्' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय है। शेष पूर्ववत् है।

णमुल्-

(१२) स्नेहने पिषः।३८।

प०वि०-स्नेहने ७।१ पिषः ५।१।

अनु०-णमुल्, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्नेहने पिषो धातोर्णमुल्।

अर्थः-स्नेहनवाचिनि करणे कारके उपपदे पिष्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति। 'स्नेहने' इत्यत्रार्थग्रहणं क्रियते।

उदा०-उदपेषं पिनष्टि। उदकेन पिनष्टीत्यर्थः। तैलपेषं पिनष्टि। तैलेन पिनष्टीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्नेहने) स्नेहन=द्रववाची (करणे) करण कारक उपपद होने पर (पिषः) पिष् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-उदपेषं पिनष्टि। किसी द्रव्य को जल से पीसता है। तैलपेषं पिनष्टि। किसी द्रव्य को तैल से पीसता है।

सिद्धि-(१) उदपेषम्। यहां उदक करण उपपद होने पर 'पिष्लृ संचूर्णने' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से पूर्ववत् उपधावृद्धि होती है। 'पेषंवासवाहनधिषु च' (६।३।५८) से उदक के स्थान में उद-आदेश होता है।

(२) तैलपेषम्। पूर्ववत्।

णमुल्–

(१३) हस्ते वर्तिग्रहोः ।३६।

प०विक्ते ७ ।१ वर्तिग्रहोः ६ ।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-वर्त्तिच ग्रह् च तौ-वर्तिग्रहौ, तयोः-वर्तिग्रहोः (इतरेतरयोगद्व)।

अनु०-ण्मु् करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयःस्ते करणे वर्तिग्रहिभ्यां धातुभ्यां णमुल्।

अर्थः-स्तवाचिनि करणे कारके उपपदे वर्तिग्रहिभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो्ति।

उदा०-र्ति:) हस्तवर्तं वर्तयति। करवर्तं वर्तयति। पाणिवर्तं वर्तयति। हस्तेर्त्तयतीत्यर्थ। (ग्रह्) हस्तग्राहं गृह्णाति। करग्राहं गृह्णाति। पाणिग्राहं गृह्गा। हस्तेन गृह्णातीत्यर्थः।

आर्यभाषर्थ-(हस्ते) हस्तवाची (करणे) करण कारक उपपद होने पर (वर्तिग्रहोः) वर्ति और ग्रह (१) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-१) हस्तवर्तं वर्तयति। करवर्तं वर्तयति। पाणिवर्तं वर्तयति। हाथ से बर्ताव करता है(ग्रह) हस्तग्राहं गृह्णाति। करग्राहं गृह्णाति। पाणिग्राहं गृह्णाति। हाथ से पकड़ता।

सिद्धि-हस्तवर्तम्। हस्त+टा+वर्ति+णमुल्। हस्त+वर्त्+अम्। हस्तवर्तम्+सु। हस्तवर्तम्।

यहां हस्तण उपपद होने पर णिजन्त 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यै। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से णिच् का लुक् होता है। ऐसे ही-करवर्तम्, पार्तम्।

(२) हस्तम्। यहां हस्त करण उपपद होने पर 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सू 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से' धातु को उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही-करग्राहम्, पाणिग्राहम्।

णमुल्–

(१४) स्वे पुषः ।४०।

प०विवे ७ ।१ पुषः ५ ।१।

अनु०-ण्मु्, करणे इति चानुवर्तते। 'स्वे' इत्यत्रार्थग्रहणं क्रियते।

अन्वय:-स्वे करणे पुषो धातोर्णमुल्।

अर्थ:-स्ववाचिनि करणे उपपदे पुष्-धातो: परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-स्वपोषं पुष्यति। आत्मपोषं पुष्यति। गोपोषं पुष्यति। पितृपोषं पुष्यति। धनपोषं पुष्यति। रैपोषं पुष्यति।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वे) स्ववाची (करणे) करण कारक उपपद होने पर (पुष:) पुष् (धातो:) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**स्वपोषं पुष्यति। आत्मपोषं पुष्यति।** आत्मा से पुष्ट होता है। **गोपोषं पुष्यति।** गौ से पुष्ट होता है। **पितृपोषं पुष्यति।** पितृजनों से पुष्ट होता है। **धनपोषं पुष्यति। रैपोषं पुष्यति।** धन से पुष्ट होता है।*

*सिद्धि-(१) **स्वपोषम्।** स्व+टा+पुष्+णमुल्। स्व+पोष्+अम्। स्वपोषम्+सु। स्वपोषम्।*

यहां 'स्व' करण उपपद होने पर 'पुष पुष्टौ' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से णमुल् प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'पुष्' धातु को लघूपध गुण होता है। ऐसे ही-आत्मपोषम् आदि।

णमुल्-

(१५) अधिकरणे बन्ध:।४१।

प०वि०-अधिकरणे ७।१ बन्ध: ५।१।

अनु०-णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-अधिकरणे बन्धो धातोर्णमुल्।

अर्थ:-अधिकरणे कारके उपपदे बन्ध्-धातो: परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-चक्रबन्धं बध्नाति। कूटबन्धं बध्नाति। मुष्टिबन्धं बध्नाति। चोरकबन्धं बध्नाति।

आर्यभाषा-अर्थ-(अधिकरणे) अधिकरण कारक उपपद होने पर (बन्ध:) बन्ध (धातो:) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**चक्रबन्धं बध्नाति।** चक्र में बांधता है। **कूटबन्धं बध्नाति।** कपट-छल में बांधता है। **मुष्टिबन्धं बध्नाति।** मुट्ठी में बांधता है। **चोरकबन्धं बध्नाति।** चोर कर्म में बांधता है।*

सिद्धि-(१) चक्रबन्धम्। चक्र+ङि+बन्ध्+णमुल्। चक्र+बन्ध्+अम्। चक्रबन्धम्+सु। चक्रबन्धम्।

यहां 'चक्र' अधिकरण कारक उपपद होने पर 'बन्ध बन्धने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। ऐसे ही-कूटबन्धम् आदि।

णमुल् (संज्ञायाम्)-

(१६) संज्ञायाम्।४२।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-णमुल् बन्ध इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायां बन्धो धातोर्णमुल्।

अर्थः-संज्ञायां विषये बन्ध्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-क्रौञ्चबन्धं बध्नाति। मयूरिकाबन्धं बध्नाति। अट्टालिकाबन्धं बध्नाति।

आर्यभाषा-अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (बन्धः) बन्ध (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-क्रौञ्चबन्धं बध्नाति। मयूरिकाबन्धं बध्नाति। क्रौञ्चबन्ध आदि बन्धविशेषों के नाम हैं।

सिद्धि-(१) क्रौञ्चबन्धम्। पूर्ववत्।

णमुल्-

(१७) कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः।४३।

प०वि०-कर्त्रोः ७।२ जीव-पुरुषयोः ७।२ नशि-वहोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-जीवश्च पुरुषश्च तौ-जीवपुरुषौ, तयोः-जीवपुरुषयोः। नशिश्च वह् च तौ-नशिवहौ, तयोः-नशिवहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहिभ्यां धातुभ्यां णमुल्।

अर्थः-कर्तृवाचिनोर्जीवपुरुषयोरुपपदयोर्यथासंख्यं नशिवहिभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(जीवः) जीवनाशं नश्यति। **(पुरुषः)** पुरुषवाहं वहति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्त्रोः) कर्तावाची (जीव-पुरुषयोः) जीव और पुरुष शब्द उपपद होने पर यथासंख्य (नशिवहोः) नश् और वह् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(जीव) जीवनाशं नश्यति। जीव (प्राणी) नष्ट होता है। (पुरुष) पुरुषवाहं वहति। पुरुष सेवक बनकर भार वहन करता है।

सिद्धि-(१) जीवनाशम्। जीव+सु। नश्+णमुल्। जीव+नाश्+अम्। जीवनाशम्+सु। जीवनाशम्।

यहां 'जीव' कर्ता उपपद होने पर 'णश अदर्शने' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'नश्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) पुरुषवाहम्। यहां 'पुरुष' कर्ता उपपद होने पर 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। पूर्ववत् उपधावृद्धि होती है।

णमुल्–

(१८) ऊर्ध्वे शुषिपूरोः।४४।

प०वि०-ऊर्ध्वे ७।१ शुषि-पूरोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-शुषिश्च पूर् च तौ-शुषिपूरौ, तयोः-शुषिपूरोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल्, कर्त्रोः इति चानुवर्तते।

अर्थः-कर्तृवाचिनि ऊर्ध्व-शब्दे उपपदे शुषिपूरिभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(शुषिः) ऊर्ध्वशोषं शुष्यति। (पूर्) ऊर्ध्वपूरं पूर्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्त्रोः) कर्तावाची (ऊर्ध्वे) ऊर्ध्व शब्द उपपद होने पर (शुषिपूरोः) शुष् और पूर् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(शुषि) ऊर्ध्वशोषं शुष्यति। ऊपरवाला भाग सूखता है। (पूर्) ऊर्ध्वपूरं पूर्यते। ऊपरवाला भाग भरता है।

सिद्धि-(१) ऊर्ध्वशोषम्। ऊर्ध्व+सु+शुष्+णमुल्। ऊर्ध्व+शोष्+अम्। ऊर्ध्वशोषम्+सु। ऊर्ध्वशोषम्।

यहां 'ऊर्ध्व' कर्ता उपपद होने पर 'शुषि शोषणे' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'शुष्' धातु को लघूपध गुण होता है।

(२) ऊर्ध्वपूरम्। 'पूरी आप्यायने' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत्।

णमुल्–

(१६) उपमाने कर्मणि च।४५।

प०वि०–उपमाने ७।१ कर्मणि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–णमुल्, कर्त्रोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–उपमाने कर्मणि कर्तरि च धातोर्णमुल्।

अर्थः–उपमानवाचिनि कर्मणि कर्तरि चोपपदे धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(कर्मणि)** घृतनिधायं निहितः। घृतमिव निहित इत्यर्थः। सुवर्णनिधायं निहितः। सुवर्णमिव निहित इत्यर्थः। **(कर्तरि)** अजकनाशं नष्टः। अजक इव नष्ट इत्यर्थः। चूडकनाशं नष्टः। चूडक इव नष्ट इत्यर्थः।

आर्यभाषा–अर्थ–(उपमाने) उपमानवाची (कर्मणि) कर्म (च) और (कर्तरि) कर्ता उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०–(कर्म) घृतनिधायं निहितः। घृत के समान रखा हुआ। सुवर्णनिधायं निहितः। सोने के समान रखा हुआ। (कर्ता) अजकनाशं नष्टः। बकरे के समान नष्ट होगया। चूडकनाशं नष्टः। मुर्गे के समान नष्ट होगया।

सिद्धि–(१) घृतनिधायम्। घृत+अम्+नि+धा+णमुल्। घृत+निधा+युक्+अम्। घृतनिधायम्+सु। घृतनिधायम्।

यहां घृत कर्म उपपद होने 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'धा' धातु को 'युक्' आगम होता है। ऐसे ही–सुवर्णनिधायम्।

(२) अजकनाशम्। अजक+सु+नश्+णमुल्। अजक+नाश्+अम्। अजकनाशम्+सु। अजकनाशम्।

यहां अजक कर्ता उपपद होने पर 'णश अदर्शने' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'नश्' धातु को उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही–चूडकनाशम्।

अनुप्रयोगविधिः–

(२०) कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः।४६।

प०वि०–कषादिषु ७।३ यथाविधि १।१ अनुप्रयोगः १।१।

स०-कष आदिर्येषां ते कषादय:, तेषु-कषादिषु (बहुव्रीहि:)। विधिमनतिक्रम्य इति यथाविधि (अव्ययीभाव:)।

अर्थ:-कषादिषु=**'निमूलसमूलयो: कष:'** (३।३।३४) इत्यादिषु सूत्रेषु यथाविधि अनुप्रयोगो भवति, यस्माद् धातोर्णमुल् प्रत्ययो विहित: स एवानुप्रयोक्तव्य:।

उदा०-निमूलकाषं कषति। समूलकाषं कषति इत्यादिकमुदाहृतम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(कषादिषु) 'निमूलसमूलयो: कष:' (३।३।३४) इत्यादि सूत्रों में (यथाविधि) जिस धातु से णमुल् का विधान किया गया है उस धातु का ही (अनुप्रयोग:) अनुप्रयोग करना चाहिये, अन्य का नहीं।

*उदा०-**निमूलकाषं कषति। समूलकाषं कषति।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **निमूलकाषं कषति।** यहां निमूल उपपद 'कष्' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय का विधान किया गया है, अत: 'कषति' का ही अनुप्रयोग होता है, 'छिनत्ति' आदि का नहीं।*

णमुल्-

(२१) उपदंशस्तृतीयायाम्।४७।

प०वि०-उपदंश: ५।१ तृतीयायाम् ७।१।

अनु०-णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-तृतीयायाम् उपदंशो धातोर्णमुल्।

अर्थ:-तृतीयान्ते उपपदे उपपूर्वाद् दंश्-धातो: परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-मूलकोपदंशं भुङ्क्ते। मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते। आर्द्रकोपदंशं भुङ्क्ते। आर्द्रकेणोपदंशं भुङ्क्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीयायाम्) तृतीयान्त शब्द उपपद होने पर (उपदंश:) उप-उपसर्गपूर्वक दंश् धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**मूलकोपदंशं भुङ्क्ते। मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते।** मूली से काट-काटकर रोटी खाता है। **आर्द्रकोपदंशं भुङ्क्ते। आर्द्रकेणोपदंशं भुङ्क्ते।** अदरक से काट-काटकर रोटी खाता है।*

*सिद्धि-(१) **मूलकोपदंशम्।** मूलक+टा+उपदंश्+णमुल्। मूलक+उपदंश्+अम्। मूलकोपदंशम्+सु। मूलकोपदंशम्।*

*यहां तृतीयान्त मूलक शब्द उपपद होने पर 'दशि दर्शनदंशनयोः' (चु०आ०) धातु से इस सूत्र से णमुल् प्रत्यय है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से मूलक और उपदंश सुबन्तों का विकल्प से समास होता है-**मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते**। ऐसे ही-**आर्द्रकोपदंशं भुङ्क्ते**, इत्यादि।*

णमुल्-

(२२) हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम्।४८।

प०वि०-हिंसार्थानाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्, समानकर्मकाणाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-हिंसाऽर्थो येषां ते हिंसार्थाः, तेषाम्- हिंसार्थानाम्। समानं कर्म येषां ते-समानकर्मकाः, तेषाम्-समानकर्मकाणाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-णमुल्, तृतीयायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तृतीयायां समानकर्मकेभ्यो हिंसार्थेभ्यश्च धातुभ्यो णमुल्।

अर्थः-तृतीयान्ते शब्दे उपपदेऽनुप्रयोगधातुना सह समानकर्मकेभ्यो हिंसार्थेभ्यो धातुभ्यः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दण्डोपघातं गाः कालयति। दण्डेनोपघातं गाः कालयति। दण्डोपताडं गाः कालयति। दण्डेनोपताडं गाः कालयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीयायाम्) तृतीयान्त शब्द उपपद होने पर अनुप्रयोगवाले धातु के साथ (समानकर्मकाणाम्) तुल्य कर्मवाले (हिंसार्थेभ्यः) हिंसार्थक (धातोः) धातुओं से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-दण्डोपघातं गाः कालयति। दण्डेनोपघातं गाः कालयति। दण्डोपताडं गाः कालयति। दण्डेनोपताडं गाः कालयति। दण्ड से मारकर गौओं को निकालता है।

सिद्धि-(१) दण्डोपघातम्। दण्ड+टा+उपहन्+णमुल्। दण्ड+उपघन्+अम्। दण्ड+उपघत्+अम्। दण्ड+उपघात्+अम्। दण्डोपघातम्+सु। दण्डोपघातम्।

*यहां तृतीयान्त दण्ड शब्द उपपद होने पर 'उप' उपसर्गपूर्वक 'हन् हिंसागत्योः' (अ०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'समूलघातम्' (३।४।३६) के समान है। यहां 'दण्डोपघातम्' और 'कालयति' धातु का 'गाः' समान कर्म है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-**दण्डेनोपघातम्**।*

(२) कालयति। 'कल विक्षेपे' (चुरादि०)।

(३) दण्डोपताडम्। 'तड आघाते' (चुरादि०)।

णमुल्–

(२३) सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ।४६।

प०वि०–सप्तम्याम् ७ ।१ च अव्ययपदम्, उपपीड-रुध-कर्षः ५ ।१ ।

स०–पीडश्च रुधश्च कर्ष च एतेषां समाहारः–पीडरुधकर्ष्, उपपूर्वं च तत् पीडरुधकर्ष् इति उपपीडरुधकर्ष्, तस्मात्–उपपीडरुधकर्षः (समाहारद्वन्द्वगर्भितोत्तरपदलोपी तत्पुरुषः) ।

अनु०–णमुल्, तृतीयायामिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–सप्तम्यां तृतीयायां च उपपीडरुधकर्षो धातोर्णमुल् ।

अर्थः–सप्तम्यन्ते तृतीयान्ते च शब्दे उपपदे उप-उपसर्गपूर्वेभ्यः पीडरुधकर्षिभ्यो धातुभ्यः परो णमुल् प्रत्ययो भवति । **उदाहरणम्**–

धातुः	सप्तमी	तृतीया
(उप+पीडः)	(क) पार्श्वोपपीडं शेते	पार्श्वोपपीडं शेते
	(ख) पार्श्वयोरुपपीडं शेते	पार्श्वाभ्यामुपपीडं शेते
(उप+रुधः)	(क) व्रजोपरोधं गाः स्थापयति	व्रजोपरोधं गाः स्थापयति
	(ख) व्रजे उपरोधं गाः स्थापयति	व्रजेनोपरोधं गाः स्थापयति
(उप+कर्ष्)	(क) पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति	पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति
	(ख) पाणावुपकर्षं धानाः संगृह्णाति	पाणिनोपकर्षं धानाः संगृह्णाति

आर्यभाषा-अर्थ-(सप्तम्याम्) सप्तम्यन्त (च) और (तृतीयाम्) तृतीयान्त शब्द उपपद होने पर (उपपीडरुधकर्षः) उप-उपसर्गपूर्वक पीड, रुध, कर्ष (धातोः) धातुओं से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है ।

उदा०-संस्कृतभाषा में देख लेवें । अर्थ इस प्रकार है-(पीड) पार्श्वों से पीडित होकर सोता है । (रुध) व्रज में रोककर गौओं को रखता है । (कर्ष) हाथों से खैंचकर धानों को इकट्ठा करता है ।

सिद्धि-(१) पार्श्वोपपीडम् । पार्श्व+ओस्/भ्याम्+उपपीड्+णमुल् । पार्श्व+उपपीड्+अम् । पार्श्वोपपीडम्+सु । पार्श्वोपपीडम् ।

यहां सप्तम्यन्त/तृतीयान्त पार्श्व शब्द उपपद होने पर उप-उपसर्गपूर्वक 'पीड अवगाहने' (चु०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है । 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२ ।२ ।२१) से विकल्प से समास होता है-पार्श्वयोरुपपीडम् (सप्तमी) पार्श्वाभ्यामुपपीडम् (तृतीया) ।

(२) व्रजोपरोधम्। 'रुध आवरणे' (दि०आ०) पूर्ववत्।
(३) पाण्युपकर्षम्। 'कृष विलेखने' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

णमुल् (समासत्तौ)-

(२४) समासत्तौ।५०।

प०वि०-समासत्तौ ७।१।

अनु०-णमुल्, तृतीयायां, सप्तम्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तृतीयायां सप्तम्यां च धातोर्णमुल् समासत्तौ।

अर्थः-तृतीयान्ते सप्तम्यन्ते च शब्दे उपपदे धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, समासत्तौ गम्यमानायाम्। समासत्तिः=समीपता।

उदाहरणम्-

धातुः		तृतीया	सप्तमी
(ग्रहः)	(क)	केशग्राहं युध्यन्ते।	केशग्राहं युध्यन्ते।
	(ख)	केशैर्ग्राहं युध्यन्ते।	केशेषु ग्राहं युध्यन्ते।
	(क)	हस्तग्राहं युध्यन्ते।	हस्तग्राहं युध्यन्ते।
	(ख)	हस्तैर्ग्राहं युध्यन्ते।	हस्तेषु ग्राहं युध्यन्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीयायाम्) तृतीयान्त और (सप्तम्याम्) सप्तम्यन्त शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (समासत्तौ) यदि वहां समीपता अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-संस्कृतभाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-केश पकड़कर लड़ते हैं। हस्त पकड़कर लड़ते हैं।

सिद्धि-(१) केशग्राहम्। केश+भिस्/सुप्+ग्रह्+णमुल्। केश+ग्राह्+अम्। केशग्राहम्+सु। केशग्राहम्।

यहां तृतीयान्त/सप्तम्यन्त केश शब्द उपपद होने पर 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'ग्रह्' धातु को उपधावृद्धि होती है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-केशैर्ग्राहम् (तृतीया) केशेषु ग्राहम् (सप्तमी) ऐसे ही-हस्तग्राहम् इत्यादि।

णमुल् (प्रमाणे)–

(२५) प्रमाणे च।५१।

प०वि०–प्रमाणे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–णमुल् तृतीयायाम्, सप्तम्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तृतीयायां सप्तम्यां च धातोर्णमुल्, प्रमाणे च।

अर्थः–तृतीयान्ते सप्तम्यन्ते च शब्दे उपपदे धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, प्रमाणेऽपि गम्यमाने।

उदा०–**(तृतीया)** द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति। द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति। **(सप्तमी)** द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति। द्व्यङ्गुले उत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति।

आर्यभाषा-अर्थ–*(तृतीयायाम्) तृतीयान्त और (सप्तम्याम्) सप्तम्यन्त शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (प्रमाणे) यदि वहां प्रमाण अर्थ की (च) भी प्रतीति हो।*

उदा०–संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है–दो अङ्गुल छोड़कर लकड़ी को काटता है।

सिद्धि–(१) द्व्यङ्गुलोत्कर्षम्। द्व्यङ्गुल+टा/ङि+उत्+कृष्+णमुल्। द्व्यङ्गुल+उत्+कर्ष्+अम्। द्व्यङ्गुलोत्कर्षम्+सु। द्व्यङ्गुलोत्कर्षम्।

यहां प्रमाणवाची तृतीयान्त/सप्तम्यन्त द्व्यङ्गुल शब्द उपपद होने पर उत्-उपसर्गपूर्वक 'कृष विलेखने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है–द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षम्, द्व्यङ्गुले उत्कर्षम्।

णमुल् (परीप्सायाम्)–

(२६) अपादाने परीप्सायाम्।५२।

प०वि०–अपादाने ७।१ परीप्सायाम् ७।१।

अनु०–णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अपादाने, धातोर्णमुल्, परीप्सायाम्।

अर्थः–अपादाने कारके उपपदे धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, परीप्सायां गम्यमानायाम्। परीप्सा=त्वरा।

उदा०-शय्योत्थायं धावति। शय्याया उत्थायं धावति। एवं नाम त्वरते यदवश्यकर्तव्यमपि नापेक्षते, केवलं शय्योत्थानमात्रमाद्रियते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अपादाने) अपादान कारक उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (परीप्सायाम्) यदि वहां शीघ्रता अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-शय्योत्थायं धावति। शय्याया उत्थायं धावति। शय्या से उठकर भागता है। इतनी शीघ्रता करता है कि मुंह धोना आदि आवश्यक कर्तव्य की भी अपेक्षा नहीं करता है, शय्या से उठते ही भाग लेता है।

सिद्धि-(१) शय्योत्थायम्। शय्या+ङसि+उत्+स्था+णमुल्। शय्या+उत्+स्था+युक्+अम्। शय्या+उत्थाय्+अम्। शय्योत्थायम्+सु। शय्योत्थायम्।

यहां अपादान कारक में शय्या शब्द उपपद होने पर 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय होता है। 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' (८।४।६०) से 'स्था' धातु को पूर्व सवर्ण आदेश और 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-शय्याया उत्थायम्।

णमुल् (परीप्सायाम्)-

(२७) द्वितीयायां च।५३।

प०वि०-द्वितीयायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-णमुल् परीप्सायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्वितीयायां च धातोर्णमुल् परीप्सायाम्।

अर्थः-द्वितीयान्ते शब्दे चोपपदे धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, परीप्सायां गम्यमानायाम्।

उदा०-यष्टिग्राहं युध्यन्ते। यष्टिं ग्राहं युध्यन्ते। लोष्टग्राहं युध्यन्ते। लोष्टं ग्राहं युध्यन्ते। एवं नाम त्वरन्ते यदायुधग्रहणमपि नापेक्षन्ते, लोष्टादिकं यत् किञ्चदासन्नं भवति तद् गृह्णन्ति, ततो युध्यन्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्वितीयायाम्) द्वितीयान्त शब्द उपपद होने पर (च) भी (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (परीप्सायाम्) यदि वहां शीघ्रता अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-यष्टिग्राहं युध्यन्ते। यष्टिं ग्राहं युध्यन्ते। लाठी को लेकर लड़ते हैं। लोष्टग्राहं युध्यन्ते। लोष्टं ग्राहं युध्यन्ते। ढेले को लेकर लड़ते हैं। ऐसी शीघ्रता करते

हैं कि शस्त्र आदि की अपेक्षा नहीं करते, अपितु ढेला आदि जो कुछ समीप हो उसे लेकर युद्ध करते हैं।

सिद्धि-(१) यष्टिग्राहम्। यष्टि+अम्+ग्रह्+णमुल्। यष्टि+ग्राह्+अम्। यष्टिग्राहम्+सु। यष्टिग्राहम्।

यहां द्वितीयान्त 'यष्टि' शब्द उपपद होने पर 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' ((७।२।११६) से 'ग्रह्' धातु को उपधावृद्धि होती है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-यष्टिं ग्राहम्। ऐसे ही-लोष्टग्राहम्, इत्यादि।

णमुल्–

(२८) स्वाङ्गेऽध्रुवे।५४।

प०वि०-स्वाङ्गे ७।१ अध्रुवे ७।१।

स०-न ध्रुवमिति अध्रुवम्, तस्मिन्-अध्रुवे (नञ्तत्पुरुषः)। यस्मिन्नङ्गे छिन्नेऽपि प्राणी न म्रियते तदध्रुवमङ्गमुच्यते, पाणिपादादिकम्।

अनु०-णमुल्, द्वितीयायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अध्रुवे स्वाङ्गे धातोर्णमुल्।

अर्थः-अध्रुवे स्वाङ्गवाचिनि द्वितीयान्ते शब्दे उपपदे धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अक्षिनिकाणं जल्पति। अक्षि निकाणं जल्पति। भ्रूविक्षेपं कथयति। भ्रुवं विक्षेपं कथयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(अध्रुवे) जिसके कटने पर प्राणी नहीं करता है उस (स्वाङ्गे) स्वाङ्गवाची (द्वितीयायाम्) द्वितीयान्त शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-अक्षिनिकाणं जल्पति। अक्षि निकाणं जल्पति। आंख बन्द करके बकता है। भ्रूविक्षेपं कथयति। भ्रुवं विक्षेपं कथयति। भौंह को टेढ़ी करके कहता है।

सिद्धि-(१) अक्षिनिकाणम्। अक्षि+अम्+नि+कण्+णमुल्। अक्षि+नि+काण्+अम्। अक्षिनिकाणम्+सु। अक्षिनिकाणम्।

यहां स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त 'अक्षि' शब्द उपपद होने पर 'नि' उपसर्गपूर्वक 'कण निमीलने' (चुरादि०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'कण्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) भ्रूविक्षेपम्। भ्रू+अम्+वि+क्षिप्+णमुल्। भ्रू+वि+क्षेप्+अम्। भ्रूविक्षेप्+अम्। भ्रूविक्षेपम्+सु। भ्रूविक्षेपम्।

यहां स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त 'भ्रू' शब्द उपपद होने पर 'वि' उपसर्गपूर्वक 'क्षिप प्रेरणे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'क्षिप्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-भ्रुवं विक्षेपम्।

णमुल्-

(२६) परिक्लिश्यमाने च।५५।

प०वि०-परिक्लिश्यमाने ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-णमुल्, द्वितीयायां स्वाङ्गे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-परिक्लिश्यमाने स्वाङ्गे द्वितीयायां धातोर्णमुल्।

अर्थः-परिक्लिश्यमाने=सर्वतः क्लिश्यमाने स्वाङ्वाचिनि द्वितीयान्ते शब्दे उपपदेऽपि धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति। परिक्लेशः=सर्वतो विबाधनम्, दुःखनम्।

उदा०-उरःपेषं युध्यन्ते। उरः पेषं युध्यन्ते। शिरःपेषं युध्यन्ते। शिरः पेशं युध्यन्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(परिक्लिश्यमाने) सब ओर से क्लेश को प्राप्त होनेवाले (स्वाङ्गे) स्वाङ्गवाची (द्वितीयायाम्) द्वितीयान्त शब्द उपपद होने पर (च) भी (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-उरःपेषं युध्यन्ते। उरः पेषं युध्यन्ते। सब ओर से छाती को कष्ट देते हुये युद्ध करते हैं। शिरःपेषं युध्यन्ते। शिरः पेशं युध्यन्ते। सब ओर से शिर को कष्ट देते हुये युद्ध करते हैं।

सिद्धि-(१) उरःपेषम्। यहां परिक्लिश्यमान स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त 'उरस्' शब्द उपपद होने पर 'पिष्लृ पेषणे' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-उरःपेषम्।

(२) शिरःपेषम्। पूर्ववत्।

णमुल्-

(३०) विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः।५६।

प०वि०-विशि-पति-पदि-स्कन्दाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) व्याप्यमाना-सेव्यमानयोः ७।२।

स०-विशिश्च पतिश्च पदिश्च स्कन्द् च ते-विशिपतिपदिस्कन्दः, तेषाम्-विशिपतिपदिस्कन्दाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल्, द्वितीयायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्वितीयायां व्याप्यमानासेव्यमानयोर्विशि०स्कन्दिभ्यो धातुभ्यो णमुल्।

अर्थः-द्वितीयान्ते शब्दे उपपदे व्याप्यमान-आसेव्यमानयोरर्थयोर्वर्तमानेभ्यो विशिपतिपदिस्कन्दिभ्यो धातुभ्यः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

विशि-आदिभिः क्रियाभिः सह साकल्येन पदार्थानां सम्बन्धो व्याप्तिरित्युच्यते। तात्पर्यं चाऽऽसेवा भवति। द्रव्ये व्याप्तिर्भवति क्रियायां चाऽऽसेवा भवति। समासेन व्याप्ति-आसेवयोरुक्त्वात् **'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) इति द्विर्वचनं न भवति, **'उक्तार्थानामप्रयोगः'** इति वचनात्। असमासपक्षे तु व्याप्यमानतायां द्रव्यस्य द्विर्वचनं भवति। आसेव्यमानतायां च क्रियावचनस्य द्विर्वचनं भवति। तथा चोक्तम्-सुप्सु वीप्सा तिङ्क्षु च नित्यता भवति। **उदाहरणम्**-

धातुः		**व्याप्यमानता**	**आसेव्यमानता**
विशिः	(क)	गेहानुप्रवेशमास्ते।	गेहानुप्रवेशमास्ते।
	(ख)	गेहं गेहमनुप्रवेशमास्ते	गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशमास्ते।
पतिः	(क)	गेहानुप्रपातमास्ते।	गेहानुप्रपातमास्ते।
	(ख)	गेहं गेहमनुप्रपातमास्ते।	गेहमनुप्रपातमनुप्रपातमास्ते।
पदिः	(क)	गेहानुप्रपादमास्ते।	गेहानुप्रपादमास्ते।
	(ख)	गेहं गेहमनुप्रपादमास्ते।	गेहमनुप्रपादमनुप्रपादमास्ते।
स्कन्दिः	(क)	गेहावस्कन्दमास्ते।	गेहावस्कन्दमास्ते।
	(ख)	गेहं गेहमवस्कन्दमास्ते।	गेहमवस्कन्दमवस्कन्दमास्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्वितीयायाम्) *द्वितीयान्त शब्द उपपद होने पर (व्याप्यमानासेव्यमानयोः) व्याप्यमान और आसेव्यमान अर्थ में विद्यमान (विशि०स्कन्दाम्) विशि, पति, पदि, स्कन्द् (धातोः) धातुओं से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।*

विश-आदि क्रियाओं के साथ सम्पूर्णता से पदार्थों का सम्बन्ध होना व्याप्ति कहाती है। तत्परता एवं क्रिया का बार-बार होना आसेवा कहाती है। द्रव्य में व्याप्ति और क्रिया में आसेवा रहा करती है। समास के द्वारा व्याप्ति और आसेवा का कथन होने से 'नित्यवीप्सयोः' (८।१।४) से द्वित्व नहीं होता है, इसमें 'उक्तार्थानामप्रयोगः' यह महाभाष्य वचन प्रमाण है।

असमास पक्ष में व्याप्यमानता अर्थ में द्रव्यवाची शब्द को द्वित्व होता है और आसेव्यमानता अर्थ में क्रियावाची शब्द को द्वित्व होता है। जैसा कि कहा गया है-सुबन्तों में वीप्सा (व्यापकता) और तिङन्तों में नित्यता (आसेव्यता) रहती है।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-

	धातु	व्याप्यमानता	आसेव्यमानता
(१)	विशि	घर-घर में प्रवेश करता है।	घर में बार-बार प्रवेश करता है।
(२)	पति	घर-घर में जाता है।	घर में बार-बार जाता है।
(३)	पदि	घर-घर में जाता है।	घर में बार-बार जाता है।
(४)	स्कन्द	घर-घर में कूदता है।	घर में बार-बार कूदता है।

सिद्धि-(१) गेहानुप्रवेशम्। यहां द्वितीयान्त गेह शब्द उपपद होने पर अनु-प्र उपसर्गपूर्वक 'विश प्रवेशने' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से णमुल् प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'विश्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प से उपपद समास होता है।

समास पक्ष में व्याप्यमानता और आसेव्यमानता का समास के द्वारा ही कथन होने से द्वित्व नहीं होता है।

असमास पक्ष में व्याप्ति अर्थ में द्रव्यवाची गेह शब्द को और आसेवा (नित्यता) अर्थ में क्रियावाची शब्द को 'नित्यवीप्सयोः' (८।१।४) से द्वित्व होता है। जैसा कि उदाहरणों में दर्शाया गया है।

(२) गेहानुप्रपातम्। अनु-प्र उपसर्गपूर्वक 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(३) गेहानुप्रपादम्। अनु-प्र उपसर्गपूर्वक 'पद गतौ' (दि०आ०)।

(४) गेहावस्कन्दम्। अव-उपसर्गपूर्वक 'स्कन्दिर् गतिशोषणयोः' (भ्वा०प०)।

णमुल्-

(३१) अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु।५७।

प०वि०-अस्यति-तृषोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) क्रियान्तरे ७।१ कालेषु ७।३।

स०-अस्यतिश्च तृष् च तौ-अस्यतितृषौ, तयोः-अस्यतितृषोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। क्रियामन्तरयतीति क्रियान्तरः, तस्मिन्-क्रियान्तरे (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-णमुल्, द्वितीयायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-कालेषु द्वितीयायां क्रियान्तरेऽस्यतितृषिभ्यां णमुल्।

अर्थः-कालवाचिषु द्वितीयान्तेषु शब्देषु उपपदेषु क्रियान्तरेऽर्थे वर्तमानाभ्यामस्यतितृषिभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अस्यतिः)** द्व्यहात्यासं गाः पाययति। द्व्यहमत्यासं गाः पाययति। **(तृष्)** द्व्यहतर्षं गाः पाययति। द्व्यहं तर्षं गाः पाययति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कालेषु) कालवाची (द्वितीयायाम्) द्वितीयान्त शब्द उपपद होने पर (क्रियान्तरे) क्रिया के व्यवधान अर्थ में विद्यमान (अस्यतितृषोः) अस्यति, तृष् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(अस्यतिः) द्व्यहात्यासं गाः पाययति। द्व्यहमत्यासं गाः पाययति। दो दिन को लांघकर गौओं को जल पिलाता है। (तृष्) द्व्यहतर्षं गाः पाययति। द्व्यहं तर्षं गाः पाययति। दो दिन प्यासी रखकर गौओं को जल पिलाता है।

सिद्धि-(१) द्व्यहात्यासम्। द्व्यह+अम्+अति+अस्+णमुल्। द्व्यह+अति+आस्+अम्। द्व्यहात्यासम्+सु। द्व्यहात्यसम्।

यहां कालवाची द्वितीयान्त द्व्यह शब्द उपपद होने पर अति-उपसर्गपूर्वक 'असु क्षेपणे' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'णित्' होने से 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'अस्' धातु को उपधावृद्धि होती है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-द्व्यहम् अत्यासम्।

(२) द्व्यहतर्षम्। 'तृष् पिपासायाम्' (दि०प०) पूर्ववत्।

णमुल्-

(३२) नाम्न्यादिशिग्रहोः।५८।

प०वि०-नाम्नि ७।१ आदिशि-ग्रहोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-आदिशिश्च ग्रह् च तौ-आदिशिग्रहौ, तयोः-आदिशिग्रहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल्, द्वितीयायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्वितीयायाम् आदिशिग्रहिभ्यां धातुभ्यां णमुल्।

अर्थः-द्वितीयान्ते नाम-शब्दे उपपदे आदिशिग्रहिभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(आदिशि) नामादेशमाचष्टे। नाम आदेशमाचष्टे। (ग्रह्) नामग्राहमाचष्टे। नाम ग्राहमाचष्टे।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्वितीयायाम्) द्वितीयान्त (नाम्नि) नाम शब्द उपपद होने पर (आदिशिग्रहोः) आदिशि, ग्रह् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(आदिशि) नामादेशमाचष्टे। नाम आदेशमाचष्टे। नाम उच्चारण करके कहता है। (ग्रह्) नामग्राहमाचष्टे। नाम ग्राहमाचष्टे। नाम लेकर कहता है।

सिद्धि-(१) नामादेशम्। नाम+अम्+आङ्+दिश्+णमुल्। नाम+आ+देश्+अम्। नामदेशम्+सु। नामादेशम्।

यहां द्वितीयान्त नाम शब्द उपपद होने पर 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'दिश अतिसर्जने' (तु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'दिश्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प से उपपद समास होता है-नाम आदेशम्।

(२) नामग्राहम्। 'ग्रह उपदाने' (क्र्या०प०) पूर्ववत्।

क्त्वाणमुल्प्रत्ययप्रकरणम्

क्त्वा+णमुल् (अन्यथाभिप्रेताख्याने)-

(१) अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ।५६।

प०वि०-अव्यये ७।१ अयथाभिप्रेताख्याने ७।१ कृञः ५।१ क्त्वा-णमुलौ १।२।

स०-अभिप्रेतमनतिक्रम्य इति यथाभिप्रेतम्, न यथाभिप्रेतमिति अयथाभिप्रेतम्, अयथाभिप्रेतस्याख्यानमिति अयथाभिप्रेतख्यानम्, तस्मिन्-अयथाभिप्रेताख्याने (अव्ययीभावनञ्गर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। क्त्वाश्च णमुल् च तौ-क्त्वाणमुलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अव्यये कृञः क्त्वाणमुलावयथाभिप्रेताख्याने।

अर्थः-अव्यय-शब्दे उपपदे कृञ्-धातोः परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः, अभिताभिप्रेताख्याने गम्यमाने।

उदा०-(क्त्वा) ब्राह्मण ! पुत्रस्ते जातः, किं तर्हि वृषल ! नीचैः कृत्याचष्टे, नीचैः कृत्वाऽऽचष्टे (णमुल्) नीचैःकारमाचष्टे, नीचैः कारमाचष्टे। उच्चैर्नाम प्रियमाख्येयम्। (क्त्वा) ब्राह्मण ! कन्या ते गर्भिणी, किं तर्हि वृषल ! उच्चैःकृत्याचष्टे, उच्चैः कृत्वाचष्टे, (णमुल्) उच्चैःकारमाचष्टे। उच्चैः कारमाचष्टे। नीचैर्नामाप्रियमाख्येयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अव्यये) अव्यय शब्द उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (क्त्वाणमुलौ) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं (अयथाभिप्रेताख्याने) यदि वहां अयथाभिप्रेत बात का कथन हो।

उदा०-(क्त्वा) ब्राह्मण ! पुत्रस्ते जातः, किं तर्हि वृषल ! नीचैःकृत्याचष्टे। नीचैः कृत्वाऽऽचष्टे। (णमुल्) नीचैः कारमाचष्टे। नीचैः कारमाचष्टे। हे ब्राह्मण ! तेरे घर एक पुत्र उत्पन्न हुआ है, तो हे नीच ! तू इस बात को नीचे स्वर में क्यों कहता है। प्रिय बात तो ऊंचे स्वर में कहनी चाहिये। (क्त्वा) ब्राह्मण ! कन्या ते गर्भिणी, किं तर्हि वृषल ! उच्चैःकृत्याचष्टे, उच्चैः कृत्वाचष्टे, उच्चैःकारमाचष्टे, उच्चैः कारमाचष्टे। हे ब्राह्मण ! तेरी कन्या गर्भिणी है, हे नीच ! तू इस बात को ऊंचे स्वर में क्यों कहता है ? अप्रिय बात तो नीचे स्वर में कहनी चाहिये।

सिद्धि-(१) नीचैःकृत्य। नीचैः+कृ+त्वा। नीचैः+कृ+ल्यप्। नीचैः+कृ+तुक्+य। नीचैःकृत्य+सु। नीचैःकृत्य।

यहां अव्यय नीचैः शब्द उपपद होने पर अयथाभिप्रेत के कथन में 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प उपपद समास होता है। समास पक्ष में 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (७।१।३७) से क्त्वा प्रत्यय को 'ल्यप्' आदेश और 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।७१) से 'तुक्' आगम होता है। असमास पक्ष में-नीचैः कृत्वा।

(२) नीचैःकारम्। पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'णित्' होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है। समासपक्ष में एक पद और एक स्वर होता है। असमास पक्ष में पृथक् पद और पृथक् स्वर होता है-नीचैः कारम्। ऐसे ही-उच्चैःकृत्य इत्यादि।

क्त्वा+णमुल् (अपवर्गे)-

(२) तिर्यच्यपवर्गे।६०।

प०वि०-तिर्यचि ७।१ अपवर्गे ७।१।

अनु०-कृञः क्त्वाणमुलौ इति चानुवर्तते।

अर्थः-अपवर्गेऽर्थे तिर्यक्-शब्दे उपपदे कृञ्-धातोः परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः। अपवर्गः=समाप्तिः।

उदा०-(क्त्वा) तिर्यक्कृत्य गतः, तिर्यक् कृत्वा गतः। (णमुल्) तिर्यक्कारंगतः, तिर्यक्कारं गतः। समाप्य गत इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अपवर्गे) समाप्ति-अर्थक (तिर्यचि) तिर्यक् शब्द उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (क्त्वाणमुलौ) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(क्त्वा) तिर्यक्कृत्य गतः, तिर्यक् कृत्वा गतः। (णमुल्) तिर्यक्कारं गतः, तिर्यक्कारं गतः। समाप्त करके चला गया।

सिद्धि-'तिर्यक्कृत्य' आदि शब्दों की सिद्धि 'नीचैःकृत्य' आदि शब्दों के समान है।

क्त्वा+णमुल्-

(३) स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः।६१।

प०वि०-स्वाङ्गे ७।१ तस्-प्रत्यये ७।१ कृभ्वोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-स्वस्याङ्गमिति स्वाङ्गम्, तस्मिन्-स्वाङ्गे (षष्ठीतत्पुरुषः)। तस् चासौ प्रत्यय इति तस्-प्रत्ययः, तस्मिन्-तस्प्रत्यये (कर्मधारयः)। कृश्च भूश्च तौ कृभ्वौ, तयोः-कृभ्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्त्वाणमुलावित्यनुवतति।

अन्वयः-तस्प्रत्यये स्वाङ्गे कृभूभ्यां क्त्वाणमुलौ।

अर्थः-तस्प्रत्ययान्ते स्वाङ्गवाचिनि शब्दे उपपदे कृभूभ्यां धातुभ्यां परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः। यथासंख्यमत्र नेष्यते। **उदाहरणम्-**

	धातुः	क्त्वा	णमुल्
(१)	कृः	मुखतःकृत्य गतः।	मुखतःकारं गतः।
		मुखतः कृत्वा गतः।	मुखतः कारं गतः।
		पृष्ठतःकृत्य गतः।	पृष्ठतःकारं गतः।
		पृष्ठतः कृत्वा गतः।	पृष्ठतः कारं गतः।
(२)	भूः	मुखतोभूय गतः।	मुखतोभावं गतः।
		मुखतो भूत्वा गतः।	मुखतो भावं गतः।
		पृष्ठतोभूय गतः।	पृष्ठतोभावं गतः।
		पृष्ठतो भूत्वा गतः।	पृष्ठतो भावं गतः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तस्प्रत्यये) तस्-प्रत्ययान्त (स्वाङ्गे) स्वाङ्गवाची शब्द उपपद होने पर (कृभ्वोः) कृ, भू (धातोः) धातुओं से परे (क्त्वाणमुलौ) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं। यहां यथासंख्य प्रत्ययविधि अभीष्ट नहीं है।

उदा०-संस्कृतभाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(कृ) आगे से करके चला गया। पीछे से करके चला गया। (भू) आगे से होकर चला गया। पीछे से होकर चला गया।

सिद्धि-(१) मुखतःकृत्य। मुख+तस्। मुखतः। मुखतः+कृ+क्त्वा। मुखतः+कृ+ल्यप्। मुखतः+कृ+तुक्+य। मुखतः+कृत्य। मुखतःकृत्य+सु। मुखतःकृत्य।

यहां प्रथम स्वाङ्गवाची मुख शब्द से 'अपादाने चाहीयरुहोः' (५।४।४५) से तस् प्रत्यय है। तस्-प्रत्ययान्त स्वाङ्गवाची 'मुखतः' शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से इस सूत्र से क्त्वा प्रत्यय है। शेष कार्य 'नीचैःकृत्य' (३।३।५९) के समान है। असमास पक्ष में-मुखतः कृत्वा।

(२) मुखतःकारम्। पूर्वोक्त मुखतः शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है।

(३) मुखतोभूय। 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(४) मुखतोभावम्। 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) पूर्ववत् असमास पक्ष में- 'मुखतो भावम्' पृथक्-पृथक् पद और पृथक्-पृथक् स्वर होता है।

क्त्वा-णमुल् (च्वि-अर्थे)-

(४) नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे।६२।

प०वि०-नाधार्थ-प्रत्यये ७।१ च्वि-अर्थे ७।१।

स०-नाश्च धाश्च तौ नाधौ, तयोरर्थ इवार्थो येषां ते नाधार्थाः। नाधार्थाः प्रत्यया यस्मात् सः-नाधार्थप्रत्ययः, तस्मिन्-नाधार्थप्रत्यये (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। च्वेरर्थ इति च्व्यर्थः, तस्मिन्-च्व्यर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-क्त्वाणमुलौ, कृभ्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-च्वि-अर्थे नाधार्थप्रत्यये कृभूभ्यां धातुभ्यां क्त्वाणमुलौ।

अर्थः-च्वि-अर्थे=अभूततद्भावेऽर्थे नाधार्थप्रत्ययान्ते शब्दे उपपदे कृभूभ्यां धातुभ्यां परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(१) (नार्थे-कृ+क्त्वा) अनाना नाना कृत्वा गत इति नानाकृत्य गतः। नाना कृत्वा गतः। अविना विना कृत्वा गत इति

विनाकृत्य गतः। विना कृत्वा गतः। **(णमुल्)** अनाना नानाकारं गत इति नानाकारं गतः। नाना कारं गतः। अविना विना कारं गत इति विनाकारं गतः। विना कारं गतः।

(२) (नार्थे-भू+क्त्वा) अनाना नाना भूत्वा गत इति नानाभूय गतः। नाना भूत्वा गतः। अविना विना भूत्वा गत इति विनाभूय गतः। विना भूत्वा गतः। **(णमुल्)** अनाना नाना भावं गत इति नानाभावं गतः। नाना भावं गतः। अविना विना भावं गत इति विनाभावं गतः। विना भावं गतः।

(३) (धार्थे-कृ+क्त्वा) अद्विधा द्विधा कृत्वा गत इति द्विधाकृत्य गतः। द्विधा कृत्वा गतः। अद्वैधं द्वैधं कृत्वा गत इति द्वैधंकृत्य गतः। द्वैधं कृत्वा गतः। **(णमुल्)** अद्विधा द्विधाकारं गत इति द्विधाकारं गतः। द्विधा कारं गतः। अद्वैधं द्वैधं कारं गत इति द्वैधंकारं गतः। द्वैधं कारं गतः।

(४) (धार्थे-भू+क्त्वा) अद्विधा द्विधा भूत्वा गत इति द्विधाभूय गतः। द्विधा भूत्वा गतः। अद्वैधं द्वैधं भूत्वा गत इति द्वैधंभूय गतः। द्वैधं भूत्वा गतः। **(णमुल्)** अद्विधा द्विधा भावं गत इति द्विधाभावं गतः। द्विधा भावं गतः। अद्वैधं द्वैधं भावं गत इति द्वैधंभावं गतः। द्वैधं भावं गतः।

आर्यभाषा-अर्थ-(च्वि-अर्थे) अभूततद्भाव अर्थ में (नाधार्थप्रत्यये) नार्थ-प्रत्ययान्त और धार्थ-प्रत्ययान्त शब्द उपपद होने पर (कृभ्वोः) कृ, भू (धातोः) धातुओं से परे (क्त्वाणमुलौ) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-

(१) (नार्थ-कृ+क्त्वा/णमुल्) जो नाना=अनेक नहीं था, उसे अनेक बनाकर चला गया। जो बिना (रहित) नहीं था उसे बिना बनाकर चला गया।

(२) (नार्थ-भू+क्त्वा/णमुल्) जो नाना=अनेक नहीं था, वह अनेक होकर चला गया। जो बिना (रहित) नहीं था, वह बिना होकर चला गया।

(३) (धार्थ-कृ+क्त्वा/णमुल्) जो दो प्रकार का नहीं था, उसे दो प्रकार का बनाकर चला गया।

(४) (धार्थ-भू+क्त्वा+णमुल्) जो दो प्रकार का नहीं था, वह दो प्रकार का होकर चला गया।

सिद्धि-(१) नानाकृत्य। यहां नाना शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से क्त्वा प्रत्यय है। शेष कार्य 'नीचैःकृत्य' (३।३।५९) के समान है। असमास पक्ष में नाना कृत्वा।

(२) नानाकारम्। यहां नाना शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'नीचैःकारम्' (३।३।५९) के समान है। असमास पक्ष में– 'नाना कारम्' पृथक्-पृथक् पद और पृथक्-पृथक् स्वर होता है। ऐसे ही अन्य प्रयोगों की भी सिद्धि समझ लेवें।

(३) नाना। यहां 'विनञ्भ्यां नानाञौ न सह' (५।२।२७) से नञ् शब्द से नाञ् प्रत्यय है।

(४) विना। यहां पूर्वोक्त सूत्र से 'वि' शब्द से 'ना' प्रत्यय है।

(५) द्विधा। यहां 'द्वि' शब्द से 'संख्याया विधार्थे धा' (५।३।४२) से 'धा' प्रत्यय है।

(६) द्वैधम्। यहां 'द्वि' शब्द से 'द्वित्र्योश्च धमुञ्' (५।३।४५) से 'धमुञ्' प्रत्यय है।

च्वि-अर्थ- 'अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' (५।४।५०) से च्वि-प्रत्यय अभूततद्भाव अर्थ में होता है।

क्त्वा+णमुल्–

(५) तूष्णीमि भुवः।६३।

प०वि०-तूष्णीमि ७।१ भुवः ५।१।

अनु०-क्त्वाणमुलावित्यनुवर्तते।

अन्वयः-तूष्णीमि भुवो धातोर्णमुल्।

अर्थः-तूष्णीम्-शब्दे उपपदे भू-धातोः परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(क्त्वा) तूष्णींभूय गतः। तूष्णीं भूत्वा गतः। **(णमुल्)** तूष्णींभावं गतः। तूष्णीं भावं गतः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तूष्णीमि) तूष्णीम् शब्द उपपद होने पर (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (क्त्वाणमुलौ) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(क्त्वा) तूष्णींभूय गतः। तूष्णीं भूत्वा गतः। (णमुल्) तूष्णींभावं गतः। तूष्णीं भावं गतः। चुप होकर चला गया।

सिद्धि-(१) तूष्णींभूय। यहां 'तूष्णीम्' शब्द उपपद होने पर 'भू' धातु से क्त्वा प्रत्यय है। शेष कार्य 'नीचैःकृत्य' (३।३।५९) के समान है। असमास पक्ष में-तूष्णीं भूत्वा।

(२) तूष्णींभावम्। यहां तूष्णीम् शब्द उपपद होने पर 'भू' धातु से णमुल् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'भू' धातु को वृद्धि होती है। असमास पक्ष में पृथक् पद और पृथक् स्वर होता है-तूष्णीं भावम्।

क्त्वा-णमुल्–

(६) अन्वच्यानुलोम्ये।६४।

प०वि०-अन्वचि ७।१ आनुलोम्ये ७।१।

अनुलोमं भाव आनुलोम्यम्, तस्मिन्-आनुलोम्ये **'गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२३) इति भावेऽर्थे ष्यञ् प्रत्ययः। आनुलोम्यम्=अनुकूलता।

अनु०-क्त्वाणमुलौ, भुव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आनुलोम्येऽन्वचि भुवो धातोः क्त्वाणमुलौ।

अर्थः-आनुलोम्येऽर्थेऽन्वक्शब्दे उपपदे भू-धातोः परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(क्त्वा) अन्वग्भूयास्ते। अन्वग् भूत्वास्ते। (णमुल्) अन्वग्भावमास्ते। अन्वग् भावमास्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(आनुलोम्ये) अनुकूलता अर्थ में (अन्वचि) अन्वक् शब्द उपपद होने पर (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (क्त्वाणमुलौ) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(क्त्वा) अन्वग्भूयास्ते। अन्वग् भूत्वास्ते। (णमुल्) अन्वग्भावमास्ते। अन्वग् भावमास्ते। अनुकूल होकर रहता है।

सिद्धि-'अन्वग्भूय' आदि पदों की सिद्धियां पूर्ववत् हैं।

तुमुन्प्रत्ययविधिः

तुमुन्–

(१) शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्।६५।

प०वि०- शक-धृष-ज्ञा-ग्ला-घट-रभ-लभ-क्रम-सह-अर्ह-अस्त्यर्थेषु ७।२ तुमुन् १।१।

स०-अस्तिरर्थो येषां तेऽस्त्यर्थाः। शकश्च धृषश्च ज्ञाश्च ग्लाश्च घटश्च रभश्च लभश्च क्रमश्च सहश्च अर्हश्च अस्त्यर्थाश्च ते-शक०अस्त्यर्थाः, तेषु-शक०अस्त्यर्थेषु (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-शकादिषु धातुषु उपपदेषु धातुमात्रात् तुमुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**शकः**) शक्नोति भोक्तुम्। (**धृषः**) धृष्णोति भोक्तुम्। (**ज्ञाः**) जानाति भोक्तुम्। (**ग्लाः**) ग्लायति भोक्तुम्। (**घटः**) घटते भोक्तुम्। (**रभः**) आरभते भोक्तुम्। (**लभः**) लभते भोक्तुम्। (**क्रमः**) प्रक्रमते भोक्तुम्। (**सहः**) सहते भोक्तुम्। (**अर्हः**) अर्हति भोक्तुम्। (**अस्त्यर्थाः**) अस्ति भोक्तुम्। भवति भोक्तुम्। विद्यते भोक्तुम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(शक०अस्त्यर्थेषु) शक, धृष, ज्ञा, ग्ला, घट, रभ, लभ, क्रम, सह, अर्ह और अस्त्यर्थक धातु उपपद होने पर (धातोः) धातुमात्र से (तुमुन्) तुमुन् प्रत्यय होता है।

उदा०-(शक) शक्नोति भोक्तुम्। वह खा सकता है। (धृष) धृष्णोति भोक्तुम्। वह खाने में कुशल है। (ज्ञा) जानाति भोक्तुम्। वह खाना जानता है। (ग्ला) ग्लायति भोक्तुम्। वह खाने से ग्लानि करता है। (घट) घटते भोक्तुम्। वह खाने की चेष्टा करता है। (रभ) आरभते भोक्तुम्। वह खाना आरम्भ करता है। (लभ) लभते भोक्तुम्। वह खाना प्राप्त करता है। (क्रम) प्रक्रमते भोक्तुम्। वह खाना प्रारम्भ करता है। (सह) सहते भोक्तुम्। वह खाने को सहन करता है। (अर्ह) अर्हति भोक्तुम्। वह खाना खाने के योग्य है। (अस्त्यर्थक) अस्ति भोक्तुम्। भवति भोक्तुम्। विद्यते भोक्तुम्। खाना है।

सिद्धि-(१) भोक्तुम्। भुज्+तुमुन्। भोग्+तुम्। भोक्+तुम्। भोक्तम्+सु। भोक्तुम्। यहां शक आदि धातु उपपद होने पर 'भुज्' धातु से इस सूत्र से 'तुमुन्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'भुज्' धातु के 'ज्' को 'ग्' और 'खरि च' (८।४।५४) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है।

(२) शक आदि धातुओं के मूल अर्थ पाणिनीय धातुपाठ में देख लेवें।

तुमुन्-

(२) पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु।६६।

प०वि०-पर्याप्तिवचनेषु ७।३ अलमर्थेषु ७।३।

स०-पर्याप्तिरुच्यते यैस्ते-पर्याप्तिवचनाः, तेषु-पर्याप्तिवचनेषु (उपपदसमासः)। पर्याप्तिः=अन्यूनता, परिपूर्णतेत्यर्थः। अलम् अर्थो येषां तेऽलमर्थाः, तेषु-अलमर्थेषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तुमुन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अलमर्थेषु पर्याप्तिवचनेषु धातोस्तुमुन्।

अर्थः-अलमर्थेषु पर्याप्तिवचनेषु शब्देषु उपपदेषु धातोः परस्तुमुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पर्याप्तो भोक्तुं देवदत्तः। अलं भोक्तुं यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अलमर्थेषु) अलम् अर्थवाले (पर्याप्तिवचनेषु) परिपूर्णतावाची शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (तुमुन्) तुमुन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-***पर्याप्तो भोक्तुं देवदत्तः।*** *देवदत्त खाने में समर्थ है।* ***अलं भोक्तुं यज्ञदत्तः।*** *यज्ञदत्त खाने में समर्थ है।*

'अलम्' शब्द का अर्थ परिपूर्णता है। परिपूर्णता दो प्रकार से हो सकती है, भोजन की अन्यूनता तथा भोक्ता के सामर्थ्य से। यहां भोक्ता के सामर्थ्य का ग्रहण किया जाता है।

सिद्धि-*(१)* ***भोक्तुम्।*** *यहां 'भुज्' धातु से इस सूत्र से 'तुमुन्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'भुज्' के 'ज्' को 'ग्' और 'खरि च' (८।४।५४) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है।*

प्रत्ययार्थप्रकरणम्

कृत् (कर्तरि)-

(१) कर्तरि कृत्।६७।

प०वि०-कर्तरि ७।१ कृत् १।१।

अर्थः-अत्र धातोर्विहिताः कृत्-संज्ञकाः प्रत्ययाः कर्तरि कारके भवन्ति। यत्रार्थनिर्देशो नास्ति तत्रायं विधिरुपतिष्ठते, अर्थाकाङ्क्षत्वात्।

उदा०-कारकः। कर्ता। नन्दनः। ग्राही। पचः, इत्यादिकम्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(धातोः) यहां धातु से विधान किये गये (कृत्) कृत्-संज्ञक प्रत्यय (कर्तरि) कर्ता कारक में होते हैं। जहां किसी अर्थविशेष का निर्देश नहीं किया गया है, वहां यह विधान उपस्थित होता है, क्योंकि वहां अर्थ की आकाङ्क्षा होती है।*

उदा०-कारकः। करनेवाला। कर्ता। करनेवाला। नन्दनः। आनन्दित करनेवाला। ग्राही। ग्रहण करनेवाला। पचः। पकानेवाला।

सिद्धि-'कारक' आदि शब्दों की सिद्धि 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) तथा 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो०' (३।१।१३४) में की जा चुकी है, वहां देख लेवें।

विशेष-'कृदतिङ्' (३।१।९३) से धातु से विहित तिङ्-भिन्न प्रत्ययों की कृत्-संज्ञा है।

भव्यादयः (वा कर्तरि)-

(२) भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा।६८।

प०वि०- भव्य-गेय-प्रवचनीय-उपस्थानीय-जन्य-आप्लाव्य-आपात्याः १।३ वा अव्ययपदम्।

अनु०-कर्तरि इत्यनुवर्तते।

अर्थः-कृत्यप्रत्ययान्ता भव्यादयः शब्दाः कर्तरि कारके विकल्पेन निपात्यन्ते। **'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः'** (३।४।७०) इति भावे कर्मणि च प्राप्ते विकल्पेन कर्तरि विधीयन्ते। **उदाहरणम्-**

	शब्दः	कर्तरि	भावे/कर्मणि
(१)	भव्यः	भवत्यसौ भव्यः	भव्यमनेन (भा०)
(२)	गेयः	गेयो माणवकः साम्नाम्	गेयानि माणवकेन सामानि
(३)	प्रवचनीयः	प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य।	प्रवचनीयो गुरुणा स्वाध्यायः (क०)।
(४)	उपस्थानीयः	उपस्थानीयोऽन्तेवासी गुरोः।	उपस्थानीयोऽन्तेवासिना गुरुः (क०)।
(५)	जन्यः	जायतेऽसौ जन्यः	जन्यमनेन (भा०)।
(६)	आप्लाव्यः	आप्लावतेऽसावाप्लाव्यः।	आप्लाव्यमनेन (भा०)।
(७)	आपात्यः	आपतत्यसावापात्यः।	आपात्यमनेन (भा०)।

आर्यभाषा-अर्थ-(भव्य०आपात्याः) कृत्य-प्रत्ययान्त भव्य, गेय, प्रवचनीय, उपस्थानीय, जन्य, आप्लाव्य, आपात्य शब्द (कर्तरि) कर्ता कारक अर्थ में (वा) विकल्प से निपातित हैं।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(भव्य) वर्तमान। इसके द्वारा होना चाहिये। (गेय) यह बालक साम-मन्त्रों का गान करनेवाला है। इस बालक के द्वारा साम-मन्त्रों का गान करना चाहिये। (प्रवचनीय) गुरु स्वाध्याय का प्रवचन करनेवाला

है। गुरु के द्वारा स्वाध्याय का प्रवचन करना चाहिये। (उपस्थानीय) यह अन्तेवासी गुरु का उपस्थान करनेवाला है। शिष्य के द्वारा गुरु का उपस्थान करना चाहिये। (जन्य) उत्पन्न होनेवाला। उसके द्वारा उत्पन्न होना चाहिये। (आप्लाव्य) स्नान करनेवाला। इसके द्वारा स्नान करना चाहिये। (आपात्य) आक्रमण करनेवाला। इसके द्वारा आक्रमण करना चाहिए।

सिद्धि-(१) भव्यः। भू+यत्। भो+य। भव्य+सु। भव्यः।

यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय कर्ता अर्थ में निपातित है। 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' (३।४।७०) से केवल भाव अर्थ में 'यत्' प्रत्यय था। वा-वचन से भाव अर्थ में भी होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८६) से 'भू' धातु को गुण और 'धातोस्तन्निमित्तस्यैव' (६।४।७७) से 'अव्' आदेश होता है।

(२) गेयः। यहां 'गै शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है। 'ईद्यति' (६।४।६५) से 'गा' धातु को ईत्त्व और पूर्ववत् गुण होता है। इस धातु से 'यत्' प्रत्यय कर्ता और कर्म अर्थ में होता है।

(३) प्रवचनीयः। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से 'अनीयर्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अनीयर्' प्रत्यय कर्ता और कर्म अर्थ में होता है।

(४) उपस्थानीयः। यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'अनीयर्' प्रत्यय है। इस सूत्र से वह कर्ता और कर्म अर्थ में होता है।

(५) जन्यः। यहां 'जनी प्रादुर्भावे' (दिवा०आ०) धातु से 'वा०-तकिशसियति-चतिजनीनामुपसंख्यानम्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से वह कर्ता और भाव अर्थ में होता है।

(६) आप्लाव्यः। यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'प्लुङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'ओरावश्यके' (३।१।१२५) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'प्लु' धातु को वृद्धि और 'धातोस्तन्निमित्तस्यैव' (६।१।७७) से 'आव्' आदेश होता है।

(७) आपात्यः। यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'पत्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

लकाराः (कर्तरि कर्मणि भावे च)-

(३) लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः।६६।

प०वि०-लः १।३ कर्मणि ७।१ च अव्ययपदम्, भावे ७।१ च अव्ययपदम्, अकर्मकेभ्यः ५।३।

स०-न विद्यते कर्म येषां तेऽकर्मकाः, तेभ्यः-अकर्मकेभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अर्थः-लकाराः सकर्मकेभ्यो धातुभ्यः कर्मवाच्ये कर्तृवाच्ये च भवन्ति, अकर्मकेभ्यश्च धातुभ्यो लकारा भाववाच्ये कर्तृवाच्ये च भवन्ति।

उदा०-(१) **सकर्मकेभ्यः कर्मणि**-देवदत्तेन ग्रामो गम्यते। **कर्तरि**-देवदत्तो ग्रामं गच्छति। (२) **अकर्मकेभ्यो भावे**-देवदत्तेनाऽऽस्यते। **कर्तरि**-देवदत्त आस्ते। सकर्मकेभ्यो भावे, अकर्मकेभ्यश्च धातुभ्यः कर्मणि लकारा न भवन्ति।

सकर्मक-अकर्मकपरीक्षाविधिः

क्रियापदं कर्तृपदेन युक्तं,
व्यपेक्षते यत्र किमित्यपेक्षाम्।
सकर्मकं तं सुधियो वदन्ति
शेषस्ततो धातुरकर्मकः स्यात्॥

अर्थः-यत्र कर्तृवाचकपदेन सह प्रयुक्तं क्रियापदं 'किम्' इत्यपेक्षते तत्र स धातुः सकर्मकः। यथा रामो भक्षयति, गच्छति, अधीते, इत्यादिषु सर्वत्र 'किम्' इत्यपेक्षा जायतेऽतः सकर्मका एते धातवः। यत्र तु क्रियापदं 'किम्' इत्यस्यापेक्षां न कुरुते तेऽकर्मका धातवः, यथा-भवति, आस्ते, एधते, लज्जते, शेते, इत्यादयः। तथा च परिगण्यते-

लज्जा-सत्ता-स्थिति-जागरणं
वृद्धि-क्षय-भय-जीवन-मरणम्।
शयन-क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्थं
धातुगणं तमकर्मकमाहुः॥

आर्यभाषा-अर्थ-(लः) लट् आदि दश लकार सकर्मक (धातोः) धातुओं से (कर्मणि) कर्मवाच्य में (च) और कर्तृवाच्य अर्थ में होते हैं और (अकर्मकेभ्यः) अकर्मक (धातोः) धातुओं से परे (भावे) भाववाच्य अर्थ में (च) और कर्तृवाच्य अर्थ में होते हैं। सकर्मक धातुओं से भाववाच्य में और सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य अर्थ में लकार नहीं होते हैं।

उदा०-(१) सकर्मक से कर्म में-देवदत्तेन ग्रामो गम्यते। देवदत्त के द्वारा गांव जाया जाता है। कर्ता में-देवदत्तो ग्रामं गच्छति। देवदत्त गांव जाता है। (२) अकर्मक

से भाव में-देवदत्तेनाऽऽस्यते। देवदत्त के द्वारा बैठा जाता है। कर्ता में-देवदत्त आस्ते। देवदत्त बैठता है।

सिद्धि-(१) देवदत्तेन ग्रामो गम्यते। यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) इस सकर्मक धातु से इस सूत्र से कर्मवाच्य में लट् लकार है। 'भावकर्मणोः' (१।३।१३) से कर्मवाच्य में आत्मनेपद और 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण प्रत्यय होता है।

कर्मवाच्य में कर्म अभिहित (कथित) और कर्ता अनभिहित (अकथित) होता है। अतः अनभिहित कर्ता देवदत्त' में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' (२।३।१८) से तृतीया विभक्ति होती है और कथित कर्म में 'प्रातिपदिकार्थ०' (२।३।४६) से 'ग्राम' में प्रथमा विभक्ति होती है।

(२) देवदत्तो ग्रामं गच्छति। यहां पूर्वोक्त 'गम्' धातु से कर्तृवाच्य में 'लट्' लकार है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। 'इषुगमियमां छः' (७।३।७७) से 'गम्' के 'म्' को 'छ्' आदेश होता है।

कथित कर्ता देवदत्त में पूर्ववत् प्रथमा और अकथित कर्म 'ग्राम' में 'कर्मणि द्वितीया' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है।

(३) देवदत्तेनाऽऽस्यते। 'आस् उपवेशने' (अदा०आ०) अकर्मक धातु से इस सूत्र से भाववाच्य अर्थ में लट् लकार है। शेष कार्य 'गम्यते' के समान है।

(४) देवदत्त आस्ते। यहां पूर्वोक्त 'आस्' धातु से इस सूत्र से कर्तृवाच्य में लट् लकार है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से शप् विकरण प्रत्यय और 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।६२) से 'शप्' प्रत्यय का लुक् होता है।

विशेष-लकार-लट्। लिट्। लुट्। लृट्। लेट्। लोट्। लङ्। लिङ्। लुङ्। लङ् ये दश लकार हैं। इनमें लेट् लकार वैदिकभाषा में ही प्रयुक्त होता है।

कृत्य+क्त+खलर्थाः (भावे कर्मणि च)-

(४) तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः।७०।

प०वि०-तयोः ७।२ एव अव्ययपदम्, कृत्य-क्त-खलर्थाः १।३।

स०-खल् इव अर्थो येषां ते खलर्थाः। कृत्याश्च क्तश्च खलर्थाश्च ते-कृत्यक्तखलर्थाः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्य इति चानुवतति।

अर्थः-धातोर्विहिताः कृत्यसंज्ञकाः क्तः खलर्थाश्च प्रत्यया तयोर्भावकर्मणोरर्थयोरेव भवन्ति। सकर्मकेभ्यो धातुभ्यस्ते कर्मणि, अकर्मकेभ्यो धातुभ्यश्च ते भावेऽर्थे भवन्ति।

उदा०-(१) **कृत्यसंज्ञका: कर्मणि**-कर्तव्य: कटो भवता। भोक्तव्य ओदनो भवता। **भावे**-आसितव्यं भवता। शयितव्यं भवता। (२) **क्त: कर्मणि**-कृत: कटो भवता। भुक्त ओदनो भवता। **भावे**-आसितं भवता। शयितं भवता। (३) **खलर्था: कर्मणि**-ईषत्कर: कटो भवता। सुकर: कटो भवता। दुष्कर: कटो भवता। **भावे**-ईषदाढ्यंभवं भवता। स्वाढ्यंभवं भवता।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातो:) धातु से विहित (कृत्यक्तखलर्था:) कृत्यसंज्ञक, क्त और खलर्थक प्रत्यय (तयो:) उन भाववाच्य और कर्मवाच्य अर्थ में (एव) ही होते हैं। वे सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य अर्थ में और अकर्मक धातुओं से भाववाच्य अर्थ में होते हैं।

*उदा०-(१) कृत्यसंज्ञक कर्म में-**कर्तव्य: कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनानी चाहिये। **भोक्तव्य ओदनो भवता।** आपके द्वारा चावल खाना चाहिये। भाव में-**आसितव्यं भवता।** आपके द्वारा बैठना चाहिये। **शयितव्यं भवता।** आपके द्वारा सोना चाहिये। (२) क्त प्रत्यय कर्म में-**कृत: कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनाई गई। **भुक्त ओदनो भवता।** आपके द्वारा चावल खाया गया। भाव में-**आसितं भवता।** आपके द्वारा बैठा गया। **शयितं भवता।** आपके द्वारा सोया गया। (३) खलर्थक कर्म में-**ईषत्कर: कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनाना सुगम है। **सुकर: कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनाना सरल है। **दुष्कर: कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनाना कठिन है। भाव में-**ईषदाढ्यंभवं भवता।** आपके द्वारा आढ्य (धनवान्) होना सुगम है। **स्वाढ्यंभवं भवता।** आपके द्वारा आढ्य होना सरल है।*

*सिद्धि-(१) **कर्तव्य: कटो भवता।** यहां सकर्मक **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से 'तव्यत्तव्यानीयर:' (३।१।९६) से विहित कृत्यसंज्ञक 'तव्य' प्रत्यय इस सूत्र से कर्मवाच्य अर्थ में है।*

तव्य प्रत्यय के कर्मवाच्य में होने से कर्म अभिहित (कथित) और कर्ता अनभिहित (अकथित) है। अत: कथित कर्म में 'प्रातिपदिकार्थ०' (२।३।४६) से प्रथमा विभक्ति और अकथित कर्ता में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' (२।३।१८) से तृतीया विभक्ति होती है।

*(२) **भोक्तव्य ओदनो भवता।** **'भुज पालनाभ्यवहारयो:'** (रुधा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **आसितव्यं भवता।** यहां अकर्मक **'आस् उपवेशने'** (अदा०आ०) धातु से पूर्वोक्त सूत्र से विहित 'तव्य' प्रत्यय इस सूत्र से भाव अर्थ में है।*

*(४) **शयितव्यं भवता।** **'शीङ् स्वप्ने'** (अदा०आ०) पूर्ववत्।*

(५) कृतः कटो भवता। यहां पूर्वोक्त सकर्मक 'कृ' धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से विहित 'क्त' प्रत्यय इस सूत्र से कर्मवाच्य अर्थ में होता है।

(६) भुक्त ओदनो भवता। 'भुज्' धातु से पूर्ववत्।

(७) ईषत्करः कटो भवता। यहां 'ईषद्' उपपद, पूर्वोक्त सकर्मक 'कृ' धातु से 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्' (३।३।१२६) से विहित 'खल्' प्रत्यय इस सूत्र से कर्मवाच्य अर्थ में है।

(८) दुष्करः कटो भवता। पूर्ववत्।

(९) ईषदाढ्यं भवं भवता। यहां 'ईषद्' उपपद, अकर्मक 'भू' धातु से 'ईषद्दुःसुषु०' (३।३।१२६) से विहित 'खल्' प्रत्यय इस सूत्र से भाववाच्य अर्थ में है।

(१०) स्वाढ्यं भवं भवता। पूर्ववत्।

आदिकर्मणि क्तः (कर्तरि कर्मणि भावे च)–

(५) आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च।७१।

प०वि०–आदिकर्मणि ७।१ क्तः १।१ कर्तरि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०–आदि च तत् कर्मेति आदिकर्म, तस्मिन्–आदिकर्मणि (कर्मधारयः)।

अनु०–कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–आदिकर्मणि क्तः कर्तरि कर्मणि भावे च।

अर्थः–आदिकर्मणि यः क्तः प्रत्ययो विहितः स कर्तरि कर्मणि भावे चार्थे भवति। आदिभूतः क्रियाक्षण आदिकर्मेत्युच्यते।

उदा०–**(कर्तरि)** प्रकृतः कटं देवदत्तः। **(कर्मणि)** प्रकृतो कटो देवदत्तेन। **(भावे)** प्रकृतं देवदत्तेन। **(कर्तरि)** प्रभुक्त ओदनं देवदत्तः। **(कर्मणि)** प्रभुक्त ओदनो देवदत्तेन। **(भावे)** प्रभुक्तं देवदत्तेन।

आर्यभाषा-अर्थ-(आदिकर्मणि) क्रिया के प्रारम्भिक क्षण अर्थ में विहित (क्तः) क्त-प्रत्यय (कर्तरि) कर्तृवाच्य (कर्मणि) कर्मवाच्य (च) और (भावे) भाववाच्य अर्थ में होता है।

उदा०-(कर्ता) प्रकृतः कटं देवदत्तः। देवदत्त ने चटाई बनाना प्रारम्भ किया। (कर्म) प्रकृतः कटो देवदत्तेन। देवदत्त के द्वारा चटाई बनाना प्रारम्भ किया गया। (भाव) प्रकृतं देवदत्तेन। देवदत्त के द्वारा प्रारम्भ किया गया। (कर्तरि) प्रभुक्त ओदनं

देवदत्तः। देवदत्त ने चावल खाना प्रारम्भ किया। प्रभुक्तो ओदनो देवदत्तेन। देवदत्त के द्वारा चावल खाना प्रारम्भ किया गया। प्रभुक्तं देवदत्तेन। देवदत्त के द्वारा खाना प्रारम्भ किया गया।

सिद्धि-(१) प्रकृतः कटं देवदत्तः। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से आदि कर्म और भूतकाल में विहित 'क्त' प्रत्यय इस सूत्र से कर्ता अर्थ में होता है। अतः कर्म के अकथित होने से 'कर्मणि द्वितीया' (२।३।२) से 'कट' कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

(२) प्रकृतो कटो देवदत्तेन। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से पूर्ववत् विहित 'क्त' प्रत्यय इस सूत्र से कर्म अर्थ में। अतः कर्ता के अकथित होने से 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' (२।३।१८) से देवदत्त कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है।

(३) प्रकृतं देवदत्तेन। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से पूर्ववत् विहित 'क्त' प्रत्यय इस सूत्र से कर्म की अविवक्षा होने से भाव अर्थ में है। अतः कर्ता के अकथित होने से 'उसमें पूर्ववत् तृतीया विभक्ति होती है। ऐसे ही-प्रभुक्त ओदनं देवदत्त इत्यादि।

क्तः (कर्तरि कर्मणि भावे च)-

(३) गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च।७२।

प०वि०-गत्यर्थ-अकर्मक-श्लिष-शीङ्-स्था-आस-वस-जन-रुह-जीर्यतिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाः। न विद्यते कर्म येषां तेऽकर्मकाः। गत्यर्थाश्च अकर्मकाश्च श्लिषश्च शीङ् च स्थाश्च आसश्च वसश्च जनश्च रुहश्च जीर्यतिश्च ते-गत्यर्थ०जीर्यतयः, तेभ्यः-गत्यर्थ०जीर्यतिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, भावे, कर्तरि, क्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-गत्यर्थ०जीर्यतिभ्यश्च धातुभ्यः क्तः कर्तरि कर्मणि भावे च।

अर्थः-गत्यर्थेभ्योऽकर्मकेभ्यः श्लिषादिभ्यश्च धातुभ्यः परः क्तः प्रत्ययः कर्तरि कर्मणि भावे चार्थे भवति। **उदाहरणम्-**

धातुः	कर्तरि	कर्मणि	भावे
गत्यर्थकः	गतो देवदत्तो ग्रामम्	गतो देवदत्तेन ग्रामः	गतं देवदत्तेन
अकर्मकः (क)	ग्लानो भवान्	- - - - - - - -	ग्लानं भवता
(ख)	आसितो भवान्	- - - - - - - -	आसितं भवता
श्लिषः	उपश्लिष्टो गुरुं भवान्	उपश्लिष्टो गुरुर्भवता	उपश्लिष्टं भवता
शीङ्	उपशयितो गुरुं भवान्	उपशयितो गुरुर्भवता	उपशयितं भवता
स्थाः	उपस्थितो गुरुं भवान्	उपस्थितो गुरुर्भवता	उपस्थितं भवता
आसः	उपासितो गुरुं भवान्	उपासितो गुरुर्भवता	उपासितं भवता
वसः	अनूषितो गुरुं भवान्	अनूषितो गुरुर्भवता	अनूषितं भवता
जनः	अनुजातो माणवको माणविकाम्	अनुजाता माणवकेन माणविका	अनुजातं माणवकेन
रुहः	आरूढो वृक्षं भवान्	आरूढो वृक्षो भवता	आरूढं भवता
जीर्यतिः	अनुजीर्णो वृषलीं देवदत्तः	अनुजीर्णा वृषली देवदत्तेन	अनुजीर्णं देवदत्तेन

श्लिषादयो धातवः सोपसर्गाः सकर्मका भवन्तीत्यतस्तेषामत्र ग्रहणं क्रियते।

आर्यभाषा-अर्थ-(गत्यर्थ०जीर्यतिभ्यः) गत्यर्थक, अकर्मक और श्लिष, शीङ्, स्था, आस, वस, जन, रुह, जीर्यति (धातोः) धातुओं से परे (क्तः) क्त प्रत्यय (कर्तरि) कर्तृवाच्य (कर्मणि) कर्मवाच्य (भावे) भाववाच्य अर्थ में होता है।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(गत्यर्थक) देवदत्त गांव गया। देवदत्त के द्वारा गांव जाया गया। देवदत्त के द्वारा जाया गया। (अकर्मक) आपने ग्लानि की। आपके द्वारा ग्लानि की गई। आप बैठे। आपके द्वारा बैठा गया। (श्लिष) उपश्लिष्टो गुरुं भवान्। आपने गुरु का सङ्ग किया। आपके द्वारा गुरु का संग किया गया। आपके द्वारा संग किया गया। (शीङ्) आपने गुरु के पास शयन किया। आपके द्वारा गुरु के पास शयन किया गया। आपके द्वारा शयन किया गया। (स्था) आपने गुरु का उपस्थान किया। आपके द्वारा गुरु का उपस्थान किया गया। आपके द्वारा उपस्थान किया गया। (आस) आपने गुरु की उपासना की। आपके द्वारा गुरु की उपासना की गई। आपके द्वारा उपासना की गई। (वस) आपने गुरु का अनुवास किया। आपके द्वारा गुरु का अनुवास किया गया। आपके द्वारा अनुवास किया गया। (जन) बालिका के पश्चात् बालक उत्पन्न हुआ। बालक के द्वारा बालिका के पश्चात् उत्पन्न हुआ गया। बालक के द्वारा

पश्चात् उत्पन्न हुआ गया। (रुह) आपने वृक्ष पर आरोहण किया। आपके द्वारा वृक्ष पर आरोहण किया गया। आपके द्वारा आरोहण किया गया। (जीर्यति) देवदत्त वृषली के पश्चात् जीर्ण (वृद्ध) हुआ। देवदत्त के द्वारा वृषली के पश्चात् जीर्ण हुआ गया। देवदत्त से जीर्ण हुआ गया।

ये श्लिष आदि धातु अकर्मक हैं किन्तु स-उपसर्ग होने पर ये सकर्मक हो जाती हैं। अत: इनका यहां ग्रहण किया गया है।

सिद्धि-(१) गतो देवदत्तो ग्रामम्। यहां गत्यर्थक 'गम्' धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से विहित 'क्त' प्रत्यय इस सूत्र से कर्ता अर्थ में है। अत: कर्म के अकथित होने से 'कर्मणि द्वितीया' (२।३।२) से 'ग्राम' कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से 'गम्' के अनुनासिक 'न्' का लोप होता है।

(२) गतो देवदत्तेन ग्राम:। यहां पूर्वोक्त 'गम्' धातु से पूर्ववत् क्त प्रत्यय इस सूत्र से कर्म अर्थ में है। अत: कर्ता के अकथित होने से 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' (२।३।१८) से अकथित कर्ता देवदत्त में तृतीया विभक्ति है।

(३) गतं देवदत्तेन। यहां पूर्वोक्त 'गम्' धातु से पूर्ववत् विहित 'क्त' प्रत्यय इस सूत्र से कर्म की अविवक्षा होने से भाव अर्थ में है। शेष कार्य पूर्ववत् है। इसी विधि से शेष उदाहरणों में भी कर्ता, कर्म और भाव अर्थ की योजना समझ लेवें।

(४) ग्लान:। 'ग्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से कर्ता और भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय तथा 'संयोगादेरातो धातोर्यण्वत:' (८।२।३४) से 'क्त' के 'त' को 'न' आदेश होता है।

(५) उपश्लिष्ट:। यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक 'श्लिष आलिङ्गने' (३।१।४६) धातु से इस सूत्र से कर्ता, कर्म और भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय तथा 'ष्टुना ष्टु:' (८।४।४०) से 'क्त' प्रत्यय के 'त' को 'ट' आदेश होता है।

(६) उपशयित:। यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से कर्ता, कर्म और भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय और 'आर्धधातुकस्येड्वलादे:' (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है।

(७) उपस्थित:। यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से कर्ता, कर्म और भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। 'द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति' (७।४।४०) से इत्त्व होता है।

(८) उपासित:। यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक 'आस उपवेशने' (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय और 'आर्धधातुकस्येड्वलादे:' (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है।

(९) अनूषित:। यहां 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'वस निवासे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय, 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से सम्प्रसारण 'वसतिक्षुधोरिट्' (७।२।५२) से 'इट्' आगम और 'शासिवसिघसीनां च' (८।३।६०) से षत्व होता है।

(१०) अनुजातः। यहां 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय और 'जनसनखनां सञ्झलोः' (६।४।४२) से आत्व होता है।

(११) आरूढः। यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय, 'हो ढः' (८।२।३१) से 'ह्' को 'ढ्' आदेश, 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से 'त्' को 'ध्' आदेश, 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से 'ध्' को ष्टुत्व ढ्, 'ढो ढे लोपः' (८।३।१३) से पूर्ववर्ती 'ढ्' का लोप 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' (६।३।१०९) से दीर्घत्व होता है।

(१२) अनुजीर्णः। यहां 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'जॄ वयोहानौ' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय, 'ॠत इद् धातोः' (७।१।१००) से इत्त्व, 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घत्व, 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' (८।२।४२) से 'क्त' के 'त्' को 'न्' आदेश और 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (८।४।१) से णत्व होता है।

निपातनम् (सम्प्रदाने)–

(६) दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने।७३।

प०वि०–दाश-गोघ्नौ १।२ सम्प्रदाने ७।१।

स०–दाश्च गोघ्नश्च तौ दाशगोघ्नौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः–दाशगोघ्नौ शब्दौ सम्प्रदानेऽर्थे निपात्येते।

उदा०–(दाशः) दाशन्ति यस्मै स दाशः। (गोघ्नः) गौर्हन्यते=प्राप्यते यस्मै स गोघ्नः।

आर्यभाषा-अर्थ-(दाशगोघ्नौ) दाश, गोघ्न शब्द (सम्प्रदाने) सम्प्रदान कारक अर्थ में निपातित हैं।

उदा०-(दाश) दाशन्ति यस्मै स दाशः। जिसके लिये दाने देते हैं वह 'दाश' अर्थात् विद्वान् और ब्रह्मचारी आदि। (गोघ्न) गौर्हन्यते=प्राप्यते यस्मै स गोघ्नः। जिसके लिये गौ प्राप्त की जाती है वह विद्वान् अतिथि आदि।

सिद्धि-(१) दाशः। यहां 'दाशृ दाने' (भ्वा०प०) धातु से 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' (३।१।१३४) से 'अच्' प्रत्यय कर्ता कारक अर्थ में प्राप्त है किन्तु इस सूत्र से निपातन से सम्प्रदान कारक अर्थ में 'अच्' प्रत्यय होता है।

(२) गोघ्नः। यहां 'गौ' शब्द उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'अच्' प्रत्यय अथवा 'टक्' प्रत्यय निपातित है। 'गमहनजन०' (६।४।९८) से 'हन्' धातु का उपधालोप और 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।३।५४) से कुत्व 'घ्' होता है।

विशेष-वेद में 'गां मा हिंसीः' तथा गौ को 'अघ्न्या' (यजु० १।१) कहा गया है। अतः गौ की हत्या करना वेदविरुद्ध है और उपकारी पशु को मारना पाप भी है। अतः यहां 'हन्' धातु का अर्थ हिंसा नहीं अपितु प्राप्त करना है। जिसको दान करने के लिये गौ प्राप्त की जाती है वह ऋत्विक्=विद्वान् गोघ्न कहाता है। लक्षणा शक्ति से 'गौ' शब्द का अर्थ दूध, घृत, दही आदि भी होता है। जिसकी सेवा के लिए गौ का दुग्ध आदि प्राप्त किया जाता है वह ऋत्विक्=विद्वान् 'गोघ्न कहाता है।

काशिकाकार पं० जयादित्य ने यहां 'हन्' धातु का हिंसा अर्थ ग्रहण किया है जो वेदविरुद्ध होने से अप्रमाण है।

निपातनम् (अपादाने)-

(७) भीमादयोऽपादाने।७४।

प०वि०-भीम-आदयः ५।३ अपादाने ७।१।

स०-भीम आदिर्येषां ते भीमादयः (बहुव्रीहिः)।

अर्थः-भीमादयः शब्दा अपादानेऽर्थे निपात्यन्ते।

उदा०-बिभेति यस्मात् स भीमः, भीष्मः, भयानको वा।

भीमः। भीष्मः। भयानकः। वरुः। चरुः। भूमिः। रजः। संस्कारः। संक्रन्दनः। प्रपतनः। समुद्रः। स्रुचः। स्रुक्। खलतिः। इति भीमादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भीमादयः) भीम आदि शब्द (अपादाने) अपादान कारक अर्थ में निपातत हैं।

उदा०-बिभेति यस्मात् स भीमः, भीष्मः, भयानकः। जिससे डर लगता है उसे भीम, भीष्म, भयानक कहते हैं।

सिद्धि-(१) भीमः। भी+मक्। भी+म। भीम+सु। भीमः।

यहां ञिभी भये' (जु०प०) धातु से 'भियः षुग् वा' (उणा० १।१४८) से 'मक्' प्रत्यय है। 'कर्तरि कृत्' (३।४।६०) से उणादि का 'मक्' प्रत्यय कर्ता अर्थ में प्राप्त था। इस सूत्र से अपादान अर्थ में निपातित किया गया है। विकल्प पक्ष में 'षुक्' आगम होने पर-भीष्मः।

(२) भयानकः। भी+आनक। भे+आनक। भयानक+सु। भयानकः।

यहां पूर्वोक्त 'भी' धातु से 'आनकः शीङ्भियः' (उणा० ३।८२) से उणादि का 'आनक' प्रत्यय पूर्ववत् अपादान अर्थ में निपातित है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'भी' धातु को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७८) से अय् आदेश होता है।

विशेष-भीम आदि शब्द उणादि प्रत्ययान्त हैं। 'ताभ्यामन्यत्रोणादयः' (३।४।७५) से अपादान कारक में उणादि प्रत्ययान्त शब्दों का प्रतिषेध होने से इस सूत्र से उनका अपादान अर्थ में विधान किया गया है।

उणादीनामर्थः-

(८) ताभ्यामन्यत्रोणादयः।७५।

प०वि०-ताभ्याम् ५।२ अन्यत्र अव्ययपदम्, उणादयः १।३।

स०-उण् आदिर्येषां ते-उणादयः (बहुव्रीहिः)।

अर्थः-उणादयः प्रत्ययास्ताभ्याम्-सम्प्रदानापादानाभ्यामन्यत्र कारके भवन्ति। 'कर्तरि कृत्' (३।४।६०) इति कर्तरि कारके एव प्राप्तेऽन्येषु कर्मादिषु कारकेष्वपि विधीयन्ते।

उदा०-कृषितोऽसौ कृषिः। तनित इति तन्तुः। वृत्तमिति वर्त्म। चरितमिति चर्म।

आर्यभाषा-अर्थ-(उणादयः) उण्-आदि प्रत्यय (ताभ्याम्) उन सम्प्रदान और अपादान कारक से (अन्यत्र) अन्य कारक में होते हैं। उण्-आदि प्रत्यय 'कर्तरि कृत्' (३।४।६०) से कर्ता कारक में ही प्राप्त थे इस सूत्र से अन्य कर्म आदि कारकों में भी विहित किये गये हैं।

उदा०-कृषितोऽसौ कृषिः। जिसे कृषित=विलिखित किया गया है वह कृषि=खेती। तनित इति तन्तुः। जिसे विस्तृत किया गया है वह तन्तु=सूत्र। वृत्तमिति वर्त्म। जिसे चलने के लिए बर्ता गया है वह वर्त्म=मार्ग। चरितमिति चर्म। जिसे किसी प्राणी के शरीर से उच्चरित (उखाड़ना) किया गया है वह चर्म=चाम।

सिद्धि-(१) कृषिः। कृष्+इन्। कृष्+इ। कृषि+सु। कृषिः।

यहां 'कृष विलेखने' (भ्वा०प०) धातु से 'इगुपधात् कित्' (उणा० ४।१२०) से कर्म कारक में 'इन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के किद्वद्भाव से 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

(२) तन्तुः। तन्+तुन्। तन्+तु। तन्तु+सु। तन्तुः।

यहां 'तनु विस्तारे' धातु से 'सितमिगमि०' (उणा० १।६९) से कर्म कारक में 'तन्' प्रत्यय है।

(३) वर्त्म। वृत्+मनिन्। वर्त्+मन्। वर्त्मन्+सु। वर्त्म।

यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से 'सर्वधातुभ्यो मनिन्' (उणा० ४।१४५) से कर्म कारक में 'मनिन्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से वृत् धातु को लघूपध गुण होता है।

(४) चर्म। चर्+मनिन्। चर्+मन्। चर्मन्+सु। चर्म।

यहां 'चर गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'मनिन्' प्रत्यय है।

क्तः (अधिकरणे कर्तरि कर्मणि भावे च)-

(६) क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः।७६।

प०वि०-क्तः १।२ अधिकरणे ७।१ च अव्ययपदम्, ध्रौव्य-गति-प्रत्यवसानार्थेभ्यः ५।३।

स०-ध्रौव्यं च गतिश्च प्रत्यवसानं च तानि-ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानानि, एतानि अर्था येषां ते ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थाः, तेभ्यः-ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अर्थः-ध्रौव्यार्थेभ्यः=अकर्मकेभ्यो गत्यर्थेभ्यः प्रत्यवसानार्थेभ्यः= अभ्यवहारार्थेभ्यो धातुभ्यः परः क्तः प्रत्ययोऽधिकरणेऽर्थे चकाराद्भावे कर्मणि कर्तरि चार्थे भवति। **उदाहरणम्-**

धातुः	अधिकरणे	कर्तरि	कर्मणि	भावे
ध्रौव्यार्थः	इदमेषामासितम्	आसितो देवदत्तः	- -	आसितं देवदत्तेन
गत्यर्थः	इदमेषां यातम्	यातो देवदत्तो ग्रामम्	यातो देवदत्तेन ग्रामः	- -
प्रत्यवसा-नार्थः	इदमेषां भुक्तम्	- -	भुक्त ओदनो देवदत्तेन	भुक्तं देवदत्तेन

ध्रौव्यार्थाः=अकर्मकाः, प्रत्यवसानार्था अभ्यवहारार्था धातवो भवन्तीति वैयाकरणसम्प्रदायप्रसिद्धिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः) अकर्मक, गत्यर्थक और अभ्यवहारार्थक (खाना-पीना) (धातोः) धातुओं से परे (क्तः) क्त प्रत्यय (अधिकरणे) अधिकरण कारक में (च) और यथाप्राप्त कर्ता, कर्म और भाव अर्थ में होता है।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(ध्रौव्यार्थक) यह इनके बैठने का स्थान है। देवदत्त बैठ गया। देवदत्त के द्वारा बैठा गया। (गत्यर्थक) यह इनके जाने का स्थान है। देवदत्त गांव चला गया। देवदत्त के द्वारा गांव जाया गया। (प्रत्यवसानार्थक) यह इनके भोजन का स्थान है। देवदत्त के द्वारा चावल खाया गया। देवदत्त के द्वारा खाया गया।

सिद्धि-(१) आसितम्। यहां 'आस् उपवेशने' (अदा०आ०) ध्रौव्यार्थक धातु से इस सूत्र से अधिकरण कारक में 'क्त' प्रत्यय है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'क्त' प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है। ऐसे ही कर्ता और भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय को समझ लेवें।

(२) यातम्। गत्यर्थक 'या प्रापणे' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(३) भुक्तम्। प्रत्यवसानार्थक 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से पूर्ववत्।

विशेष-वैयाकरण सम्प्रदाय में अकर्मक धातुओं को ध्रौव्यार्थक और अभ्यवहारार्थक (खाना-पीना) धातुओं को प्रत्यवसानार्थक भी कहा जाता है।

लकारादेशप्रकरणम्

(१) लस्य।७७।

प०वि०-लस्य ६।१।

अर्थः-'लस्य' इत्यधिकारोऽयम्। यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामो 'लस्य' इत्येवं तद् वेदितव्यम्। किं चेदं 'लस्य' इति? दश लकारा अनुबन्धविशिष्टा विहिताः। तेषां षट् टितश्चत्वारश्च ङितः सन्ति। तेऽक्षरसमाम्नायक्रमेण कथ्यन्ते-लट्। लिट्। लुट्। लृट्। लेट्। लोट्। लङ्। लिङ्। लुङ्। लृङ्।

उदा०-अग्रे द्रष्टव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(लस्य) 'लस्य' यह अधिकार है। इससे आगे जो कहेंगे वह 'ल' के स्थान में होता है, ऐसा जानें। 'लस्य' यह क्या है? अनुबन्ध से युक्त दश लकार हैं। उनमें से छः टित् और चार ङित् हैं। वे यहां वर्णानुक्रम से लिखे जाते हैं-लट्। लिट्। लुट्। लृट्। लेट्। लोट्। लङ्। लिङ्। लुङ्। लृङ्।

उदा०-आगे देख लेवें।

तिङ्-आदेशः-

(२) तिप्तस्झिसिप्थस्थमिप्वस्मस्तातांझथासाथां-ध्वमिड्वहिमहिङ्।७८।

प०वि०-तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिप्-वस्-मस्-त-आताम्-झ-थास्- आथाम्-ध्वम्-इट्-वहि-महिङ् १।१।

स०-तिप् च तस् च झिश्च सिप् च थस् च थश्च मिप् च वस् च मस् च तश्च आताम् च झश्च थास् च आथाम् च ध्वम् च इट् च वहिश्च महिङ् च एतेषां समाहारः-तिप्०महिङ् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-लस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लस्य तिप्०महिङ्।

अर्थः-धातोः परस्य लस्य स्थाने तिबादयोऽष्टादशादेशा भवन्ति।

उदाहरणम्-

	लादेशाः	**परस्मैपदसंज्ञकाः**	**दूसरे के लिए पकाता है।**
(१)	तिप्	स पचति।	वह पकाता है।
(२)	तस्	तौ पचतः।	वे दोनों पकाते हैं।
(३)	झिः	ते पचन्ति।	वे सब पकाते हैं।
(४)	सिप्	त्वं पचसि।	तू पकाता है।
(५)	थस्	युवां पचथः।	तुम दोनों पकाते हो।
(६)	थः	यूयं पचथः।	तुम सब पकाते हो।
(७)	मिप्	अहं पचामि।	मैं पकाता हूं।
(८)	वस्	आवां पचावः।	हम दोनों पकाते हैं।
(९)	मस्	वयं पचामः।	हम सब पकाते हैं।

	लादेशाः	**आत्मनेपदसंज्ञकाः**	**अपने लिये पकाता है।**
(१)	त	स पचते।	वह पकाता है।
(२)	आताम्	तौ पचेते।	वे दोनों पकाते हैं।
(३)	झः	ते पचन्ते।	वे सब पकाते हैं।
(४)	थास्	त्वं पचसे।	तू पकाता है।
(५)	आथाम्	युवां पचेथे।	तुम दोनों पकाते हो।
(६)	ध्वम्	यूयं पचध्वे।	तुम सब पकाते हो।
(७)	इट्	अहं पचे।	मैं पकाता हूं।
(८)	वहि	आवां पचावहे।	हम दोनों पकाते हैं।
(९)	महिङ्	वयं पचामहे।	हम सब पकाते हैं।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लस्य) लकार के स्थान में (तिप्०महिङ्) तिप् आदि १८ आदेश होते हैं।

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) पचति। पच्+लट्। पच्+शप्+तिप्। पच्+अ+ति। पचति।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और इस सूत्र से 'ल' के स्थान में 'तिप्' आदेश है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से शप् विकरण प्रत्यय होता है।

(२) पचतः। यहां इस सूत्र से 'ल' के स्थान में 'तस्' आदेश है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से 'तस्' के 'स्' को 'रु' और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से 'रु' के रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है।

(३) पचन्ति। यहां इस धातु से 'ल' के स्थान में 'झ' आदेश है। 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'झ्' के स्थान में 'अन्त्' आदेश होता है।

(४) पचसि। यहां इस सूत्र से 'ल' के स्थान में 'सिप्' आदेश है।

(५) पचथः। 'ल' के स्थान में 'थस्' आदेश है। पूर्ववत् रुत्व और विसर्जनीय आदेश होता है।

(६) पचथ। 'ल' के स्थान में 'थ' आदेश है।

(७) पचामि। 'ल' के स्थान में 'मिप्' आदेश है। 'अतो दीर्घो यञि' (७।३।१०१) से दीर्घत्व होता है।

(८) पचावः। 'ल' के स्थान में 'वस्' आदेश है। पूर्ववत् रुत्व और विसर्जनीय आदेश होता है।

(९) पचामः। 'ल' के स्थान में 'मस्' आदेश है। पूर्ववत् रुत्व और विसर्जनीय आदेश होता है।

(१०) पचते। यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से आत्मनेपद की विवक्षा में 'ल' के स्थान में 'त' आदेश है। 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से 'त' प्रत्यय के 'टि' भाग को 'ए' आदेश होता है।

(११) पचेते। 'ल्' के स्थान में 'आताम्' आदेश है। 'आतो ङितः' (७।२।८१) से 'आताम्' के 'आ' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। पूर्ववत् 'टि' भाग को 'ए' आदेश होता है। 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'इय्' के 'य्' का लोप और 'आद्गुणः' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश (अ+इ+ए) होता है।

(१२) पचन्ते। 'ल्' के स्थान में 'झ' आदेश, पूर्ववत् 'झ' के स्थान में 'अन्त' आदेश और 'टि' भाग को 'ए' आदेश होता है।

(१३) पचसे। 'ल्' के स्थान में 'थास्' आदेश और 'थासः से' (३।४।८०) से 'थास्' के स्थान में 'से' आदेश है।

(१४) पचेथे। 'ल्' के स्थान में 'आथाम्' आदेश और शेष कार्य 'पचेते' के समान है।

(१५) पचध्वे। 'ल्' के स्थान में 'ध्वम्' आदेश और पूर्ववत् 'टि' भाग को 'ए' आदेश होता है।

(१६) पचे। 'ल' के स्थान में 'इट्' आदेश है।

(१७) पचावहे। 'ल' के स्थान में 'वहि' आदेश है। पूर्ववत् 'टि' भाग को 'ए' आदेश होता है। 'अतो दीर्घो यञि' (७।३।१०१) से दीर्घत्व होता है।

(१८) पचामहे। 'ल' के स्थान में 'महिङ्' आदेश है। पूर्ववत् दीर्घत्व होता है। 'महिङ्' में 'ङ्' अनुबन्ध 'तिङ्' प्रत्याहार की रचना के लिये है।

एकारादेशः–

(३) टित आत्मनेपदानां टेरे।७६।

प०वि०-टितः ६।१ आत्मनेपदानाम् ६।३ टेः ६।१ ए १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः)।

अनु०-लस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोष्टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेः।

अर्थः-धातोः परस्य टितो लकारस्यात्मनेपदसंज्ञकानां लादेशानां टि-भागस्य स्थाने एकारादेशो भवति।

उदा०-स पचते। तौ पचेते। ते पचन्ते। इत्यादिकम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (टितः) टित् लकार के (आत्मनेपदानाम्) आत्मनेपदसंज्ञक (लस्य) लकारादेशों के (टेः) टि-भाग के स्थान में (ए) एकार आदेश होता है।

उदा०-स पचते। वह पकाता है। तौ पचेते। वे दोनों पकाते हैं। ते पचन्ते। वे सब पकाते हैं, इत्यादि।

सिद्धि-पचते। पच्+लट्। पच्+शप्+त। पच+अ+त् ए। पचते।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'त' आदेश और इस सूत्र से 'त' प्रत्यय के 'टि' भाग 'अ' के स्थान में 'एकारादेश' होता है। शेष रूप तथा उनकी सिद्धि 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) की व्याख्या में लिख दी है।

से-आदेशः–

(४) थासः से।८०।

प०वि०-थासः ६।१ से १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः)।

अनु०-लस्य टित आत्मनेपदानामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोष्टितो आत्मनेपदस्य लस्य थासः सेः।

अर्थः-धातोः परस्य टितो लकारस्यात्मनेपदसंज्ञकस्य लादेशस्य थासः स्थाने से-आदेशो भवति।

उदा०-त्वं पचसे।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (टितः) टित् लकार के (आत्मनेपदानाम्) आत्मनेपदसंज्ञक (लस्य) लादेश (थासः) थास् प्रत्यय के स्थान में (से) से आदेश होता है।

उदा०-त्वं पचसे। तू पकाता है।

सिद्धि-पचसे। पच्+लट्। पच्+शप्+थास्। पच्+अ+से। पचसे।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल' के स्थान में 'थास्' आदेश और इस सूत्र से 'थास्' प्रत्यय के स्थान में 'से' आदेश होता है।

लिट्-आदेशप्रकरणम्

एश्+इरेच्-आदेशौ–

(१) लिटस्तझयोरेशिरेच्।८१।

प०वि०-लिटः ६।१ त-झयोः ६।२ एश्-इरेच् १।१।

स०-तश्च झश्च तौ तझौ, तयोः-तझयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। एश् च इरेच् च एतयोः समाहार एशिरेच् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-लस्य आत्मनेपदानामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लिटो लस्यात्मनेपदयोस्तझयोरेशिरेच्।

अर्थः-धातोः परस्य लिट्लकारस्यात्मनेपदसंज्ञकयोस्तझयोः स्थाने यथासंख्यमेशिरेचावादेशौ भवतः।

उदा०-(तः) स पेचे। (झः) ते पेचिरे।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिटः) लिट्सम्बन्धी (लस्य) लकार के (आत्मनेपदानाम्) आत्मनेपदसंज्ञक (तझयोः) त और झ के स्थान में यथासंख्य (एशिरेच्) एश् और इरेच् आदेश होता है।

उदा०-(त) स पेचे। उसने पकाया। (झ) ते पेचिरे। उन सबने पकाया।

सिद्धि-(१) पेचे। पच्+लिट्। पच्+त। पच्+एश्। पच्+पच्+ए। ०+पेच्+ए। पेचे।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल' के स्थान में 'त' आदेश और इस सूत्र से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश होता है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'पच्' धातु को द्वित्व और 'अत एकहल्मध्ये०' (६।४।१२०) से अभ्यास का लोप और धातु के 'अ' को 'ए' आदेश होता है।

(२) पेचिरे। यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और 'ल' के स्थान में 'झ' आदेश होता है। इस सूत्र से 'झ' के स्थान में 'इरेच्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

णलादि-आदेशाः-

(२) परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः।८२।

प०वि०-परस्मैपदानाम् ६।३ णल्-अतुस्-उस्-थल्-अथुस्-अ-णल्-व-माः १।३।

स०-णल् च अतुस् च उस् च थल् च अथुस् च अश्च णल् च वश्च मश्च ते-णल्०माः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-लस्य लिट इति चानुवर्तते।

अर्थः-धातोः परस्य लिटो लकारस्य परस्मैपदसंज्ञकानां तिबादीनां स्थाने यथासंख्यं णलादय आदेशा भवन्ति। **उदाहरणम्-**

	लादेशाः	णलादयः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	तिप्	णल्	स पचाच।	उसने पकाया।
(२)	तस्	अतुस्	तौ पेचतुः।	उन दोनों ने पकाया।
(३)	झिः	उस्	ते पेचुः।	उन सबने पकाया।
(४)	सिप्	थल्	त्वं पेचिथ।	तूने पकाया।
(५)	थस्	अथुस्	युवां पेचथुः।	तुम दोनों ने पकाया।
(६)	थः	अः	यूयं पेच।	तुम सबने पकाया।
(७)	मिप्	णल्	अहं पपाच/पपच।	मैंने पकाया।
(८)	वस्	वः	आवां पेचिव।	हम दोनों ने पकाया।
(९)	मस्	मः	वयं पेचिम।	हम सबने पकाया।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिटः) लिट् सम्बन्धी (लस्य) लकार के (परस्मैपदानाम्) परस्मैपद संज्ञक तिप्-आदि आदेशों के स्थान में यथासंख्य (णल्०माः) णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अ, णल्, व, म आदेश होते हैं।

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) पपाच। पच्+लिट्। पच्+तिप्। पच्+णल्। पच्+पच्+अ। प+पाच्+अ। पपाच।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'तिप्' आदेश और इस सूत्र से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। पूर्ववत् 'पच्' धातु को द्वित्व, अभ्यासकार्य और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'पच्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) पेचतुः। यहां 'तस्' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'अतुस्' आदेश है। 'अत एकहल्मध्ये०' (६।४।१२०) से अभ्यास का लोप और 'पच्' के 'अ' के स्थान में 'ए' आदेश होता है। 'अतुस्' के 'स्' को पूर्ववत् रुत्व और विसर्जनीय आदेश होता है।

(३) पेचुः। यहां 'झि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'उस्' आदेश है।

(४) पेचिथ। यहां 'सिप्' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'थल्' आदेश है। 'ॠतो भारद्वाजस्य' (७।२।६३) के नियम से 'थल्' को 'इट्' आगम होता है।

(५) पेचथुः। यहां 'थस्' प्रत्यय के स्थान में 'अथुस्' आदेश है।

(६) पेच। यहां 'थ' प्रत्यय के स्थान में 'अ' आदेश है। 'अतो गुणे' (६।१।९७) से 'अ' को पररूप एकादेश होता है।

(७) पपाच। पूर्ववत्। पपच। यहां 'णलुत्तमो वा' (७।१।९१) से 'णल्' प्रत्यय के विकल्प से णिद्वद् होने से 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से प्राप्त उपधावृद्धि नहीं होती है।

(८) पेचिव। यहां 'वस्' प्रत्यय के स्थान में 'व' आदेश है। 'कृ' आदि नियम से 'इट्' आगम होता है।

(९) पेचिम। यहां 'मस्' प्रत्यय के स्थान में 'म' आदेश है। पूर्ववत् 'इट्' आगम होता है।

लट्-आदेशप्रकरणम्

वा णलादय आदेशाः–

(१) विदो लटो वा।८३।

प०वि०-विदः ५।१ लटः ६।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-लस्य परस्मैपदानाम्, णल्०माः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-विदो धातोर्लटो लस्य परस्मैपदानां वा णल०माः।

अर्थः-विद-धातोः परस्य लटो लस्य परस्मैपदसंज्ञकानां तिबादीनां स्थाने विकल्पेन णलादय आदेशा भवन्ति। **उदाहरणम्**-

	लादेशाः	तिबादयः	णलादयः	भाषार्थः
(१)	तिप्	स वेत्ति।	स वेद।	वह जानता है।
(२)	तस्	तौ वित्तः।	तौ विदतुः।	वे दोनों जानते हैं।
(३)	झि	वें विदन्ति।	ते विदुः।	वे सब जानते हैं।
(४)	सिप्	त्वं वेत्सि।	त्वं वेत्थ	तू जानता है।
(५)	थस्	युवां वित्थः।	युवां विदथुः।	तुम दोनों जानते हो।
(६)	थ	यूयं वित्थ।	यूयं विद।	तुम सब जानते हो।
(७)	मिप्	अहं वेद्मि।	अहं वेद।	मैं जानता हूं।
(८)	वस्	आवां विद्वः।	आवां विद्व।	हम दोनों जानते हैं।
(९)	मस्	वयं विद्मः।	वयं विद्म।	हम सब जानते हैं।

आर्यभाषा-अर्थ-(विदः) विद् (धातोः) धातु से परे (लटः) लट् सम्बन्धी (लस्य) लकार के (परस्मैपदानाम्) परस्मैपद संज्ञक 'तिप्' आदि आदेशों के स्थान में (वा) विकल्प से यथासंख्य (णल०माः) णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अ, णल्, व, म आदेश होते हैं।

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

*सिद्धि-(१) **वेत्ति।** यहां 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और 'ल्' के स्थान में 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'तिप्' आदेश है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' प्रत्यय का लुक् होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।२।८६) से 'विद्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'खरि च' (८।४।५४) से 'विद्' के 'द्' को चर् 'त्' होता है।*

*(२) **वित्तः।** यहां 'ल' के स्थान में 'तस्' आदेश है। 'तस्' प्रत्यय के 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'ङित्' होने से पूर्ववत् प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है।*

*(३) **विदन्ति।** यहां 'ल्' के स्थान में 'झि' आदेश और 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'झ्' के स्थान में 'अन्त' आदेश होता है।*

*(४) **वेत्सि।** यहां 'ल्' के स्थान में 'सिप्' आदेश और पूर्ववत् लघूपध गुण होता है।*

(५) वित्थः। यहां 'ल्' के स्थान में 'थस्' आदेश और पूर्ववत् प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

(६) वित्थ। यहां 'ल्' के स्थान में 'थ' आदेश और पूर्ववत् प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होत। है।

(७) वेद्मि। यहां 'ल्' के स्थान में 'मिप्' आदेश और पूर्ववत् प्राप्त लघूपध गुण होता है।

(८) विद्वः। यहां 'ल्' के स्थान में 'वस्' आदेश और पूर्ववत् लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

(९) विद्मः। यहां 'ल्' के स्थान में 'मस्' आदेश और पूर्ववत् लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

(१०) वेद। यहां 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश और पूर्ववत् लघूपध गुण होता है।

(११) विदतुः। यहां 'तस्' के स्थान में 'अतुस्' आदेश है।

(१२) विदुः। यहां 'झि' के स्थान में 'उस्' आदेश है।

(१३) वेत्थ। यहां 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है।

(१४) विदथुः। यहां 'थस्' के स्थान में 'अथुस्' आदेश है।

(१५) विद। यहां 'थ' के स्थान में 'अ' आदेश है।

(१६) वेद। यहां 'मिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश है।

(१७) विद्व। यहां 'वस्' के स्थान में 'व' आदेश है।

(१८) विद्म। यहां 'मस्' के स्थान में 'म' आदेश है।

लघूपध गुण तथा उसके प्रतिषेध का कार्य पूर्ववत् है।

विशेष-पाणिनीय धातुपाठ में 'विद ज्ञाने' (अदा०प०), 'विद सत्तायाम्' (दि०आ०), 'विद विचारणे' (रुधा०आ०), विद चेतनाख्याननिवासेषु' (चु०आ०) 'विद्लृ लाभे' (रुधा०आ०) पठित हैं। 'विद् ज्ञाने' (अ०प०) धातु परस्मैपद है। शेष धातु आत्मनेपद हैं। अतः परस्मैपद विषय होने से परस्मैपद 'विद् ज्ञाने' धातु का ही यहां ग्रहण किया जाता है; आत्मनेपद का नहीं।

पञ्च णलादय आहादेशश्च-

(२) ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः।८४।

प०वि०-ब्रुवः ५।१ पञ्चानाम् ६।३ आदितः अव्ययपदम्, आहः १।१ ब्रुवः ६।१।

अनु०-लस्य, परस्मैपदानाम्, णल्०मा, लटः, वा इति चानुवर्तते।

अर्थः-ब्रुञ्धातोः परस्य लटो लस्य पञ्चानामादिभूतानां परस्मैपद-संज्ञकानां तिबादीनां स्थाने विकल्पेन यथासंख्यं पञ्चैव णलादय आदेशा भवन्ति, तत्र ब्रुवः स्थाने चाऽऽह-आदेशो भवति। **उदाहरणम्**-

	लादेशाः	तिबादयः	णलादयः पञ्च	भाषार्थः
(१)	तिप्	स ब्रवीति।	स आह।	वह बोलता है।
(२)	तस्	तौ ब्रूतः।	तौ आहतुः।	वे दोनों बोलते हैं।
(३)	झि	ते ब्रुवन्ति।	ते आहुः।	वे सब बोलते हैं।
(४)	सिप्	त्वं ब्रवीषि।	त्वं आत्थ	तू बोलता है।
(५)	थस्	युवां ब्रूथः।	युवां आहथुः।	तुम दोनों बोलते हो।
(६)	थः	यूयं ब्रूथ।	यूयं ब्रूथ।	तुम सब बोलते हो।
(७)	मिप्	अहं ब्रवीमि।	अहं ब्रवीमि।	मैं बोलता हूं।
(८)	वस्	आवां ब्रूवः।	आवां ब्रूवः।	हम दोनों बोलते हैं।
(९)	मस्	वयं ब्रूमः।	वयं ब्रूमः।	हम सब बोलते हैं।

आर्यभाषा-अर्थ-(ब्रुवः) ब्रूञ् (धातोः) धातु से परे (लटः) लट् सम्बन्धी (लस्य) लकार के (पञ्चानाम्) पांच (आदितः) आरम्भिक (परस्मैपदानाम्) परस्मैपद संज्ञक तिप्-आदि आदेशों के स्थान में (वा) विकल्प से यथासंख्य (णल०अथुस्) णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस् ये पांच ही आदेश होते हैं और वहां (ब्रुवः) ब्रूञ् धातु के स्थान में (आहः) आह आदेश होता है।

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाषा में देख लेवें।

सिद्धि-(१) ब्रवीति। ब्रू+लट्। ब्रू+शप्+तिप्। ब्रू+०+ति। ब्रू+ईट्+ति। ब्रो+ई+ति। ब्रवीति।

यहां 'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि' (अदा०आ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय, 'ल्' के स्थान में 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'तिप्' आदेश, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' का लुक् होता है। 'ब्रुव ईट्' (७।३।९३) से 'तिप्' प्रत्यय को 'ईट्' आगम, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'ब्रू' धातु को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।६५) से 'अव्' आदेश होता है। ऐसे ही-ब्रवीषि, ब्रवीमि।

(२) ब्रूतः। यहां 'ल्' के स्थान में 'तस्' आदेश, 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'तस्' प्रत्यय के 'ङित्' होने से 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-ब्रुवन्ति, ब्रूथः, ब्रूथ, ब्रूवः, ब्रूमः।

(३) आह। यहां 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश और 'ब्रूञ्' के स्थान में 'आह' आदेश होता है। ऐसे ही-आहतुः, आहुः, आहथुः।

(४) आत्थ। यहां 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश और ब्रूञ् के स्थान में 'आह्' आदेश है। 'आहस्थः' (८।२।३५) से 'आह' के 'ह्' को 'थ्' आदेश और 'खरि च' (८।४।५४) से 'थ्' को चर् 'त्' होता है।

लोट्-आदेशप्रकरणम्

लङ्वद्-आदेशाः-

(१) लोटो लङ्वत्।८५।

प०वि०-लोटः ६।१ लङ्वत् अव्ययपदम्। लङ इव लङ्वत्। 'तत्र तस्येव' (५।१।११५) इति षष्ठ्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-लस्य इत्यनुवर्तते।

अर्थः-धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लस्य स्थाने लङ्वदादेशा भवन्ति।

उदाहरणम्-

	लादेशाः	लङादेशाः	पच्+लोट्	भाषार्थः
(१)	तिप्	---	---	---
(२)	तस्	ताम्	तौ पचताम्।	वे दोनों पकावें।
(३)	झि	---	---	---
(४)	सिप्	---	---	---
(५)	थस्	तम्	युवां पचतम्।	तुम दोनों पकाओ।
(६)	थः	तः	यूयं पचत।	तुम सब पकाओ।
(७)	मिप्	अम्	---	---
(८)	वस्	वः	आवां पचाव।	हम दोनों पकावें।
(९)	मस्	मः	वयं पचाम।	हम सब पकावें।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट् सम्बन्धी (लस्य) 'ल' के स्थान में (लङ्वत्) 'लङ्' के समान आदेश होते हैं।

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) पचताम्। पच्+लोट्। पच्+तस्। पच्+शप्+ताम्। पच्+अ+ताम्। पचताम्।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'लोट्' के 'ल' के स्थान में 'तस्' आदेश और इस सूत्र से 'तस्' के स्थान में 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' (३।४।१०१) से लङ्वत् 'ताम्' आदेश है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है।

(२) पचतम्। यहां 'थस्' प्रत्यय के स्थान में 'तम्' आदेश है।

(३) पचत। यहां 'थ' प्रत्यय के स्थान में 'त' आदेश है।

(४) पचाव। यहां 'नित्यं ङितः' (३।४।९९) से 'वस्' प्रत्यय के 'स्' का लोप होता है।

(५) पचाम। यहां पूर्ववत् 'मस्' प्रत्यय के 'स्' का लोप होता है।

विशेष-लङ्वत्-यहां 'तत्र तस्येव' (५।१।११५) से षष्ठी विभक्ति के अर्थ में 'वति' प्रत्यय है लङ इव लङ्वत्, सप्तमी विभक्ति के अर्थ में नहीं-लङि इव लङ्वत्। इससे लङ्वद् भाव से 'लङ्' के स्थान में होनेवाले 'ताम्' आदि आदेश ही होते हैं। 'लङ्' परे होने पर जो धातु को अट्-आट् आगम होते हैं, वे लोट् लकार में नहीं होते हैं।

उ-आदेशः-

(२) एरुः।८६।

प०वि०-एः ६।१ उः १।१।

अनु०-लस्य, लोट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लोटो लस्य एरुः।

अर्थः-धातोः परस्य लोट्-सम्बन्धिनो लादेशस्य इकारस्य स्थाने उ-आदेशो भवति।

उदा०-स पचतु। ते पचन्तु।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट्-सम्बन्धी (लस्य) ल आदेश के (एः) इकार के स्थान में (उः) उ-आदेश होता है।

उदा०-स पचतु। वह पकावे। ते पचन्तु। वे सब पकावें।

सिद्धि-(१) पचतु। पच्+लोट्। पच्+शप्+तिप्। पच्+अ+ति। पच्+अ+तु। पचतु।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय और उसके 'ल' के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से 'तिप्' के इकार के स्थान में 'उ' आदेश होता है। ऐसे ही-पचन्तु।

हि-आदेशः–

(३) सेर्ह्यपिच्च।८७।

प०वि०–सेः ६।१ हि १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) अपित् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–लस्य, लोट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्लोटो लस्य सेर्हिः, स चापित्।

अर्थः–धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्य सि-प्रत्ययस्य स्थाने हि-आदेशो भवति, स चापिद् भवति। स्थानिवद्भावात् प्राप्तं पित्त्वं प्रतिषिध्यते।

उदा०–त्वं लुनीहि। त्वं पुनीहि।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट् सम्बन्धी (लस्य) ल-आदेश (सेः) सि-प्रत्यय के स्थान में (हि) हि-आदेश होता है (च) और वह (अपित्) अपित् होता है। यहां स्थानिवद्भाव से प्राप्त पित्त्व का प्रतिषेध किया गया है।

उदा०–त्वं लुनीहि। तू काट। त्वं पुनीहि। तू पवित्र कर।

सिद्धि-(१) लुनीहि। लू+लोट्। लू+श्ना+सिप्। लू+ना+हि। लु+नी+हि। लुनीहि।

यहां 'लूञ् छेदने' (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय और उसके 'ल' के स्थान में 'सिप्' आदेश है। 'हि' आदेश के 'अपित्' विधान से 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से वह 'ङित्' हो जाता है। 'ङित्' होने से 'ई हल्यघोः' (६।४।११३) से 'श्ना' विकरण प्रत्यय के 'आ' को 'ई' आदेश होता है। 'प्वादीनां ह्रस्वः' (७।३।८०) से 'लू' धातु को ह्रस्व होता है।

(२) पुनीहि। 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) पूर्ववत्।

हि-अपित्त्वविकल्पः–

(४) वा च्छन्दसि।८८।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०–लस्य, लोटः, सेः, हि, अपिच्च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि धातोर्लोटो लस्य सेर्हि, स च वाऽपित्।

अर्थः–छन्दसि विषये धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्य सि-प्रत्ययस्य स्थाने हि-आदेशो भवति, स च विकल्पेनापिद् भवति।

उदा०-युयोध्यस्मज्जुहाराणमेनः (यजु० ४।१६)। प्रीणाहि। प्रीणीहि (का०सं० ४०।१२)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट् सम्बन्धी (लस्य) लादेश (सेः) सि-प्रत्यय के स्थान में (हि) हि-आदेश होता है और वह (वा) विकल्प से (अपित्) अपित् होता है।

उदा०-युयोध्यस्मज्जुहाराणमेनः (यजु० ४।१६)। हमसे कुटिलता रूप पाप को दूर कीजिये। प्रीणाहि। प्रीणीहि। तू तृप्त कर।

सिद्धि-(१) युयोधि। यहां 'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च' (अदा०प०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय और 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'लोट्' के 'ल' के स्थान में 'सिप्' आदेश और इस सूत्र से 'सि' के स्थान में 'पित्' हि-आदेश होता है। 'अङितश्च' (६।४।१०३) से 'हि' को 'धि' आदेश होता है। 'हि' आदेश के 'पित्' होने से वह 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'ङित्' नहीं होता है। अतः 'यु' धातु को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण हो जाता है। यहां 'बहुलं छन्दसि' (२।४।७६) से 'शप्' के स्थान में 'श्लु' आदेश और 'श्लौ' (६।१।१०) से 'यु' धातु को द्विर्वचन होता है।

(२) प्रीणाहि। यहां 'प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सिप्' प्रत्यय के स्थान में पित् 'हि' आदेश है। 'हि' आदेश के पित् होने से वह पूर्ववत् 'ङित्' नहीं होता है, अतः 'ई हल्यघोः' (६।४।११३) से 'श्ना' प्रत्यय के 'आ' को 'ई' आदेश नहीं होता है।

(३) प्रीणीहि। यहां पूर्वोक्त 'प्रीञ्' धातु से पूर्ववत् 'सिप्' प्रत्यय के स्थान में अपित् 'हि' आदेश है। 'हि' आदेश के अपित् होने से वह 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'ङित्' होता है। 'ङित्' होने से 'ई हल्यघोः' (६।४।११३) से 'श्ना' प्रत्यय के 'आ' को 'ई' आदेश होता है।

विशेष-जो सार्वधातुक प्रत्यय पित् होता है वह ङित् नहीं होता और जो पित् नहीं होता है वह ङित् होता है-पिच्च ङिन्न, ङिच्च पिन्न। इस विषय में यह वैयाकरणों का सार वचन है।

नि-आदेशः-

(५) मेर्निः।८६।

प०वि०-मेः ६।१ निः १।१।

अनु०-लस्य, लोट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लोटो लस्य मेर्निः।

अर्थः-धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्य मि-प्रत्ययस्य स्थाने नि-आदेशो भवति।

उदा०-अहं पचानि। अहं पठानि।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट् सम्बन्धी (लस्य) ल-आदेश (मेः) मिप् प्रत्यय के स्थान में (निः) नि-आदेश होता है।

उदा०-अहं पचानि। मैं पकाऊं। अहं पठानि। मैं पढ़ूं।

सिद्धि-(१) पचानि। पच्+लोट्। पच्+शप्+मिप्। पच्+अ+नि। पच्+आ+नि। पचानि।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय और उसके ल-आदेश 'मिप्' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'नि' आदेश होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और 'अतो दीर्घो यञि' (७।३।१०१) से दीर्घत्व होता है।

(२) पठानि। 'पठ व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

आम्-आदेशः-

(६) आमेतः।६०।

प०वि०-आम् १।१ एतः ६।१।

अनु०-लस्य, लोट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लोटो लस्य एत आम्।

अर्थः-धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्य एकारस्य स्थाने आम्-आदेशो भवति।

उदा०-स पचताम्। तौ पचेताम्। ते पचन्ताम्, इत्यादिकम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट्सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (एतः) एकार के स्थान में (आम्) आम् आदेश होता है।

उदा०-स पचताम्। वह पकावे। तौ पचेताम्। वे दोनों पकावें। ते पचन्ताम्। वे सब पकावें।

सिद्धि-(१) पचताम्। पच्+लोट्। पच्+शप्+त। पच्+अ+ते। पच्+अ+ताम्। पचताम्।

यहां 'पच्' धातु से परे पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है और उसके लादेश 'त' प्रत्यय के 'टि' भाग को 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से 'ए' आदेश होता है। उस 'ए' आदेश को इस सूत्र से 'आम्' आदेश होता है।

(२) पचेताम्। पच्+लोट्। पच्+शप्+आताम्। पच्+अ+आ ते। पच्+अ+आताम्। पच्+अ+इय् ताम्। पच्+अ+इ ताम्। पचेताम्।

यहां 'लोट्' प्रत्यय के लादेश 'आताम्' प्रत्यय के 'टि' भाग को पूर्ववत् 'ए' आदेश और उसे इस सूत्र से 'आम्' आदेश होता है। 'आतो ङितः' (७।२।८) 'आताम्' प्रत्यय के 'आ' को 'इय्' आदेश, 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'य्' का लोप और 'आद्‌गुणः' (६।१।८४) से गुण रूप (अ+इ=ए) एकादेश होता है।

(३) पचन्ताम्। यहां 'लोट्' प्रत्यय के लादेश 'झ' प्रत्यय के स्थान में प्रथम 'झोऽन्तः' (७।१।२) से 'अन्त' आदेश और उसके 'टि' भाग को पूर्ववत् 'ए' आदेश होता है। इस सूत्र से उस 'ए' को 'आम्' आदेश होता है।

व-अमावादेशौ–

(७) सवाभ्यां वामौ।६१।

प०वि०–सवाभ्याम् ५।२ व-अमौ १।२।

स०–सश्च वश्च तौ–सवौ, ताभ्याम्–सवाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। वश्च मश्च तौ–वामौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–लस्य, लोट, एत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्लोटो लस्य सवाभ्याम् एतो वामौ।

अर्थः–धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्य सकारवकाराभ्या-मुत्तरस्य एकारस्य स्थाने यथासंख्यं व-अमावादेशौ भवतः।

उदा०–(वः) त्वं पचस्व। (अम्) यूयं पचध्वम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट्सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (सवाभ्याम्) सकार और वकार से परे (एतः) एकार के स्थान में यथासंख्य (व-अमौ) व और अम् आदेश होता है।

उदा०-(व) त्वं पचस्व। तू पका। (अम्) यूयं पचध्वम्। तुम सब पकाओ।

सिद्धि-(१) पचस्व। पच्+लोट्। पच्+शप्+थास्। पच्+अ+से। पच्+अ+स्व। पचस्व।

यहां 'लोट्' प्रत्यय के लादेश 'थास्' प्रत्यय के स्थान में प्रथम 'थासः से' (३।४।८०) से 'से' आदेश होता है। उस 'से' आदेश के सकार से परवर्ती एकार के स्थान में इस सूत्र से 'व' आदेश होता है।

(२) पचध्वम्। पच्+लोट्। पच्+शप्+ध्वम्। पच्+अ+ध्वे। पच्+अ+ध्व् अम्। पचध्वम्।

यहां 'लोट्' प्रत्यय के लादेश 'ध्वम्' प्रत्यय के 'टि' भाग को पूर्ववत् 'ए' आदेश होता है। उस 'ध्वे' आदेश के वकार से परवर्ती एकार के स्थान में इस सूत्र से 'अम्' आदेश होता है।

आट्-आगमः–

(७) आडुत्तमस्य पिच्च।९२।

प०वि०-आट् १।१ उत्तमस्य ६।१ पित् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-लस्य, लोट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लोटो लस्योत्तमस्याऽऽट् पिच्च।

अर्थः-धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्योत्तमपुरुषस्याऽऽडागमो भवति, स चोत्तमपुरुषः पिद् भवति।

उदा०-(परस्मैपदम्) अहं करवाणि। आवां करवाव। वयं करवाम। (आत्मनेपदम्) अहं करवै। आवां करवावहै। वयं करवामहै।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट्सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (उत्तमस्य) उत्तम पुरुष को (आट्) आट् आगम होता है (पिच्च) और वह उत्तम पुरुष पित् होता है।

उदा०-(परस्मैपद) अहं करवाणि। मैं करूं। आवां करवाव। हम दोनों करें। वयं करवाम। हम सब करें। (आत्मनेपद) अहं करवै। मैं करूं। आवां करवावहै। हम दोनों करें। वयं करवामहै। हम सब करें।

सिद्धि-(१) करवाणि। कृ+लोट्। कृ+उ+मिप्। कृ+उ+नि। कृ+उ+आट्+नि। कर्+ओ+आ+नि। करवाणि।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय के उत्तम पुरुष एकवचन के लादेश 'मिप्' प्रत्यय है, उसे 'मेर्निः' (३।४।८९) से 'नि' आदेश होता है। इस सूत्र से उसे 'आट्' आगम होता है। 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय होता है। उत्तम पुरुष के 'पित्' होने से 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'ङित्' नहीं होता है, अतः 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'उ' प्रत्यय को गुण होता। 'कृ' धातु को भी पूर्ववत् गुण होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से 'णत्व' होता है।

(२) करवाव। यहां 'लोटो लङ्वत्' (३।४।८५) से लङ्वद्भाव होने से 'स उत्तमस्य' (३।४।९८) से 'वस्' प्रत्यय के 'स्' का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-करवाम।

(३) करवै। कृ+लोट्। कृ+उ+इट्। कृ+उ+आट्+इ। कृ+उ+आ+ए। कर्+ओ+आ+ऐ। कर्+ओ+ऐ। करवै।

यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय का लादेश उत्तम पुरुष एक वचन का 'इट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसे 'आट्' आगम होता है। 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से 'इट्' के 'टि' भाग को 'ए' आदेश और उसे 'एत ऐ' (३।४।९३) से 'ऐ' आदेश और 'आटश्च' (६।१।८७) से वृद्धि रूप एकादेश (आ+ऐ=ऐ। होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे हीं-करवावहै, करवामहै।

ऐ-आदेशः–

(६) एत ऐ।९३।

प०वि०–एतः ६।१ ऐ १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः)।

अनु०–लस्य लोट इति चानुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्लोटो लस्य एत ऐः।

अर्थः–धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्य एकारस्य स्थाने ऐकार आदेशो भवति।

उदा०–अहं करवै। आवां करवावहै। वयं करवामहै।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट् सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (एतः) एकार के स्थान में (ऐ) ऐ-आदेश होता है।

उदा०-अहं करवै। मैं करूं। आवां करवावहै। हम दोनों करें। वयं करवामहै। हम सब करें।

सिद्धि-करवै। पूर्ववत् (३।४।९२)।

लेट्-आदेशागमप्रकरणम्

अट्-आटावागमौ–

(१) लेटोऽडाटौ।९४।

प०वि०–लेटः ६।१ अट्-आटौ १।२।

स०–अट् च आट् च तौ-अडाटौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-लस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लेटो लस्याडाटौ।

अर्थः-धातोः परस्य लेट्सम्बन्धिनो लादेशस्य पर्यायेण अट्-आटावागमौ भवतः।

उदा०-(अट्) जोषिषत् (ऋ० २।३५।१)। तारिषत् (ऋ० १।२५।१२)। मन्दिषत्। (आट्) पताति दिद्युत् (ऋ० ७।२५।१)। उदधिं च्यावयाति (तै०सं० ३।५।५।२)।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लेटः) लेट् सम्बन्धी (लस्य) लादेश को पर्याय से (अडाटौ) अट्-आट् आगम होते हैं।

उदा०-*(अट्) जोषिषत्। वह प्रीति/सेवन करे। तारिषत्। वह तरे। मन्दिषत्। वह स्तुति आदि करे। (आट्) पताति दिद्युत्। विद्युत् गिरे। उदधिं च्यावयाति। वह समुद्र में गिरावे।*

सिद्धि-(१) जोषिषत्। जुष्+लेट्। जुष्+श+तिप्। जुष्+अ+अट्+ति। जुष्+सिप्+अ+अ+त्। जोष्+इट्+स्+अ+त्। जोष्+इ+ष्+अ+त्। जोषिषत्।

यहां 'जुषी प्रीतिसेवनयोः' (तु०आ०) धातु से 'लिङर्थे लेट्' (३।४।७) से 'लेट्' प्रत्यय है और उसके स्थान में लादेश 'तिप्' प्रत्यय को इस सूत्र से 'अट्' आगम होता है। 'इतश्च लोपः परस्मैपदेषु' (३।४।९७) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। 'सिब् बहुलं लेटि' (३।१।३४) से 'सिप्' प्रत्यय होता है और उसे 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से 'षत्व' होता है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय भी होता है।

(२) तारिषत्। 'तॄ प्लवनसन्तरणयोः' (भ्वा०प०)। यहां 'वा०-सिब्बहुलं छन्दसि णिद्वक्तव्यः' (३।१।३४) से 'सिप्' के णिद्वद् होने से 'तॄ' धातु को 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) मन्दिषत्। 'मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिवातिषु' (भ्वा०आ०) से यहां 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से धातु को नुम् आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) पताति। यहां 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से लेट्' के लादेश 'तिप्' प्रत्यय को इस सूत्र से 'आट्' आगम होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय भी होता है।

(५) च्यावयाति। यहां-णिजन्त 'च्युङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'लेट्' के लादेश 'तिप्' प्रत्यय को 'आट्' आगम है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय भी होता है।

विशेष-जो यहां उक्त धातु पाणिनीय धातुपाठ में आत्मनेपदी पढ़ी गई हैं किन्तु उन्हें यहां परस्मैपदी दिखाया गया है। लेट् लकार का वैदिकभाषा में ही प्रयोग होता है। इसका समाधान 'वा च्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति' है।

ऐ-आदेशः–

(२) आत ऐ।६५।

प०वि०-आतः ६।१ ऐ १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः)।

अनु०-लस्य, लेट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लेटो लस्याऽऽत ऐ।

अर्थः-धातोः परस्य लेट्सम्बन्धिनो लादेशस्याऽऽकारस्य स्थाने ऐकार आदेशो भवति।

उदा०-तौ मन्त्रयैते। युवां मन्त्रयैथे। तौ करवैते। युवां करवैथे।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लेटः) लेट् सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (आतः) आकार के स्थान में (ऐ) ऐकार आदेश होता है।

*उदा०-**तौ मन्त्रयैते।** वे दोनों मन्त्रणा करें। **युवां मन्त्रयैथे।** तुम दोनों मन्त्रणा करो। **तौ करवैते।** वे दोनों करें। **युवां करवैथे।** तुम दोनों करो।*

*सिद्धि-(१) **मन्त्रयैते।** मन्त्रि+लेट्। मन्त्रि+आताम्। मन्त्रि+शप्+अट्+आताम्। मन्त्रि+अ+अ+आते। मन्त्रि+अ+ऐते। मन्त्रे+अ+ऐते। मन्त्रयैते।*

यहां 'मन्त्रि गुप्तभाषणे' (चु०आ०) इस णिजन्त धातु से 'लेट्' प्रत्यय के लादेश 'आताम्' प्रत्यय के 'आ' के स्थान में इस सूत्र से 'ऐ' आदेश होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'मन्त्रि' धातु को गुण और 'अय्' आदेश होता है।

*(२) **मन्त्रयैथे।** यहां 'आथाम्' प्रत्यय के 'आ' के स्थान में 'ऐ' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **करवैते।** यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'आताम्' प्रत्यय के 'आ' को 'ऐ' आदेश है। 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को तथा 'उ' प्रत्यय को भी गुण हो*

जाता है। तत्पश्चात् 'अव्' आदेश होता है। यहां 'छन्दस्युभयथा' (३।४।११७) से 'आताम्' प्रत्यय को सार्वधातुक मानकर 'तनादिकृञ्भ्यः उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय होता है और 'आताम्' प्रत्यय को आर्धधातुक मानकर ङित्त्वाभाव से विकरण प्रत्यय को गुण हो जाता है और 'कृ' धातु को उत्व नहीं होता है। ऐसे ही-करवैथे।

ऐ-आदेशविकल्पः–

(३) वैतोऽन्यत्र।६६।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, एतः ६।१ अन्यत्र अव्ययपदम्।

अनु०-लस्य, लेटः, ऐ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लेटो लस्य एतो वा ऐ, अन्यत्र।

अर्थः-धातोः परस्य लेट्सम्बन्धिनो लादेशस्य एकारस्य स्थाने विकल्पेन ऐकार आदेशो भवति, परं स **'आत ऐ'** (३।४।९५) इत्युक्तविषयादन्यत्र वेदितव्यः।

उदा०-(ऐ-आदेशः) सप्ताहानि शासै। अहमेव पशूनामीशै (का०सं० २५।१)। मदग्रा एव वो ग्रहा गृह्यान्तै (तै०सं० ६।४।७।१)। मद्देवतान्येव वः पात्राण्युच्यान्तै (तै०सं० ६।४।७।२)। न च भवति-यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् (ऋ० ६।१६।१७)।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लेटः) लेट् सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (एतः) एकार के स्थान में (ऐ) ऐकार आदेश होता है, परन्तु वह 'आत ऐ' (३।४।९५) के उक्त विषय से (अन्यत्र) अन्य स्थान पर होता है।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) शासै। शास्+लेट्। शास्+शप्+अट्+इट्। शास्+०+अ+ए। शास्+अ+ऐ। शासै।

यहां 'शासु अनुशिष्टौ' (अदा०प०) धातु से 'लेट्' प्रत्यय और उसके 'ल्' के स्थान में उत्तम पुरुष एकवचन 'इट्' आदेश है। उसे 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से 'एत्व' होता है। इस सूत्र से उस एकार के स्थान में 'ऐकार' आदेश होता है।

(२) ईशै। 'ईश ऐश्वर्ये' (अदा०आ०) पूर्ववत्। गृह्यान्तै, उच्यान्तै पदों की सिद्धि 'उपसंवादाशङ्कयोश्च' (३।४।८) के प्रवचन में देख लेवें।

(३) दधसे। धा+लेट्। धा+शप्+अट्+थास्। धा+धा+०+अ+से। ध+धा+अ+से। द+ध्+अ+से। दधसे।

यहां 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से 'लेट्' प्रत्यय और उसके 'ल्' के स्थान में 'थास्' आदेश है। 'थासः से' (३।४।८०) से 'थास्' के स्थान में 'से' आदेश होता है। इस सूत्र से विकल्प 'से' के एकार को ऐकार आदेश नहीं होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु, 'श्लौ' (६।१।१०) से 'धा' धातु को द्विर्वचन 'लेटोऽडाटौ' ३।४।९४) से 'अट्' आगम और 'घोर्लोपो लेटि वा' (७।३।७०) से आकार का लोप होता है।

इकार-लोपः–

(४) इतश्च लोपः परस्मैपदेषु।६७।

प०वि०-इतः ६।१ च अव्ययपदम्, लोपः १।१ परस्मैपदेषु ७।३।

अनु०-लस्य, लेटः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लेटो लस्य परस्मैपदेषु इतश्च वा लोपः।

अर्थः-धातोः परस्य लेट्सम्बन्धिनो लस्य परस्मैपदसंज्ञकेषु आदेशेषु वर्तमानस्य च इकारस्य विकल्पेन लोपो भवति।

उदा०-इकारलोपः-जोषिषत् (ऋ० २।३५।१)। तारिषत् (ऋ० १।२५।१२)। मन्दिषत्। न च भवति-पताति दिद्युत् (ऋ० ७।२५।१)। उदधिं च्यावयाति (तै०सं० ३।५।५।२)।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लेटः) लेट्सम्बन्धी (परस्मैपदेषु) परस्मैपद संज्ञक (लस्य) लादेशों में विद्यमान (इतः) इकार का (च) भी (वा) विकल्प से (लोपः) होता है।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-जोषिषत् आदि पदों की सिद्धि 'लेटोऽडाटौ' (३।४।९४) के प्रवचन में देख लेवें।

सकार-लोपः–

(५) स उत्तमस्य।६८।

प०वि०-सः ६।१ उत्तमस्य ६।१।

अनु०-लस्य, लेटः, वा, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लेटो लस्य उत्तमस्य सो वा लोपः।

अर्थः-धातो परस्य लेट्सम्बन्धिनो लादेशस्य उत्तमपुरुषस्य सकारस्य विकल्पेन लोपो भवति।

उदा०-सकारस्य लोपः-आवां करवाव। वयं करवाम। न च भवति-आवां करवावः। वयं करवामः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लेटः) लेट् सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (उत्तमस्य) उत्तम पुरुष के (सः) सकार का (वा) विकल्प से (लोपः) लोप होता है।

उदा०-सकार का लोप-आवां करवाव। वयं करवाम। सकार का लोप नहीं-आवां करवावः। वयं करवामः। हम दोनों करें। हम सब करें।

सिद्धि-(१) करवाव। कृ+लेट्। कृ+उ+आट्+वस्। कर्+ओ+आ+व। करवाव।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'लेट्' प्रत्यय और उसके स्थान में लादेश उत्तम पुरुष का द्विवचन 'वस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वस्' के सकार का लोप होता है। यहां 'लेटोऽडाटौ' (३।४।९४) से 'आट्' आगम, 'तनादिकृञ्भ्यः उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय और 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु और 'उ' प्रत्यय को गुण होता है। 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है। ऐसे ही-करवाम।

(२) करवावः। कृ+लेट्। कृ+उ+आट्+वस्। कर्+ओ+आ+वस्। करवावरु। करवावर्। करवावः।

यहां इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'वस्' प्रत्यय के सकार का लोप नहीं होता है। उसे 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) रुत्व और 'खरवासनयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को 'विसर्जनीय' आदेश होता है। ऐसे ही-करवामः।

ङित्-लकारादेशागमप्रकरणम्

सकार-लोपः (ङिति)-

(१) नित्यं ङितः।९९।

प०वि०-नित्यम् १।१ ङितः ६।१।

अनु०-लस्य, लोपः, सः, उत्तमस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्ङितो लस्य उत्तमस्य सो नित्यं लोपः।

अर्थः-धातोः परस्य ङितो लकारस्य लादेशस्य उत्तमपुरुषस्य सकारस्य नित्यं लोपो भवति।

उदा०-आवाम् अपचाव। वयम् अपचाम।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (ङितः) ङित् लकार सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (उत्तमस्य) उत्तमपुरुष के (सः) सकार का (नित्यम्) सदा (लोपः) लोप होता है।

*उदा०-**आवाम् अपचाव।** हम दोनों ने पकाया। **वयम् अपचाम।** हम सबने पकाया।*

*सिद्धि-(१) **अपचाव।** पच्+लङ्। अट्+पच्+शप्+वस्। अ+पच्+अ+व०। अ+पच्+आ+व। अपचाव।*

*यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय और उसके लादेश उत्तम पुरुष द्विवचन 'वस्' प्रत्यय के सकार का इस सूत्र से नित्य लोप होता है। यहां 'लङ्लुङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से 'अट्' आगम, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और 'अतो दीर्घो यञि' (७।३।१०१) से दीर्घत्व होता है। ऐसे ही-**अपचाम।***

इकार-लोपः (ङिति)-

(२) इतश्च।१००।

प०वि०-इतः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-लस्य, ङितः, लोपः, नित्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्ङितो लस्य इतश्च नित्यं लोपः।

अर्थः-धातोः परस्य ङितो लकारस्य लादेशस्य इकारस्य च नित्यं लोपो भवति।

उदा०-अपचत्। अपाक्षीत् इत्यादिकम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (ङितः) ङित् लकार के (लस्य) लादेश के (इतः) इकार का (च) भी (नित्यम्) सदा (लोपः) लोप होता है।

*उदा०-**अपचत्।** उसने पकाया। **अपाक्षीत्।** उसने पकाया।*

*सिद्धि-(१) **अपचत्।** पच्+लङ्। लट्+पच्+शप्+तिप्। अ+पच्+अ+ति। अ+पच्+अ+त्। अपचत्।*

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'तिप्' प्रत्यय के इकार का इस सूत्र से लोप होता है। पूर्ववत् 'अट्' आगम और 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है।

(२) अपाक्षीत्। पच्+लुङ्। अट्+पच्+च्लि+ल्। अ+पच्+सिच्+तिप्। अ+पच्+स्+त्। अ+पच्+स्+ईट्+त्। अ+पाच्+स्+ई+त्। अ+पाक्+ष्+ई+त्। अपाक्षीत्।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'तिप्' प्रत्यय के इकार का इस सूत्र से लोप होता है। पूर्ववत् 'अट्' आगम, 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय, 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से 'त्' प्रत्यय को 'ईट्' आगम होता है। 'वदव्रजहलस्याचः' (७।२।३) से 'पच्' धातु को वृद्धि, 'चोः कुः' (८।२।३०) से कुत्व और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

ताम्-आद्यादेशाः (ङिति)–

(३) तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः।१०१।

प०वि०–तस्-थस्-थ-मिपाम् ६।३ ताम्-तम्-त-आमः १।३।

स०–तस् च थस् च थश्च मिप् च ते-तस्थस्थमिपः, तेषाम्-तस्थस्थमिपाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ताम् च तम् च तश्च अम् च ते-तान्तन्तामः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–लस्य, ङित इति चानुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्ङितो लस्य तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः।

अर्थः–धातोः परस्य ङितो लकारस्य लादेशानां तस्-थस्-थ-मिपां स्थाने यथासंख्यं ताम्-तम्-त-अम आदेशा भवन्ति। **उदाहरणम्**–

	लादेशाः	तामादयः	पच्+लङ्	भाषार्थः
(१)	तस्	ताम्	तौ अपचताम्।	उन दोनों ने पकाया।
(२)	थस्	तम्	युवाम् अपचतम्।	तुम दोनों ने पकाया।
(३)	थः	तः	यूयम् अपचत।	तुम सब ने पकाया।
(४)	मिप्	अम्	अहम् अपचम्।	मैंने पकाया।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (ङितः) ङित् लकार सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (तस्थस्थमिपाम्) तस्, थस्, थ, मिप् के स्थान में यथासंख्य (तान्तन्तामः) ताम्, तम्, त, अम् आदेश होते हैं।

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) अपचताम्। पच्+लङ्। अट्+पच्+शप्+तस्। अ+पच्+अ+ताम्। अपचताम्।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से परे 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'तस्' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'ताम्' आदेश है। 'पच्' धातु को पूर्ववत् 'अट्' आगम और 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। ऐसे ही-अपचतम्, अपचत, अपचम्।

सीयुट्+आगमः (लिङि)–

(४) लिङः सीयुट्।१०२।

प०वि०-लिङः ६।१ सीयुट् १।१।

अनु०-लस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लिङो लस्य सीयुट्।

अर्थः-धातोः परस्य लिङ्-सम्बन्धिनो लादेशस्य सीयुड् आगमो भवति।

उदा०-स पचेत। तौ पचेयाताम्। ते पचेरन्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिङः) लिङ् सम्बन्धी (लस्य) लादेश को (सीयुट्) आगम होता है।

उदा०-स पचेत। वह पकावे। तौ पचेयाताम्। वे दोनों पकावें। ते पचेरन्। वे सब पकावें।

सिद्धि-(१) पचेत। पच्+लिङ्। पच्+शप्+सीयुट्+त। पच्+अ+ईय्+सुट्+त। पच्+अ+ई ०+स्+त। पच्+अ+ई+०+त। पचेत।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'विधिनिमन्त्रण०' (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'त' प्रत्यय को इस सूत्र से 'सीयुट्' आगम है। 'सुट् तिथोः' (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम भी होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'सीयुट्' के 'स्' का लोप और 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'य्' का लोप होता है। 'आद्गुणः' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश (अ+इ=ए) होता है।

(२) पचेयाताम्। यहां 'आताम्' प्रत्यय है।

(३) पचेरन्। यहां 'झ' प्रत्यय और उसके स्थान में 'झस्य रन्' (३।४।१०५) से 'रन्' आदेश है।

यासुट्-आगमः (लिङि)–

(५) यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च।१०३।

प०वि०-यासुट् १।१ परस्मैपदेषु ७।३ उदात्तः १।१ ङित् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-ङ् इद् यस्य स ङित् (बहुव्रीहिः)

अनु०-लस्य इति चानुवर्तते।

अर्थः-धातोः परस्य लिङ्सम्बन्धिनो लस्य परस्मैपदसंज्ञकेषु आदेशेषु यासुट् आगमो भवति, स उदात्तो ङिच्च भवति।

उदा०-स कुर्यात्। तौ कुर्याताम्। ते कुर्युः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिङः) लिङ् सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (परस्मैपदेषु) परस्मैपद संज्ञक आदेशों में (यासुट्) यासुट् आगम होता है और वह (उदात्तः) उदात्त और (ङित्) ङित् होता है।

उदा०-स कुर्यात्। वह करे। तौ कुर्याताम्। वे दोनों करें। ते कुर्युः। वे सब करें।

सिद्धि-(१) कुर्यात्। कृ+लिङ्। कृ+यासुट्+तिप्। कृ+उ+यास्+सुट्+त्। कर्+उ+या+०+त्। कुर्+०+या+त्। कुर्यात्।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'विधिनिमन्त्रण०' (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'तिप्' प्रत्यय को इस सूत्र से यासुट् आगम है। 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से यासुट् के 'स्' का लोप और 'इतश्च' (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण (कर्) 'अत उत् सार्वधातुके' (६।४।११०) से 'कर्' के 'अ' को 'उकार' आदेश और 'ये च' (६।४।१०९) से 'उ' प्रत्यय का लोप होता है।

(२) कुर्याताम्। यहां 'तस्' प्रत्यय के स्थान में 'तस्थस०' (३।४।१०१) से 'आताम्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) कुर्युः। यहां 'झि' प्रत्यय के स्थान में 'झेर्जुस्' (३।४।१०८) से 'जुस्' आदेश है। 'उस्यपदान्तात्' (६।१।९३) से 'आ' को पररूप एकादेश (या+उस्=युः) होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेष-यहां 'यासुट्' आगम के उदात्त कथन से ज्ञापित होता है कि 'आगमा अनुदात्ता भवन्ति' अर्थात् आगम अनुदात्त होते हैं। यहां 'यासुट्' आगम का ङित् कहना

तिप्, सिप्, मिप् इन पित् प्रत्ययों के लिये हैं। शेष अपित् प्रत्यय 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'ङित्' होते हैं।

यासुट्-आगमः (आशीर्लिङि)–

(६) किदाशिषि।१०४।

प०वि०–कित् १।१ आशिषि ७।१।

स०–क् इद् यस्य स कित् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–लस्य, लिङः, यासुट् परस्मैपदेषु, उदात्त, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–धातोराशिषि लिङो लस्य परस्मैपदेषु यासुट्, उदात्तः किच्च।

अर्थः–धातोः परस्याऽऽशिषि अर्थे विहितस्य लिङ्लकारस्य लस्य परस्मैपदसंज्ञकेषु आदेशेषु यासुट्-आगमो भवति, स उदात्तः किच्च भवति।

उदा०–स इज्यात्। तौ इज्यास्ताम्। ते इज्यासुः। स जागर्यात्। तौ जागर्यास्ताम्। ते जागर्यासुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (आशिषि) आशीर्वाद अर्थ में विहित (लिङः) लिङ् लकार के (परस्मैपदेषु) परस्मैपदसंज्ञक प्रत्ययों में (यासुट्) यासुट् आगम होता है (सः) वह (उदात्तः) उदात्त और (कित्) कित् (च) भी होता है।

उदा०-स इज्यात्। वह यज्ञ करे। तौ इज्यास्ताम्। वे दोनों यज्ञ करें। ते इज्यासुः। वे सब यज्ञ करें। स जार्गयात्। वह जागरण करे। तौ जागर्यास्ताम्। वे दोनों जागरण करें। ते जागर्यासुः। वे सब जागरण करें।

सिद्धि-(१) इज्यात्। यज्+लिङ्। यज्+यासुट्+तिप्। यज्+यास्+सुट्+त्। इ अ ज्+या ०+स्+ते। इज्या+० त्। इज्यात्।

यहां 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से 'आशिषि लिङ्लोटौ' (३।३।१७३) से आशीर्वाद में 'लिङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'तिप्' प्रत्यय को इस सूत्र से 'यासुट्' आगम है और 'सुट् तिथोः' (४।३।१०७) से 'सुट्' आगम होता है। 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' (८।२।२९) से 'यासुट्' और 'सुट्' के 'स्' का लोप होता है। 'यासुट्' आगम के 'कित्' होने से 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से 'यज्' धातु को सम्प्रसारण होता है। 'लिङ्ग्शिषि' (३।४।११६) से आशीर्लिङ् के आर्धधातुक होने से 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय नहीं होता है।

(२) इज्यास्ताम्। यहां 'तस्' के स्थान में 'तस्थस०' (३।४।१०१) से 'ताम्' आदेश और 'सुट् तिथोः' (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम होता है। 'यासुट्' के सकार का 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' (८।२।२९) से लोप हो जाता है।

(३) इज्यासुः। यहां 'झि' के स्थान में 'झेर्जुस्' (३।४।१०८) से 'जुस्' आदेश है।

(४) जागर्यात्। यहां 'जागृ निद्राक्षये' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिङ्' और उसके लादेश 'तिप्' को 'यासुट्' आगम है। उसके 'कित्' होने से 'जाग्रोऽविचिणणल्ङित्सु' (७।२।८५) से 'जागृ' धातु को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् हैं। ऐसे ही-जागर्यास्ताम्, जागर्यासुः।

रन्-आदेशः (लिङि)-

(७) झस्य रन्।१०५।

प०वि०-झस्य ६।१ रन् १।१।

अनु०-लस्य इत्यनुवर्तते।

अर्थः-धातोः परस्य लिङ्सम्बन्धिनो लादेशस्य झ-प्रत्ययस्य स्थाने रन्-आदेशो भवति।

उदा०-ते पचेरन्। ते यजेरन्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिङः) लिङ् सम्बन्धी (लस्य) लादेश (झस्य) झ-प्रत्यय के स्थान में (रन्) रन् आदेश होता है।

उदा०-ते पचेरन्। वे सब पकावें। ते यजेरन्। वे सब यज्ञ करें।

सिद्धि-(१) पचेरन्। पच्+लिङ्। पच्+शप्+सीयुट्+त। पच्+अ+सीय्+सुट्+त। पच्+अ+सीय्+स्+त। पच्+अ+ईय्+०+त। पच्+अ+ई+०+त। पचेत।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'विधिनिमन्त्रण०' (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'झ' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'रन्' आदेश है। 'लिङः सीयुट्' (३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम, 'सुट् तिथोः' (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम और 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'सीयुट्' और 'सुट्' के 'स्' का लोप और 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'य्' का लोप होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और 'आद्गुणः' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश (अ+ई=ए) होता है।

(२) यजेरन्। 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

अत्-आदेशः (लिङि)-

(८) इटोऽत्।१०६।

प०वि०-इटः ६।१ अत् १।१।

अनु०-लस्य, लिङ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लिङो लस्य इटोऽत्।

अर्थः-धातोः परस्य लिङ्सम्बन्धिनो लादेशस्य इटः स्थानेऽत्-आदेशो भवति।

उदा०-अहं पचेय। अहं यजेय।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिङः) लिङ्सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (इटः) 'इट्' प्रत्यय के स्थान में (अत्) अत् आदेश होता है।

उदा०-अहं पचेय। मैं पकाऊं। अहं यजेय। मैं यज्ञ करूं।

सिद्धि-(१) पचेय। पच्+लिङ्। पच्+शप्+सीयुट्+इट्। पच्+अ+सीय्+अत्। पच्+अ+०+ई य्+अ। पचेय।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से परे 'विधिनिमन्त्रण०' (३।१।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'इट्' प्रत्यय के स्थान में 'अत्' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत है (३।४।१०५)।

(२) यजेय। पूर्वोक्त 'यज्' धातु से पूर्ववत्।

सुट्-आगमः (लिङि)-

(६) सुट् तिथोः।१०७।

प०वि०-सुट् १।१ तिथोः ७।२।

स०-तिश्च थश्च तौ-तिथौ, तयोः-तिथोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। तकारे इकार उच्चारणार्थः।

अनु०-लस्य, लिङः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लिङो लस्य तिथोः सुट्।

अर्थः-धातोः परस्य लिङ्सम्बन्धिनो लादेशयोस् तकार-थकारयोः सुट्-आगमो भवति।

उदा०-(तः) स कृषीष्ट। तौ कृषीयास्ताम्। (थः) त्वं कृषीष्ठाः। युवां कृषीयास्थाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिङः) लिङ्सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (तिथोः) त और थ को (सुट्) सुट् आगम होता है।

उदा०-(त) स कृषीष्ट। वह शुभ कर्म करे। तौ कृषीयास्ताम्। वे दोनों शुभ कर्म करें। (थ) त्वं कृषीष्ठाः। तू शुभ कर्म कर। युवां कृषीयास्थाम्। तुम दोनों शुभ कर्म करो।

सिद्धि-(१) कृषीष्ट। कृ+लिङ्। कृ+सीयुट्+त। कृ+सीय्+सुट्+त। कृसी०+स्+त। कृ+षी+स्+ट। कृषीष्ट।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'आशिषि लिङ्लोटौ' (३।३।१७३) से आशीर्लिङ् अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है और उसके लादेश 'त' प्रत्यय को इस सूत्र से 'सुट्' आगम होता है। 'लिङः सीयुट्' (३।३।१०२) से 'सीयुट्' आगम है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।२।५९) से षत्व और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से टुत्व होता है।

(२) कृषीयास्ताम्। यहां 'आताम्' प्रत्यय के 'त' को 'सुट्' आगम है।

(३) कृषीष्ठाः। यहां 'थास्' प्रत्यय के 'थ' को सुट् आगम और पूर्ववत् षत्व और ष्टुत्व होता है।

(४) कृषीयास्थाम्। यहां 'आथाम्' प्रत्यय के 'थ' को 'सुट्' आगम है।

जुस्-आदेशः (लिङि)-

(१०) झेर्जुस्।१०८।

प०वि०-झेः ६।१ जुस् १।१।

अनु०-लस्य, लिङ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लिङो लस्य झेर्जुस्।

अर्थः-धातोः ॰ ॰ प लिङ्सम्बन्धिनो लादेशस्य झि-स्थाने जुस्-आदेशो भवति।

उदा०-ते पचेयुः। ते यजेयुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिङः) लिङ सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (झेः) झि-प्रत्यय के स्थान में (जुस्) जुस् आदेश होता है।

उदा०-ते पचेयुः। वे सब पकावें। ते यजेयुः। वे सब यज्ञ करें।

सिद्धि-(१) पचेयुः। पच्+लिङ्। पच्+शप्+यासुट्+झि। पच्+अ+यास्+जुस्। पच्+अ+या०+उस्। पच्+अ+इय्+उस्। पच्+अ+इ०+उस्। पचेयुः।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'विधिनिमन्त्रण०' (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'झि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'जुस्' आदेश है। 'यासुट् परस्मैपदेषु०' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से

'शप्' विकरण प्रत्यय है। 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'यासुट्' के 'स्' का लोप होता है। 'अतो येयः' (७।२।८०) से 'या' को 'इय्' आदेश, 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'य्' का लोप और 'आद्गुणः' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश (अ+इ=ए) होता है।

(२) यजेयुः। 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

जुस्-आदेशः–

(११) सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च।१०६।

प०वि०–सिच्-अभ्यस्त-विदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–सिच् च अभ्यस्तश्च विदिश्च ते-सिजभ्यस्तविदयः, तेभ्यः-सिजभ्यस्तविदिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–लस्य, ङित्, झेः, जुस् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च धातुभ्यो ङितो लस्य झेर्जुस्।

अर्थः–सिचोऽभ्यस्ताद् विदेश्च धातोः परस्य अपि ङित्-सम्बन्धिनो लादेशस्य झि-प्रत्ययस्य स्थाने जुस्-आदेशो भवति।

उदा०–(**सिचः**) ते अकार्षुः। ते अहार्षुः। (**अभ्यस्तात्**) ते अबिभयुः। ते अजिह्रयुः। (**विदेः**) ते अविदुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सिजभ्यस्तविदिभ्यः) सिच् प्रत्यय, अभ्यस्त और विद् (धातोः) धातु से परे (च) भी (ङितः) ङित् लकार सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (झेः) झि-प्रत्यय के स्थान में (जुस्) जुस् आदेश होता है।

उदा०-(सिच्) ते अकार्षुः। उन्होंने किया। ते अहार्षुः। उन्होंने हरण किया। (अभ्यस्त) ते अबिभयुः। वे भयभीत हुये। ते अजिह्रयुः। वे लज्जित हुये। (विद्) ते अविदुः। उन्होंने जाना।

सिद्धि-(१) अकार्षुः। कृ+लुङ्। अट्+कृ+च्लि+ल्। अ+कृ+सिच्+झि। अ+कार्+ष्+उस्। अ+कृ+स्+जुस्। अकार्षुः।

यहां 'कृ' धातु से परे 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय पूर्ववत् 'अट्' आगम, 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। 'सिच्' से परे 'लुङ्' प्रत्यय के लादेश 'झि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'जुस्' आदेश होता है। 'सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु' (७।२।१) से 'कृ' धातु को वृद्धि और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है। ऐसे ही 'हृ' धातु से-अहार्षुः।

(२) अबिभयुः। भी+लुङ्। अट्+भी+शप्+झि। अ+भी+०+झि। अ+भी+भी+जुस्। अ+बि+भे+उस्। अबिभयुः।

यहां 'ञिभी भये' (जु०प०) धातु से 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय, पूर्ववत् 'अट्' आगम, 'लङ्' के स्थान में लादेश 'झि' प्रत्यय होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' और 'श्लौ' (६।१।१०) से 'भी' धातु को द्विर्वचन होता है। 'उभे अभ्यस्तम्' (६।१।५) से द्विरुक्त धातु की अभ्यस्त संज्ञा और इस सूत्र से अभ्यस्त धातु से 'झि' प्रत्यय के स्थान में 'जुस्' होता है। 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व और 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से अभ्यास के 'भ्' को जश् 'ब्' होता है। 'जुसि च' (७।३।८३) से धातु को गुण, 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'अय्' आदेश होता है।

(३) अजिह्रयुः। 'ह्री लज्जायाम्' (जु०प०)। अभ्यास के 'ह्' को 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से चवर्ग 'झ' और 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से 'झ्' को जश् 'ज्' होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) अविदुः। विद्+लङ्। अट्+विद्+शप्+झि। अ+विद्+०+जुस्। अ+विद्+उस। अविदुः।

यहां 'विद् ज्ञाने' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'झि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'जुस्' आदेश होता है।

जुस्-आदेशः—

(१२) आतः।११०।

प०वि०–आतः ५।१।

अनु०–लस्य, ङितः, झेः, जुस्, सिच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सिचो लुकि सति आतो धातोर्ङितो लस्य झेर्जुस्।

अर्थः–सिचो लुकि सति श्रुत्याऽऽकारान्ताद् धातोः परस्य ङित्-सम्बन्धिनो लादेशस्य झि-प्रत्ययस्य स्थाने जुस् आदेशो भवति।

उदा०–ते अदुः। ते अधुः। ते अस्थुः।

आर्यभाषा-अर्थ–*(सिच्) सिच् प्रत्यय का लुक् हो जाने पर श्रुति से (आतः) आकारान्त (धातोः) धातु से परे (ङितः) ङित् लकार सम्बन्धी (लस्य) लादेश (झेः) झि-प्रत्यय के स्थान में (जुस्) जुस् आदेश होता है।*

उदा०–*ते अदुः। उन्होंने दान किया। ते अधुः। उन्होंने धारण-पोषण किया। ते अस्थुः। उन्होंने अवस्थान किया।*

सिद्धि-(१) दा+लुङ्। अट्+दा+च्लि+ल्। अ+दा+सिच्+झि। अ+दा+०+जुस्। अ+दा+उस्। अ+द+उस्। अदुः।

यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय, पूर्ववत् 'अट्' आगम, 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और 'च्ले सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। 'गातिस्थाघु०' (२।४।७७) से सिच् का लुक् होने पर इस सूत्र से आकारान्त 'दा' धातु से लादेश झि' प्रत्यय के स्थान में 'जुस्' आदेश होता है। 'उस्यपदान्तात्' (६।१।९६) से 'दा' धातु के 'आ' को पररूप एकादेश (उ) होता है।

(२) अधुः। 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) पूर्ववत्।

(३) अस्थुः। 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

शाकटायनमतम्–

(१३) लङः शाकटायनस्यैव।१११।

प०वि०-लङः ६।१ शाकटायनस्य ६।१ एव अव्ययपदम्।

अनु०-लस्य, झेः, जुस्, आत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आतो धातोर्लङो लस्य झेर्जुस्, शाकटायनस्यैव।

अर्थः-आकारान्ताद् धातोः परस्य लङ्सम्बन्धिनो लादेशस्य झि-प्रत्ययस्य स्थाने जुस् आदेशो भवति, शाकटायनस्यैवाचार्यस्य मतेन।

उदा०-ते अयुः। ते अवुः। पाणिनिमते-अयान्। अवान्।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(आतः) आकारान्त (धातोः) धातु से परे (लङः) लङ्सम्बन्धी (लस्य) लादेश (झेः) झि-प्रत्यय के स्थान में (जुस्) जुस् आदेश होता है (शाकटायनस्य) शाकटायन आचार्य के (एव) ही मत में।*

***उदा०**-ते अयुः। वे गये/पहुंचे। ते अवुः। वे पवन से बुझ गये। पाणिनि के मत में-अयान्। अवान्। अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-(१) अयुः। या+लङ्। अट्+या+शप्+झि। अ+या+०+जुस्। अ+या+उस्। अयुः।

यहां 'या प्रापणे' (अदा०प०) धातु से 'अनद्यते लङ्' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय, पूर्ववत् 'अट्' आगम, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् है। 'लङ्' प्रत्यय के लादेश 'झि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से शाकटायन आचार्य के मत में 'जुस्' आदेश होता है।

(२) अवुः। 'वा गतिगन्धनयोः' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(३) अयान्। या+लङ्। अट्+या+शप्+झि। अ+या+०+अन्ति। अ+या+अन्त्। अ+यान्०। अयान्।

यहां 'लङ्' प्रत्यय के आदेश 'झि' प्रत्यय के स्थान में पाणिनिमुनि के मत में 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'अन्त' आदेश होता है। 'इतश्च' (३।४।१००) से 'इकार' का लोप और 'संयोगन्तस्य लोपः' (८।२।२३) से 'तकार' का लोप होता है।

शाकटायनमतम्–

(१४) द्विषश्च।११२।

प०वि०–द्विषः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–लस्य, झेः, जुस्, लङः, शाकटायनस्य, एव इति चानुवर्तते।

अर्थः–द्विषश्च धातोः परस्य लङ्सम्बन्धिनो लादेशस्य झि-प्रत्ययस्य स्थाने जुस् आदेशो भवति, शाकटायनस्यैवाचार्यस्य मतेन।

उदा०–ते अद्विषुः। पाणिनिमते–अद्विषन्।

आर्यभाषा-अर्थ–(द्विषः) द्विष् (धातोः) धातु से परे (च) भी (लङः) लङ् सम्बन्धी (लस्य) लादेश (झेः) झि-प्रत्यय के स्थान में (जुस्) जुस् आदेश होता है, (शाकटायनस्य) शाकटायन आचार्य के (एव) ही मत में।

उदा०–ते अद्विषुः। उन्होंने द्वेष किया। पाणिनिमते–अद्विषन्। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि–(१) अद्विषुः। यहां 'द्विष अप्रीतौ' (अदा०प०) धातु से परे पूर्ववत् 'लङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'झि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से शाकटायन आचार्य के मत में 'जुस्' आदेश होता है।

(२) अद्विषन्। यहां पाणिनिमुनि के मत में 'झि' प्रत्यय के स्थान में 'जुस्' आदेश नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

इति लकारादेशप्रकरणम्।

सार्वधातुकसंज्ञा

(१) तिङ्शित् सार्वधातुकम्।११३।

प०वि०–तिङ्शित् १।१ सार्वधातुकम् १।१।

स०–श इत् यस्य स शित्, तिङ् च शिच्च एतयोः समाहारः–तिङ्शित् (बहुव्रीहिगर्भितः समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोस्तिङ्शित् सार्वधातुकम्।

अर्थः-धातोर्विहिता स्तिङः शितश्च प्रत्ययाः सार्वधातुकसंज्ञका भवति।

उदा०-स भवति। स नयति। स स्वपिति। स रोदिति। पवमानः। यजमानः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से विहित (तिङ्शित्) तिङ् और शित् प्रत्यय (सार्वधातुकम्) सार्वधातुक संज्ञक होते हैं।

उदा०-स भवति। वह होता है। स नयति। वह ले जाता है। स स्वपिति। वह सोता है। स रोदिति। वह रोता है। पवमानः। पवित्र करता हुआ। यजमानः। यज्ञ करता हुआ।

सिद्धि-(१) भवति। भू+लट्। भू+शप्+तिप्। भू+अ+ति। भो+अ+ति। भवति।

यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'तिप्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'तिप्' की सार्वधातुक संज्ञा होने से 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। 'शप्' प्रत्यय के 'शित्' होने से इसी सूत्र से उसकी भी सार्वधातुक संज्ञा होती है। अतः 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'भू' धातु को गुण होता है।

(२) नयति। 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

(३) स्वपिति। स्वप्+लट्। स्वप्+शप्+तिप्। स्वप्+०+ति। स्वप्+इट्+ति। स्वप्+इ+ति। स्वपिति।

यहां 'ञिष्वप् शये' (अदा०प०)। यहां 'तिप्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय और 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। 'रुदादिभ्यः सार्वधातुके' (७।२।७६) से सार्वधातुक को 'इट्' आगम होता है।

(४) रोदिति। 'रुदिर् अश्रुविमोचने' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(५) पवमानः। पू+शानन्। पू+शप्+आन। पो+अ+मुक्+आन। पो+अ+म्+आन। पवमान+सु। पवमानः।

यहां 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) धातु से 'पूङ्यजोः शानन्' (३।२।१२८) से शानन् प्रत्यय है। प्रत्यय के 'शित्' होने से इस सूत्र से उसकी सार्वधातुक संज्ञा है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'पू' धातु को गुण होता है।

(६) यजमानः। 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

आर्धधातुकसंज्ञा–

(१) आर्धधातुकं शेषः ।११४।

प०वि०–आर्धधातुकम् १ ।१ शेषः १ ।१ । उक्तादन्यः शेषः ।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते ।

अर्थः–धातोर्विहिताः शेषाः=तिङ्शिद्भिन्नाः प्रत्यया आर्धधातुकसंज्ञका भवन्ति ।

उदा०–लविता । लवितुम् । लवितव्यम् ।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से विहित (शेषः) तिङ् और शित् से भिन्न प्रत्ययों की (आर्धधातुकम्) आर्धधातुक संज्ञा होती है।

उदा०–लविता। काटनेवाला। लवितुम्। काटने के लिये। लवितव्यम्। काटना चाहिये।

सिद्धि-(१) लविता। लू+तृच्। लू+इट्+तृच्। लो+इ+तृ। लवितृ+सु। लविता। यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३ ।१ ।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। यह प्रत्यय 'तिङ्' और 'शित्' से भिन्न है। अतः इस सूत्र से इसकी सार्वधातुक संज्ञा है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७ ।२ ।३५) से इसे 'इट्' आगम होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (३७ ।३ ।८४) से 'लू' धातु को गुण होता है। शेष सिद्धि-कार्य 'ण्वुल्तृचौ' (३ ।१ ।१३३) के प्रवचन में देख लेवें।

(२) लवितुम्। यहां पूर्वोक्त 'लू' धातु से 'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्' (३ ।३ ।१०) से आर्धधातुक 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) लवितव्यम्। यहां 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३ ।१ ।९६) से आर्धधातुक तव्यत्/तव्य प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

आर्धधातुकसंज्ञा–

(२) लिट् च ।११५।

प०वि०–लिट् (लुप्तषष्ठीनिर्देशः) च अव्ययपदम् ।

अनु०–आर्धधातुकम् इत्यनुवर्तते ।

अर्थः–लिटः स्थाने यस्तिङ् आदेशः सोऽपि आर्धधातुकसंज्ञको भवति ।

उदा०–त्वं पेचिथ। त्वं शेकिथ। स जग्ले। स मम्ले।

आर्यभाषा-अर्थ-(लिट्) लिट् के स्थान में जो तिङ् आदेश है उसकी (च) भी (आर्धधातुकम्) आर्धधातुक संज्ञा होती है।

उदा०-त्वं पेचिथ। तूने पकाया। त्वं शेकिथ। तू समर्थ हुआ। स जग्ले। स मम्ले। उसने ग्लानि की।

सिद्धि-(१) पेचिथ। पच्+लिट्। पच्+सिप्। पच्+थल्। पच्+पच्+थ। प+पच्+थ। ०+पच्+इट्+थ। पेच्+इ+थ। पेचिथ।

यहां 'पच्' धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय और 'तिप्तसझि०' (३।४।७८) से उसके स्थान में 'सिप्' आदेश है। इस सूत्र से उसकी आर्धधातुक संज्ञा है। 'परस्मैपदानां णल०' (३।४।८२) से 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश होता है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'पच्' धातु को द्विर्वचन होता है। 'ऋतो भारद्वाजस्य' (७।२।६३) के नियम से 'थल्' को 'इट्' आगम और 'थलि च सेटि' (६।४।१२१) से 'पच्' धातु को एत्व और अभ्यास का लोप होता है।

(२) शेकिथ। 'शक्लृ शक्तौ' (स्वा०प०) पूर्ववत्।

(३) जग्ले। ग्ला+लिट्। ग्ला+त। ग्ला+ऐश्। ग्ला+ग्ला+ए। गा+ग्ला+ए। ग+ग्ल्+ए। ज+ग्ल्+ए। जग्ले।

यहां 'ग्लै हर्षक्षये' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'त' आदेश है। इस सूत्र से उसकी आर्धधातुक संज्ञा है। 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' होता है। पूर्ववत् 'ग्ला' धातु को द्वित्व और 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से 'ग्' को चवर्ग 'ज्' होता है। त (एश्) प्रत्यय के आर्धधातुक होने से 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से धातु के 'आ' का लोप हो जाता है।

(४) मम्ले। 'म्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

आर्धधातुकसंज्ञा–

(३) लिङाशिषि।११६।

प०वि०-लिङ् ६।१ (लुप्तषष्ठीनिर्देशः) आशिषि ७।१।

अनु०-आर्धधातुकम् इत्यनुवतति।

अन्वयः-आशिषि लिङो लस्यादेश आर्धधातुकम्।

अर्थः-आशिषि वर्तमानस्य लिङो लकारस्यादेशा आर्धधातुकसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-स लविषीष्ट। स पविषीष्ट।

आर्यभाषा-अर्थ-(आशिषि) आशीर्वाद अर्थ में विद्यमान (लिङ्) लिङ् सम्बन्धी लकार के तिप् आदि आदेश (आर्धधातुकम्) आर्धधातुक संज्ञक होते हैं।

उदा०-स लविषीष्ट। वह कटाई करे। स पविषीष्ट। वह पवित्र करे।

सिद्धि-(१) लविषीष्ट। लू+लिङ्। लू+सीयुट्+त। लू+सीय्+सुट्+त। लू+इट्+सी०+स्+त। लो+इ+षी+ष+ट। लविषीष्ट।

यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'आशिषि लिङ्लोटौ' (३।३।१७३) से आशीर्वाद में 'लिङ्' प्रत्यय है। उसके स्थान में 'त' आदेश की इस सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा है। 'लिङः सीयुट्' (३।४।१०२) से 'सीयुट्' और 'सुट् तिथोः' (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम होता है। 'त' प्रत्यय के आर्धधातुक होने से 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'लू' धातु को गुण होता है। यदि यहां 'त' प्रत्यय सार्वधातुक हो तो वह 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'ङित्' होकर 'क्ङिति च' (१।१।५) से गुण का बाधक हो जाये। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम, 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से टुत्व होता है।

(२) पविषीष्ट। 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) पूर्ववत्।

उभयसंज्ञा–

(४) छन्दस्युभयथा।११७।

प०वि०-छन्दसि ७।१ उभयथा अव्ययपदम्।

अर्थः-छन्दसि विषये तिङशित्-आदयः प्रत्यया उभयथा=सार्वधातुकसंज्ञका आर्धधातुकसंज्ञकाश्च भवन्ति।

उदा०-वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयः (ऋ० ७।९९।७)। स्वस्तये नावमिवा रुहेम (ऋ० १०।१७८।२)। ससृवांस विश्रृण्विरे (ऋ० ४।८।६)। सोममिन्द्राय सुन्विरे (ऋ० ७।३२।४)। उपस्थेयाम शरणा बृहन्ता (ऋ० ६।४७।८)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में तिङ्-शित् आदि प्रत्यय (उभयथा) सार्वधातुक और आर्धधातुक संज्ञक होते हैं।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) वर्धन्तु। वर्धि+लोट्। वर्धि+शप्+झि। वर्धि+अ+अन्ति। वर्ध्+अ+अन्तु। वर्धन्तु।

यहां णिजन्त 'वृधु वृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'झि' आदेश है। 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'झ्' को 'अन्त' आदेश और 'एरुः' (३।४।८६) से 'उत्व' होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्'

विकरण प्रत्यय है। उसे 'आर्धधातुक' मानकर 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' प्रत्यय का लोप होता है।

(२) स्वस्तये। सु+अस्+क्तिन्। सु+अस्+ति। स्वस्ति+सु। स्वस्तिः।

यहां 'सु' उपसर्गपूर्वक 'अस् भुवि' (अदा०प०) धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्तिन्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से 'अस्तेर्भूः' (२।४।५२) से 'अस्' के स्थान में 'भू' आदेश नहीं होता है।

(३) विशृण्विरे। वि+श्रु+लिट्। वि+श्रु+झ। वि+श्रु+श्नु+इरेच्। वि+शृ+नु+इरे। विशृण्विरे।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'श्रु श्रवणे' (स्वा०प०) धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'झ' प्रत्यय और 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' (३।४।८१) से उसके स्थान में 'इरेच्' आदेश होता है। इस सूत्र से उसकी सार्वधातुक संज्ञा है। अतः 'श्रुवः शृ च' (३।१।७४) से 'श्रु' के स्थान में 'शृ' आदेश और 'श्नु' विकरण प्रत्यय होता है।

(४) सुन्विरे। सु+लिट्। सु+झ। सु+श्नु+इरेच्। सु+नु+इरे। सुन्विरे।

यहां 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और उसके सार्वधातुक होने से 'स्वादिभ्यः श्नुः' (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण प्रत्यय होता है।

(५) उपस्थेयाम। उप+स्था+लिङ्। उप+स्था+यासुट्+मस्। उप+स्था+यास्+म। उप+स्थे+या+म। उपस्थेयाम।

यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से 'विधिनिमन्त्रण०' (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'मस्' आदेश है। 'यासुट् परस्मैपदेषु०' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम है। यहां 'लिङ्' को सार्वधातुक मानकर 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'यासुट् के 'स्' का लोप हो जाता है और उसे आर्धधातुक मानकर 'एर्लिङि' (६।४।६७) से 'स्था' धातु को 'ए' आदेश होता है।

विशेष- 'छन्दस्युभयथा' यह सूत्र वस्तुतः 'व्यत्ययो बहुलम्' (३।१।८५) का ही प्रपञ्च है।

इति श्रीयुतपरिव्राजकाचार्याणाम् ओमानन्दसरस्वती-स्वामिनां महाविदुषां पण्डितविश्वप्रियशास्त्रिणां च शिष्येण पण्डितसुदर्शनदेवाचार्येण विरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः।

समाप्तश्चायं तृतीयोऽध्यायः।

इति द्वितीयो भागः।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

द्वितीयभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका

इति द्वितीयभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्
संक्षिप्तपदानां विवरणपत्रम्

(१) अथर्व०	-	अथर्ववेद:।
(२) उ०	-	उणादिकोष:।
(३) ऋ०	-	ऋग्वेद:।
(४) कां०सं०	-	काठक-संहिता।
(५) गो०ब्रा०	-	गोपथब्राह्मणम्।
(६) तै०ब्रा०	-	तैत्तिरीयब्राह्मणम्।
(७) पा०का०भा०	-	पाणिनि कालीन भारतवर्ष।
(८) यजु०	-	यजुर्वेद:।
(९) वा०	-	वार्तिकसूत्रम्।
(१०) शत०	-	शतपथब्राह्मणम्।

शेषसंक्षिप्तपदानां विवरणं प्रथमद्वितीयाध्यायात्मकस्य प्रथमभागस्यान्तिमे पृष्ठे द्रष्टव्यम्।

इति संक्षिप्तपदानां विवरणपत्रम्।